

जयधवलासहितं

क सा य पा हु ङं

भाग द

[बंधगो १]

भारतीय दिगम्बर जैन संघ

वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली

★

३८८०

क्रम संख्या

काल नं०

स्थान

२

३७५५

भा०दि०जैनसंघग्रन्थमालायाः प्रथमपुष्पस्यअष्टमोदलः

श्रीयतिवृषभाचार्यरचितचूर्णिसूत्रसमन्वितम्
श्रीभगवद्गुणधराचार्यप्रणीतम्

क सा य पा हु ङ

तयोश्च
श्रीवीरसेनाचार्यविरचिता जयधवला टीका
[षष्ठोऽधिकारः बन्धकः १]

संपादकौ

पं० फूलचन्द्र
सिद्धान्तशास्त्री
सम्पादक महाबन्ध, सहसम्पादक
धवला

पं०कैलाशचन्द्र
सिद्धान्तरत्न, सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थ
प्रधानाचार्य स्वाहाद महाविद्यालय
काशी

प्रकाशक

मन्त्री साहित्य विभाग
भा० दि० जैन संघ, चौरासी, मथुरा,

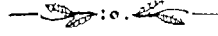
वि० सं० २०१७]

वीरनिर्वाणान्द २४८७
मूल्यं रूप्यकद्वादशकम्

[ई० सं० १९६१]

भा० दि० जैनसंघ-ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाका उद्देश्य
प्राकृत संस्कृत आदि भाषाओंमें निबद्ध दि० जैनागम,
दर्शन, साहित्य, पुराण आदिका यथासम्भव
हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित करना



सञ्चालक
भा० दि० जैनसंघ

ग्रन्थाङ्क १-८

प्राप्तिस्थान
मैनेजर
भा० दि० जैनसंघ
चौरासी, मथुरा

मुद्रक—पं० शिवनारायण उपाध्याय, बी० ए०
नया संसार प्रेस भद्रेनी, वाराणसी।

Sri Dig. Jain Sangha Granthamala No 1-VIII

**KASAYA-PAHUDAM
VIII
BANDHAK**

BY
GUNADHARACHARYA

WITH
CHURNI SUTRA OF YATIVRASHABHACHARYA

AND
THE JAYADHAVALA COMMENTARY OF
VIRASENACHARYA THERE-UPON

EDITED BY
Pandit Phulachandra Siddhantashastri
*EDITOR MAHABANDHA
JOINT EDITOR DHAVALA.*

Pandit Kailashachandra Siddhantashastri
Nyayatirtha, Siddhantaratra,
Pradhanadhyapak, Syadvada Digambara Jain
Vidyalyaya, Varanasi

PUBLISHED BY
THE SECRETARY PUBLICATION DEPARTMENT
THE ALL-INDIA DIGAMBAR JAIN SANGHA
CHAURASI, MATHURA

Sri Dig. Jain Sangha Granthamala

Foundation year—]

[—Vira Niravan Samvat 2468

Aim of the Series:—

**Publication of Digambara Jain Siddhanta,
Darsana. Purana, Sahitya and other works
in Prakrit Sanskrit etc, possibly with Hindi
Commentary and Translation**

DIRECTOR:—

**SRI BILARATA VARSHIYA
DIGAMBARA JAIN SANGHA
NO. 1, VOL. VIII.**

To be had from.—

THE MANAGER
SRI DIG. JAIN SANGHA,
CHAURASI, MATHURA,
U. P. (INDIA)

Printed by
PT S N UPADHYAYA B A
Naya Sansar Press, Bhudaini Varanasi.

800 Copies,

Price Rs. Twelve only

प्रकाशककी ओरसे

कसायपाहुडका आठवाँ भाग पाठकोंके करकमलोंमें अर्पित है। यह भाग कुछ विलम्बसे प्रकाशित होनेका कारण गत वर्षमें उत्पन्न हुई कागजकी कठिनाई है। उसीके कारण इस भागके प्रकाशनमें एक वर्षका विलम्ब हो गया। इस बातकी संभावना हमने सातवें भागके अपने वक्तव्यमें व्यक्त भी कर दी थी।

किन्तु आगेके दो भागोंके लिये कागजकी व्यवस्था कर ली गई है और एक उदारदाता महोदयसे उनके प्रकाशनके लिये आवश्यक साहाय्य भी मिल गया है, अतः आशा है आगेके भाग जल्द ही प्रकाशित हो सकेंगे।

इस भागका प्रकाशन भी भा० दि० जैन संघके अध्यक्ष दानवीर सेठ भागचन्द जी डोंगरगढ़ तथा उनकी दानशीला धर्मपत्नी श्रीमती नर्वदाबाईजीके द्वारा प्रदत्त द्रव्यसे हुआ है। सेठ साहबने कुण्डलपुरमें संघके अधिवेशनके अवसर पर इस कार्यके लिये ग्यारह हजार रुपया प्रदान किया था। उसके पश्चान् बामौरामें संघके अधिवेशन पर पुनः पाँच हजार रुपया इस कार्यके लिये प्रदान किया। इसीसे यह प्रकाशन कार्य चालू है। सेठ साहब तथा उनकी धर्मपत्नीकी जिनवाणीके प्रति यह भक्ति तथा दानशीलता अनुकरणीय है।

सेठ साहबकी दानशीलतामें प्रेरणात्मक सहयोग देनेका श्रेय पं० फूलचन्द जी सिद्धान्त-शास्त्रीको है। आप ही जयधवलाके सम्पादन तथा मुद्रणका उत्तरदायित्व सम्हालते हैं। अतः मैं सेठ साहब, सेठानी जी तथा पण्डितजीका आभार प्रकट किये बिना नहीं रह सकता।

जयधवला कार्यालय
भदौनी, वाराणसी।
ऋषभ निर्वाण दिवस-२४८७

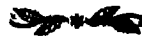


कैलाशचन्द्र शास्त्री
मंत्री साहित्य विभाग
भा० दि० जैन संघ

भा० दि० जैन संघके साहित्य विभागके सदस्योंकी नामावली

संरक्षक सदस्य

- | | |
|--|--|
| १३०००) दानवीर सेठ भागचन्दजी डोंगरगढ़ | १०००) स्व० लाला महावीरप्रसादजी ठेकेदार ,, |
| ८१२५) दानवीर साहू शान्तिप्रसादजी कलकत्ता | १०००) ,, लाला रतनलालजी मादीपुरिये ,, |
| ५०००) स्व० श्रीमन्त सर सेठ हुकुमचन्दजी | १०००) श्री लाला धूमिमल धर्मदासजी ,, |
| इन्दौर | १००१) श्रीमती मनोहरीदेवी मातेश्वरी लाला |
| ५०००) सेठ छदाम लालजी फिरोजाबाद | वसन्तलाल फिरोजीलालजी देहली |
| ३००१) सेठ नानचन्द जी हीराचन्दजी गांधी | १०००) श्री बाबू प्रकाशचन्दजी खण्डेलवाल |
| उस्मानाबाद | ग्लासवर्क्स सासनी |
| (सहायक सदस्य) | १०००) श्री लाला छीतरमल शंकरलालजी मथुरा |
| १२५०) श्री सेठ भगवानदास जी मथुरा | १००१) ,, सेठ गणेशीलाल आनन्दीलालजी |
| १०००) ,, बा० कैलाशचन्दजी S. D. O. बम्बई | आगरा |
| १००१) सकल दि० जैन परिवार पञ्चान नागपुर | १०००) श्री सकल दि० जैन पञ्चान गया |
| १००१) श्री सेठ श्यामलालजी फर्रुखाबाद | १०००) ,, सेठ सुखानन्द शंकरलालजी मुल्तान- |
| १००१) ,, सेठ घनश्यामदासजी सरावगी लालगढ़ | वाले दिल्ली |
| [१०६० सेठ चुन्नीलालजी के सुपुत्र | १००१) श्री सेठ मगनमलजी हीरालालजी पाटनी |
| स्व० निहालचन्दजी की स्मृति में] | आगरा |
| १०००) श्री लाला रघुवीरसिंहजी जैनाबाच | १०००) स्व० श्रीमती चन्द्रावतीजी, धर्मपत्नी |
| कम्पनी देहली | साहू रामस्वरूपजी नजीबाबाद |
| १०००) श्री रायसाहब लाला उल्फतरायजी देहली | १००१) लाला मुदर्शनलालजी जसवन्तनगर |



विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
मङ्गलाचरण	१	नाम और स्थापनानिज्ञेपको पृथक् न कहनेके	
बन्धकके दो अनुयोगद्वारोंकी सूचना	२	कारणका निर्देश	१६
बन्धका स्वरूप	२	द्रव्यादि चार निज्ञेपोंका स्पष्टीकरण	१६
संक्रमका स्वरूप	२	निज्ञेपार्थको स्पष्ट करनेके लिए नयविधिका	
संक्रमको बन्ध संज्ञा प्राप्त होनेका कारण	२	निरूपण	२०
अकर्मबन्धका स्वरूप	२	कर्मद्रव्यप्रकृतिसंक्रमके विषयमें आठ प्रकारके	
कर्मबन्धका स्वरूप कह कर उसे संक्रम संज्ञा		निर्गमोंकी मीमांसा	२०
प्राप्त होनेके कारणका निर्देश	२	एकैकप्रकृतिसंक्रमका व्याख्यान	२६
उक्त दोनों अधिकारोंके कहनेकी प्रतिज्ञा	३	उसके विषयमें २४ अनुयोगद्वारोंकी सूचना	
इस विषयमें सूत्रगाथा	३	और उनका नामनिर्देश	२६
गाथाके पदोंका व्याख्यान	४	समुत्कीर्तना	२६
बन्ध अनुयोगद्वारकी सूचनामात्र	६	सर्व और नोसर्वसंक्रम	२७
संक्रम अनुयोगद्वार		उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टसंक्रम	२७
संक्रमके चार प्रकारके अवतरके निरूपणकी		जघन्य और अजघन्यसंक्रम	२७
सूचना	६	सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवसंक्रम	२८
प्रथम प्रकार उपक्रम और उसके पाँच प्रकार	७	स्वामित्व	२८
उपक्रम आदि पाँचका विशेष व्याख्यान	७	एक जीवकी अपेक्षा काल	३४
द्वितीय प्रकार निज्ञेपका विचार	८	एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	४६
तृतीय प्रकार नयके आश्रयसे निज्ञेपकी		नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय	५२
मीमांसा	८	भागभाग	५४
निज्ञेपार्थका विशेष विचार	११	परिमाण	५६
नोआगमद्रव्यसंक्रमके दो भेद और उनकी		क्षेत्र	५६
मीमांसा	१२	स्पर्शन	५७
प्रकृतमें उपयोगी कर्मद्रव्यसंक्रमके चार भेद	१४	नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	५६
प्रकृतिसंक्रमके दो भेद		नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	६२
१ प्रकृतिसंक्रम		सन्निकर्ष	६३
प्रकृतिसंक्रमके कथनकी प्रतिज्ञा	१६	भाव	७३
इस विषयमें उपयोगी तीन गाथाएँ और		अल्पबहुत्व	७३
उनका व्याख्यान	१६	प्रकृतिस्थानसंक्रम	
उक्त गाथाओंका पदच्छेद	१८	प्रकृतिस्थानसंक्रम कहने की प्रतिज्ञा	८१
उपक्रमके पाँच प्रकार	१८	इस विषयमें सूत्र समुत्कीर्तना अर्थान्	
चारप्रकारका निज्ञेप	१९	३२ सूत्रगाथाएँ	८१

विषय	पृष्ठ
उक्त गाथाओंके विषयकी सूचना	८७
प्रकृतिस्थानसंक्रमविषयक अनुयोगद्वारोंका नामनिर्देश	८८
स्थानसमुत्कीर्तनामें आई हुई एक गाथा और उसका व्याख्यान	८९
कौन प्रकृतिस्थान प्रकृतिसंक्रमस्थान है और कौन नहीं है इसका सकारण निर्देश	९१
प्रकृतिस्थानप्रतिग्रहाप्रतिग्रहरूपणा	११४
किस संक्रमकस्थानके कौन प्रतिग्रहस्थान हैं इस बातका निर्देश	१२३
संक्रमस्थानोंके अनुसन्धान करनेके उपायोंका निर्देश	१४४
आनुपूर्वी-अनानुपूर्वीसंक्रमस्थानोंका निर्देश	१४४
दर्शनमोहनीयके सद्भावमें प्राप्त होनेवाले और उसके अभावमें प्राप्त होनेवाले संक्रमस्थानोंका निर्देश	१४५
उपशामक और लूपकसम्बन्धी संक्रमस्थानोंका निर्देश	१४५
मार्गस्थानोंमें संक्रमस्थान आदिके जाननेकी सूचना	१४७
गुणस्थानोंमें संक्रमस्थान आदिके जाननेकी सूचना करके कालानुयोगद्वाराका संकेत	१४८
गतिमार्गणामें अवान्तर भेदोंमें संक्रमस्थानोंका प्रमाणनिर्देश	१४९
मनुष्यगतिमें सब संक्रमस्थान होते हैं इसका निर्देश	१५०
एकेन्द्रियादि असंज्ञी पञ्चन्द्रियोंमें कितने संक्रमस्थान होते हैं इसका निर्देश	१५०
गतिमार्गणामें प्रतिग्रहस्थानों और तदुभयस्थानोंके जाननेकी सूचना	१५०
सम्यक्त्व और संयममार्गणामें उक्त विषयका विचार	१५२
लेश्यामार्गणामें उक्त विषयका विचार	१५३
वेदमार्गणामें उक्त विषयका विचार	१५४
कपायमार्गणामें उक्त विषयका विचार	१५७
ज्ञानमार्गणामें उक्त विषयका विचार	१५९
भव्य और आहारमार्गणामें उक्त विषयका विचार	१६०

विषय	पृष्ठ
वेद और कपायमार्गणामें शून्यस्थानोंका निर्देश	१६१
सत्कर्मस्थानोंका निर्देश	१६३
बन्धस्थानोंका निर्देश	१६३
सत्कर्मस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका विचार	१६३
बन्धस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका विचार	१६८
बन्धस्थानों और सत्कर्मस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका विचार	१७२
सत्कर्मस्थानोंमें बन्धस्थानों और संक्रमस्थानोंका विचार	१७४
बन्धस्थानोंमें सत्कर्मस्थानों और संक्रमस्थानोंका विचार	१७५
संक्रमस्थानोंमें बन्धस्थानों और सत्कर्मस्थानोंका विचार	१७५
शेष अनुयोगद्वारोंका दो गाथासूत्रों द्वारा नामनिर्देश	१७६
स्थानसमुत्कीर्तना	१७७
प्रकृतमें सर्वसंक्रमसे लेकर अजघन्य संक्रम तकके अनुयोगद्वार क्यों सम्भव नहीं हैं इसका निर्देश	१७८
सादि आदि चारका निर्देश	१७९
स्वामित्व	१८९
एक जीवकी अपेक्षा काल	१८९
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	१९८
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय	२१०
भागाभाग	२१३
परिमाण	२१४
क्षेत्र	२१४
स्पर्शन	२१५
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	२१६
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	२१८
सन्निकर्ष	२२१
अल्पबहुत्व	२२२
भुजगार प्रकृति संक्रम	
भुजगारके तरह अनुयोगद्वार	२२९
समुत्कीर्तना	२२९
स्वामित्व	२२९

विषय	पृष्ठ
एक जीवकी अपेक्षा काल	२३०
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	२३१
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय	२३२
भागाभाग	२३२
परिमाण	२३३
क्षेत्र	२३३
स्पर्शन	२३३
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	२३४
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	२३५
भाव	२३५
अल्पबहुत्व	२३५
पदनिक्षेप प्रकृतिसंक्रम	
पदनिक्षेपके तीन अनुयोगद्वारा	२३६
समुत्कीर्तना	२३६
स्वामित्व	२३७
अल्पबहुत्व	२३८
वृद्धि प्रकृतिसंक्रम	
वृद्धिके तेरह अनुयोगद्वारा	२३९
समुत्कीर्तना	२३९
स्वामित्व	२३९
एक जीवकी अपेक्षा काल	२३९
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर व शेषकी सूचना	२४०
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय	२४०
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	२४०
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	२४०
भाव	२४०
अल्पबहुत्व	२४०
स्थितिसंक्रम	
स्थितिसंक्रमके दो भेद	२४२
स्थितिसंक्रम और स्थितिअसंक्रमकी व्याख्या	२४२
अपकर्षणस्थितिसंक्रमका स्वरूप	२४३
उत्कर्षणस्थितिसंक्रमका स्वरूप	२४३
अद्वाच्छेदकी सूचना	२६२
मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रम	
मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रमविषयक अनुयोग- द्वारोंकी सूचना	२६२

विषय	पृष्ठ
अद्वाच्छेदके दो भेद	२६३
उत्कृष्ट अद्वाच्छेद	२६३
जघन्य अद्वाच्छेद	२६३
सर्व अनुयोगद्वारासे लेकर अजघन्य अनुयोगद्वारा तक अनुयोगद्वारोंकी स्थितिविभक्तिके समान जाननेकी सूचना	२६४
सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव अनु- योगद्वारोंकी प्ररूपणा	२६४
स्वामित्वके दो भेद	२६५
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम स्वामित्व	२६५
जघन्य स्थितिसंक्रम स्वामित्व	२६५
एक जीवकी अपेक्षा कालके दो भेद	२६७
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम काल	२६७
जघन्य स्थितिसंक्रम काल	२६८
अन्तरानुगमके दो भेद	२७२
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अन्तर	२७२
जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तर	२७३
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयके दो भेद	२७५
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम भंगविचय	२७५
जघन्य स्थितिसंक्रम भंगविचय	२७६
भागाभागके दो भेद	२७७
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम भागाभाग	२७७
जघन्य स्थितिसंक्रम भागाभाग	२७७
परिमाणके दो भेद	२७७
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम परिमाण	२७७
जघन्य स्थितिसंक्रम परिमाण	२७८
क्षेत्रके दो भेद	२७८
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम क्षेत्र	२७८
जघन्य स्थितिसंक्रम क्षेत्र	२७९
स्पर्शनके दो भेद	२७९
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम स्पर्शन	२७९
जघन्य स्थितिसंक्रम स्पर्शन	२८२
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल के दो भेद	२८४
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम काल	२८४
जघन्य स्थितिसंक्रम काल	२८५
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरके दो भेद	२८७
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अन्तर	२८७
जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तर	२८८
भाव	२८८

विषय	
अल्पबहुत्वके दो भेद	२८८
स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्वके दो भेद	२८८
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्व	२८८
जघन्य स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्व	२८९
जीव अल्पबहुत्वके दो भेद	२८९
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम जीव अल्पबहुत्व	२९०
जघन्य स्थितिसंक्रम जीव अल्पबहुत्व	२९०
भुजगारस्थितिसंक्रम	
भुजगारके तेरह अनुयोगद्वारोंकी सूचना	२९०
समुत्कीर्तना	२९०
स्वामित्व	२९१
एक जीवकी अपेक्षा काल	२९१
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	२९५
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय	२९५
भागभाग	२९७
परिमाण	२९७
क्षेत्र-स्पर्शन	२९७
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	२९७
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	२९७
भाव	२९७
अल्पबहुत्व	२९७
पदनिक्षेप स्थितिसंक्रम	
पदनिक्षेपके तीन अनुयोगद्वारोंकी सूचना	२९८
समुत्कीर्तना	२९८
स्वामित्वके दो भेद	२९८
उत्कृष्ट	२९८
जघन्य	२९९
अल्पबहुत्व	२९९
वृद्धि स्थितिसंक्रम	
वृद्धिके तेरह अनुयोगद्वारोंकी सूचना	२९९
समुत्कीर्तना	२९९
स्वामित्व	२९९
एक जीवकी अपेक्षा काल	३००
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	३०२
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयसे	
लेकर भाव तकके अनुयोगद्वारोंकी स्थिति-	
विभक्तिके समान जाननेकी सूचना	३०३

विषय	
अल्पबहुत्व	३०३
स्थानप्ररूपणा	३०३
उत्तरप्रकृतिस्थितिसंक्रम	
उसके विषयमें २४ अनुयोगद्वारोंकी व	
भुजगारादिककी सूचना	३०४
अद्वाच्छेदके दो भेद	३०४
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्वाच्छेद	३०४
जघन्य स्थितिसंक्रम अद्वाच्छेद	३०५
सर्वादि अनुयोगद्वारोंकी स्थितिबिभक्तिके	
समान जाननेकी सूचना	३१०
स्वामित्व	३११
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमस्वामित्व	३११
जघन्य स्थितिसंक्रम स्वामित्व	३१२
एक जीवकी अपेक्षा काल	३२३
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम काल	३२३
जघन्य स्थितिसंक्रम काल	३२६
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	३३२
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अन्तर	३३२
जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तर	३३३
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय	३३६
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम भंगविचय	३३६
जघन्य स्थितिसंक्रम भंगविचय	३३७
भागभाग आदिको स्थितिबिभक्तिके	
समान जाननेकी सूचना	३३८
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	३३८
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम काल	३३८
जघन्य स्थितिसंक्रम काल	३३९
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	३४१
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अन्तर	३४१
जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तर	३४१
सन्निकर्ष	३४२
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम सन्निकर्ष	३४२
जघन्य स्थितिसंक्रम सन्निकर्ष	३४३
भाव	३४६
अल्पबहुत्व	३४६
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्व	३४६
जघन्य स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्व	३४८

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
भुजगार स्थितिसंक्रम		ओघ जघन्य स्थितिसंक्रम स्वामित्व	३६५
भुजगारसंक्रम	३५६	ओघादेश उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम स्वामित्व	३६७
अर्थपद	३६०	ओघादेश जघन्य स्थितिसंक्रम स्वामित्व	३६६
भुजगार आदि पदोंका अर्थ	३६०	अल्पबहुत्व	४००
इस विषयमें तेरह अनुयोगद्वारोंकी सूचना	३६०		
समुत्कीर्तना	३६०	वृद्धि स्थितिसंक्रम	
स्वामित्व	३६०	उसमें तीन अनुयोगद्वार	४०१
एक जीवकी अपेक्षा काल	३६२	वृद्धिका स्वरूप	४०२
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	३७२	अनुयोगद्वारोंके नाम और उनका स्वरूप	४०२
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय	३७४	ओघसमुत्कीर्तना	४०६
भागाभाग	३७८	आदेशसमुत्कीर्तना	४०६
परिमाण	३७८	प्ररूपणा	४१०
क्षेत्र और स्पर्शन	३७८	एक जीवकी अपेक्षा काल	४११
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	३७६	एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	४१४
नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर	३८१	नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय	४१५
भाव	३८४	भागाभाग	४१६
अल्पबहुत्व	३८४	परिमाण	४१६
पदनिक्षेप स्थितिसंक्रम		क्षेत्र	४१७
उसमें तीन अनुयोगद्वार	३८८	स्पर्शन	४१८
समुत्कीर्तना	३८८	नानाजीवोंकी अपेक्षा काल	४१८
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम समुत्कीर्तना	३८८	नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	४१९
जघन्य स्थितिसंक्रम समुत्कीर्तना	३८८	भाव	४२०
स्वामित्व	३८६	अल्पबहुत्व	४२०
ओघ उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम स्वामित्व	३८६	स्थितिसंक्रमस्थान	४२८





सिरि-जइवसहाइरियविरइय-चुणिसुत्तसमण्णिदं

सिरि-भगवंतगुणहरभडारओवइडं

क सा य पा हु डं

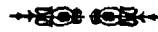
तस्स

सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका

जयधवला

तत्थ

बंधगो णाम उट्ठो अत्थाहियारो



पणमिय णीमंकमणो पच्चहसमुहसंकमे जिणचलणे ।

बंधगमहाहियारं वोच्छं जत्थेव संकमो लीणो ॥१॥

जो विघ्नरूपी समुद्रको लांघ गये हैं ऐसे जिन चरणोंको निःशंक मनसे नमस्कार करके जिसमें संक्रम अधिकार लीन है ऐसे बन्धक नामक महाधिकारका व्याख्यान करता हूँ ॥१॥

❀ बंधगे त्ति एदस्स वे अणियोगद्वाराणि । तं जहा—बंधो च संक्रमो च ।

§ १. एदस्स सुत्तस्स अत्थविवरणं कस्सामो । तं जहा—बंधगे त्ति एदस्स पदस्स पढममूलगाहापडिवद्धस्स अत्थपरूवणे कीरमाणे तत्थ इमाणि वे अणियोगद्वाराणि णादच्चाणि । काणि ताणि त्ति मिस्साहिप्पायमामंकिय बंधो च संक्रमो चेत्ति तेमिं णामणिहेमो कओ । तत्थ जम्मि अणियोगद्वारे कम्मइयवग्गणाए पोग्गलक्खंधाणं कम्मपरिणामपाओग्गभावेणावट्ठिदाणं जीवपदेसेहिं मह मिच्छत्तादिपच्चयवसेण संबंधो पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेमभेयभिण्णो परूविज्जइ तमणुयोगद्वारं बंधो त्ति भण्णदे । तहा बंधेण लद्धप्पमरूवस्स कम्मस्स मिच्छत्तादिभेयभिण्णस्स ममयाविगेहेण महावंतरसंकंतिलक्खणो संक्रमो पयडिमंक्रमादिभेयभिण्णो जत्थ मवित्थरमणुमग्गिज्जदे तमणियोगद्वारं संक्रमो त्ति भण्णदे । एवमेदाणि दोण्णि अणियोगद्वाराणि बंधगमहाहियारे होंति त्ति मुत्तत्थमंगहो । कथमेत्थ संक्रमस्स बंधगववण्णो त्ति णामंक्रणिज्जं, तस्स वि बंधंतन्भावित्तादो । तं जहा—दुविहो बंधो अकम्मबंधो कम्मबंधो चेदि । तत्थाकम्मबंधो णाम कम्मइयवग्गणादो अकम्ममरूवेणावट्ठिदपदेमाणं गहणं । कम्मबंधो णाम कम्ममरूवेणावट्ठिदपोग्गलाणमण्णपयडिमरूवेण परिणमणं । तं जहा—मादत्ताए बद्धकम्ममंतरंगपच्चयविसेमवसेणामादत्ताए जदा परिणामिज्जइ, जदा वा कसायमरूवेण

* 'बन्धक' इम अर्थाधिकारके दो अनुयोगद्वार हैं । यथा—बन्ध और संक्रम ।

§ १. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । यथा—प्रथम मूल गाथामे 'बन्धक' यह पद आया है । उसके अर्थका व्याख्यान करने पर वहाँ ये दो अनुयोगद्वार जानने चाहिये । वे कौन हैं यह शिष्यका प्रश्न है । इसपर सूत्रमें बन्ध और संक्रम इस प्रकार उनका नाम निर्देश किया है । उनमेंसे जिस अनुयोगद्वारमे कार्मणवर्गणाके कर्मरूप परिणमन करनेकी योग्यताको प्राप्त हुए पुद्गल स्वन्धोंका जीव प्रदेशोंके साथ मिश्र्यात्व आदिके निमित्तसे प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशके भेदसे चार प्रकारका सम्बन्ध कहा जाता है उस अनुयोगद्वारको 'बन्ध' कहते हैं । तथा बन्धसे जिन्होंने कर्मभावको प्राप्त किया है और जो मिश्र्यात्व आदि अनेक भेदरूप हैं ऐसे कर्मोंका यथाविधि स्वभावान्तर संक्रमणरूप संक्रमका प्रकृति संक्रम आदि भेदोंको लिए हुए जिसमें विस्तार के साथ विचार किया जाता है उस अनुयोगद्वारको संक्रम कहते हैं । इस प्रकार बन्धक नामके महाधिकारमें ये दो ही अनुयोगद्वार होते हैं यह इस सूत्रका समुदायार्थ है ।

शंका—यहाँ पर संक्रमको बन्धक संज्ञा कैसे प्राप्त होती है ?

ममाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि संक्रमका भी बन्धमें अन्तर्भाव हो जाता है । यथा—अकर्मबन्ध और कर्मबन्ध ऐसे बन्धके दो भेद हैं । उनमें से जो कार्मणवर्गणाओंमे से अकर्म रूपसे स्थित परमाणुओंका ग्रहण होता है वह अकर्मबन्ध है और कर्मरूपसे स्थित पुद्गलोंका अन्य प्रकृति रूपसे परिणमना कर्मबन्ध है । उदाहरणार्थ—सातारूपसे बन्धको प्राप्त हुए जो कर्म अन्तरंग कारणके मिलने पर जब असातारूपमे परिणमन करते हैं, या कषायरूपसे

बद्धा कम्मंमा बंधावलियं बोलाविय णोकमायमरूवेण मंकाभिजंति तदा सो कम्मबंधो उच्चइ, कम्मसरूवापरिच्चाएणेव कम्मंतरुवरूवेण बज्झमाणत्तादो ।

❀ एत्थ सुत्तगाहा ।

§ २. एत्थ एदेमु^१ बंध-मंकममण्णिदेसु अणियोगदारेसु बंधगे ति बीजपदम्मि णिलीणेसु सुत्तगाहा मंगहियासेमपयदत्थसाग गुणहगइरियमुहविण्णिग्गया अत्थि तमिदाणि वत्तइस्सामो ति वुत्तं होइ । तं जहा—

(५) कदि पयडीओ बंधदि द्विदि-अणुभागे जहण्णमुक्कस्सं ।

संकामेइ कदिं वा गुणहीणं वा गुणविसिद्धं ॥२३॥

§ ३. एदिस्से गाहाए पुच्छामेत्तेण सूचिदासेमपयदत्थपरूवणाए अत्थविहासा

बंधे हुए कर्म बन्धावलिके वाद् जत्र नोकपायरूपसे परिणमन करते है तब वह कर्मबन्ध कहलाता है, क्योंकि कर्मरूपताका त्याग किये बिना ही ये कर्मान्तररूपसे पुनः बंधते हैं ।

विशेषार्थ—‘पेज्जदोसविहत्ती’ इत्यादि प्रथम मूल गाथामें ‘बंधगे चैय’ यह पद आया है । यहाँ पर इसी पदका व्याख्यान करते हुए चूर्णिसूत्रकारने बन्ध और संक्रम इन दो अधिकारों के द्वारा उसके व्याख्यान करनेका निर्देश किया है । जो कर्मण वर्गणाए आत्मासे सम्बद्ध नहीं है उनका बन्धके कारणोंके मिलने पर आत्मासे बन्धको प्राप्त होना ही बन्ध है और बन्धको प्राप्त हुए कर्मोंका यथायोग्य सामग्रीके मिलने पर अन्य सजातीय प्रकृति रूपसे बदल जाना संक्रम है । इस बन्धक नामक अधिकारमें इन दोनों विषयोंका विस्तारसे वर्णन किया गया है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यद्यपि यहाँ यह शंका उठाई गई है कि बन्धक अधिकारमें बन्धका वर्णन करना तो क्रम प्राप्त है पर इसमें संक्रमका वर्णन नहीं किया जा सकता, क्यों कि संक्रम बन्धका भेद नहीं है । इसका जो समाधान किया है उसका आशय यह है कि बन्धके ही दो भेद हैं—अकर्मबन्ध और कर्मबन्ध । इनमेंसे अकर्मबन्धका दूसरा नाम बन्ध है और कर्मबन्धका दूसरा नाम संक्रम है । इस प्रकार विचार करने पर बन्ध और संक्रम इन दोनोंका बन्धक अधिकारमें समावेश हो जाता है, अतः एक बन्धक अधिकारद्वारा बन्ध और संक्रम इन दोनोंका वर्णन करना अनुचित नहीं है ।

* इस विषय में सूत्र गाथा ।

§ २. यहाँ पर अर्थान् ‘बन्धक’ इस बीज पदमें अन्तर्भूत हुए बन्ध और संक्रम इन दो अनुयोगद्वारोंके विषयमें जिसमें प्रकृत अर्थका सब सार संगृहीत है और गुणधर आचार्यके मुखसे निकली है ऐसी एक गाथा है । यथा—

(५) यह जीव कितनी प्रकृतियोंको व कितनी स्थिति, अनुभाग और जघन्य उत्कृष्टरूप प्रदेशोंको बांधता है । तथा कितनी प्रकृति, स्थिति व अनुभागका और कितने गुणे हीन व कितने गुणे अधिक प्रदेशोंका संक्रमण करता है ॥ २३ ॥

§ ३. इस गाथामें केवल पृच्छा द्वारा जो पूरे प्रकृत अर्थकी प्ररूपणा सूचित की गई है उसका

१. ता० प्रती पदेसु इति पाठः ।

चुणिसुत्तणिवद्वा त्ति तदणुसारेणेव विवरणं कस्सामो । तं जहा—

❀ एदीए गाहाए बंधो च संकमो च सूचिदो होइ ।

§ ४. कुदो ? गाहापुव्वपच्छद्वेसु जहाकमं दोण्हमेदेसिमत्थाणं णिवद्दत्तदंसणादो । एवमेदेण सुत्तेण गाहाए समुदायत्थो परूविदो । संपहि पदच्छेदमुहेणावयवत्थपरूवणं कुणमाणो उवरिमपबंधमाह—

❀ पदच्छेदो ।

§ ५. सुगमं ।

❀ तं जहा ।

§ ६. सुगमं ।

❀ कदि पयडीओ बंधइ त्ति पयडिबंधो ।

§ ७. कदि पयडीओ बंधइ त्ति एदम्मि सुत्तपदे केत्तियाओ पयडीओ मोह-णिज्जपडिबद्वाओ बंधइ, किमेकमाहो दोण्णि तिण्णि वा इच्चादिपुच्छामेत्तवावारेण सव्वो पयडिबंधो णिलीणो त्ति गहेयव्वो, एदस्म देमामामियभावेणावट्ठाणादो ।

❀ ट्ठिदि-अणुभागे त्ति ट्ठिदिबंधो अणुभागबंधो च ।

विशेष खुलासा चूर्णिसूत्रोंमें किया है, इसलिए चूर्णिसूत्रोंके अनुसार ही यहाँ व्याख्यान करते हैं । यथा—

* इस गाथा द्वारा बन्ध और संक्रम ये दो अधिकार सूचित किये गये हैं ।

§ ४. क्यों कि गाथाके पूर्वार्ध और उत्तरार्धमें क्रमसे निबद्धरूपसे ये दो ही अधिकार देखे जाते हैं ।

इस प्रकार इस सूत्रद्वारा गाथाके समुदायार्थका कथन किया । अब पदच्छेदद्वारा प्रत्येक पदके अर्थका कथन करते हुए आगेके प्रबन्धका निर्देश करते हैं—

* अब पदच्छेद करते हैं ।

§ ५. यह सूत्र सुगम है ।

* यथा—

§ ६. यह सूत्र भी सुगम है ।

* 'कदि पयडीयो बंधदि' इम पदसे प्रकृतिबन्धको सूचित किया गया है ।

§ ७. गाथा सूत्रके 'कदि पयडीयो बंधदि' इस पदमें मोहनीयकी कितनी प्रकृतियोंको बाँधता है, क्या एक प्रकृतिको बाँधता है अथवा दो या तीन प्रकृतियोंको बाँधता है इत्यादि पृच्छाविषयक व्यापार द्वारा पूरा प्रकृतिबन्ध अन्तर्भूत है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि यह पद देशा-मर्षकभावसे अवस्थित है ।

* 'ट्ठिदि-अणुभागे' इस पदसे स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धको सूचित किया गया है ।

§ ८. द्विदि-अणुभागे त्ति गाहापुव्वद्वपडिबद्धे सुत्तपदे द्विदिबंधो अणुभागबंधो च णिलीणो त्ति गहेयव्वो, संगहिदसारस्सेदस्स पज्जवडियपरूवणाए जौणिभावेणा-वट्टाणादो ।

✽ जहण्णमुक्कस्सं त्ति पदेसबंधो ।

§ ९. जहण्णमुक्कस्सं त्ति गाहापुव्वद्वपडिबद्धे बीजपदे पदेसबंधो संगहिओ त्ति गहेयव्वं, किं जहण्णमुक्कस्सं वा पदेसग्गेण बंधइ त्ति सुत्तत्थसंबंधावलंबणादो । एव-मेत्तिएण पबंधेण गाहापुव्वद्वे पयडि-द्विदि-अणुभाग-पदेसबंधाणं पडिबद्धत्तं परूविय संपहि गाहापच्छद्वविहाणद्वमाह—

✽ संकामेदि कदिं वा त्ति पयडिसंकमो च द्विदिसंकमो च अणु-भागसंकमो च गहेयव्वो ।

§ १०. कदि पयडीओ संकामेइ, कदि वा द्विदि-अणुभाए संकामेइ त्ति गाहा-पुव्वद्वद्वदो अहियागवसेणाहिमबंधादो तिण्हमेदेमिमेत्थ मंगहो ण विरुज्जइ ।

✽ गुणहीणं वा गुणविसिद्धं त्ति पदेससंकमो सूचिओ ।

§ ११. गुणहीणं वा गुणविमिद्धं त्ति एदेण बीजपदेण पदेससंकमो सूचिओ, किं गुणहीणं पदेसग्गं संकामेइ, किं वा गुणविमिद्धमिदि सुत्तत्थसंबंधावलंबणादो ।

§ ८. गाथाके पूर्वार्धमें आये हुए 'द्विदि-अणुभागे' इस सूत्रपदमें स्थितिवन्ध और अनुभाग-बन्ध अन्तर्भूत हैं ऐसा यहाँ जानना चाहिये, क्योंकि सारभूत विषयका संग्रह करनेवाला यह पद पर्यायार्थिक प्ररूपणाके यानिरूपसे अस्थित है ।

✽ 'जहण्णमुक्कस्सं' इस पदसे प्रदेशबन्धको सूचित किया गया है ।

§ ९ गाथाके पूर्वार्धमें आये हुए 'जहण्णमुक्कस्सं' इस बीजपदमें प्रदेशबन्ध संग्रहीत है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि यहाँ पर प्रदेशरूपसे जघन्य या उत्कृष्ट कितने प्रदेशोंको बाँधता है' इस प्रकार सूत्रार्थके सम्बन्धका अवलम्बन लिया गया है । इस प्रकार इतने प्रबन्ध द्वारा गाथाके पूर्वार्धमें प्रकृतिबन्ध, स्थितिवन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धका उल्लेख किया है, यह बतलाकर अब गाथाके उत्तरार्धका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

✽ 'संकामेदि कदिं वा' इस पदसे प्रकृतिसंक्रम, स्थितिमंक्रम और अनुभाग-संक्रमको ग्रहण करना चाहिए ।

§ १०. कितनी प्रकृतियोंका संक्रमण करता है या कितनी स्थिति और अनुभागका संक्रमण करता है इस प्रकार यहाँ प्रकरणवशा गाथाके पूर्वार्धका सम्बन्ध हो जानेसे प्रकृति, स्थिति और अनुभाग इन तीनोंका संग्रह यहाँ पर विरोधको प्राप्त नहीं होता ।

✽ 'गुणहीणं वा गुणविसिद्धं' इस पदसे प्रदेशसंक्रमको सूचित किया गया है ।

§ ११. गाथासूत्रमें आये हुए 'गुणहीणं वा गुणविसिद्धं' इस बीजपदसे प्रदेशसंक्रमका सूचन होता है, क्योंकि यहाँपर 'कितने गुण हीन प्रदेशोंका संक्रमण करता है या कितने गुण अधिक प्रदेशोंका संक्रमण करता है' इस प्रकार गाथा सूत्रके अर्थके सम्बन्धका अवलम्बन लिया गया है ।

❀ सो वुण पयडिडिदि-अणुभाग-पदेसबंधो बहुसो परूबिदो ।

§ १२. सो उण गाहाए पुव्वद्वम्मि णिलीणो पयडि-डिदि-अणुभाग-पदेसविमओ बंधो बहुसो गंथंतरेसु परूविदो ति तत्थेव तच्चित्थरो दद्वुव्वो, ण एत्थ पुणो परूविज्जेद, पयासियपयामणे फलविसेमाणुवलंभादो । तदो महाबंधाणुसारेणेत्थ पयडि-डिदि-अणुभाग-पदेसबंधेसु विहामिय समत्तेसु तदो बंधो ममत्तो होइ ।

❀ संकमे पयदं ।

§ १३. जहा उडेसो तहा णिहेसो ति णायादो बंधममत्तिसमणंतरं पत्तावसरो मंकममहाहियारो ति जाणावणट्टमेदं सुत्तमागयं । एवं च पयदम्भ मंकमाहियारस्म उवक्कमो णिव्वेवो णओ अणुगमो चेदि चउच्चिहो अययारो परूवेयव्वो, अण्णहा तदणुगमोवायाभावादो । तत्थ ताव पंचविहोवक्कसपरूवणट्टमुत्तगमुत्तमोइण्णं—

* किन्तु उनमेंसे प्रकृतिबन्ध स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धका बहुत बार प्ररूपण किया गया है ।

§ १२. किन्तु गाथाके पूर्वार्धमें जो प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध अन्तर्भूत हैं ऐसे बन्धका अन्यानंतरोंमें बहुतबार प्ररूपण किया है, इसलिए उसका विस्तृत विवेचन वहीं पर देखना चाहिये । यहाँ पर उसका फिरसे कथन नहीं करते हैं, क्योंकि प्रकाशित हुई वस्तुके पुनः प्रकाशन करनेमें कोई विशेष लाभ नहीं है । इसलिये महाबन्धके अनुसार प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध, और प्रदेशबन्धका यहाँ व्याख्यान कर लेनेपर बन्ध अनुयोगद्वारा समाप्त होता है ।

विशेषार्थ—‘कदि पयडीओ’ इत्यादि गाथामें प्रकृतिबन्ध आदि चार प्रकारके बन्धों और प्रकृतिसंक्रम आदि चार प्रकारके संक्रमोंका निर्देश किया है । यद्यपि गाथाके उत्तरार्धमें प्रकृति, स्थिति और अनुभागपदका स्पष्ट निर्देश नहीं है पर गाथाके पूर्वार्धमें ये पद आये हैं, अतः इनका वहाँ भी सम्बन्ध कर लेनेसे ‘संकमेदि कदि वा इम पदद्वारा प्रकृतिसंक्रम, स्थितिसंक्रम, और अनुभागसंक्रमका सूचन हो जाता है । इस प्रकार चूर्णिसूत्रकारने प्रारम्भमें जो ‘बंधक’ इस अधिकारमें बन्ध और संक्रम इन दोनोंके अन्तर्भाव करनेका निर्देश किया है सो वह इस गाथाके अनुसार ही किया है यह ज्ञात हो जाता है । यद्यपि इस प्रकरणमें चारों प्रकारके बन्धोंका भी निर्देश करना चाहिये था पर नहीं करनेका कारण चूर्णिकारने यह बतलाया है कि उसका अनेकवार कथन किया जा चुका है अतः यहाँ नहीं करते हैं । आशय यह है कि महाबन्ध आदिमें बन्धप्रकरणका विस्तृत विवेचन किया ही है अतः यहाँ उसका निर्देश नहीं किया गया है । तथापि महाबन्धसे यहाँपर इस प्रकरणको पूरा कर लेना चाहिये ।

* अब संक्रमका प्रकरण है ।

§ १३. उद्देश्यके अनुसार निर्देश किया जाता है इस न्यायके अनुसार बन्ध प्रकरणकी समाप्तिके बाद अब संक्रम महाविकारका वर्णन अबसर प्राप्त है यह बतलानेके लिये यह सूत्र आया है । इस प्रकार प्रकरणप्राप्त संक्रम अधिकारका उपक्रम, निक्षेप, नय और अनुगम इस रूपसे चार प्रकारके अवतारका कथन करना चाहिये । नहीं तो उसका ठीक तरहसे ज्ञान नहीं हो सकता । इसमें पहले पाँच प्रकारके उपक्रमका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

❀ संक्रमस्स पंचविहो उवक्कमो-आणुपुव्वी णामं पमाणं वत्तव्वदा अत्थाहियारो चेदि ।

§ १४. पयदत्थाहियारस्स मोदागणं बुद्धिविसयपच्चासण्णभावो जेण कीरदे सो उवक्कमो णाम । वुण सो पंचविहो आणुपुव्वीआदिभेएण । तत्थाणुपुव्वी तिविहा—पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी जत्थतत्थाणुपुव्वी चेदि । तत्थ पुव्वाणुपुव्वीए कमायपाहुडस्स पण्हारमण्हमत्थाहियाराणं मज्जे पंचमो एमो अत्थाहियारो । पच्छाणुपुव्वीए एकारममो । जत्थतत्थाणुपुव्वीए पढमो विदिओ तदिओ एवं जाव पण्हारममो वा त्ति वत्तव्वं । णाममेदस्स संक्रमो त्ति गोण्णपदं, पयडि-ट्टिदि-अणुभाग-पदेससंक्रमसरूव-वण्णणादो । पमाणमेत्थ अक्खर-पद-मंघाय-पडिवत्ति-अणियोगद्वारेहि संखेजं, अत्थदो अणंतमिदि वत्तव्वं । वत्तव्वदा एदस्स मममयो । एत्थ अत्थाहियारो चउव्विहो थप्पो, उवरि सुत्तयारेण ममुहेणेव परूविस्समाणत्तादो । एवमुवक्कमो गओ ।

* संक्रमका उपक्रम पांच प्रकारका हैं—आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार ।

§ १४. जिससे प्रकृत अर्थाधिकार श्रोताश्रोके बुद्धिविषय होनेके अनुकूल होता है वह उपक्रम कहलाता है । किन्तु वह आनुपूर्वी आदिके भेदसे पांच प्रकारका है । उनमेंसे आनुपूर्वीके तीन भेद हैं—प्रांनुपूर्वी, पश्चादानुपूर्वी और यत्रतत्रानुपूर्वी । उनमेंसे प्रांनुपूर्वीकी अपेक्षा कपायप्राभृतके पन्द्रह अर्थाधिकारोंमेंसे यह पांचवां अर्थाधिकार है । पश्चादानुपूर्वीकी अपेक्षा ग्यारहवां अर्थाधिकार है और यत्रतत्रानुपूर्वीकी अपेक्षा पहला, दूसरा, तीसरा इसी प्रकार क्रमसे जाकर पन्द्रहवां अर्थाधिकार है ऐसा यहां कहना चाहिये । इसका संक्रम यह नाम गौण्यपद है, क्योंकि इसमें प्रकृतिसंक्रम, स्थितिसंक्रम, अनुभागसंक्रम और प्रदेशसंक्रमके स्वरूपका वर्णन किया गया है । इसका प्रमाण अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति और अनुयोगद्वारोंकी अपेक्षा संख्यात है तथा अर्थकी अपेक्षा अनन्त है ऐसा यहां कहना चाहिये । वक्तव्यताके तीन भेद हैं । उनमेंसे इसकी स्वसमय वक्तव्यता है । प्रकृत अर्थाधिकारके चार भेद हैं जिनका कथन स्थगित करते हैं, क्योंकि आगे सूत्रकार स्वमुखसे ही उनका कथन करनेवाले हैं । इस प्रकार उपक्रमका कथन समाप्त हुआ ।

विशेषार्थ—उप उपसर्ग पूर्वक क्रम धातुसे उपक्रम शब्द बना है । इसका अर्थ है समीपमें जाना । उपक्रमके जो आनुपूर्वी आदि पांच भेद बतलाये हैं उनको भले प्रकारसे जान लेनेपर श्रोताको प्रकृत अधिकारका संचेपतः पूरा ज्ञान हो जाता है । आनुपूर्वीसे तो वह यह जान लेता है कि यह प्रारम्भसे गिननेपर कितनेवां, अन्तसे गिननेपर कितनेवां और जहा कहींसे गिननेपर कितनेवां अधिकार है । नामसे प्रकृत प्रकरणका नाम और इसका नामके दस या छह भेदोंमेंसे किसमें अन्तर्भाव होता है यह जान लेता है । प्रमाणसे प्रकृत प्रकरणके परिमाणका ज्ञान हो जाता है । वक्तव्यतासे यह व्याख्यान स्वसमय या परममय इनमेंसे किस अपेक्षासे किया जा रहा है यह ज्ञान हो जाता है । तथा अर्थाधिकारसे प्रकृत प्रकरणके अवान्तर अधिकारोंका ज्ञान हो जाता है । इस प्रकार जिस अधिकारका व्याख्यान करनेवाले होते हैं उसका आनुपूर्वी आदि द्वारा पूरा ज्ञान हो जाता है, इसलिये इन सबको उपक्रम कहते हैं । यहां पर संक्रम प्रकरणका वर्णन करनेवाले हैं, इसलिये आनुपूर्वी आदि द्वारा उसका उपक्रम बतलाया गया है ऐसा जानना चाहिये ।

❀ एत्थ णिक्खेवो कायव्वो ।

§ १५. एत्थुद्देसे मंक्रमस्स णिक्खेवो कायव्वो होइ, अण्णहा अपयदणिरायरण-मुहेण पयदत्थजाणावणोवायाभावादो । उत्तं च—

अवगयणिगारणट्ठं पयदस्स परूवणाणिमित्तं च ।

ससयविणासणट्ठं तच्चत्थवहारणट्ठं च ॥१॥

§ १६. तदो एत्थ णिक्खेवो अवयारेयव्वो त्ति सिद्धं ।

❀ णामसंक्रमो ठवणसंक्रमो दव्वसंक्रमो खेत्तसंक्रमो कालसंक्रमो भावसंक्रमो चेदि ।

§ १७. एवमेदे छण्णिक्खेवा एत्थ होंति त्ति भण्णिदं होइ । मंपहि एदेसिं णिक्खेवाणमत्थपरूवणं थप्पं कादूण णयाणमवयारो ताव कीरदे, णयविहागे अणवगए^१ तदत्थणिण्णयाणुववत्तीदो ।

❀ णेगमो सव्वे संक्रमे इच्छुइ ।

§ १८. कुदो ? दव्वपजायणयद्वयविमयत्तादो । णेदस्म सुत्तस्म तदुभयविम-यत्तममिद्धं, यदस्ति न तद्वयमतिलंघ्य वर्तते इति नैक्रमो नैगमो इति वचनात्तत्सिद्धेः । तदो सामण्णविसेमणिवंधणा मव्वे णिक्खेवा एदस्म विमए संभवंति त्ति मिद्धं ।

* यहांपर निक्षेप करना चाहिये ।

§ १५. अब इस स्थलपर संक्रमका निक्षेप करना चाहिये, क्योंकि इसके बिना अप्रकृत अर्थका निराकरण करके प्रकृत अर्थके ज्ञान करानेका दूसरा कोई उपाय नहीं है । कहा भी है—

अप्रकृत अर्थका निवारण करना, प्रकृत अर्थका प्ररूपण करना, संशयका विनाश करना और तत्त्वार्थका निश्चय करना इन चार प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिये निक्षेप किया जाता है ॥१॥

§ १६ इस लिये यहांपर निक्षेपका अवतार करना चाहिये यह बात सिद्ध होती है ।

* नामसंक्रम, स्थापनासंक्रम, द्रव्यसंक्रम, क्षेत्रसंक्रम, कालसंक्रम और भावसंक्रम ।

§ १७. इस प्रकार ये छह निक्षेप यहांपर होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब इन निक्षेपोंका विशेष व्याख्यान स्थगित करके पहले नयोंका अवतार करते हैं, क्योंकि नयविभागको जाने बिना निक्षेपोंका ठीक तरहसे निर्णय नहीं किया जा सकता ।

* नैगम नय सब संक्रमोंको स्वीकार करता है ।

§ १८. क्योंकि इसका विषय द्रव्य और पर्याय दोनों हैं । यदि कहा जाय कि नैगम नय द्रव्य और पर्याय इन दोनोंको विषय करता है यह बात नहीं सिद्ध होती, सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि 'जो है वह दोको उल्लंघनकर नहीं पाया जाता' इस उक्तिके अनुसार जो एकको प्राप्त न होकर अनेक अर्थात् दोका प्राप्त होता है वह नैगम नय है इस निरुक्तिवचनसे नैगमनयका द्रव्य और पर्याय दोनोंको विषय करना सिद्ध होता है । इसलिये सामान्य और विशेषकी अपेक्षा प्रवृत्त होनेवाले सब निक्षेप इसके विषय रूपसे संभव हैं यह बात सिद्ध होती है ।

१. ता० प्रतौ अणवगए णयविभागे इति पाठः । २. ता० प्रतौ णेदस्स तदुभय-इति पाठः ।

❀ संगह-वचहारा कालसंकममवर्णेति ।

§ १९. एत्थ संगह-वचहाग मव्वे संकमे इच्छंति त्ति अहियारमंबंधो कायव्वो, दव्वट्टिएसु मव्वेमिं णामादीणं मंभवाविहागदो । णवरि कालसंकममवर्णेति । कुदो ? संगहो ताव मंक्खित्तवत्थुगगहणलक्खणो । मामण्णावेक्खाए एक्को चेव कालो, ण तत्थ पुव्वावगीभावमंभवो, जेण तस्म संकमो होज्ज त्ति एदेणाहिप्पाएण कालसंकममवणेइ । ववहारणयस्स वि एवं चेव वत्तव्वं । णवरि कालसंकममवणेइ त्ति वुत्ते अदीदकालो सो चेव होउण ण पुणो आगच्छइ, तस्मादीदत्तादो । ण चाण्णम्मिं आगए मंते अण्णस्स संकमो वोत्तुं जुत्तो, अव्ववत्थावत्तीदो । तम्हा कालसंकममेमो णेच्छइ त्ति घेत्तव्वं ।

❀ उजुसुदो एदं च ठवणं च अवणेइ ।

§ २०. छण्हं णिकखेवाणं मज्झे उजुसुदो एदमणंतरपरूविदं कालसंकमं ठवणा-संकमं च अवणेइ, सेमचत्तागि संकमे इच्छइ त्ति वुत्तं होइ । कुदो दोण्हमेदेसिमण-व्भुवगमो ? ण, एदम्मं विगए तद्भावमागिच्छमामण्णाणमभावेण तदुभयसंभवाणुवलंभादो । कधमुजुमुदे पज्जवट्टिए णाम-दव्व-खेत्तसंकमाणं संभवो ? ण, उजुसुदवयणविच्छेद-

* संग्रहनय और व्यवहारनय कालसंकमको स्वीकार नहीं करते हैं ।

§ १९. यद्वापर संग्रह और व्यवहारनय सब संक्रमोंको स्वीकार करते हैं ऐसा प्रकरणके साथ सम्बन्ध कर लेना चाहिये, क्योंकि द्रव्यार्थिकनय नामादिक सबको विषय करते हैं ऐसा माननेमें कोई विरोध नहीं आता है । किन्तु ये दोनों नय कालसंकमको स्वीकार नहीं करते, क्योंकि संग्रहनय तो संग्रह की गई वस्तुको ग्रहण करता है । परन्तु सामान्यकी अपेक्षा काल एक ही है । उममें पूर्वकाल और उत्तरकाल ऐसे भेद सम्भव नहीं हैं जिससे उमका संक्रम होवे । इस प्रकार इम अभियप्रायसे संग्रहनय कालसंकमको नहीं स्वीकार करता । व्यवहारनयकी अपेक्षा भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये । किन्तु व्यवहारनय कालसंकमको नहीं स्वीकार करता ऐसा कहनेपर यह युक्ति देनी चाहिये कि अतीत काल वही होकर फिरसे नहीं आता है, क्योंकि वह बीत चुका है । और अन्य कालके आनेपर अन्य कालका संक्रम कहना युक्त नहीं है, अन्यथा अव्यवस्था दोष आता है । इसलिये व्यवहारनय भी कालसंकमको स्वीकार नहीं करता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये ।

* ऋजुसूत्रनय इमको और स्थापनासंकमको स्वीकार नहीं करता ।

§ २० ऋजुसूत्रनय छह संक्रमोंमेंसे इस पूर्वमें कहे गये कालसंकमको और स्थापना संक्रमको स्वीकार नहीं करता, शेष चार संक्रमोंको स्वीकार करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—ऋजुसूत्रनय इन दोनों संक्रमोंको क्यों स्वीकार नहीं करता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, तद्भावसादृश्यसामान्य ऋजुसूत्रका विषय नहीं होनेसे इन दोनोंको उसका विषय मानना सम्भव नहीं है ।

शंका—ऋजुसूत्रनयमें नाम, द्रव्य और क्षेत्र संक्रम कैसे सम्भव हैं ?

१. ता० प्रती तस्मादीह (द) तादो ? ए जाणु (ण) म्मि इति पाठः । २. ता० प्रती
-मणव्भुवगमो एदस्स इति पाठः ।

कालभन्तरे एदेमि संभवं पडि विरोहाभावादो ।

❀ सहस्स एामं भावो य ।

§ २१. कुदो ? सुद्धपञ्जवट्टियणए एदम्मि सेमणिवखेवाणमसंभवादो । कथमेत्थ णामणिवखेवस्स संभवो ? ण, सद्धपहाणे एदम्मि तदत्थित्तं [पडि विरोहाभावादो] ।

णिवखेवणयपरूवणा गया ।

समाधान—नहीं, क्योंकि वर्तमान कालके भीतर इन संक्रमोंका सद्भाव होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

* नामसंक्रम और भावसंक्रम ये शब्दनयके विषय हैं ।

§ २१ क्योंकि शब्दनय शुद्ध पर्यायार्थिकनय है, इसलिये इसमें शेष निक्षेप असम्भव है ।

शंका—इसमें नामनिक्षेप कैसे सम्भव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यह नय शब्दप्रधान है, इसलिये इसमें नामनिक्षेप है ऐसा स्वीकार कर लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

विशेषार्थ—यहाँ संक्रमको नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन छह निक्षेपोंमें घटित करके उनमेंसे किस निक्षेपको कौन नय विषय करता है यह बतलाया है । मुख्य नय पाँच हैं—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र और शब्द । जो संकल्प मात्रको ग्रहण करता है वह नैगमनय है इत्यादि रूपसे नैगमनयके अनेक लक्षण हैं । किन्तु यहाँ जो केवल द्रव्य या केवल पर्यायको, विषय न करके दोनोंको विषय करता है वह नैगमनय है, नैगमनयका ऐसा लक्षण स्वीकार कर लेनेसे सभी निक्षेप उसके विषय हो जाते हैं । इसीसे चूणिसूत्रकारने नैगमनय सब निक्षेपोंको स्वीकार करता है यह कहा है । यद्यपि संग्रहनय अभेदवादी है और संक्रम दो के बिना अर्थात् भेदके बिना बन नहीं सकता, इसलिये शुद्ध संग्रहका एक भी संक्रम विषय नहीं है । तथापि कालभेदके सिवा शेष सब भेद अभेददृष्टिसे अशुद्ध संग्रहके विषय हो सकते हैं, इसलिये काल-संक्रमके सिवा शेष सब संक्रम संग्रहनयके विषय बतलाये हैं । अब यहाँ दो प्रश्न होते हैं । प्रथम तो यह कि और भेदोंके समान कालभेद संग्रहनयका विषय क्यों नहीं है और दूसरा यह कि भावसंक्रम पर्यायरूप होनेके कारण वह संग्रहनयका विषय कैसे हो सकता है ? इन दोनों प्रश्नोंका क्रमसे समाधान यह है कि ऐसा नियम है कि वस्तुमें जहाँ तक द्रव्यादि रूपसे भेद हो सकते हैं वहाँ तक वे दृष्टिभेदसे संग्रह और व्यवहारनयके विषय हैं और जहाँसे कालभेद चालू हो जाता है वहाँसे वे ऋजुसूत्रके विषय होते हैं । यतः कालसंक्रम कालभेदके बिना हो नहीं सकता, अतः इसे संग्रहनयका विषय नहीं माना है । अब भावनिक्षेप संग्रहनयका विषय क्यों है इसका विचार करते हैं—यद्यपि भाव और पर्याय ये एकार्थवाची शब्द हैं किन्तु द्रव्यके बिना केवल पर्याय नहीं पाई जाती । आशय यह है कि पर्यायसे उपलक्षित द्रव्य ही भाव कहलाता है, अतः इस विचारसे भावसंक्रम भी संग्रहनयका विषय माना गया है । व्यवहारनय भेदवादी है । पर यह भी कालभेदको स्वीकार नहीं करता और एक कालमें संक्रम बन नहीं सकता, इसलिये कालनिक्षेप व्यवहारनयका भी विषय नहीं माना गया है । किन्तु शेष द्रव्यादि भेद व्यवहारनयमें बन जाते हैं, अतः कालसंक्रमके सिवा शेष सब संक्रम व्यवहारनयके भी विषय बतलाये गये हैं । ऋजुसूत्रनय वर्तमान पर्यायवादी है, इसलिये इसके रहते हुए जो निक्षेप सम्भव हैं वे ऋजुसूत्रके विषय हो सकते हैं शेष नहीं । शब्दनयके विषय नाम और भावनिक्षेप हैं यह स्पष्ट ही है ।

इस प्रकार कौन निक्षेप किस नयके विषय हैं इसका कथन समाप्त हुआ ।

§ २२. मंपहि णिक्खेवत्थविहामणद्वमुवग्गिं पबंधमाह—

❀ णोआगमदो दब्बसंकमो ठवणिज्जो ।

§ २३. एत्थ णाम-द्ववणा संकमा आगमदो दब्बसंकमो च सुगमा त्ति ण परू-
विदा । णोआगमदब्बसंकमो पुण ताव ठवणिज्जो, तस्स पयदत्तादो बहुवण्णणिज्जत्तादो
च । एवमेदं ठविय मंपहि खेत्तसंकमसरूवणरूवणद्वमुत्तरमुत्तं भणइ—

❀ खेत्तसंकमो जहा उड्डुलोगो संकंतो ।

§ २४. एत्थ 'खेत्तसंकमो जहा' त्ति आमंकिय 'उड्डुलोगो संकंतो' त्ति तस्स
सरूवणिहेसो कओ । उड्डुलोगणिहेसेण तत्थ द्वियजीवाणमिह गहणं कायच्चं, अण्णहा
उड्डुलोगस्स संकंतिविगेहादो । उड्डुलोगद्वियदेवेषु इहागदेसु उड्डुलोगसंकमो जादो त्ति
भावत्थो ।

❀ कालसंकमो जहा संकंतो हेमंतो ।

२५. जो मो पुव्वमइकंतो हेमंतो मो पडिणियत्तिय आगदो त्ति भणियं
होइ । कथमइकंतस्स पुणगगमो त्ति णासंफणिज्जं, माग्गिच्छमामण्णावेक्खाए अइकंतस्स
वि तस्स पुणगगमणं पडि विगेहाभावादो । अथवा वग्गिमयालपज्जाएणावट्टिओ जो कालो

§ २२. अब निक्षेपोंके अर्थका विशेष व्याख्यान करनेके लिये आगेके प्रबन्धका निर्देश
करते हैं—

* नोआगमद्रव्यसंकमका कथन स्थगित करते हैं ।

§ २३. नामसंकम, म्थापनासंकम और आगमद्रव्यसंकमका विवेचन सुगम है, इसलिए
यहाँ उनका कथन नहीं किया । अब इसके आगे नोआगमद्रव्यसंकमका कथन करना चाहिये
था किन्तु यह प्रकरण प्राप्त है और उसका बहुत वर्णन करना है इसलिए उसका कथन स्थगित
करते हैं । उस प्रकार इसे स्थगित करके अब क्षेत्रसंकमके स्वरूपका निर्देश करनेके लिये आगेका
सूत्र कहते हैं—

* क्षेत्रसंकम यथा—ऊर्ध्वलोक संक्रान्त हुआ ।

§ २४. यहाँ पर क्षेत्रसंकम जैसे ऐसी आशंका करके 'उड्डुलोगो संकंतो' इस पदद्वारा
उसके स्वरूपका निर्देश किया है । सूत्रमें जो 'ऊर्ध्वलोक' पदका निर्देश किया है सो उससे ऊर्ध्व-
लोकमें स्थित जीवोंका ग्रहण करना चाहिए, अन्यथा ऊर्ध्वलोकका संक्रमण होनेमें विरोध आता
है । ऊर्ध्वलोकमें स्थित देवोंके यहाँ आनेपर वह ऊर्ध्वलोकका संक्रम कहजाता है यह इस सूत्रका
भावार्थ है ।

* कालसंकम यथा—हेमन्त ऋतु संक्रान्त हुई ।

§ २५. जो हेमन्त ऋतु पहले निकल गई थी वह पुनः लौट आई, यह उक्त कथनका
वार्थ है ।

शंका—व्यतीत हुई हेमन्त ऋतुका फिरसे लौट आना कैसे सम्भव है ?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि सादृश्यसामान्यकी अपेक्षा
अतीत हुई हेमन्त ऋतुका फिरसे आगमन माननेमें कोई विरोध नहीं आता । अथवा जो

सो तं छंडियुण हेमंतमरूवेण परिणदो ति एदस्स अत्थो वत्तव्वो । संपहि आगम-
भावसंकममुवजुत्तत्पाहुडजाणयविमयं सुगमत्तादो अपरूविय णोआगमभावसंकम-
परूवणट्टमाह—

❀ भावसंकमो जहा संकंतं पेम्मं ।

§ २६. एत्थ पेम्मस्म जीवपञ्जायत्तादो पत्तभावववएम्मस्म विसयंतरमंकंती
भावसंकमो ति घेतव्वो । प्रमिद्धश्चायं व्यवहारः, तथा हि वक्तारो भवन्ति संक्रान्तमस्य
प्रेमान्यत्रामुष्मादिति ।

❀ जो सो णोआगमदो दव्वसंकमो सो दुविहो कम्मसंकमो च
णोकम्मसंकमो च ।

§ २७. जो सो पुव्वं ठविदो णोआगमदव्वसंकमो सो दुवियप्पो कम्म-णोकम्म-
भेएण, तदुभयवदिग्गिणोआगमदव्वस्माणुवलंभादो । तत्थ पढमस्म बहुवण्णणिज्जत्तादो
पयदत्तादो च कममुल्लंघिय थोववत्तव्वमेव ताव णोकम्मदव्वसंकमं णिदरिसणमुहेण
परूवेइ—

❀ णोकम्मसंकमो जहा कट्टसंकमो ।

§ २८. कथमसंकंताणं कट्टदव्वाणमेत्थ संकमववएमो ? न, संक्रम्यतेऽनेन

काल वर्षाकालरूपमे अवस्थित था वह वर्षाकालको छोड़कर हेमन्त रूपमे परिणत हो गया,
यह इस सूत्रका अर्थ कहना चाहिये ।

जो संक्रमप्राभृतका ज्ञाता है और उसके उपयोगसे युक्त है वह आगमभावसंकमप्राभृत
है । यतः यह सुगम है अतः इसका कथन न करके अब नोआगमभावसंकमका कथन करनेके लिये
आगेका सूत्र कहते हैं—

* भावसंकम यथा—प्रेम संक्रान्त हुआ ।

§ २६. यहाँ जीवकी पर्याय होनेसे प्रेमका भावरूपमे निर्देश किया है । उसका अन्य
विषयरूपमे संक्रमण करना भावसंकम है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये । जैसे कि लोकमे यह
व्यवहार प्रमिद्ध है और वक्ता भी ऐसा कहते हैं कि इसका इसमे प्रेम हट कर अन्यत्र संक्रान्त
हो गया है ।

* जो नोआगमद्रव्यसंकम है वह दो प्रकारका है—कर्मसंकम और नोकर्म-
संकम ।

§ २७. जो पहले नोआगमद्रव्यसंकम स्थगित कर आये हैं वह कर्म और नोकर्मके भेदसे
दो प्रकारका है, क्यों कि इन दोके सिवा और नोआगमद्रव्य नहीं पाया जाता । उनमेमे जो पहला
कर्मनोआगमद्रव्यसंकम है उसका वर्णन बहुत है और उसका प्रकरण भी है अतः क्रमको छोड़कर
जिसके विषयमे थोड़ा कहना है ऐसे नोकर्मद्रव्यसंकमका ही उदाहरणद्वारा कथन करते हैं—

* नोकर्मनोआगमद्रव्यसंकम यथा—काष्ठसंकम ।

§ २८. शंका—काष्ठ द्रव्योंका संक्रमण तो होता नहीं, अर्थात् एक लड़की दूसरी

१. ता० प्रतौ कम्मसंकमो च णोकम्मसंकमो, आ० प्रतौ कम्मसंकमो णोकम्मसंकमो च इति पाठः ।

देशान्तरमिति संक्रमशब्दव्युत्पादनात् । णईतोये अण्णत्थ वा कत्थ वि कट्ठाणि ठविय जेणेच्छिदपदेमं गच्छंति सो कट्ठमओ मंकमो कट्ठसंकमो ति भणियं होइ । णिदरिसण-
मेत्तं चेदं तेणिट्ठ-पत्थर-मट्ठिया-फलहसंकमाईणं गहणं कायच्चं, णोकम्मदच्चत्तं पडि
विसेसाभावादो ।

लड़की रूप तो होती नहीं, फिर इन्हें यहाँ संक्रम संज्ञा कैसे दी है ?

समाधान—नहीं क्योंकि जिससे एक देशसे दूसरे देशमें संक्रमण किया जाता है वह संक्रम है, संक्रम शब्दकी इस व्युत्पत्तिसे उक्त कथन बन जाता है। नदी किनारे या अन्यत्र कहीं काणोंको रखकर जिससे इच्छित स्थानको जाते हैं वह काणमय संक्रम काणसंक्रम है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यह उदाहरणमात्र है इसलिये उससे इष्टकासंक्रम, पापाणसंक्रम, मृत्तिकासंक्रम और फलकसंक्रम इत्यादिका ग्रहण करना चाहिये, क्यों कि ये सब नोकर्मद्रव्य हैं, इस अपेक्षा काणसे इनमें कोई विशेषता नहीं है।

विशेषार्थ—पहले नामसंक्रम आदि छह संक्रमोंका उल्लेख कर आये हैं। यहाँ पर उन्हींका अर्थ दिया गया है। इनमें से नामसंक्रम, स्थापनासंक्रम, आगमद्रव्यसंक्रम और आगमभावसंक्रम इन्हें सरल समझ कर चूर्णिसूत्रकारने इनका खुलासा नहीं किया है। फिर भी यहाँ पर क्रमवार सभीका खुलासा किया जाता है। किमीका संक्रम ऐसा नाम रखना नामसंक्रम है। किमी अन्य वस्तुमें 'यह संक्रम है' ऐसी स्थापना करना स्थापनासंक्रम है। द्रव्यसंक्रमके दो भेद हैं—आगमद्रव्यसंक्रम और नोआगमद्रव्यसंक्रम। जो संक्रमविषयक शास्त्रका ज्ञाता हो किन्तु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित हो वह आगमद्रव्यसंक्रम है। नोआगमद्रव्यसंक्रमके दो भेद हैं—कर्मनोआगमद्रव्यसंक्रम और नोकर्मनोआगमद्रव्यसंक्रम। कर्मनोआगमद्रव्यसंक्रम संक्रमको प्राप्त होनेवाला कर्म कहलाता है। यहाँ इस अनुयोगद्वारमें इसीका विस्तृत विवेचन किया जानेवाला है। नोकर्मनोआगमद्रव्यसंक्रम वे सहकारी कारण कहलाते हैं जिनके निमित्तसे एक देशसे दूसरे देशमें जानेमें सुगमता हो जाती है। उदाहरणार्थ लकड़ीका पुल, नौका, डौंटों, पत्थरों व फलकोंका पुल आदि। यद्यपि यहाँ संक्रम शब्दका अर्थ संक्रमण करके उसका यह नोकर्म बतलाया है पर कर्मद्रव्यसंक्रमका भी इसी प्रकार नोकर्म जान लेना चाहिये। जो कर्मद्रव्यके संक्रमणमें सहकारी होगा वह कर्मद्रव्यका नोकर्म कहलायगा। उदाहरणार्थ—असाताके कर्मपरमाणुओंको सातारूप परिणामानेमें सम्पत्ति आदि निमित्त पड़ते हैं, इसलिये ये असाताकर्मके साताकर्मरूप संक्रमणके निमित्त कारण हैं। इसी प्रकार सर्वत्र जान लेना चाहिये। एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें जाना क्षेत्रसंक्रम है। जैसे ऊर्ध्वलोकसे मध्यलोकमें जाना यह क्षेत्रसंक्रम है। कालका एक ऋतुको छोड़कर दूसरी ऋतुरूप होना या एक कालके स्थानमें दूसरा काल आ जाने पर भी पूर्व कालका पुनरागमन मानना कालसंक्रम है। जैसे वर्षाकालके बाद हेमन्त ऋतु आती है सो यह कालसंक्रम है। या हेमन्त ऋतुके बाद शिशिरऋतु आदि व्यतीत होकर पुनः हेमन्त ऋतुका आना इत्यादि कालसंक्रम है। भावसंक्रमके दो भेद हैं—आगमभावसंक्रम और नोआगमभावसंक्रम। जो संक्रमविषयक शास्त्र को जानता है और उसके उपयोगसे युक्त है वह आगमभावसंक्रम है। तथा नोआगमभाव संक्रममें प्रेम आदिरूप भाव लिये गये हैं। इनका एकसे दूसरेमें संक्रमित होना यह नोआगम भावसंक्रम है। इस प्रकार जो संक्रमका छह निक्षेपोंमें विभाग किया था उसका किस निक्षेपकी अपेक्षा क्या अर्थ है इसका खुलासा किया।

§ २९. मंपहि पयदकम्मदव्वमंकमगरूवपरूवणट्टमुत्तरमुत्तं भणइ—

❀ कम्मसंकमो चउत्विहो । तं जहा—पयडिसंकमो द्विदिसंकमो अणुभागसंकमो पदेससकमो चेदि ।

§ ३०. मिच्छत्तादिकज्जणणक्खमम्म पौगलक्खंधम्म कम्मववणो । तस्म मंकमो कम्मत्तापग्घिण्ण महावंतरगमंकी । मो पुण दव्वद्वियणयावलंबणेणेतत्तावणो पज्जवद्वियणयावलंबणे चउप्पयागे होइ पयडिसंकमादिभेण । तत्थ पयडीए पयडि-अंतरेसु संकमो पयडिसंकमो ति भणइ, जहा कोहपयडीए माणादिमु मंकमो ति । एवं सेमाणं पि वत्तच्चं । एमो चउप्पयागे कम्मसंकमो एत्थ पयदो । तत्थ वि मोहणिज्जकम्मसंघिणा मंकमचउक्केण पयदं, अण्णेभिमेत्थाहियागभावादो । एद्वेदस्म अत्थाहियागपरूवणदुवारेणणुगमो परूविदो । को अणुगमो णाम ? अनुगम्यतेऽनेन प्रकृतोऽधिकार इत्यनुगमः । प्रकृते वस्तुन्यवान्तराणामर्थाधिकाराणां निर्गम इति यावत् । एवमेदस्म मंकममहाहियागस्म उवक्कमादीहि चउहि पयारेहि अहियागे परूविदो । मंकमस्सेव सेमचोदमत्थाहियागणं पि पुथ पुथ उवक्कमादिपरूवणा क्किण्ण परूविज्जे ? ण, एदस्म मज्झदीवयभावेण ताणं पि तम्मिद्वीए तदपरूवणादो ।

§ २९. अब प्रकरण प्राप्त कर्मद्रव्यसंक्रमका स्वरूप वतलाने के लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* कर्मनोऽगमद्रव्यसंक्रम चार प्रकारका है । यथा—प्रकृतिसंक्रम, स्थितिसंक्रम, अनुभागसंक्रम और प्रदेशसंक्रम ।

§ ३०. जो पुद्गलस्कन्ध मिथ्यात्व आदि कार्यके उत्पन्न करनेमें समर्थ है वह कर्म कहलाता है । उसका अपनी कर्मरूप अवस्थाका त्याग किये बिना अन्य स्वभावरूपसे संक्रमण करना कर्मसंक्रम कहलाता है । वह यद्यपि द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे एक प्रकारका है तथापि पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे वह प्रकृतिसंक्रम आदिक भेदसे चार प्रकारका है । इनमेंसे एक प्रकृतिका दूसरी प्रकृतियोंमें संक्रम होना प्रकृतिसंक्रम कहलाता है । जैसे क्रोध प्रकृतिका मानादिकमें संक्रमण होना प्रकृतिसंक्रम है । उसी प्रकार शेष संक्रमोंके विषयमें भी कथन करना चाहिये । यह चार प्रकारका कर्मसंक्रम यहाँ पर प्रकृत है । उसमें भी मोहनीयकर्मसम्बन्धी चार संक्रमोंका यहाँ प्रकरण है, क्योंकि दृग्दृश कर्मोंका यहाँ पर अधिकार नहीं है । इस प्रकार यहाँ पर जो उनके अर्थाधिकारोंका कथन किया है सो उगसे उगसे अनुगमका कथन कर दिया गया ऐसा जानना चाहिये ।

शंका—अनुगम किसे कहते हैं ?

समाधान—जिसमें प्रकृत अधिकारका ज्ञान होता है उसे अनुगम कहते हैं ।

इससे प्रकृत वस्तुमें अवान्तर अधिकारोंका पूरा ज्ञान हो जाता है यह इसका तात्पर्य है । इस प्रकार इस संक्रम महाधिकारका उपक्रम आदि चार प्रकारमें अधिकार कहा ।

शंका—जिस प्रकार संक्रमकी उपक्रम आदि रूपसे प्ररूपणा की है उसी प्रकार शेष चौदह अर्थाधिकारोंकी भी पृथक् पृथक् उपक्रम आदिरूपसे प्ररूपणा क्यों नहीं की ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मध्यदीपरूपसे यहाँ इसका उल्लेख किया है । इससे

१. प्रतिबन्धकारान्निर्गम इति पाठः ।

§ ३१. संपहि चउण्हमेदेमिं संकमाणं मज्झे पयडिसंकमस्स ताव भेदपदुप्पायणडु-
मुत्तरसुत्तमाह—

❀ पयडिसंकमो दुविहो । तं जहा -- एगेगपयडिसंकमो पयडिड्ढाण-
संकमो च ।

§ ३२. एत्थ मूलपयडिसंकमो णत्थि, महावदो चेव मूलपयडीणमण्णोण-
विमयसंकंतीए अभावादो । तम्हा उत्तरपयडिसंकमो चेव दुविहो मुत्ते परूविदो । तत्थे-
गेगपयडिसंकमो णाम मिच्छत्तादिपयडीणं पुध पुध णिरुंभणं काउण संकमगवेमणा ।
तहा एकम्मि ममए जत्तियाणं पयडीणं संकमसंभवो ताओ एकदो काउण संकमपग्गिक्खा
पयडिड्ढाणसंकमो भण्णइ; ठाणमहम्म ममुदायवाचयस्स गहणादो । एदमुभयप्पयं
पयडिसंकमं ताव वत्तइम्मामो त्ति जाणावणट्टमुवग्गिमुत्तं भणइ—

❀ पयडिसंकमे पयदं ।

§ ३३. पयडि-ट्टिदि-अणुभाग-पदेमसंकमाणं मज्झे पयडिसंकमे ताव पयदमिदि

शेष अधिकारोंकी भी यह विधि सिद्ध हो जाती है, अतः अन्यत्र इस रूपसे प्ररूपणा नहीं की है ।

विशेषार्थ—किसी भी शास्त्रके प्रारम्भमें उपक्रम, निक्षेप, नय और अनुगम इन चारका
व्याख्यान करना आवश्यक है । इससे उक्त शास्त्रमें वर्णित विषय और उक्तके अधिकार आदिका
पता लग जाता है । इसी दृष्टिसे चृगिन्मूत्रकारने इन चारका अपने अग्रान्तर भेदोंके साथ यहाँ
वर्णन किया है तथापि संक्रमके जो चार अर्थाधिकार बतलाये हैं वे ही अनुगम व्यपदेशको प्राप्त
होते हैं ऐसा यहाँ जानना चाहिये । यहाँ पर अन्तमें यह शंका की गई है कि संक्रमके प्रारम्भमें
जमे इन उपक्रम आदिका वर्णन किया है उसी प्रकार अन्य पेजदोसविहन्ति आदि चौदह
अधिकारोंके प्रारम्भमें इनका वर्णन क्यों नहीं किया । टीकाकारने इसका जो समाधान किया
है उसका भाव यह है कि जैसे मध्यमें रखा हुआ दीपक आगे और पीछे सर्वत्र प्रकाश देता है
वैसे ही यह महाधिकार सर्वत्र मध्यमें है अतः यहाँ उनका उल्लेख कर देनेसे सर्वत्र वे अपने
अपने अधिकारके नामानुरूप जान लेने चाहिए ।

§ ३१. अब इन चारों संक्रमोंमें आये हुये प्रकृतिसंक्रमके भेद दिखलानेके लिये आगेका
सूत्र कहते हैं—

❀ प्रकृतिसंक्रम दो प्रकारका है । यथा—एकैकप्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिस्थानसंक्रम ।

§ ३२. यहाँ पर मूल प्रकृतिसंक्रम नहीं है, क्योंकि स्वभावसे ही मूल प्रकृतियोंका परस्परमें
संक्रम नहीं होता, इसलिये सूत्रमें उत्तरप्रकृतिसंक्रम ही दो प्रकारका बतलाया है । इनमेंसे
मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंका पृथक् पृथक् संक्रमका विचार करना एकैकप्रकृतिसंक्रम कहलाता
है । तथा एक समयमें जितनी प्रकृतियोंका संक्रम सम्भव है उनको पृथक् पृथक् करके संक्रमका
विचार करना प्रकृतिस्थानसंक्रम कहलाता है, क्योंकि कि यहाँ पर समुदायवाची स्थान शब्दका
ग्रहण किया है । इन दोनों प्रकारके प्रकृतिसंक्रमको आगे बतलायेंगे उस बातका ज्ञान
करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ प्रकृतिसंक्रम प्रकृत है ।

§ ३३. संक्रमके प्रकृतिसंक्रम स्थितिसंक्रम अनुभागसंक्रम और प्रदेशसंक्रम इन चार

भणिदं होइ । एवं च पयदस्म पयडिसंकमस्स परूवणं कुणमाणो तत्थ पडिबद्धाणं गाहासुत्ताणमियत्तावहारणदुमुत्तरमुत्तमाह—

❀ तत्थ तिण्णि सुत्तगाहाओ हवन्ति ।

§ ३४. तत्थ पयडिसंकमपरूवणावसरे तिण्णि सुत्तगाहाओ संगहियासेसत्थ-साराओ हवन्ति त्ति भणिदं होइ । ताओ कदमाओ त्ति आसंक्रिय पुच्छासुत्तमाह—

❀ तं जहा ।

§ ३५. सुगमं ।

संकम-उवक्कमविही पंचविहो चउव्विहो य णिक्खेवो ।

णयविही पयदं पयदे च णिग्गमो होइ अट्टविहो ॥२४॥

§ ३६. एमा पठमा गाहा । एदीए पयडिसंकमस्म उवक्कमो णिक्खेवो णओ अणुगमो चेदि चउव्विहो अवयारो परूविदो, तेण विणा पयदस्म परूवणोवायाभावादो । एवमेदिस्से गाहाए ममुदायत्थो परूविदो । अवयवत्थं पुण पुग्गो चुण्णिसुत्तमंबंधेणेव परूवइस्सामो । मंपहि एत्थुदिदुट्टविहणिग्गममरूवपरूवणदुविदियगाहाए अवयारो—

एकेकाए संकमो दुविहो संकमविही य पयडीए ।

संकमपडिग्गहविही पडिग्गहो उत्तम जहण्णो ॥२५॥

भेदोंमेंसे गर्व प्रथम प्रकृतिसंकम प्रकृत है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है । इस प्रकार प्रकरणप्राप्त प्रकृतिसंकमका कथन करते हुए उससे सम्बन्ध रखनेवाली गाथाओंका परिमाण निश्चित करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ इम विपयमें तीन सूत्र गाथाएं हैं ।

§ ३४. यहाँ प्रकृतिसंकमके कथनसे सम्बन्ध रखनेवाली तथा सब अर्थके सारका संग्रह कर स्थित हुईं तीन सूत्र गाथाएं हैं यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है । वे कौनसी हैं ऐसी आशंका करके पुच्छासूत्र कहते हैं—

❀ यथा—

§ ३५. यह सूत्र सुगम है ।

संकमकी उपक्रमविधि पाँच प्रकारकी है, निक्षेप चार प्रकारका है, नयविधि भी प्रकृत है और प्रकृतमें निर्गम आठ प्रकारका है ॥२४॥

§ ३६. यह पहली गाथा है । इसके द्वारा प्रकृतिसंकमका उपक्रम, निक्षेप, नय और अनुगम यह चार प्रकारका अवतार कहा गया है, क्योंकि इसके बिना प्रकृत विपयका सम्यक् प्रकारसे प्रतिपादन नहीं हो सकता है । इस प्रकार इस गाथाका समुदायार्थ कहा । किन्तु इसके प्रत्येक पदका अर्थ आगे चूर्णिसूत्रके सम्बन्ध में ही कहेंगे । अब इस गाथामें कहे गये आठ प्रकारके निर्गमके स्वरूपका कथन करनेके लिये दूसरी गाथाका अवतार हुआ है—

प्रकृति संक्रम दो प्रकारका है—एक एक प्रकृतिका संक्रम अर्थात् एकैक-प्रकृतिसंकम और प्रकृतिकी संक्रमविधि अर्थात् प्रकृतिस्थानसंकम । तथा संक्रममें

§ ३७. एत्थ पुवद्धे एवं पदसंबंधो कायव्वो । तं जहा—पयडीए संकमो दुविहो—
एकैकाए पयडीए संकमो पयडीए संकमविही चेदि । कुदो एवं ? संकमपदस्स पयडिसहस्स
य आवित्तीए संबंधावलंबणादो । गाहापच्छद्धे सुगमो पदसंबंधो । उभयत्थ वि
अवयवत्थो उवरिमत्तुण्णिमुत्तमंबद्धो त्ति तमपरूविय समुदायत्थमेत्थ वत्तइस्सामो । तं
जहा—एदीए गाहाए अट्टण्णं णिग्गमाणं मज्झे पयडिसंकमो पयडिड्डाणसंकमो पयडि-
पडिग्गहो पयडिड्डाणपडिग्गहो च मुत्तकंठं परूविदा । एदेसिं पडिवक्खा वि चत्तारि
णिग्गमा सूचिदा चेव, मच्च्वेसिं सप्पडिवक्खत्तादो वदिरेगेण विणा अण्णयपरूवणोवाया-
भावो च । संपहि एत्थेव णिच्छयजणणट्टमुवरिमगाहामुत्तावयागे—

पयडि-पयडिड्डाणमु संकमो असंकमो तहा दुविहो ।

दुविहो पडिग्गहविही दुविहो अपडिग्गहविही य ॥२६॥

§ ३८. एदीए गाहाए अट्टण्हं णिग्गमाणं णामणिहेसो कओ होइ । एदिस्से

प्रतिग्रहविधि होती है और वह उच्चम प्रतिग्रह और जघन्य प्रतिग्रह ऐसे दो भेद
रूप होती है ॥२५॥

§ ३७. यहां पूर्वार्धमें इस प्रकार पदोंका सम्बन्ध करना चाहिये । यथा—‘पयडीए संकमो
दुविहो—एकैकाए पयडीए संकमो पयडीए संकमविही च’ इसके अनुसार यह अर्थ हुआ कि
प्रकृतिसंक्रम दो प्रकारका है— एकैकप्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिसंक्रमविधि अर्थात् प्रकृति-
स्थानसंक्रम ।

शंका—गाथाके पूर्वार्धसे यह अर्थ किस प्रकार निकलता है ?

समाधान—संक्रम पद और प्रकृति शब्द इनकी आवृत्ति करके सम्बन्ध करनेसे उक्त
अर्थ निकलता है ।

गाथाके उत्तरार्धमें पदोंका सम्बन्ध सुगम है । गाथाके पूर्वार्ध और उत्तरार्ध इन दोनों ही
स्थलोंमें प्रत्येक पदका अर्थ आगे चूर्णिसूत्रके सम्बन्धसे कहा जायगा, इसलिये यहां उसका निर्देश
न करके समुदायार्थको ही बतलाते हैं । यथा—इस गाथामें आठ निर्गमोंसे प्रकृतिसंक्रम, प्रकृति
स्थानसंक्रम, प्रकृतिप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थानप्रतिग्रह इन चारका मुत्तकण्ठ होकर कथन किया है ।
तथा इनके प्रतिपक्षभूत जो चार निर्गम हैं उनका भी इस द्वारा सूचन किया है, क्योंकि एक तो
जितने भी पदार्थ होते हैं वे सब अपने प्रतिपक्षसहित होते हैं और दूसरे व्यतिरेकके बिना केवल
अन्वयका कथन करना भी सम्भव नहीं है । अब इसी बातका निश्चय करनेके लिये आगेकी
सूत्रगाथाका अवतार हुआ है—

प्रकृति और प्रकृतिस्थानमें संक्रम और असंक्रम ये दोनों प्रत्येक दो दो प्रकारके
हैं । तथा प्रतिग्रहविधि भी दो प्रकारकी है और अप्रतिग्रहविधि भी दो प्रकार
की है ॥२६॥

§ ३८. इस गाथा द्वारा आठ निर्गमोंका नामनिर्देश किया गया है । किन्तु इस गाथाके
३

अवयवत्थमुवरिमपदच्छेदपरूवणाए चैव वत्तइस्सामो, सुत्तसिद्धस्स पुधपरूवणाए फलाभावादो ।

✽ एदाओ तिणिण गाहाओ पयडिसंकमे ।

§ ३०. एवमेदाओ तिणिण गाहाओ पयडिसंकमे पडिवद्दाओ होंति त्ति भणिदं होइ । एवमेदासिं पयडिसंकमपडिवद्दत्तं णिरुविय पदच्छेदमुहेणेदामिं वक्खाणं कुणमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

✽ एदासिं गाहाणं पदच्छेदो ।

§ ४०. एत्तो एदामिं गाहाणं पदच्छेदो कायव्वो होदि, अवयवत्थवक्खाणे पयारंतगभावादो त्ति उत्तं होदि ।

✽ तं जहा ।

§ ४१. सुगमं ।

✽ 'संकम-उवक्कमविही पंचविहो' त्ति एदस्स पदस्स अत्थो पंचविहो—
उवक्कमो आणुपुव्वी एणमं पमाणं वत्तव्वदा अत्थाहियारो चेदि ।

§ ४२. संकम-उवक्कमविही पंचविहो त्ति एदस्स पढमगाहापुव्वद्दावयवपदस्स अत्थो को होइ त्ति आमंकिय आणुपुव्वीआदिभेदेण पंचविहो उवक्कमो एदस्स पदस्स

प्रत्येक पदका अर्थ आगे पदच्छेदका कथन करते समय ही बतलावेंगे, क्योंकि जो बात सूत्रसिद्ध है उसका अलगसे कथन करनेमें कोई लाभ नहीं है ।

✽ ये तीन गाथाणं प्रकृतिसंक्रमके विषयमें आईं हैं ।

§ ३६. इस प्रकार ये तीन गाथाणं प्रकृतिसंक्रमसे सम्बन्ध रखती हैं यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है । इस प्रकार ये तीन गाथाणं प्रकृतिसंक्रमसे सम्बन्ध रखती हैं इसका कथन करके अब पदच्छेदद्वारा इनका व्याख्यान करते हुए आगेके सूत्रोंका निर्देश करते हैं—

✽ इन गाथाओंका पदच्छेद ।

§ ४०. अब इससे आगे उन गाथाओंका पदच्छेद करना चाहिये, क्योंकि अन्य प्रकारसे गाथाओंके प्रत्येक पदके अर्थका व्याख्यान करना सम्भव नहीं है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है ।

✽ यथा—

§ ४१. यह सूत्र सुगम है ।

✽ 'संकम-उवक्कमविही पंचविहो' इस पदका अर्थ है कि उपक्रम पाँच प्रकारका है—आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार ।

§ ४२. प्रथम गाथाके पूर्वार्धमें जो 'संकम-उवक्कमविही पंचविहो' यह पद आया है सो इसका क्या अर्थ है ऐसी आशंका करके आनुपूर्वी आदिके भेदसे उपक्रम पाँच प्रकारका है यह इस

१. ता० प्रती 'एदस्स' इत्यतः सूत्रांशस्य टीकांशेन निर्देशः कृतः ।

अथो होइ ति णिद्धिं । तत्थाणुपुव्वी-णाम-पमाण-वत्तव्वदाणमत्थपरूवणा सुगमा ।
अत्थाहियारो पुण अट्टविहो होइ, उवरि तहापरूवणादो ।

❀ 'चउव्विहो य णिकखेवो' ति णाम दृवणं वज्जं दव्वं खेत्तं कालो भावो च ।

§ ४३. एत्थेवमहिमंबंधो कायव्वो—'चउव्विहो य णिकखेवो' ति एदस्स बीजपदस्स अथो दव्वं खेत्तं कालो भावो चेदि चउव्विहो णिकखेवो पयडिंसंकमविमओ । कुदो ? जम्हा णाम दृवणं वज्जं वज्जणीयमिदि । कुदो पुण दोण्हमेदेसि वज्जणं ? ण, तेसिमेत्थेव जहासंभवमंतव्वभावदंमणादो सुगमात्तदो वा । तदो दोण्हमेदेमिमवणयणं काऊण दव्व-खेत्त-काल-भावाणं गहणं कयं । तत्थागमदो दव्वपयडिसंकमो सुगमो, अणुवज्जुत्तत्त्पाहुडजाणयमरूवत्तादो । णोआगमदो दव्वपयडिसंकमो दुविहो—कम्म-णोकम्मभेएण । तत्थ णोकम्मदव्वपयडिसंकमो जहा संकंतो णीलुप्पलगंधो ति, णीलुप्पलमहावस्म गंधस्म वामिज्जमाणदव्वंतरेसु संकंतिदंमणादो । कम्मदव्वपयडि-संकमो जहा मिच्छत्तादीणं मोहणिज्जपयडीणं अण्णोण्णं ममयाविरोहेण संकमो । खेत्तादीणं णिकखेवाणमत्थो पुव्वं व वत्तव्वो ।

पदका अर्थ है ऐसा इस चूणिमूत्रमें निर्देश किया है । सो इनमेंसे आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण और वस्तुयता इनका अर्थ सुगम है । किन्तु जैसा कि आगे कहल जानेवाला है तदनुसार अर्थाधिकार आठ प्रकारका है ।

❀ 'चउव्विहो य णिकखेवो' पदका अर्थ है कि नाम और स्थापनाको छोड़कर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ये चार निक्षेप हैं ।

§ ४३. यहाँ पर इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिये कि प्रथम गाथामें जो 'चउव्विहो य णिकखेवो' यह बीजपद है सो इसका अर्थ है कि प्रकृतिसंक्रमको विषय करनेवाले द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ये चार निक्षेप हैं ।

शंका—ये चार ही क्यों हैं ?

समाधान—क्यों कि यहाँ पर नाम और स्थापना निक्षेपको छोड़ देना चाहिये ।

शंका—इन दोनोंको यहाँ क्यों छोड़ दिया है ?

समाधान—नहीं, क्यों कि इन दोनोंका इन्हीं चारोंमें यथासम्भव अन्तर्भाव देखा जाता है या वे सुगम हैं, इस लिये इन दोनोंको छोड़कर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इनका ग्रहण किया है ।

इन द्रव्यादि चार निक्षेपोंमें आगमद्रव्यप्रकृतिसंक्रम सुगम है, क्यों कि, जो प्रकृतिसंक्रम-विषयक प्राभृतको जानता है किन्तु उसके उपयोगसे रहित है वह आगमद्रव्यप्रकृतिसंक्रम कहलाता है । नोआगमद्रव्यप्रकृतिसंक्रम कर्म और नोकर्मके भेदसे दो प्रकारका है । इनमेंसे नील कमलका गन्ध संक्रान्त हुआ यह नोकर्मद्रव्यप्रकृतिसंक्रमका उदाहरण है, क्यों कि जिन दूसरे द्रव्योंको नील कमलके गन्धसे वासित किया जाता है उनमें उस गन्धका संक्रमण देखा जाता है । आगममें बतलाई हुई विधिके अनुसार मोहनीयकी मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंका परस्परमें संक्रमण होना कर्मद्रव्य-प्रकृतिसंक्रम है । तथा क्षेत्र आदि निक्षेपोंका अर्थ पहलेके समान कहना चाहिये ।

❀ 'णयविहि पयदं' ति एत्थ णओ वत्तव्वो ।

§ ४४. णयविहि पयदमिदि जमत्थपदं, एत्थ णओ वत्तव्वो, तेण विणा णिक्खेवत्थविमयणिण्णयाणुववत्तीदो । तत्थ पेगमो मव्वपयडिमंकमे इच्छइ । मंगह-ववहाग कालमंकममवणोति । एवमुजुमुदो वि । महणयस्म भावणिक्खेवो एको चव । एत्थ दव्वट्टियणयवत्तव्वदाए कम्मदव्वपयडिमंकमे पयदं ।

❀ 'पयदे च णिग्गमो होइ अट्टविहो' ति पयडिसंकमो पयडिअसंकमो पयडिहाणसंकमो पयडिहाणअसंकमो पयडिपडिग्गहो पयडिअपडिग्गहो पयडिहाणपडिग्गहो पयडिहाणअपडिग्गहो ति एसो णिग्गमो अट्टविहो ।

§ ४५. पयदे च णिग्गमो होइ अट्टविहो ति एत्थ बीजपदे पयडिमंकमामंकमादि-भेदमिण्णो अट्टविहो णिग्गमो अंतव्वभूदो ति भणिदं होइ । तत्थ पयडिमंकमो ति भणिदे एगेगपयडिमंकमो गहेयव्वो, पयडिहाणमंकमस्म पुध पस्वणादो । एवं सेमाणं पि सुत्ताणु-सारेण अत्थपस्वणा कायव्वा । संपहि अट्टण्हमेदेमि मस्वणिदग्गिसणमुद्देममेत्तेण कम्मामो । तं कथं ? पयडिसंकमो जहा मिच्छत्तपयडीए मम्मत्त-मम्मामिच्छत्तेसु । पयडिअसंकमो जहा तिस्से चव मिच्छाइट्टिमि ममणमम्माइट्टिमि मम्मामिच्छाइट्टिमि वा । पयडिहाण-

* 'णयविधि पयदं' इय पदके अनुसार यहाँ पर नयका व्याख्यान करना चाहिये ।

§ ४४. प्रथम गाथामें 'णयविहि पयदं' यह जो अर्थपद आया है तदनुसार यहाँपर नयका कथन करना चाहिये, क्योंकि इसके बिना निष्कर्षका अर्थविषयक निणय नहीं हो सकता है । द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चार निष्कर्षोंमेंसे नेगमनय सब प्रकृतिसंक्रमोंका स्वीकार करता है । संग्रह और व्यवहारनय काल संक्रमको स्वीकार नहीं करते हैं । इसी प्रकार ऋजुमूत्रनय भी कालसंक्रमको स्वीकार नहीं करता है । तथा शब्दनयका एक भावनिष्पे ही विषय है । इस अधिकारमें द्रव्याधिकनयकी अपेक्षा कर्मद्रव्यप्रकृतिसंक्रमका प्रकरण है ।

* 'पयदे च णिग्गमो होइ अट्टविहो' इय पदके अनुसार प्रकृतिसंक्रम, प्रकृति-असंक्रम, प्रकृतिस्थानसंक्रम, प्रकृतिस्थानअसंक्रम, प्रकृतिप्रतिग्रह, प्रकृतिअप्रतिग्रह, प्रकृतिस्थानप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थानअप्रतिग्रह यह आठ प्रकारका निर्गम है ।

§ ४५. 'पयदे च णिग्गमो होइ अट्टविहो' इय बीजपदमे प्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिअसंक्रम आदिके भेदसे आठ प्रकारका निर्गम अन्तर्भूत है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । उनमेंसे प्रकृति-संक्रमपदसे एकप्रकृतिसंक्रमको ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि प्रकृतिस्थानसंक्रमका अलगसे कथन किया है । इसी प्रकार सूत्रके अनुसार शेष निर्गमोंके अर्थका भी कथन करना चाहिये ।

अब उन आठोंके स्वरूपका निर्देश नाममात्रको करते हैं । यथा—मिथ्यात्व प्रकृतिका सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमित होना यह प्रकृतिसंक्रमका उदाहरण है । तथा उसी मिथ्यात्वका मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके रहते हुए सम्यक्त्व

१. ता०प्रती कम्मपयडिसकमे इति पाठः ।

संकमो जहा अट्टावीममंतकम्मियमिच्छाइट्टिमिह सत्तावीमाए । तदमंकमो जहा तत्थेव अट्टावीमाए । पयडिपडिग्गहो जहा मिच्छत्तं मिच्छाइट्टिमिह संकमंताणं सम्मत्त-सम्मा-मिच्छत्ताणं । को पडिग्गहो णाम ? संकमाहारे प्रतिगृह्यतेऽस्मिन् प्रतिगृह्णातीति वा पडिग्गहमहउप्पायणादो । तदपडिग्गहो जहा तत्थेव सम्मत्त-सम्मा-मिच्छत्ताणि । जहा वा दंमण-चरित्तमोहणीयपयडीणमण्णोण्णं पेक्खिऊण पडिग्गहत्ताभावो । पयडिट्टाण-पडिग्गहो जहा मिच्छाइट्टिमिह वावीमपयडिसमुदायप्पयमेयं पयडिपडिग्गहट्टाणमिदिं । पयडिट्टाणअपडिग्गहो जहा मोलमादीणं ठाणाणमण्णदगे । एवमेभो अट्टविहो णिग्गमो परूविदो चुण्णिमुत्तयारेण पयदे च णिग्गमो होइ अट्टविहो त्ति वीजपदावलंबणेण ।

और सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमित नहीं होता यह प्रकृतिअसंक्रमका उदाहरण है । अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रमित होना यह प्रकृतिस्थानसंक्रमका उदाहरण है । तथा उसी मिथ्यादृष्टिके अट्टाईस प्रकृतियोंका संक्रमित नहीं होना यह प्रकृतिस्थान-असंक्रमका उदाहरण है । प्रकृतिप्रतिग्रहका उदाहरण, जैसे—मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें संक्रमणको प्राप्त हुई सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंका मिथ्यात्वप्रकृति प्रकृतिप्रतिग्रह है ।

शंका—प्रतिग्रह किसे कहते हैं ?

समाधान—संक्रमरूप आधारके सद्भावमें प्रतिग्रह शब्दकी व्युत्पत्तिके अनुसार संक्रमको प्राप्त हुआ द्रव्य जिसमें ग्रहण किया जाता है या जो ग्रहण करता है उसे प्रतिग्रह कहते हैं ।

प्रकृतिअप्रतिग्रहका उदाहरण, जैसे—उसी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियां प्रकृतिअप्रतिग्रह रूप हैं । अथवा दर्शनमोहनीय और चरित्र-मोहनीय ये परस्परमें प्रतिग्रहरूप नहीं हैं, इसलिये दर्शनमोहनीयकी कोई भी प्रकृति चरित्रमोहनीय की अपेक्षा प्रकृतिअप्रतिग्रह है और चरित्रमोहनीयकी कोई भी प्रकृति दर्शनमोहनीयकी अपेक्षा प्रकृतिअप्रतिग्रह है । प्रकृतिस्थानप्रतिग्रहका उदाहरण—जैसे, मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें बाईस प्रकृतियोंका समुदायरूप एक प्रतिग्रहस्थान है । प्रकृतिस्थानअप्रतिग्रहका उदाहरण, जैसे सोलह आदि स्थानोंमें से कोई एक स्थान प्रकृतिस्थानअप्रतिग्रह है । इस प्रकार 'पयदे च णिग्गमो होइ अट्टविहो' इस वीजपदके आलम्बनसे चूर्णिसूत्रकारने यह आठ प्रकारका निर्गम कहा है ।

विशेषार्थ—पहले संक्रमका उपक्रम आदि चारके द्वारा कथन करते हुए अन्तमें चूर्णिसूत्रकारने संक्रमके चार अर्थाधिकार वतलाये रहे । उनमें प्रथम अर्थाधिकार प्रकृतिसंक्रम है, इसलिये सर्व प्रथम इसका वर्णन क्रमप्राप्त है । इसीसे इसका पुनः उपक्रम आदि चारके द्वारा निर्देश किया गया है । यह निर्देश केवल चूर्णिसूत्रकारने ही नहीं किया है किन्तु मूलग्रन्थकर्ताने भी किया है । इसके लिये तीन गाथाएँ आई हैं । प्रथम गाथामें उपक्रम, निक्षेप और निर्गम (अनुगम) के भेद देकर नययोजना करनेकी सूचना की गई है तथा दूसरी और तीसरी गाथामें निर्गमके विषयमें विशेष खुलासा और निर्गमके अवान्तर भेदोंका नामनिर्देश किया गया है । यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि ये गाथाएँ केवल प्रकृतिसंक्रमके विषयमें ही क्यों लागू होती हैं, सामान्य संक्रमके विषयमें क्यों नहीं । सो इसका यह खुलासा है कि इन गाथाओंमें स्पष्टतः प्रकृतिसंक्रमके अवान्तर भेदोंका ही एकमात्र निर्देश किया है । इससे ज्ञात होता है कि इन गाथाओंका सम्बन्ध केवल प्रकृतिसंक्रमसे ही है ।

§ ४६. एवं पढमगाहाए पदच्छेदमुहेणमत्थविवरणं कादूण संपहि विदियगाहाए पदच्छेदकरणट्टमिदमाह—

❀ 'एक्केक्काए संकमो दुविहो संकमविही य पयडीए' त्ति पदस्स अत्थो कायन्वो ।

§ ४७. पयडि-पयडिड्ढाणमंकमेसु पडिवद्वस्सेदस्स विदियगाहापुव्वद्वस्स अवयवत्थविवरणं कस्सामो त्ति पडिज्जासुत्तमेदं ।

अब यहाँ क्रमसे चूर्णिसूत्र और टीकाके अनुसार प्रकृतिसंक्रमके विषयमे इन उपक्रम आदिका खुलासा करते हैं—उपक्रमके पाँच भेद हैं—आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार। आनुपूर्वीके तीन भेदोंमेंसे पूर्वानुपूर्वीके अनुसार प्रकृतिसंक्रम यह पहला भेद है। पश्चादानुपूर्वीके अनुसार चौथा और यत्रतत्रानुपूर्वीके अनुसार पहला, दूसरा, तीसरा या चौथा भेद है। नामके कई भेद हैं। उनमेंसे इसका गोण्यनाम है। प्रमाण ग्रन्थकी अपेक्षा संख्यात और अर्थकी अपेक्षा अनन्त है। वक्तव्यताके तीन भेद हैं। उनमेंसे इसमे स्वसमयवक्तव्यता है। अर्थाधिकार इसके आठ हैं जो निर्गमका कथन करते समय बतलाये जायंगे। उपक्रमके बाद दूसरा भेद निक्षेप है। प्रकृतिसंक्रमका द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चार निक्षेपोंमें घटित करके बतलाया है। यद्यपि मूलकर्ताने केवल चार निक्षेपोंकी सूचनामात्र की है। तदनुसार वे चार निक्षेप नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव भी हो सकते हैं। पर चूर्णिसूत्रकारने इन चार निक्षेपोंका प्रकृतमें ग्रहण न करके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चार निक्षेपोंका ही ग्रहण किया है। मालूम होता है कि संक्रममे नाम और स्थापनाकी उतनी उपयोगिता नहीं है जितनी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी उपयोगिता है। इसीसे प्रकृतमे नाम और स्थापनाको छोड़ दिया गया है। उदाहरणार्थ किसीका प्रकृतिसंक्रम ऐसा नाम रखनेसे या किसीमे यह प्रकृतिसंक्रम है ऐसी स्थापना करनेसे प्रकृत प्रकृतिसंक्रमके समझनेमे विशेष सहायता नहीं मिलती पर द्रव्यादिकके संक्रमसे यथायोग्य कर्म-प्रकृतियोंके संक्रमणमे सहायता मिलती है इसलिये प्रकृतिसंक्रमकी निक्षेप व्यवस्था करते हुए इन चार निक्षेपोंकी यहाँ योजना की है। उदाहरणार्थ वसन्त ऋतुके बाद ग्रीष्म ऋतु आनेपर जीव गर्मीका अधिक अनुभव करता है, इससे जीवको गर्मीजन्य तीव्र वेदना होती है, अतः ऐसे अवसर पर गर्मीका निमित्त पा कर असाताकी उदय व उद्दीरणा होने लगती है तथा साता कर्मका असाता-रूप संक्रम भी होने लगता है। इसी प्रकार सभी निक्षेपोंके सम्बन्धमे यथायोग्य घटित कर लेना चाहिये। प्रकृतमें नयका इतना ही प्रयोजन है कि इन निक्षेपोंमे कौन निक्षेप किस नयका विषय है। सो इसका विशेष खुल सा पूर्वमे कर आये हैं, अतः यहाँ नहीं किया गया है। अब रहा निर्गम सो प्रकृतमे यह आठ प्रकारका है। विशेष खुलासा इसका स्वयं टीकाकारने ही किया है इस लिये यहाँ इसका खुलासा नहीं किया जाता है। किन्तु यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि अन्यत्र जिसे अनुगम कहा है वही यहाँ निर्गम शब्द द्वारा कहा गया है।

§ ४६. उम प्रकार पदच्छेदद्वारा प्रथम गाथाके अर्थका खुलासा करके अब दूसरी गाथाका पदच्छेद करनेके लिये यह आगेका सूत्र कहते हैं—

'एक्केक्काए संकमो दुविहो संकमविही य पयडीए' इस पदका अर्थ करना चाहिये ।

§ ४७. यह प्रतिज्ञा सूत्र है जिसके द्वारा यह प्रतिज्ञा की गई है कि अब प्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिस्थानसंक्रम इनसे सम्बन्ध रखनेवाले इस दूसरी गाथाके पूर्वार्धके अर्थका विशेष खुलासा करेंगे ।

❀ 'एक्केक्काए' त्ति एगेगपयडिसंकमो, 'संकमो दुविहो' त्ति दुविहो संकमो त्ति भणिदं होइ, 'संकमविही य' त्ति पयडिटाणसंकमो, 'पयडीए' त्ति पयडिसंकमो त्ति भणियं होइ ।

§ ४८. पयडीए संकमो दुविहो—एक्केक्काए पयडीए संकमो पयडीए संकमविही चेदि गाहापुव्वद्धम्मि एवंविहसंबंधपदुप्पायणट्टुमागयस्सेदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा—संकमो दुविहो त्ति दुविहो संकमो त्ति भणिदं होइ । एसो विदिओ सुत्तावयवो पढमं वक्खाणेयव्वो । तदो संकमो अविमिट्ठो ण होइ त्ति जाणावणट्टं पयडीए त्ति भणिदं होइ त्ति एदेण चग्गिसुत्तावयवेणाहिमंबंधो कायव्वो । तदो पयडि-संकमो दुविहो त्ति दोणहं सुत्तावयवाणमत्थमंगहो । मंपहि कथं दुविहत्तमिदि उत्ते 'एक्केक्काए' त्ति एगेगपयडिसंकमो 'संकमविही' य त्ति पयडिट्टाणसंकमो इदि पढम-तइजावयवाणमहिमंबंधो । कथं पुण एक्केक्काए त्ति एत्तियमेत्तेण एगेगपयडिसंकमो विण्णाटुं मक्को ? ण, 'पयडीए संकमो' त्ति उत्तरेण मह संबद्धेण तदुवलद्वीए । तहा 'संकमविही य' त्ति एत्थतणविहिसदस्स जहण्णुकस्स-तव्वदिरित्तपयाग्वाचयस्मावलंबणादो पयडिट्टाणसंकमस्स गहणं पडिवज्जेयव्वं, एगेगपयडिविवक्खाए तदणुवलंबादो । तम्हा

* 'एक्केक्काए' इम पदद्वारा एकैकप्रकृतिसंक्रम और 'संकमो दुविहो' इस पदद्वारा संक्रम दो प्रकारका है यह कहा गया है । तथा 'संकमविही य' इस पदद्वारा प्रकृतिस्थानसंक्रम और 'पयडीए' इम पदद्वारा प्रकृतिसंक्रम कहा गया है ।

§ ४८. गाथाके पूर्वार्धमे प्रकृतिसंक्रम दो प्रकारका है—एकैक वृत्तिसंक्रम और प्रकृति-संक्रमविधि इस प्रकारके सम्बन्धका कथन करनेके लिये आये हुए इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । यथा—'संकमो दुविहो' इस पदद्वारा संक्रम दो प्रकारका है यह कहा गया है । यद्यपि यह गाथा सूत्रका दूसरा अत्रयत्र है तथापि इसका सर्व प्रथम व्याख्यान करना चाहिये । किन्तु यहाँ पर सामान्य संक्रम नहीं लिया गया है यह जतानेके लिये गाथा सूत्रके पूर्वार्धके अन्तमे आये हुए 'पयडीए' इस पदके साथ 'संकमो दुविहो' इस पदका सम्बन्ध करना चाहिये । इसलिये प्रकृति-संक्रम दो प्रकारका है यह गाथामूत्रके इन दोनों पदोंका समुच्चयार्थ होता है । अब यह प्रकृतिसंक्रम दो प्रकारका कैसे है ऐसा पूछनेपर गाथाके प्रथम पद 'एक्केक्काए' और तृतीय पद 'संकमविही य' इन दोनों पदोंका सम्बन्ध करके इन दोनों पदोंद्वारा क्रमसे एकैकप्रकृतिसंक्रम और प्रकृति-स्थानसंक्रम ये दो भेद बतलाये गये हैं ।

शंका—एक्केक्काए' इतनेमात्र पदसे एकैकप्रकृतिसंक्रमका ज्ञान कैसे किया जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्यों कि 'पयडीए संकमो' इस उत्तर पदके साथ सम्बन्ध कर लेनेसे उक्त अर्थ प्राप्त हो जाता है ।

तथा 'संकमविही य' इम पदमें आये हुए जघन्य, उत्तृष्ट और तद्व्यतिरिक्त प्रकारवाची विधि शब्दका अवलम्बन लेनेसे प्रकृतिस्थानसंक्रमका ग्रहण करना चाहिए, क्यों कि एक एक

१. वी० सा० प्रती -पयडिसंकमो, दुविहो त्ति 'संकमो दुविहो' त्ति इति पाठः । २ ता०प्रती 'संकमविही य' इत्यतः सूत्रांशस्य टीकांशेन निर्देश कृतः ।

एदेहि चदुहि वि पुव्वद्धपडिबद्धमुत्तावयवेहि एगेगपयडिमंकमो पयडिड्डाणसंकमो चेदि वे णिग्गमा परूविदा ।

❀ 'संकमपडिग्गहविहि' त्ति संकमे पयडिपडिगहो ।

§ ४९. संकमे संकमस्स वा पडिग्गहविही संकमपडिग्गहविहि त्ति एत्थ ममामो पयडीए त्ति अहियारमंबंधो च कायव्वो । सेसं सुगमं ।

❀ 'पडिग्गो उत्तम जहण्णो' त्ति पयडिड्डाणपडिग्गहो ।

§ ५०. कुदो ? जहण्णुक्कस्सवियप्पाणमण्णत्थासंभवादो । एवमेदीए विदियगाहाए एगेगपयडिमंकमो पयडिड्डाणसंकमो पयडिपडिग्गहो पयडिड्डाणपडिग्गहो च मुत्तकंठं परूविदा । तप्पडिबक्खा वि चत्तारि णिग्गमा देमामासियभावेण सूचिदा त्ति धेत्तव्वं । संपहि एदेमिं चेव अट्टणं णिग्गमाणं फुडीकरणट्टं तदियगाहाए पदच्छेदो कीरदे—

❀ 'पयडि-पयडिड्डाणेसु संकमो' त्ति पयडिसंकमो पयडिड्डाण-संकमो च ।

प्रकृतिकी विवक्षामें ये जघन्य आदि भेद नहीं हो सकते । इसलिये गाथामूत्रके पूर्वार्धसे सम्बन्ध रखने-वाले इन चारों ही पदोंके द्वारा एकैकप्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिस्थानसंक्रम ये दो निगम कहे गये हैं ।

विशेषार्थ—गाथाका पूर्वार्ध उम प्रकार है—'एक्केक्काए संकमो दुविहो—संकमविही य पयडीए । इमंवा निस्स प्रकारसे अन्वय करना चाहिये—पयडीए संकमो दुविहो—एक्केक्काए पयडीए संकमो संकमविही य । इस अन्वयमें 'पयडीए संकमो' इन दो पदोंका दो बार अन्वय किया गया है । तदनुसार गाथाके उम पूर्वार्धका यह अर्थ हुआ कि प्रकृतिसंक्रम दो प्रकारका है—एकैकप्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिस्थानसंक्रम । यहाँ 'संकमविही' इम पदका प्रकृतिस्थानसंक्रम इतना अर्थ लिया गया है, क्यों कि उम पदमे आया हुआ 'विवि' शब्द प्रकारवाची है जिससे उक्त अर्थ प्राप्त हो जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

❀ 'संकमपडिग्गहविही' इम पदसे संक्रमके विषयमें प्रकृतिप्रतिग्रहका ग्रहण किया है ।

§ ४९ संक्रममे या संक्रमकी प्रतिग्रहविधि संक्रमप्रतिग्रहविधि इम प्रकार यहाँपर समास करके 'पयडीए' इम पदका अधिकारवशा सम्बन्ध करना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

❀ 'पडिग्गहो उत्तम जहण्णो' इम पदसे प्रकृतिस्थानप्रतिग्रहका ग्रहण किया है ।

§ ५० क्योंकि जघन्य और उत्कृष्ट ये विकल्प अन्यत्र सम्भव नहीं हैं । इस प्रकार इम दूसरी गाथा द्वारा एकैकप्रकृतिसंक्रम, प्रकृतिस्थानसंक्रम, प्रकृतिप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थानप्रतिग्रह इन चार निर्गमोंका मुत्तकण्ठ होकर कथन किया गया है । तथा इनके प्रतिपक्षभूत चार अन्य निर्गम भी देशामर्पकभावसे सूचित किये गये हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये । आशय यह है कि यद्यपि इम दूसरी गाथा द्वारा चार निर्गमोंका ही सूचन किया है किन्तु यह गाथा देशामर्पक है, अतः इससे इनके प्रतिपक्षभूत चार अन्य निर्गमोंका भी ग्रहण हो जाता है । अब इन्हीं आठों निर्गमोंका स्पष्टीकरण करनेके लिये तीसरी गाथाका पदच्छेद करते हैं—

❀ 'पयडि-पयडिड्डणेसु संकमो' इम द्वारा प्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिस्थानसंक्रम का ग्रहण किया है ।

§ ५१. कथमेत्थ गाहासुत्तावयवे मंबंधविवक्खमकाऊण आहारणिहेसो कओ ति णामंकाणिजं, विसयभावस्स विवक्खियत्तादो । पयडिविसओ एक्को संकमो पयडिड्डाण-विसओ अवरो ति ।

⊗ 'असंकमो तहा दुविहो' ति पयडिअसंकमो पयडिड्डाणअसंकमो च ।

§ ५२. अमंकमो तहा दुविहो ति एत्थ 'पयडि-पयडिड्डाणेसु' ति अहियारसंबंधो कायव्वो । तेण पयडिअमंकम-पयडिड्डाणामंकमाणं' संगहो कओ होइ ।

⊗ 'दुविहो पडिग्गहविहि' ति पयडिपडिग्गहो पयडिड्डाणपडिग्गहो च ।

§ ५३. एत्थ वि पुवं व अहियारसंबंधेण पयडिणग्गमाणं गहणं कायव्वं^१ ।

⊗ 'दुविहो अपडिग्गविही य' ति पयडिअपडिग्गहो पयडिड्डाण-अपडिग्गहो च ।

§ ५४. एत्थ वि अहियारसंबंधो पुवं व । सेमं सुगमं ।

एवमेदे पयडिमंकमस्स अट्ट णिग्गमा परूविदा ।

§ ५१. शंका—तीसरी गाथासूत्रके 'पयडि' इत्यादि अवयवमें सम्बन्धकी विवक्षा किये बिना आधारका निर्देश कैसे किया गया है ?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है क्योंकि यहाँ पर विपर्यय अर्थ विवक्षित है । आशय यह है कि यहाँ पर आधार अर्थमें सप्तमी विभक्तिका निर्देश नहीं किया है किन्तु विषय अर्थमें सप्तमीका निर्देश किया है । जिससे प्रकृतिविपर्यय एक संक्रम और प्रकृतिस्थानविपर्यय दूसरा संक्रम यह अर्थ होता है ।

* 'असंकमो तहा दुविहो' इस द्वारा प्रकृतिअसंकम और प्रकृतिस्थानअसंकम का ग्रहण किया है

§ ५२ 'असंकमो तहा दुविहो' यहाँ पर 'पयडि-पयडिड्डाणेसु' इस पदका अधिकारवश सम्बन्ध कर लेना चाहिये जिससे उक्त गाथांशद्वारा प्रकृतिअसंकम और प्रकृतिस्थानअसंकम इन दोनोंका संग्रह किया गया हो जाता है ।

* 'दुविहो पडिग्गहविही' इस द्वारा प्रकृतिप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थानप्रतिग्रहका ग्रहण किया है

§ ५३. यहाँपर भी पूर्ववत् अधिकारोंका सम्बन्ध हो जानेसे प्रकृत निर्गमोंका ग्रहण कर लेना चाहिये ।

* दुविहो अपडिग्गहविही य इम द्वारा प्रकृतिअप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थान-अप्रतिग्रहका ग्रहण किया है ।

§ ५४. यहाँपर भी पूर्ववत् अधिकारवश सम्बन्ध कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

इसप्रकार प्रकृतिसंक्रमके ये आठ निर्गम कहे ।

१. आ०प्रती तेण पयडिड्डाणासंकमाणं इति पाठः । २. आ०प्रती पडिग्गहविहत्ती इति पाठः ।
३. आ०प्रती -णिग्गमाणं कायव्वं इति पाठः ।

§ ५५. एवं पयडिमंकमम्म चउव्विहावयाग्गम्म परूवणं गाहामुत्तावलंबणेण काऊण पयदत्थोवमंहाकरणट्टमिदमाह—

❀ एस सुत्तफासो ।

§ ५६. एमो गाहामुत्ताणमवयवत्थपरागमरमो कओ त्ति भणिदं होइ । संपहि परूविदाणमट्टण्हं णिग्गमाणं मज्झे एगेगपयडिपडिबद्धाणं ताव परूवणं कस्सामो त्ति सुत्तमुत्तरं भणइ—

❀ एगेगपयडिसंकमे पयदं ।

§ ५७. एगेगपयडिसंकमे अंतोभाविदत्तदसंकमतप्पडिग्गहापडिग्गहे पयदमिदि भणिदं होइ । तत्थ चउवीममणियोगदागणि होति । तं जहा—समुक्कित्तणा मव्वमंकमो णोमव्वमंकमो उक्कम्मसंकमो अणुक्कम्मसंकमो जहण्णसंकमो अजहण्णसंकमो मादियसंकमो अणादियसंकमो धुवमंकमो अद्धुवमंकमो एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ भागाभागो परिमाणं खेत्तं पोमणं कालो अंतरं मण्णिणयामो भावो अप्पावहुअं चेदि । एत्थ ताव समुक्कित्तणादीणमेक्कारम्मण्हमणियोगदागणमप्पवण्णणिज्जात्तो सुत्तयारेण अपरूविदाणंमुच्चारणाणुमारेण परूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा—

§ ५८. समुक्कित्तणाणुगमेण द्विहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण अत्थि मव्वपयडीणं मंकमो । एवं चदुमु गदीसु । णवारं पंच्चदियतिग्गिक्खअपज्ज०-

§ ५५. इसप्रकार गाथासूत्रोंके आधारसे प्रकृतिसंक्रमके चार प्रकारके अवतारका कथन करके प्रकृत अर्थका उपसंहार करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ यह सूत्रस्पर्श है ।

§ ५६. इसप्रकार यह गाथासूत्रोंके प्रत्येक पदके अर्थका स्पर्श किया यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब पूर्वोक्त इन अठ निर्गमांभसे एकैकप्रकृतिसम्बन्धी निर्गमका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ एकैकप्रकृतिसंक्रमका प्रकरण है ।

§ ५७. जिसमें एकैकप्रकृतिअसंक्रम, प्रकृतिप्रतिग्रह और प्रकृतिअप्रतिग्रह ये अन्तर्भूत हैं ऐसे एकैकप्रकृतिसंक्रमका प्रकरण है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है । सो इस विषयमें चौबीस अनुयोगद्वार हैं । यथा—समुत्कीर्तना, सर्वसंक्रम, नोमर्वसंक्रम, उत्कृष्टसंक्रम, अनुत्कृष्टसंक्रम, जघन्यसंक्रम, अजघन्यसंक्रम, मादिसंक्रम, अनादिसंक्रम, ध्रुसंक्रम, अध्रुसंक्रम, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल और अन्तर तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, सन्निकर्ष, भाव और अल्पबहुत्व । इनमेंसे समुत्कीर्तना आदि ग्यारह अनुयोगद्वार अल्प वर्णनीय होनेसे सूत्रकारके द्वारा नहीं कहे गये हैं, अतः उच्चारणाके अनुसार उनका कथन करते हैं । यथा—

§ ५८. समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकी सब प्रकृतियोंका संक्रम है । इसीप्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी

१. आ०प्रतौ सुत्तयारेण परूवदाणु- इति पाठः ।

मणुमअपज्जत्तएमु मिच्छत्तस्म अमंकमो । अणुदिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति सम्मत्तस्स अमंकमो । एवं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ५९. सव्व०-णोमव्वमंकमाणुगमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण सव्वाओ पयडीओ संकामेमाणस्स मव्वसंकमो । तदणं० णोसव्वमंकमो । एवं जाव० ।

§ ६०. उक्कस्से-अणुक्कस्समंकमाणुगमेण सत्तावीमपयडीओ मंकामेमाणस्स उक्कस्स-मंकमो । तदणं अणुक्कस्समंकमो । एवं जाव० ।

§ ६१. जहण्ण-अजहण्णमंकमाणु० मव्वजहण्णियं पयडिं मंकामेमाणस्स जहण्ण-मंकमो । तदो उवरिमजहण्णमंकमो । का सव्वजहण्णिया पयडी णाम ? जा जहण्ण-मंखाविसेमिया । ततो उवरिमंखाविसेमिया अजहण्णा णाम, पयडिविसयसंखाए

विशेषता है कि पंचेन्द्रियतिर्यचअपर्याप्त और मनुष्यअपर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता । तथा अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सम्यक्त्व प्रकृतिका संक्रम नहीं होता । इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वका संक्रम सम्यग्दृष्टि जीवके ही होता है किन्तु पंचेन्द्रियतिर्यच लक्ष्यपर्याप्त और मनुष्यलक्ष्यपर्याप्त जीवके सम्यक्त्वकी प्राप्ति सम्भव नहीं, अतः इनके मिथ्यात्वके संक्रमका निषेध क्रिया है । तथा सम्यक्त्वका संक्रम उसी मिथ्यादृष्टिके सम्भव है जिसके उमकी सत्ता है । यतः अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव सम्यग्दृष्टि ही हाते हैं, अतः इनके सम्यक्त्वके संक्रमका निषेध किया है । शेष कथन मुगम है ।

§ ५९. सर्वसंक्रम और नोसर्वसंक्रमके अनुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे सब प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवके सर्वसंक्रम होता है और इससे न्यून प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवके नोसर्वसंक्रम होता है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ६०. उत्कृष्टसंक्रम और अनुत्कृष्टसंक्रमानुगमसे सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवके उत्कृष्टसंक्रम होता है और इससे न्यून प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवके अनुत्कृष्टसंक्रम होता है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्वके सिवा सब प्रकृतियों का संक्रम सम्भव है, इसलिये यह उत्कृष्टसंक्रम है । तथा इसके सिवा शेष सब अनुत्कृष्टसंक्रम है । पर यह ओघ प्ररूपणा है । आदेशसे जहाँ जैसी प्रकृतियाँ और उनका बन्ध सम्भव हो तदनुसार उत्कृष्ट अनुत्कृष्टका विचार करना चाहिये ।

§ ६१. जघन्यसंक्रम और अजघन्यसंक्रमानुगमकी अपेक्षा सबसे जघन्य प्रकृतिका संक्रम करनेवाले जीवके जघन्यसंक्रम होता है और इससे अधिक प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवके अजघन्य संक्रम होता है ।

शंका—सबसे जघन्य प्रकृति इसका क्या तात्पर्य है ?

समाधान—जो जघन्य संख्यासे युक्त है वह जघन्य प्रकृति है और इससे अधिक संख्या

जहण्णाजहणभावस्स एत्थ विवक्खियत्तादो । एवं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ६२. सादिय-अणादिय-धुव-अधुवमंकमाणु० दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं किं सादिओ मंकमो किमणादिओ धुवो अधुवो वा ? सादि-अधुवो । सोलमकमाय-णवणोकसाय० किं सादिओ ४ ? सादि० अणादि० धुव० अधुवमंकमो वा । आदेसेण णेग्इएसु मव्वपयडीणं सादि-अधुवो संकमो एवं जाव ।

§ ६३. एवमेदिमिं सुगमाणं परूवणमकादूणं सामित्तपरूवणद्धमिदमाह—

❀ एत्थ सामित्तं ।

वाली प्रकृतियाँ अजघ-य कहलाती हैं, क्योंकि यहाँपर प्रकृतिविषयक संख्याकी अपेक्षासे जघन्य और अजघन्य माना गया है ।

इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ६२. सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव संक्रमानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है— ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इनका संक्रम क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है । सोलह कपाय और नौ नोकपायका संक्रम क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव चारों प्रकारका है । आदेशसे नारकियोंमें सब प्रकृतियोंका सादि और अध्रुव संक्रम है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता प्राप्त होनेपर ही मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्याग्मिथ्यात्वका संक्रम सम्भव है । किन्तु उक्त दो प्रकृतियोंकी सत्ता अनादि कालसे नहीं पाई जाती, अतः इन तीन प्रकृतियोंका संक्रम सादि और अध्रुव इस तरह दो प्रकारका बतलाया है । अब रही सोलह कपाय और नौ नोकपायरूप पच्चीस प्रकृतियों का इनमें सादि आदि चारों विकल्प सम्भव हैं, क्यों कि इन पच्चीस प्रकृतियोंका जिन प्रकृतियोंमें संक्रम हो सकता है उनकी जब तक बन्धव्युच्छित्ति नहीं हुई तब तक इनका संक्रम अनादि है । बन्धव्युच्छित्तिके बाद पुनः बन्ध होनेपर इनका संक्रम सादि है । तथा अभव्योंकी अपेक्षा ध्रुव और भव्योंकी अपेक्षा अध्रुव भंग है । यह तो ओघसे विचार हुआ । आदेशसे विचार करने पर एक जीवकी अपेक्षा नरक गति सादि है अतः इस अपेक्षासे सभी प्रकृतियोंके सादि और अध्रुव ये दो भंग ही सम्भव हैं । इसी प्रकार सभी मार्गणाओंमें जहाँ ओघ या आदेश जो व्यवस्था घटित हो जाय वह लगा लेनी चाहिये । उदाहरणार्थ अचलुदर्शनमें ओघ व्यवस्था लागू होती है इसलिये वहाँ ओघके समान प्ररूपणा जाननी चाहिये । अभव्य मार्गणामें सोलह कपाय और नौ नोकपायकी अपेक्षा अनादि और ध्रुव ये दो ही भंग सम्भव हैं । तथा यहाँ मिथ्यात्वका संक्रम होता नहीं, क्यों कि इसकी सजातीय प्रकृतियाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इसके नहीं पाई जातीं । भव्यके एक ध्रुव भंगको छोड़कर शेष सब कथन ओघके समान बन जाता है । अब रही शेष मार्गणाएँ सो उनमें सब कथन नरक गतिके समान है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

§ ६३. इस प्रकार इन मुगम अनुयोगद्वारोंका कथन न करके चूर्णिंसूत्रकार स्वामित्वका कथन करनेके लिये यह आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ अब यहाँ स्वामित्वका अधिकार है ।

§ ६४. एदस्मि एगेगपयडिसंकमे सामित्तपरूवणमिदाणि कस्मामो त्ति भणिदं होइ ।

❀ मिच्छत्तस्स संकामओ को होइ ?

§ ६५. मिच्छत्तस्म पयडिसंकमस्स मामिओ कदरो होइ ? किं देवो णेरइओ मिच्छाइट्ठी मम्माइट्ठी वा ? इच्चैवमादिविसेसावेक्खभेदं पुच्छामुत्तं ।

❀ णियमा सम्माइट्ठी ।

§ ६६. कुदो ? अण्णत्थ तस्स संकमाभावादो । एदेण सम्माइट्ठी चेव संकामओ होदि ण अण्णो त्ति अण्णजोगववच्छेदो कदो । सो वि सम्माइट्ठी तिन्निहो खइयादि-भेदेण । तत्थ सव्वेसिं मम्माइट्ठीणमन्निसेसेण पयदसामित्ते पमत्ते विसेमपदुप्पायणट्ठमाह—

❀ वेदगसम्माइट्ठी सव्वो ।

§ ६७. वेदयसम्माइट्ठी मव्वो मिच्छत्तस्म संकामओ होइ । णवग्गि संकमपाओग्ग-मिच्छत्तमंतकम्मिओ त्ति पयग्गणवसेणेत्थाहिमबंधो कायव्वो, तदण्णत्थ पयदसामित्ता-संभवादो ।

❀ उवसामगो च णिरासाणो ।

§ ६८. उवमममम्माइट्ठी च मव्वो जाव णामाणं पडिवज्जइ ताव मिच्छत्तस्म

§ ६४. अब यहाँ एकैकप्रकृतिसंक्रमके विषयमें स्वामित्वका कथन करते हैं यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है ।

* मिथ्यात्वका संक्रामक कौन होता है ?

६५ मिथ्यात्व प्रकृतिके संक्रमका स्वामी कौन जीव है ? क्या देव है या नारकी है, सम्यग्दृष्टि है या मिथ्यादृष्टि है । इस प्रकार इत्यादि रूपसे विशेषकी अपेक्षा रखनेवाला यह प्रच्छासूत्र है ।

* नियमसे सम्यग्दृष्टि होता है ।

§ ६६. क्यो कि अन्यत्र मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता । यद्यपि इम सूत्र द्वारा सम्यग्दृष्टि ही संक्रामक होता है मिथ्यादृष्टि नहीं इस प्रकार अन्ययोगव्यवच्छेद कर दिया है तथापि वह सम्यग्दृष्टि भी चायिक आदिके भेदसे तीन प्रकारका है, इसलिये इन सब सम्यग्दृष्टियोंके सामान्यसे प्रकृत स्वामित्वका प्रसंग प्राप्त होने पर इस विषयकी विशेषताको बतलानेके लिये अगेका सूत्र कहते हैं —

* वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें सब जीव मिथ्यात्वके संक्रामक होते हैं ।

§ ६७. वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें सब जीव मिथ्यात्वके संक्रामक होते हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि जिनके संक्रमके योग्य मिथ्यात्वका सत्त्व है वे ही उसके संक्रामक होते हैं इतना प्रकरण वश यहाँपर अर्थका सम्बन्ध कर लेना चाहिये, क्यो कि इसके सिवा अन्यत्र प्रकृत स्वामित्व सम्भव नहीं है ।

* उपशामकोंमें भो जो सासादनको नहीं प्राप्त हुए हैं वे मिथ्यात्वके संक्रामक होते हैं ।

§ ६८. सभी उपशामसम्यग्दृष्टि जब तक सासादनको नहीं प्राप्त होते हैं तब तक मिथ्यात्वके

१. आ० प्रती कदवरो इति पाठः ।

मंकामओ होइ । कथमेत्थुवमंतदंमणमोहणिज्जम्मि मिच्छत्तस्स संकममंभवो त्ति णामंक्कणिज्जं, उवमंतस्म वि दंमणमोहणिज्जस्म मंकमब्भुवगमादो । सासणगुणपडि-
वण्णस्म पुण उवमंतदंमणमोहणीयस्म महावदो चेव दंमणतियस्म मंकमो णत्थि त्ति
घेत्तव्वं ।

❀ सम्मत्तस्स संकामओ को होइ ?

§ ६९. सुगमं ।

❀ णियमा मिच्छाइटी सम्मत्तसंतकम्मिओ ।

§ ७०. एत्थ 'णियमा मिच्छाइट्ठि' त्ति एदेण सेमगुणट्ठाणवुदामो कओ ।
'सम्मत्तसंतकम्मिओ' त्ति एदेण वि तदमंतकम्मियम्म पडिसेहो दट्ठव्वो । सो
पयदमंकमस्म मामिओ होइ, तत्थ तदविरोहादो । किमेमो सम्मत्तसंतकम्मिओ

संक्रामक होते हैं ।

शंका—जिसने दर्शनमोहनीयका उपशम कर लिया है उसके मिथ्यात्वका संक्रम कैसे
संभव है ?

ममाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्यों कि जिसने दर्शनमोहनीयकी
उपशामना की है उसके भी मिथ्यात्वका संक्रम स्वीकार किया है ।

किन्तु सामादनगुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके यद्यपि दर्शनमोहनीयका उपशम रहता है
तो भी उसके स्वभावसे ही दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता है ऐसा यहाँ ग्रहण
करना चाहिये ।

विशेषार्थ—सर्व प्रथम मिथ्यात्वके संक्रमका स्वामी बतलाया गया है । ऐसा नियम
है कि सम्यग्दृष्टिके ही मिथ्यात्वका संक्रम होता है अन्यके नहीं, इसलिए चूर्णिसूत्रमें मिथ्यात्वके
संक्रमका स्वामी सम्यग्दृष्टिके बतलाया है । उससे भी ज्ञायिकसम्यग्दृष्टिके तो मिथ्यात्वका सत्त्व
ही नहीं पाया जाता है अतः उसे छोड़कर शेष सम्यग्दृष्टियोंके ही मिथ्यात्वका संक्रम होता है ।
शेषसे यहाँ वेदकसम्यग्दृष्टि व उपशमसम्यग्दृष्टि जीव लिये गये हैं । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें २८ या
२४ प्रकृतियोंकी सत्तावाले वेदकसम्यग्दृष्टि ही मिथ्यात्वका संक्रम करते हैं अन्य नहीं इतना विशेष
जानना चाहिये । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें भी सासादनसम्यग्दृष्टियोंके सिवा शेष सब मिथ्यात्वका
संक्रम करते हैं । सामादनसम्यग्दृष्टियोंके भी मिथ्यात्वका उपशम रहता है फिर भी स्वभावसे वे
दर्शनमोहनीयका संक्रम नहीं करते ऐसा नियम है । शेष कथन सुगम है ।

❀ सम्यक्त्वका संक्रामक कौन होता है ।

§ ६८. यह सूत्र सुगम है ।

❀ नियमसे सम्यक्त्वकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव होता है ।

§ ७०. यहाँ सूत्रमें 'णियमा मिच्छाइट्ठो' पद है सो उसके द्वारा शेष गुणस्थानोंका
निराकरण कर दिया है । तथा 'सम्मत्तसंतकम्मिओ' इस पद द्वारा जो सम्यक्त्वकी सत्तासे रहित
है उसका निषेध जान लेना चाहिये । उक्त प्रकारका जो मिथ्यादृष्टि है वह प्रकृत संक्रमका स्वामी
होता है, क्योंकि उसके सम्यक्त्वका संक्रम होनेमें कोई विरोध नहीं आता । क्या यह सम्यक्त्वकी

मच्चावत्थासु मंकासओ होइ किं वा अत्थि को वि विसेमो ति आमंकिय तदत्थित्तपट्टु
प्यायणट्टमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ एवरि आबलियपविट्टुसम्मत्तसंतकम्मियं वज्ज ।

§ ७१. उव्वेल्लणाए चग्गिमफालिं पादिय ट्टिदो आवलियपविट्टुसम्मत्तसंत-
कम्मिओ णाम । तं वज्जिय सेममच्चावत्थासु मम्मत्तसंतकम्मिओ मिच्छाइट्ठी तस्स
मंकासओ होइ ति एमो विसेमो सुत्तेणेदेण परूविदो ।

❀ सम्मामिच्छुत्तस्स संकासओ को होइ ?

§ ७२. सुगमं ।

❀ मिच्छाइट्ठी उव्वेल्लमाणओ ।

§ ७३. एदस्स मुत्तम्मत्थो मम्मत्तमामित्तमुत्तस्सेवं वत्तव्वो । ण केवलमेमो
चेव मामिओ, किं तु अण्णो वि अत्थि ति जाणावणट्टमुत्तरसुत्तं—

सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव सब अवस्थाओंमें सम्यक्त्वका संक्रामक होता है या इसमें कोई
विशेषता है इस प्रकारकी आशंका करके उस विशेषताका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र
कहते हैं—

* किन्तु इतनी विशेषता है कि जिनके सम्यक्त्वकी सत्ता आवलिमें प्रविष्ट
हो गई है वह सम्यक्त्वका संक्रामक नहीं होता ।

§ ७१. उट्टेलनाके द्वारा सम्यक्त्वकी अन्तिम फालिका पतन करके जो जीव स्थित है वह
आबलिमें प्रविष्ट हुआ सम्यक्त्वकी सत्तावाला जीव कहलाता है । ऐसे जीवको छोड़कर शेष सब
अवस्थाओंमें सम्यक्त्वकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव उसका संक्रामक होता है । इस प्रकार उम
सूत्र द्वारा यह विशेषता कही गई है ।

विशेषार्थ—सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके तो दर्शनमोहनीयकी तीनों
प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता ऐसा स्वभाव है । सम्यग्दृष्टिके अन्य दो दर्शनमोहनीय प्रकृतियोंका
तो यथा सम्भव संक्रम सम्भव है पर सम्यक्त्वका संक्रम वहाँ भी नहीं होता । अब रहा केवल
मिथ्यात्व गुणस्थान सो इसमें २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाले सब जीवोंके सम्यक्त्वका संक्रम होता
रहता है, किन्तु जब इसकी आवलिप्रमाण सत्ता शेष रह जाती है तब इसका संक्रम होना बन्द
हो जाता है ।

* सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रामक कौन होता है ?

§ ७२. यह सूत्र सुगम है ।

* जो मिथ्यादृष्टि सम्यग्मिथ्यात्वकी उट्टेलना कर रहा है वह सम्यग्मिथ्यात्वका
संक्रामक होता है ।

§ ७३. जिस प्रकार सम्यक्त्वके स्वामित्वका कथन करनेवाले सूत्रका अर्थ कहा है उसी
प्रकार इस सूत्रका अर्थ कहना चाहिये । केवल यही स्वामी है ऐसी बात नहीं है किन्तु अन्य जीव
भी स्वामी हैं इस प्रकार इस बातके जतानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

१. आ० प्रतौ सम्मत्तमम्मामिच्छुत्तसामित्तमुत्तस्सेव इति पाठः ।

❀ सम्माइटी वा णिरासणो ।

§ ७४. एदस्स वि मुत्तम्म अत्थो मुगमो, वेदयसम्माइटी सव्वो उवसामओ णिरामाणो त्ति एदेण मिच्छत्तसामित्तसुत्तेण सरिमवक्खाणत्तादो । एत्थतणविसेम-पदुप्पायणद्वमुवग्गिसुत्तं—

❀ मोत्तण पढमसमयसम्मामिच्छत्तसंतकम्मियं ।

§ ७५. किमद्वमेसो परिवज्जिदो ? ण, सम्मामिच्छत्तमंतुप्पायणवावदस्स तत्थ संकामणाए वावगभावादो । ण च मंतुप्पायणसंकमकिरियाणमकमेण संभवो, विरोहादो ।

§ ७६. एवं दंमणमोहणीयपयडीणं सामित्तं पदुप्पाइय चारित्तमोहपयडीणं सामित्तमिदाणि परूवेमाणो तण्णिवंधणमद्वपदं ताव परूवेइ, तेण विणा तव्विसेम-

* मामादन गुणस्थानको नहीं प्राप्त हुआ सम्यग्दृष्टि भी सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रामक होता है ।

§ ७४. इस सूत्रका भी अर्थ सुगम है, क्योंकि इस सूत्रका व्याख्यान मिथ्यात्वके स्वामित्वका कथन करनेवाले 'वेदयसम्माइटी सव्वो उवसामओ णिरामाणो' इस मंत्रके समान है । अब यहाँ पर जो विशेषता है उसका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* किन्तु जो सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता प्राप्त करनेके प्रथम समयमें स्थित है वह उसका संक्रामक नहीं होता ।

७५. शंका—ऐसे जीवका निषेध क्यों किया है ?

ममाधान—नहीं, क्यों कि जो सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ताके उत्पन्न करनेमें लगा हुआ है उसके उस अवस्थामें संक्रमविषयक क्रिया नहीं होती ।

यदि कहा जाय कि सत्त्वका उत्पादन और संक्रम ये दोनों क्रियाएँ एक साथ बन जायंगी सो भी बात नहीं है, क्यों कि ऐसा होनेमें विरोध आता है ।

विशेषार्थ—मिथ्यादृष्टिके सम्यग्मिथ्यात्वका मिथ्यात्वमें और सम्यग्दृष्टिके सम्यग्मिथ्यात्वका सम्यक्त्वमें संक्रम होता है, इस लिये यहाँ सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनोंको सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रामक बतलाया है । उसमें भी चार्तिकसम्यग्दृष्टियोंके सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व नहीं होनेसे वे इसके संक्रामक नहीं होते । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें २८, २४ और २३ प्रकृतियोंकी सत्तावाले ही इसके संक्रामक होते हैं अन्य नहीं । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें और तो सबके इसका संक्रम होत है किन्तु जो २६ प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव या जिसके सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व संक्रमके योग्य नहीं रहा है ऐसा २७ प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें इसका संक्रम नहीं होता । मिथ्यादृष्टियोंमें भी जिसके सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व आवलीके भीतर पविष्ट हो गया है वह इसका संक्रामक नहीं होता । शेष कथन सुगम है ।

७६. इस प्रकार दर्शनमोहनीयकी प्रकृतियोंके संक्रमविषयक स्वामित्वका कथन करके अब चारित्रमोहनीयकी प्रकृतियोंके संक्रमविषयक स्वामित्वका कथन करते हुए सर्वप्रथम इस संक्रमके

जाणणोवायाभावादो ।

❖ दंसणमोहणीयं चरित्तमोहणीए ण संकमइ ।

§ ७७. कुदो ? भिण्णजादित्तादो ।

❖ चरित्तमोहणीयं पि दंसणमोहणीए ण संकमइ ।

§ ७८. एत्थ वि कारणमणंतरपरुवियं । ण चेदेमि भिण्णजाईयत्तममिद्धं, दंसण-
चरित्तपडिवद्धयाणं समाणजाईयत्तविरोहादो । समाणजाईए चेव संकमो होइ त्ति कुदो एम
णियमो ? महावदो ।

❖ अण्ताणुबंधी जत्तियाओ बज्झन्ति चरित्तमोहणीयपयडीओ तासु
सव्वासु संकमइ ।

§ ७९. कुदो ? समाणजाईयत्तं पडि भेदाभावादो । एदेण 'बंधे संकमदि' त्ति एमो
वि णाओ जाणाविदो ।

❖ एवं सव्वाओ चरित्तमोहणीयपयडीओ ।

§ ८०. मन्वत्थ समाणजाईयवज्झमाणपयडीमु संकमपउत्तीण विरोहाभावादो ।

कारणभूत अर्थपदका निर्देश करते हैं, क्योंकि इसके बिना उमका विशेष ज्ञान होनेका ओर कोई
साधन नहीं है ।

❖ दर्शनमोहनीय चारित्रमोहनीयमें संक्रमण नहीं करता ।

§ ७७. क्योंकि इन दोनोंकी भिन्न जाति हैं ।

❖ चारित्रमोहनीय भी दर्शनमोहनीयमें संक्रमण नहीं करता ।

§ ७८. यहाँ भी अनन्तर पूर्व कहा हुआ कारण कहना चाहिये । यदि कहा जाय कि ये
भिन्न जातिवाली प्रकृतियाँ हैं यह बात नहीं सिद्ध होती सो यह बात भी नहीं है; क्योंकि दर्शन
और चारित्रसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रकृतियोंको एक जातिका होनेमें विरोध आता है ।

शंका—समान जातिवाली प्रकृतिमें ही संक्रम होता है यह नियम किम कारणसे है ?

समाधान—स्वभावसे ही ऐसा नियम है ।

❖ अनन्तानुबन्धी, चारित्रमोहनीयकी जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है उन
सबमें संक्रमण करती हैं ।

§ ७९. क्यों कि समान जातिवाली होनेके प्रति इनमें कोई भेद नहीं है । इससे बन्धमें
संक्रमण करती हैं इस न्यायका भी ज्ञान हो जाता है ।

❖ इसी प्रकार चारित्रमोहनीयकी सब प्रकृतियोंके विषयमें जानना चाहिये ।

§ ८०. क्योंकि परवत्त वैधनेवाली समानजातीय प्रकृतियोंमें संक्रमकी प्रवृत्ति होनेमें कोई
विरोध नहीं आता ।

विशेषार्थ—उक्त कथनका यह तात्पर्य है कि दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय ये एक
जातिकी प्रकृतियाँ न होनेसे इनका परस्परमें संक्रम नहीं होता । हाँ चारित्रमोहनीयकी सब
प्रकृतियोंका परस्परमें संक्रम सम्भव है फिर भी यह संक्रम वैधनेवाली समानजातीय प्रकृतियोंमें
ही होता है इतना विशेष नियम है ।

§ ८१. मंपहि एदमद्वुपदमवलंबिय सामित्तपरूवणद्वुमुत्तंसुत्तं भणइ—

❀ ताओ पणुवीसं पि चरित्तमोहणीयपयडीओ अण्णदरस्स संकमंति ।

§ ८२. जेणेवमणंतगपरूविदणाएण मजाईयवज्जमाणपयडिपडिग्गहेणं पणुवीस-
चरित्तमोहणीयपयडीणं संकमसंभवो तेणेदाओ अण्णदरस्स सम्माइडिस्स मिच्छाइडिस्स
वा संकमंति त्ति भणिदं होइ ।

एवमोघेण सामित्तं समत्तं ।

§ ८३. मंपहि आदेमपरूवणद्वुमुत्तारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—सामित्ताणुगमेण
दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्तमं कामओ को होइ ? अण्णदरो
सम्माइडि । सम्मत्तम्म संकमो कम्म ? मिच्छाइडिस्स । सम्मामिच्छत्त-सोलसक-
णवणोक्कं संकमो कम्म ? अण्णदरस्स सम्माइडिस्स वा मिच्छाइडिस्स वा । एवं चदुमु
वि गदीमु । णवग्गि पंचिदियतिग्गिक्खअपज्जत्त-मणुमअपज्जत्त-अणुहिमादि जाव सच्चवे
त्ति मत्तावीसंपयडीणं संकमो कम्म ? अण्णदरस्स । एवं जाव० ।

§ ८१. अब इस अर्थपदका आश्रय लेकर स्वामित्वका कथन करनेके लिये आगेका
मूत्र कहते हैं—

* चारित्रमोहनीयकी ये पच्छीम प्रकृतियाँ किमी भी जीवके संक्रम करती हैं ।

§ ८२. यतः पहले यह न्याय बतला आये है कि बंधनेवाली मज्जातीय प्रत्येक प्रकृति
प्रतिघटरूप होनेसे चारित्रमोहनीयकी पच्छीम प्रकृतियोंका प्रत्येक प्रकृतिमें संक्रम सम्भव है अत
ये सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि किसी भी जीवके संक्रम करती हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—चारित्रमोहनीयकी जिन समय जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है उस समय
उनमें सत्तामें स्थित चारित्रमोहनीयकी सब प्रकृतियोंका संक्रम होता है । इस कारण एक साथ
चारित्रमोहनीयकी सब प्रकृतियोंका संक्रम सम्भव है यह सिद्ध होता है । किन्तु चारित्रमोहनीयका
बन्ध यथासम्भव मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनोंके सम्भव है इसलिये इन प्रकृतियोंके संक्रमके
मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों प्रकारके जीव स्वामी हैं ऐसा यहाँ समझना चाहिये ।

इस प्रकार ओघसे स्वामित्वका कथन समाप्त हुआ ।

§ ८३. अब आदेशका कथन करनेके लिये उच्चारणका बतलाते हैं । यथा—स्वामित्वानु-
गमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मिथ्यात्वका
संक्रामक कौन होता है ? कोई भी सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्वका संक्रामक होता है । सम्यक्त्वका संक्रम
किसके होता है ? मिथ्यादृष्टिके होता है । सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नाकपायोंका
संक्रम किसके होता है ? सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि किसीके भी होता है । इसी प्रकार चारों
गतियोंमें ज नना चाहिये । किन्तु पंचेन्द्रियतियंचअपर्याप्त, मनुष्यअपर्याप्त और अनुदिशसे
लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सत्तार्थम प्रकृतियोंका संक्रम किसके होता है ? किसी भी जीवके
होता है । इसी प्रकार अनानाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघ प्ररूपणाका निर्देश स्वयं चृणिसूत्रकारने किया ही है जिसका
खुलासा हम पहले कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ पर भी ओघ प्ररूपणाका खुलासा
कर लेना चाहिये । मार्गणाओंमें भी जिन मार्गणाओंमें मिथ्यात्व और सम्यक्त्व ये दोनों

✽ एय जीवेण कालो ।

§ ८४. सुगममेदमहियारसंभालणमुत्तं ।

✽ मिच्छत्तस्स संकामओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ ८५. सुगममेदं पुच्छावकं ।

✽ जहणणेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ८६. तं जहा—मिच्छाइट्ठी मम्मामिच्छाइट्ठी वा मम्मत्तं घेत्ठण मच्चजहणण-
मंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो अण्णदग्गुणं पडिवण्णो । लट्ठो जहण्णेणंतोमुहुत्तमेत्तो मिच्छत्त-
मंकमकालो ।

✽ उक्कस्सेण छावट्टिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ८७. तं जहा—उवमममम्मत्तपढममए मिच्छत्तमंकमम्मादि कादृण सव्वुक्क-
स्मियं तदद्धमणुपालिय पुणो वेदयमम्मत्तं पडिवज्जिय छावट्टिमागरोवमाणि परिभमिय
तत्थ अंतोमुहुत्तावसेसे दग्गणमोहणीयक्खवणाए अब्भुट्टिदम्म मिच्छत्तमावलियं पवेमिय

अवस्थाएँ सम्भव हैं वहाँ तो आव प्ररूपणा जानना चाहिये । उदाहरणार्थ चारों गतियोंमें उक्त दोनों अवस्थाएँ हो सकती हैं अतः वहाँ आवप्ररूपणा बन जाती है । किन्तु इस मार्गणाके अन्तर्भेद मनुष्यगतिमें लक्ष्यपर्याप्त मनुष्य और तिर्यञ्चगतिमें लक्ष्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च इन दो मार्गणाओंमें एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है और मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्व प्रकृतिका संक्रम नहीं होता ऐसा नियम है, अतः यहाँ २७ प्रकृतियोंका ही संक्रम बतलाया है । इसी प्रकार देवगतिमें भी अनुदिशसे लेकर सवार्थमिद्धि तकके देवोंके एक सम्यग्दृष्टि गुणस्थान ही होता है और सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें सम्यक्त्व प्रकृतिका संक्रम नहीं होता ऐसा नियम है, अतः यहाँ भी सम्यक्त्वके सिवा २७ प्रकृतियोंका संक्रम बतलाया है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जहाँ जो विशेषता सम्भव हो उसे ध्यानमें रखकर जहाँ जितनी प्रकृतियोंका संक्रम सम्भव हो उसका निर्देश करना चाहिये ।

✽ अत्र एक जीवकी अपेक्षा कालका अधिकार है ।

§ ८४. अधिकारका निर्देश करनेवाला यह सूत्र सुगम है ।

✽ मिथ्यात्वके संक्रामकका कितना काल है ?

§ ८५. यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

✽ जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ८६. यथा—मिथ्यादृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वकी ग्रहण करके और सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालतक सम्यक्त्वके साथ रह कर फिर अन्यतर गुणस्थानको प्राप्त हो गया । इस प्रकार मिथ्यात्वका जघन्य संक्रमकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो गया ।

✽ उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है ।

§ ८७. यथा—उपशमसम्यक्त्वके प्रथम समयमें मिथ्यात्वके संक्रमका प्रारम्भ करके और सबसे उत्कृष्ट कालतक उसका पालन करके फिर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । अनन्तर छयासठ सागर कालतक उसके साथ परिभ्रमण करके उसमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर दर्शनमोहनीयकी क्षणोंके !

मम्मामिच्छत्त-सम्मत्ताणि खवेमाणस्म अंतोमुहुत्तकालं छावट्टिअब्भंतरे पयदसंकमो ण लब्भइ तेणेत्थ पुच्चमुवममसम्मत्तं घेत्तूण द्विदस्म अंतोमुहुत्तकालमाणेदणं द्विविदे सादिरेय-
छावट्टियागरोवममेत्तो पयदसंकमस्म कालो लट्ठी, ऊणकालादो अहियकालस्म संखेज्ज-
गुणत्तुवलंभादो । कधमेदं परिच्छिज्जदे ? मम्मामिच्छत्त-सम्मत्तक्खवणद्वादो उवममसम्मत्त-
कालो बहुओ त्ति पुग्दो भण्णमाणप्पावहुआदो । तं जहा—‘दंसणमोहक्खवयस्म मयल-
अणियट्टिअद्दादो तस्सेव अपुच्चकरणद्वा संखेज्जगुणा, तत्तो अणंताणुबंधिविभंजाजयस्म
अणियट्टिअद्दा संखेज्जगुणा, तस्सेव अपुच्चकरणद्वा संखेज्जगुणा, तदो दंसणमोहमुव-
मामंतयस्म अणियट्टिअद्दा संखेज्जगुणा, एदस्म चैय अपुच्चकरणद्वा संखेज्जगुणा, तेणेव
अपुच्चकरणपटममयम्मि कदगुणसेट्ठिणिक्खेवो विसेमाहिओ, तस्सुवरि उवममसम्मत्तद्वा
संखेज्जगुणा’ त्ति ।

लिये उद्यत हुआ ऐसा जो जीव मिथ्यात्वकी क्षपणा करता हुआ उसका उद्योगवलिगे प्रवेश कराके सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी क्षपणा कर रहा है उसके छ्यामठ सागरमें एक अन्तर्मुहूर्त कालतक प्रकृत सक्रम नहीं प्राप्त होता, इसलिये वेदकसम्यक्त्वके प्राप्त होनेके पूर्वमे जो अन्तर्मुहूर्त उपशम सम्यक्त्वका काल है उसे लाकर इस वेदकसम्यक्त्वके कालमे मिलाने पर साधिक छ्यामठ सागर प्रमाण प्रकृत संक्रमका काल प्राप्त होता है, क्यों कि यहाँ पर छ्यामठ सागरमेंसे जितना काल घटाया गया है उससे उपशम सम्यक्त्वका जोड़ा गया काल संख्यातगुणा है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके क्षपणा कालसे उपशमसम्यक्त्वका काल बहुत है यह अल्पबहुत्व आगे कहनेवाले हैं, इससे जाना जाता है कि यहाँ जितना काल घटाया गया है उससे जो उपशमसम्यक्त्वका काल जोड़ा गया है, वह संख्यातगुणा है । यथा—‘दर्शन-
मोहनीयकी क्षपणा करनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणके पूरे कालमे उन्हीके अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है । उसमे अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है । उससे इसी विसंयोजक जीवके अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है । उससे दर्शन मोहनीयकी उपशमना करनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है । उससे इसीके अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है । उससे इसीके अपूर्वकरणके प्रथम समयमे ही गई गुणश्रणिका निक्षेप विशेष अधिक है । उससे उपशमसम्यक्त्वका काल संख्यातगुणा है ।’ इससे जाना जाता है कि वेदकसम्यक्त्वके उत्कृष्ट कालमेसे जो काल कम किया गया है उससे वेदकसम्यक्त्वके प्राप्त होनेके पूर्व प्राप्त हुआ उपशमसम्यक्त्वका काल संख्यातगुणा है ।

विशेषार्थ—यहाँ मिथ्यात्वके संक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाया है । यह तो पहले ही बतला आये है कि मिथ्यात्वका संक्रम सम्यग्दृष्टिके ही होता है, इसलिये सम्यक्त्वका जो सबसे जघन्य काल है वह यहाँ मिथ्यात्वके संक्रमका जघन्य काल जानना चाहिये । यतः सम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है अतः मिथ्यात्वके संक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । अब रही उत्कृष्ट कालकी बात सो यद्यपि सामान्यसे सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल साधिक चार पूर्वकोटि अधिक छ्यामठ सागर है । पर इससे क्षाधिकसम्यग्दर्शनका काल भी सम्मिलित है अतः इसे छोड़कर केवल वेदकसम्यक्त्वका कुछ कम उत्कृष्ट काल और उपशमसम्यक्त्व

❁ सम्मत्तस्स संकामओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ ८८. सुगमं ।

❁ जहणणेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ८९. सच्चजहणमिच्छत्तकालावलंघणादो ।

❁ उक्कस्सेण पत्तिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

§ ९०. दीहयरुव्वेल्लणकालग्गहणादो ।

❁ सम्मामिच्छत्तस्स संकामओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ ९१. सुगमं ।

❁ जहणणेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ९२. सच्चजहणमिच्छत्त-सम्मत्तगुणकालमण्णदग्गम्स ग्गहणादो ।

का उत्कृष्ट काल ही यहां पर लेना चाहिये, क्योंकि क्षायाक्रमस्यष्टिके मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता। उसमें भी वेदकसम्यक्त्वके कालमेंसे मिथ्यात्वके आवर्तितमें प्रवेश करनेके कालसे लेकर सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके जपणातकके कालका त्याग कर देना चाहिये। उस प्रकार जो भी काल बचता है वह अन्तमुहुत्त अधिक छयामट सागर होता है, अतः मिथ्यात्वके संक्रमका उत्कृष्ट काल इतना बतलाया है।

❁ सम्यक्त्वके संक्रामकका कितना काल है ?

§ ८८. यह सूत्र सुगम है।

❁ जघन्य काल अन्तमुहुत्तं है।

§ ८९. क्योंकि यहाँ पर मिथ्यात्वके भवमें जघन्य कालका अवलम्बन लिया है।

❁ उत्कृष्ट काल पत्त्यके असंख्यातवे भागप्रमाण है।

§ ९०. क्योंकि यहाँ पर सम्यक्त्वकी उद्वेलनाके सबसे बड़े कालका ग्रहण किया है।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व प्रकृतिका संक्रामक मिथ्यादृष्टि जीव होता है, अतः मिथ्यात्व गुणस्थानका जो जघन्य काल है वह सम्यक्त्वके संक्रमका जघन्य काल बतलाया है। पर उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि मिथ्यात्व गुणस्थानमें चिरकाल तक सम्यक्त्वकी सत्ता नहीं पाई जाती। किन्तु सम्यक्त्व प्रकृति उद्वेलना प्रकृति होनेसे उत्कृष्ट उद्वेलनाका जितना काल है उतना सम्यक्त्व प्रकृतिके संक्रमका उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है। अतः सम्यक्त्वका उत्कृष्ट उद्वेलना काल पत्त्यके असंख्यातवे भागप्रमाण है अतः सम्यक्त्वका उत्कृष्ट संक्रमकाल भी उतना ही बतलाया है। किन्तु उद्वेलनाके अन्तमें जब सम्यक्त्व प्रकृति आवर्तितमें प्रविष्ट हो जाती है तब उसका संक्रम नहीं होता इतना विशेष जागना चाहिये। इससे सम्यक्त्वके उत्कृष्ट उद्वेलनाकालमेंसे इतना काल कम कर देना चाहिए।

❁ सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका कितना काल है ?

§ ९१. यह सूत्र सुगम है।

❁ जघन्य काल अन्तमुहुत्तं है।

§ ९२. क्योंकि यहांपर मिथ्यात्व या सम्यक्त्व गुणस्थानके सबसे जघन्य कालमेंसे किसी एकका ग्रहण किया है

❀ उक्त्सेण वेत्तावट्टिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ९३. तं जहा—अणादियमिच्छाइट्टी पढमम्मत्तमुप्पाइय विदियममण पयद-
मंक्रमस्मादिं काट्ठण तत्थ दीहमंतोमुहुत्तकालमच्छिय मिच्छत्तं गंतूण पलिदोवसामंखेज्ज-
भागमेत्तमुव्वेत्तेमाणो चरिमफालिमेत्तमम्मामिच्छत्तट्टिदिमंतक्रम्मे सेसे मम्मत्तं पडिवज्जिय
पढमछावट्टिं भमिय तत्थंतोमुहुत्तावसेसे मिच्छत्तं पडिवण्णो पुव्वविहाणेण उव्वेत्तेमाणो
पलिदो० अमंखे०भागमेत्तकालेण मम्मत्तमुव्वणमिय विदियछावट्टिमंतोमुहुत्तूणियमणु-
पालिय परिणामपच्चएण मिच्छत्तं गदो दीहुव्वेल्लणकालेणुव्वेल्लिज्जमाणं मम्मामिच्छत्त-
मावलियं पवेमिय अमंक्रामओ जाओ । लट्ठो तीहि पलिदोवसामंखेज्जदिभागेहि सादिरेओ
वेत्तावट्टिमागगेवमकालो मम्मामिच्छत्तमंक्रामयस्म ।

❀ सेसाणं पि पणुवीसंपयडीणं संक्रामयस्स तिणिए भंगा ।

§ ९४. एत्थ सेमग्गहणेणेव मिट्ठे पणुवीसंपयडीणमिदि णिहेमो णिरन्थओ ति
णामंक्णिज्जं, उहयणयावलंविमिम्मज्जाणुग्गहट्टमण्णय-वदिरेगेहिं पस्वणाए दोमा-

* उत्कृष्ट काल साधिक दो छ्यागठ सागर है ।

§ ९३. यथा—किसी एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने प्रथमोपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न करके
दूसरे समयमें प्रकृत संक्रमका प्रारम्भ किया । फिर वहां सर्वोत्कृष्ट अन्तमुहूर्त कालतक रह कर
मिथ्यात्वमें गया । फिर वहां पन्थके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वलना
की । किन्तु ऐसा करते हुए सम्यग्मिथ्यात्वका स्थितिमत्कर्म अन्तिम फालिप्रमाण शेष रहने पर
सम्यक्त्वका प्राप्त करके प्रथम छ्यासठ सागर काल तक उसके साथ परिभ्रमण किया । किन्तु इसमें
अन्तमुहूर्त कालके शेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । और पूर्वत्रिविसे पन्थके अमंस्यात्व
भागप्रमाण कालके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वलना करके सम्यक्त्वको प्राप्त किया । फिर अन्त-
मुहूर्त कम दूसरे छ्यासठ सागर कालतक सम्यक्त्वका पालन करके परिणामवश मिथ्यात्वमें गया ।
फिर सर्वोत्कृष्ट उद्वलना कालके द्वारा उद्वलना करता हुआ सम्यग्मिथ्यात्वका उदयावलिमें प्रवेश
कराके अमंक्रामक हो गया । इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका उत्कृष्ट काल पन्थके तीन
असंख्यातवें भागोंमें अधिक दो छ्यासठ सागरप्रमाण प्राप्त होता है ।

विशेषार्थ—सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम सम्यक्त्व और मिथ्यात्व इन दोनों गुणस्थानोंमें
होता है, इसलिये जयन्थ काल प्राप्त करनेके लिये इन दोनों गुणस्थानोंमेंसे किसी एकका जयन्थ काल
लिया गया है । तथा उत्कृष्ट काल इन दोनों गुणस्थानोंकी अपेक्षासे घटित किया गया है । केवल
ध्यान यह रखा गया है कि सम्यग्मिथ्यात्वका निरन्तर संक्रम बना रहे । इस हिसाबसे कालकी
गणना करने पर उक्त काल प्राप्त हो जाता है जिसका विस्तारसे निर्देश टीकामें किया ही है ।

* शेष पन्चीम प्रकृतियोंके संक्रामक जीवके कालकी अपेक्षा तीन भंग होते हैं ।

§ ९४. शंका—यहाँ सूत्रमें 'शेष' पदका ग्रहण करना ही पर्याप्त है । उसीसे वाकीकी
बची हुई पन्चीस प्रकृतियोंका ग्रहण हो जाता है, इसलिये 'पणुवीसंपयडीणं' इस पदका निर्देश
करना निरर्थक है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि दोनों नयोंका अबलम्बन

भावादो । तम्हा उत्तसेमाणं चरित्तमोहणीयपयडीणं पणुवीसण्हं पि संकामयस्स तिण्णि भंगा कायच्चा । तं जहा—अणादिओ अपज्जवमिदो अणादिओ सपज्जवमिदो सादिओ सपज्जवमिदो चेदि । आदिल्लदुगं मुगमं, तत्थ जहण्णुक्कस्सवियप्पाणममंभावादो । इयत्थ जहण्णुक्कस्सकालणिद्देमदुमुत्तगमुत्तावयारो—

❀ तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण उवडुपोग्गलपरियट्टं ।

§ ९५. तत्थ 'जहण्णेणंतोमुहुत्तं'इदि उत्ते अणंताणुवंधो विमंजोएदूणं मंजुत्तस्स पुणो वि मच्चजहण्णेण कालेण विमंजोयणाए वावदस्स जहण्णमंक्रमकालो घेत्तव्वो । सेमाणं पि मच्चोवमामणाए सेटीदो पडिवदिदस्स अंतोमुहुत्तेण पुणो वि मच्चोवसामणाए वावदस्स जहण्णकालो वत्तव्वो । 'उक्कस्सेण उवडुपोग्गलपरियट्टं' इदि उत्ते पोग्गलपरियट्टकालम्मदं देखुणं घेत्तव्वं, अदुपोग्गलपरियट्टम्म ममीवं उवडुपोग्गलपरियट्टमिदि गहणादो । तत्थाणंताणुवंधीणमुक्कस्समंक्रमकाले भण्णमाणे अदुपोग्गलपरियट्टादिममए पढमसम्मत्तमुप्पाइय उवममसम्मत्तकालव्वंतरे अणंताणुवंधिं विमंजोइय पुणो तिस्से उवमममम्मत्तद्दाए छ आवलियाओ अत्थि ति आसाणं पडिवण्णस्स आवलि-

करनेप्राप्ते शिष्य जनोक्ता उपकार करनेके लिये अन्वय और व्यतिरेकरूपसे प्ररूपणा करनेमें कोई दोष नहीं आता । उमलिये पूर्वोक्त प्रकृतियोंमेंसे जो चारित्रमोहनीयकी पन्चाम प्रकृतियों शेष बची है उनके संक्रामकके कालकी अपेक्षासे तीन भंग करने चाहिये । यथा—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त । उनमेंसे प्रारम्भके दो भंग सुगम हैं, क्योंकि उनमें जघन्य और उत्कृष्ट ये भेद रमभव नहीं हैं । अब जो शेष बचा तीसरा भंग है सो उसके जघन्य और उत्कृष्ट कालका निर्देश करनेके लिये आगेके सूत्रका अवतार हुआ है—

❀ उनमें जो सादि-सान्त भंग है उसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल उपार्ध पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।

§ ९५. सूत्रमें 'तत्थ जहण्णेणंतोमुहुत्तं' ऐसा करने पर इससे अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना करके संयुक्त हुए जीवके फिर भी सबसे जघन्य कालद्वारा विसंयोजना करने पर जो अनन्तानुबन्धियोंका जघन्य मंक्रमकाल प्राप्त होता है वह लेना चाहिये । इसी प्रकार सर्वोपशामनाके बाद श्रेणिसे च्युत होकर अन्तर्मुहूर्तमें फिर भी सर्वोपशामनामें लगे हुए जीवके शेष प्रकृतियोंका भी जघन्य मंक्रमकाल कहना चाहिये । तथा सूत्रमें 'उक्कस्सेण उवडुपोग्गलपरियट्टं' ऐसा कहने पर उससे पुद्गलपरिवर्तनका कुछ कम आधा काल लेना चाहिये, क्योंकि अर्धपुद्गलपरिवर्तनके समीपका काल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन काल कहलाता है ऐसा यहै ग्रहण किया गया है । उसमें सर्व प्रथम अनन्तानुबन्धियोंके उत्कृष्ट संक्रमकालका कथन करते हैं—जब संसारमें रहनेके लिये अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल शेष बचे तब उसके प्रथम समरमें प्रथमोपशम सम्यक्त्वका उत्पन्न कराके उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना करावे । फिर उसी उपशमसम्यक्त्वके कालमें जब छह आवलिकाल शेष बचे तब उसे सासादनमें ले जावे और एक

यादिक्रंतस्म आदी कायच्वा । सेमं सुगमं । एवं सेमाणं पि पयडीणं वतच्चं । णवरि मच्चोवमामणाए पडिवाटपटममए मंक्रमस्सादिं कादण देसणमद्धपोगलपणियद्धं साहेयच्चं ।

एवमोघेण कालो गओ ।

§ ०६. संपदि आदेमपरुवणद्वमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—एयजीवेण कालानुगमेण दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छत्तमंक्रामओ केवचिं ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० छावड्डिमागरो० सादिरैयाणि । अमंक्रामओ जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० अद्धपोगलपणियद्धं देसणं । मम्मत्त०मंक्रामओ जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदो० अमंवे०भागो । अमंक्रामय० जह० अंतोमु०, उक्क० वेछावड्डिमागरो० सादिरैयाणि । मम्मामि०मंक्राम० जह० अंतोमु०, उक्क० वेछावड्डिमागरो० सादिरैयाणि ।

आवलिकालके बाद संक्रमका प्रारम्भ करावे । इसके आगेका शेष कथन सुगम है । इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका भी उत्कृष्ट संक्रमकाल बहना चाहिये । किन्तु इनकी विशेषता है कि सर्वोपशामनासे च्युत होनेके प्रथम समयमें संक्रमका प्रारम्भ करके उसका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल-परिवर्तनप्रमाण साथ लेना चाहिये ।

विशेषार्थ—दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंमेंसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके नहीं पाया जाता, इसलिए इन तीन प्रकृतियोंके संक्रमकी अपेक्षा अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त ये दो विकल्प बनते ही नहीं । वहाँ केवल सादि-सान्त यही एक विकल्प सम्भव है । किन्तु चारित्रमोहनीयकी पञ्चीस प्रकृतियोंका अनादि कालमें भव्य और अभव्य दोनोंके सत्त्व पाया जाता है । इसलिए इनकी अपेक्षा संक्रमके अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त ये तीनों विकल्प बन जाते हैं । अनादि-अनन्त विकल्प तो अभव्योंके ही होता है क्योंकि अभव्योंके अनादि कालसे इन पञ्चीस प्रकृतियोंका संक्रम होना आ रहा है और अनन्त कालतक होता रहेगा । किन्तु शेष दो विकल्प भव्योंके ही होते हैं । उनमेंसे अनादि-सान्त विकल्प उन भव्योंके होता है जिन्होंने एकवार अनन्तानुवन्धीकी विसंयोजना और चारित्रमोहनीयकी शेष प्रकृतियोंकी उपशामना की है । अब रहा तीसरा विकल्प जो उसका गुलासा टीकामे ही किया है । सुगम होनेसे उसका निर्देश पुनः यहाँ नहीं किया गया है ।

इस प्रकार ओघसे कालका कथन समाप्त हुआ ।

§ ६६. अब आदेशका कथन करनेके लिये उच्चारणाको वतलाते हैं । यथा—एक जीवकी अपेक्षा कालानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ निर्देश और आदेश निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्वके संक्रामकका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक छयामठ सागर है । मिथ्यात्वके असंक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पन्थके अमंख्यातवे भागप्रमाण है ? असंक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयामठ सागरप्रमाण है । सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयामठ सागरप्रमाण है । असंक्रामकका

अमंका० जह० एगममओ, उक्क० अंतोमु० । सोलमक०-णवणोक० संकाम०
अणादिओ अपज्ज० अणादिओ मपज्ज० सादिओ मपज्ज० । जो सो मादिओ
मपज्जवमिदो तस्म इमो णिद्वेमो—जह० अंतोमु०, उक्क० उवड्डुपोग्गलपरियट्ठं । अणंताणु०-
अमंकांमओ जह० समयुणावलिया, विमंजोयणाचरिमफालीए तदुवलंभादो । उक्क०
आवलिया मंपुण्णा, मंजुत्तपढमावलियाए तदुवलंझीदो । सेमाणममंकांमय० जह०
एगममओ, उक्क० अंतोमु०, उवममसेदीए तदुवलंभादो ।

जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकके कालकी अपेक्षा अनादि-अनन्त, अनादि-मान्त और मादि-सान्त ये तीन भंग होते हैं । उनमेंसे जो मादि-सान्त विकल्प है उसका यह निर्देश है । उसकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । अनन्तानुबन्धियोंके असक्रामकका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण है, क्योंकि विमंजोयोजनाकी अन्तिम फालिके आश्रयमे यह काल उपलब्ध होता है । उत्कृष्ट काल पूरी एक आवलिप्रमाण है, क्योंकि अनन्तानुबन्धियोंसे संयुक्त होनेपर प्रथम आवलिके समय यह काल उपलब्ध होता है । शेष प्रकृतियोंके असक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि ये दोनों काल उपशमश्रेणामे पाये जाते हैं ।

विशेषार्थ—ओषसे सब प्रकृतियोंके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल कितना है इसका खुलासा पूर्वमे चूणिसूत्रोंके व्याख्यानके समय कर आये है उसी प्रकार यहाँ भी जान लेना चाहिये । यहाँ इन सब प्रकृतियोंके असक्रामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालका खुलासा करते हैं—मिथ्यात्वका मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमे संक्रम नहीं होता, अतः उस गुणस्थानका जो जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल है वही मिथ्यात्वके असक्रामकका जघन्य काल प्राप्त होता है । यही कारण है कि यहाँ मिथ्यात्वके असक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है । तथा मादि-मान्त विकल्पकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जो उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है वही यहाँ मिथ्यात्वके असक्रामकका उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है । इसीमे मिथ्यात्वके असक्रामकका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण बतलाया है । सम्यक्त्वका संक्रम सम्यग्दृष्टिके नहीं होता, इसलिये सम्यग्दृष्टि गुणस्थानका जो जघन्य काल है वह सम्यक्त्वके असक्रामकका जघन्य काल प्राप्त होता है । इसीसे सम्यक्त्वके असक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण बतलाया है । तथा उद्वेलनाके अन्तमे प्राप्त हुआ एक समय कम एक आवलि-प्रमाण काल, उपशम सम्यक्त्वका अन्तर्मुहूर्त काल, वेदक सम्यक्त्वका कुछ कम छयासठ सागर काल, सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका अन्तर्मुहूर्त काल और वेदकसम्यक्त्वका पूरा छयासठ सागर काल इन कालोंका जोड़ साधिक दो छयासठ सागर होता है इसीसे सम्यक्त्वके असक्रामकका उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर बतलाया है । यहाँ इनका विशेष जानना चाहिये कि जिस क्रमसे उक्त कालोंका निर्देश किया है उसी क्रमसे उन्हें प्राप्त कराना चाहिये । यहाँ सम्यक्त्वकी सत्ता तो है पर संक्रम नहीं होता । सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम सासादन और सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें नहीं होता । सासादनका जघन्य काल एक समय और सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसीसे यहाँ सम्यग्मिथ्यात्वके असक्रामकका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है । अनन्तानुबन्धियोंकी विमंजोयोजनाके अन्तमे एक समयकम एक आवलिप्रमाण अन्तिम

§ ९७. आदेसेण णेरइण्णु मिच्छत्तंमंकांमं जहं अंतोमुं, उक्कं तेत्तीमं सागरों देख्खाणि । सम्मं जहं एगममओ, उक्कं पत्तिदों अमंखेभागो । सम्मामिं-अणंताणुंमंकांमं जहं एगसमओ, उक्कं तेत्तीमं सागरोवमाणि । बारसकसायं-णवणोकसायंमंकांमं केवं ? जहं दसवस्ससहस्साणि, उक्कं तेत्तीसं सागरोवमाणि । पढमादि जाव सत्तमि ति मिच्छंमंकांमं जहं अंतोमुं, उक्कं सगट्टिदी देख्खा । सम्मं णिरओधभंगो । सम्मामिं जहं एगसमओ, उक्कं सगट्टिदी । एवमणंताणुं चउक्कस्स । णवरि मत्तमाए जहं अंतोमुहुत्तं । बारसकं-णवणोकं जहं जहण्णट्टिदी, उक्कं उक्कस्मट्टिदी ।

फालिके शेष रहनेपर उसका संक्रम नहीं होता, इसलिये अनन्तानुबन्धियोंके अमंक्रामकका जघन्य काल एक समयकम एक आवलिप्रमाण बतलाया है । तथा त्रिसंयोजनाके बाद अनन्तानुबन्धियों की पुनः सत्ता प्राप्त होनेपर एक आवलि काल तक उनका संक्रम नहीं होता, इसलिये इनके अमंक्रामकका उत्कृष्ट काल एक आवलिप्रमाण बतलाया है । उपशमश्रेणियोंमें बारह कपाय और नौ नोकपाय इनमेंसे विवक्षित प्रकृतिका उपशम होनेके द्वितीय समयमें यदि मरकर यह जीव देवगतिमें चला जाता है तो इनके असंक्रामकका एक समय काल प्राप्त होता है । इसीसे यहाँ इनके अमंक्रामकका जघन्य काल एक समय कहा है । तथा उन प्रकृतियोंका उपशम काल अन्तमुहूर्त है । इसीसे यहाँ इनके असंक्रामकका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त बतलाया है ।

§ ९७. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीम सागर है । सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पन्थके अमंख्यातवे भागप्रमाण है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीम सागर है । बारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकका कितना काल है ? जघन्य काल दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट काल तेतीम सागर है । पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक नरकमें मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्वका भंग सामान्य नारकियोंके समान है । सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चतुर्कके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल जानना चाहिये । किन्तु इनकी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें जघन्य काल अन्तमुहूर्त है । बाहर कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—यहाँ नरक गति और उसके अन्तर्भेदोंमें मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंके संक्रामकका कितना काल है यह बतलाया है । नरक गतिमें सम्यग्दर्शनका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीम सागर है, इसीसे यहाँ मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीम सागर घटित हो जाता है । इसी प्रकार प्रत्येक पृथिवीमें जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण घटित कर लेना चाहिये । यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि पहली पृथिवीमें तो सम्यग्दृष्टि जीव भी मरकर उत्पन्न होता है और वह जीवनभर उसके साथ बना रहता है, अतः वहाँ कुछ कमका

§ ९८. तिग्निखेसु मिच्छ० संक्राम० जह० अंतोमु०, उक्क० तिग्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि । सम्म० णार्यभंगो । सम्मामि० जह० एगसमओ, उक्क० तिग्णि पलिदोवमाणि पलिदोवमासंखेज्जदिभागेण मादिरेयाणि । अणंताणु० चउक्कस्स जह० एगसमओ, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । बारसक०-णवणोक० जह०

नियम कैसे लागू होगा, सो इसका यह समाधान है कि यद्यपि पहली पृथिवीमें सम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न होता है यह बात सही है पर ऐसा जीव या तो कृतकृत्यवदकसम्यग्दृष्टि होता है या क्षात्रिकसम्यग्दृष्टि, इस लिये जब ऐसे जीवके वहाँ मिथ्यात्वका सत्त्व ही नहीं पाया जाता तब उसके मिथ्यात्वके संक्रामकी बात ही करना व्यर्थ है। सम्यक्त्व प्रकृतिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षासे बतलाया है। अर्थात् जिसके सम्यक्त्व प्रकृतिकी उद्वेलनामें एक समय बाकी है ऐसा जीव मरकर यदि नरकमें उत्पन्न होता है तो उसके नरकमें सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा नरकमें सम्यक्त्वके संक्रामकका उत्कृष्ट काल जो पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है सो यह उद्वेलनाके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षासे बतलाया है। इसी प्रकार प्रत्येक पृथिवीमें सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित कर लेना चाहिये, क्योंकि पूर्वोक्त कथनसे इसमें कोई विशेषता नहीं है। सामान्यसे नरकमें या प्रत्येक पृथिवीमें सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल एक समय भी सम्यक्त्व प्रकृतिके समान घटित होता है। हाँ उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनोंके होता है इसलिये नरकमें सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रम का उत्कृष्ट काल तेतीस मागर बन जाता है। अनन्तानुबन्धीके संक्रामकका भी उत्कृष्ट काल तेतीस मागर इसी प्रकारसे घटित किया जा सकता है, क्योंकि इसका संक्रम भी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनोंके होता रहता है पर ऐसे जीवके सम्यक्त्व दशामें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं करानी चाहिये। अथवा केवल मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकी अपेक्षासे घटित करनेमें भी आपत्ति नहीं है, क्योंकि कोई भी नारकी जीवनभर मिथ्यात्वके साथ रह सकता है। पर इसके संक्रामकका जघन्य काल एक समय इस प्रकार प्राप्त होता है कि जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है ऐसा कोई एक सम्यग्दृष्टि जीव सासादनमें गया और एक आपत्तिके बाद एक समयतक उसने अनन्तानुबन्धीका संक्रमण किया। फिर दूसरे समयमें मरकर वह अन्य गतिमें उत्पन्न हो गया तो इस प्रकार इसके नरकमें अनन्तानुबन्धीके संक्रामकका जघन्य काल एक समय प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक पृथिवीमें अनन्तानुबन्धीका संक्रमकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय घटित कर लेना चाहिये। किन्तु सातव नरकमें ऐसे जीवका सासादनमें मरण नहीं होता और मिथ्यात्व। अन्तर्मुहूर्त काल हुए बिना मरण नहीं होता अतः वहाँ जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। प्रत्येक नरकमें इसका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। तथा उक्त प्रकृतियोंके आतिरिक्त जो शेष बारह कषाय और ना नोकषाय बचीं सो इनका सम्भाव नरकमें सर्वदा है और सर्वदा हर हालतमें इनका संक्रम होता रहता है, अतः इनका नरकगति और उसके अन्तर भेदोंमें जघन्य और उत्कृष्ट जहाँ जो काल प्राप्त है वहाँ वह बन जानमें उक्त प्रमाण कहा है।

§ ९९. नियन्त्रोमि मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुत्र कम तीन पत्य है। सम्यक्त्वके संक्रामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालका भंग नारकियोंके समान है। सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यका असंख्यातवें भाग अधिक तीन पत्य है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। बारह कषाय और नौ

खुदाभवग्गहणं, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा० ।

१००. पंचिन्द्रियतिग्गिखतियम्मि मिच्छ०-सम्म० तिग्गिखोघभंगो । मम्मामि०-अणंताणु०चउक्कस्स जह० एगममओ, उक्क० तिण्णिण पल्लिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेण-व्वभहियाणि । बारमक०-णवणोक० जह० खुदाभव० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तिण्णिण पल्लिदो० पुव्वकोडिपुध० ।

नोकपायोंके संक्रामकका जघन्य काल लुद्रभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोमें वेदकमस्यक्त्वका जघन्य काल अन्तमुर्हृत और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य हैं । इसीसे यहां मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तमुर्हृत और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य बतलाया है । सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवं भागप्रमाण तथा सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीके संक्रामकका जघन्य काल एक समय जिस प्रकार नरकमें घटित करके बतला आये है उसी प्रकार यहां भी घटित कर लेना चाहिये; क्योंकि उससे इसमें कोई अन्तर नहीं है । जब यह जीव तिर्यंच पर्यायमें रह कर पल्यके असंख्यातवं भागप्रमाण काल तक सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करता रहता है और उद्वेलनाके समाप्त होनेके पूर्व ही मरकर तीन पल्यकी आयुगले तिर्यञ्चोमें उत्पन्न हो जाता है । फिर वहाँ सम्यक्त्वके योग्य कालके प्राप्त होने पर सम्यक्त्वका प्राप्त करके सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ताको फिरसे बढ़ा लेता है और वहाँ या ता सम्यग्दृष्टि बना रहता है या मिथ्यात्वमें जाकर उद्वेलना होनेके पूर्व ही पुनः सम्यग्दृष्टि हो जाता है उसके तिर्यञ्च पर्यायके रहते हुए पल्यका असंख्यातवां भाग अधिक तीन पल्य काल तक सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम देखा जाता है । इसीसे यहाँ सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण कहा है । तिर्यञ्चगतिमें मदा रहनेका उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । इसीसे यहां अनन्तानुबन्धीचतुष्क तथा शेष बारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है । तथा तिर्यञ्च पर्यायमें रहनेका जघन्य काल लुद्रभवग्रहणप्रमाण है । इसीसे यहां बारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकका जघन्य काल लुद्रभवग्रहणप्रमाण कहा है ।

१०१. पंचेन्द्रियतिर्यंचत्रिकमे मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल सामान्य तिर्यंचोंके सम न है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्व कोटिप्रथक्त्व अधिक तीन पल्य है । बारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकका जघन्य काल सामान्य पंचेन्द्रिय तिर्यंचमें लुद्रभवग्रहणप्रमाण और शेष दो प्रकारके तिर्यंचोंका जघन्य काल अन्तमुर्हृतप्रमाण है और उत्कृष्ट काल तीनोंमें पूर्वकोटिप्रथक्त्व अधिक तीन पल्य है ।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रियतिर्यंचत्रिकका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिप्रथक्त्व अधिक तीन पल्य है, इस लिये यहाँ सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, बारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकका उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण बतलाया है । तथा सामान्य तिर्यंचका जघन्य काल लुद्रभवग्रहणप्रमाण और शेष दो प्रकारके तिर्यंचोंका जघन्य काल अन्तमुर्हृत है । इसीसे यहाँ बारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकका जघन्य काल उक्तप्रमाण बतलाया है । शेष कालोंके कारणोंका निर्देश पहले कर ही आये है इसलिये यहाँ नहीं किया है ।

§ १००. पंचि०तिरिक्खअपज्ज०—मणुमअपज्ज० सम्म०—सम्मामि० जह० एगम०, उक्क० अंतोमु० । मोलमक०-णवणोक० जह० खुदाभव०, उक्क० अंतोमु० ।

§ १०१. मणुमतियम्मि पंचि०तिरिक्खभंगो । णवरि वारमक०-णवणोक० जह० एगसमओ, उक्क० मगड्ढिदी ।

§ १०२. देवेसु मिच्छ० जह० अंतोमु०, सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं जह० एगस०, उक्क० मन्वेसिं तेत्तीमं मागगे० । सम्मत्त० णारग्यभंगो । वारसक०-णवणोक० णारग्यभंगो चेव । भवनवागियप्पहुडि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति मिच्छ०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्कस्म य जह० अंतोमु० एयसमओ, उक्क० मगड्ढिदी । सम्म० णारय-

§ १००. पंचेन्द्रियातिर्यच अपयात्रि और मनुष्य अपयात्रिकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त है । तथा सोलह कपाय और नौ नाकपायोंके संक्रामकका जघन्य काल बुद्धभयप्रहणप्रमाण है और उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्तप्रमाण है ।

विशेषार्थ—उक्त दोनों मार्गणाओंमें सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति सम्भव नहीं है, इसलिये यहाँ मिथ्यात्वका संक्रमण होनेसे उमका काल नहीं बतलाया है । एक जीवकी अपेक्षा इन दोनों मार्गणाओंका जघन्य काल बुद्धभयप्रहणप्रमाण और उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त है, इसलिये यहाँ सब प्रकृतियोंके संक्रामकका जघन्य काल बुद्धभयप्रहणप्रमाण और उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त प्रमाण बतलाया है । किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रमणके जघन्य कालमें कुछ विशेषता है । वान यह है जिसके सम्यक्त्व या सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रमणमें एक समय शेष रहा ऐसा जीव मर कर यदि इन मार्गणाओंमें उत्पन्न हो तो उसके इन मार्गणाओंके रहते हुए उक्त प्रकृतियोंके संक्रमणका जघन्य काल एक समय भी पाया जाता है । इसीसे यहाँ पर इन दोनों प्रकृतियोंके संक्रमणका जघन्य काल एक समय बतलाया है ।

§ १०१. मनुष्यत्रिकों में सब प्रकृतियोंके संक्रामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन पंचेन्द्रिय तिर्यचके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कपाय और नौ नाकपायोंके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल अपनी स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—जो उपशामक जीव उपशमश्रेणियोंसे उतरते समय एक समय तक बारह कपाय और नौ नाकपायोंका संक्रमण करता है और दूसरे समयमें मर कर देव हो जाता है उसके उनके संक्रमणका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । इसीसे यहाँ मनुष्य त्रिकमें उक्त प्रकृतियोंके संक्रामकका जघन्य काल एक समय बतलाया है । शेष कथन सुगम है ।

§ १०२. देवोंमें मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है तथा इन सब प्रकृतियोंके संक्रामकका उत्कृष्टकाल तैत्तिहास सागर है । सम्यक्त्वका भंग नारकियोंके समान है । बारह कपाय और नौ नाकपायोंका भंग भी नारकियोंके समान ही है । भवनवासियोंसे लेकर उवरिम प्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तमुहूर्त तथा सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है । तथा इन सबके संक्रामकका उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्वका भंग नारकियोंके समान है । तथा

भंगो । वारमक०-णवणोक० जहण्णुक्कम्मट्टिदी भाणिदच्चा । अणुद्दिगादि जाव सच्चव्वा
त्ति मिच्छ०-सम्मामि०-वारमक०-णवणोक० जहण्णुक्कम्मट्टिदी भाणियच्चा । अणंताणु०
चउक्कम्म जह० अंतामु०, उक्क० सगुक्कम्मट्टिदी । एवं जाव० ।

❀ एयजीवेण अंतरं ।

§ १०३. सुगममेदमहियारमंभालणमुत्तं ।

❀ मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं संकामयंतरं केवचिरं कालादो
होदि ?

§ १०४. सुगमं ।

❀ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।

§ १०५. मिच्छत्तमंक्रमयम्म ताव उच्चदे—एओ मग्गाइट्टी बहुभो दिट्ठमग्गो
मिच्छत्तं गंतूण पुणो वि परिणामपच्चएण मम्मत्तगुणं मच्चजहण्णेण कालेण पडिवण्णो,
लद्धमंतं । एवं मम्मत्तम्म वि । णवरि मच्चजहण्णमम्मत्तकालेणंतग्गिदो ति वत्तच्चं ।
मम्मामिच्छत्तजहण्णकालो उवरि विग्गेमिऊण परुविज्जइ ति ण एत्थ तप्परूवणा कीरदे ।

वारह कथय और नी नोकपायोके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल क्रमसे जघन्य और
उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये । अनुदिशमे लेकर मन्वर्थमिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्व,
सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कथय और नी नोकपायोके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल क्रमसे
जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कके संक्रामकका जघन्य
काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अग्नी अग्नी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इती प्रकार अनाहारक
मार्गणातक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—पहले आंधसे और नरकादि गतियोंमें कालका स्पष्टीकरण कर आये हैं ।

उमे ध्यानमें रख कर देवगति और उनके अग्रान्तर भेदोंमें उने घटित कर लेना चाहिये । मात्र
देवगतियों जहाँ जो विशेषता है उमे ध्यानमें रख कर ही यह काल घटित करना चाहिये ।

❀ अब एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अधिकार है ।

§ १०३. आधिकारका निर्देश करनेवाला यह सूत्र सुगम है ।

❀ मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका अन्तरकाल कितना है ?

§ १०४. यह सूत्र सुगम है ।

❀ जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ १०५ मिथ्यात्वके संक्रामकके अन्तरकालका ग्युत्ताया सर्व प्रथम करते हैं—जिसे मोक्ष-
मार्गका अनेक चार परिचय मिल चुका है ऐसा एक सम्यग्दृष्टि जीव जब मिथ्यात्वमें जाकर और
परिणामवशा फिस्से अति स्वरूप काल द्वारा सम्यक्त्व गुणको प्राप्त होता है तब मिथ्यात्वके
संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल प्राप्त होता है । इसी प्रकार सम्यक्त्वका भी जघन्य अन्तरकाल
प्राप्त कर लेना चाहिये । किन्तु यह सबसे जघन्य सम्यक्त्वके कालमें अन्तरित होता है ऐसा कथन
करना चाहिये । सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अन्तरकालका आगे विशेषरूपमें कथन किया जायगा,
इसलिये यहाँ उसका कथन नहीं करते हैं ।

❀ उक्तसेण उवडुपोग्गलपरियट्टं ।

§ १०६. तं जहा—मिच्छत्तमं कामयस्म ताव उच्चदे—अणादियमिच्छाडुट्टी उवमम-सम्मत्तं घेतूणं छ आवलियाओ अत्थि त्ति सासणं गुणं गंतूणंतगिय देसूणमद्दुपोग्गल-परियट्टं परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे मिज्झिदच्चए त्ति सम्मत्तगुणं पडिवण्णो, लद्धमुक्क-स्संतंरं, पोग्गलपरियट्टस्म देसूणद्धमेत्तमादियंतैसु अंतोमुहुत्तमेत्तकालस्म वहिब्भावदंमणादो । एवं सम्मत्तस्म । णवरि देसूणपमाणं पलिदोवमानंखे० भागो, उवमममम्मत्तं पडिवजिय मिच्छत्तं गंतूणं तेत्तियमेत्तेण कालेण विणा सम्मत्तस्सुव्वेत्तलेदुममक्रियत्तादो । एवं सम्मामिच्छत्तस्म वि वत्तवं । संपहि सम्मामिच्छत्तजहण्णमं कामयंतरंगयविसेसपदुप्पायणट्ट-मुवग्गिमुत्तं भणइ—

❀ एवरि सम्मामिच्छत्तस्स संकामयंतरं जहएणेण एयसमओ

§ १०७. तं जहा—उवमममग्माडुट्टी मम्मामिच्छत्तस्म मं कामओ होउण डुट्टो सगद्धाए एगसमयावसेसियाए सामादणभावं गंतूणेयममयमंतगिय पुणो वि तदणंतर-समए संकामओ जादो, लद्धमेगममयमेत्तमंतरं । अट्ठा मिच्छाडुट्टी मम्मामिच्छत्तमुव्वेत्त-

* उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्ध पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।

§ १०६. खुलामा इस प्रकार है । उसमें भी सर्व धम मिथ्यात्वके संक्रामकके उत्कृष्ट अन्तर-कालका खुलामा करते हैं—कोई एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और लद्ध-वर्ति कालके शेष रहने पर सासादन गुणस्थानमें जाकर उसने मिथ्यात्वके संक्रमणका अन्तर किया । फिर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण बान तक परिभ्रमण करके जब मुक्त होनेके लिये उसे अन्तर्मुहूर्त काल शेष बचा तब वह सम्यक्त्व गुणको प्राप्त हुआ । इस प्रकार उत्कृष्ट अन्त-काल प्राप्त हो जाता है । यह पुद्गलपरिवर्तनका कुछ कम आधा इसलिये है, क्योंकि इसमेंसे प्रारम्भका एक अन्तर्मुहूर्त और अन्तका एक अन्तर्मुहूर्त कम होता हुआ देखा जाता है । इसी प्रकार सम्यक्त्वके संक्रामकके उत्कृष्ट अन्तरकालको घटित करके कहना चाहिये । किन्तु यहाँ कुछ कमका प्रमाण पत्त्यका असंख्यातवां भाग है, क्योंकि उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके और मिथ्यात्वमें जाकर तावन्मात्र अर्थात् पत्त्यके अरंख्यातवें भागप्राण बालके दिना सम्यक्त्वकी उद्वेलना नहीं हो सकती । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल भी कहना चाहिये । अब सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकके जघन्य अन्तरकालविशेषका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तर-काल एक समय है ।

§ १०७. खुलामा इस प्रकार है—कोई एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रमण करता हुआ स्थित है । उसने अपने सम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने पर सासादन गुणस्थानमें जाकर एक समय तक सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रमणका अन्तर किया और उसके अनन्तर समयमें फिरसे उसका संक्रामक हो गया । इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हुआ । अथवा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाला जो मिथ्यादृष्टि जीव

माणओ मम्मत्ताहिमुहो होउणंतग्करणं करिय मिच्छत्तपढमट्टिदिचरिमसमए सम्मामिच्छत्त-
चरिमुत्वेत्तलणफालिं पग्गस्वेण संकामिय उवमममम्माइट्ठी पढममए मम्मामिच्छत्त-
मंतुप्पायणवावारेणोयममयंतंरिय पुणो विदियमए संकामओ जादो, लद्धमंतरं ।

❀ अणंताणुबंधीणं संकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ।

§ १०८. सुगमं ।

❀ जहरणेण अंतोमुहुत्तं ।

§ १०९. विमंजोयणचरिमफालिं पादिय अंतरिदस्म पुणो सच्चलहुएण कालेण
संजुत्तस्म बंधावलयवदिवंतमए लद्धमंतरं कायव्वमिदि वुत्तं होइ ।

❀ उक्कस्सेण वेत्थावट्टिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ११० तं जहा—पढममम्मत्तं घेत्तुण उवमममम्मत्तकालम्भतरे अणंताणुबंधि
विमंजोइय वेदयमम्मत्तं पडिवाज्जिय पढमट्टावट्टिं भमिय तत्थंतोमुहुत्तावसेसे मम्मामिच्छत्तं
पडिवाज्जिय पुणो अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तमुवणमिय विदियत्तावट्टिमणुपालिय थोवावसेसे
मिच्छत्तं गदस्म लद्धमंतरं होदि । एत्थ पुव्वमणंताणुबंधि विमंजोइय ट्टिदस्म उवमम-

सम्यक्त्वके अभिमुख होकर और अन्तरकरण करके मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके अन्तिम समयमें
सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम उद्वेलना फालिका पररूपसे संक्रमण करके उपशमसम्यग्दृष्टि हो गया है
वह अपने प्रथम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वके सत्त्वके उत्पन्न करनेमें लगे रहनेके कारण एक समय
तक सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रमका अन्तर करके दूसरे समयमें फिरसे संक्रामक हो गया । इस प्रकार
सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हो जाता है ।

* अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामकका अन्तरकाल कितना है ।

§ १०८. यह मूल सुगम है ।

* जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ १०९. कोई एक जीव है जिसने विमंजोयोजनाकी अन्तिम फालिका पतन करके अनन्तानु-
बन्धियोंके संक्रमका अन्तर किया । फिर अंत स्वरूप काल द्वारा अनन्तानुबन्धियोंसे संयुक्त होकर
बन्धावलिकालके समाप्त होनेके अनन्तर समयमें पुनः संक्रामक हो गया । इस प्रकार अनन्तानु-
बन्धियोंके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल प्राप्त करना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* उन्कृष्ट अन्तरकाल साधिक दो छयामठ मागर है ।

§ ११०. नुत्तामा इम प्रकार है—कोई एक जीव है जिसने प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ग्रहण
करके उपशमसम्यक्त्वकालके भीतर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की । फिर वेदकसम्यक्त्वको
प्राप्त करके प्रथम छयामठ मागर काल तक परिश्रमण किया । फिर उसके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल
शेष रहने पर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । फिर अन्तर्मुहूर्तमें सम्यक्त्वको प्राप्त करके और उसके
साथ दूसरे छयामठ मागर काल तक रहा । फिर उसमें थोड़ा काल शेष रहने पर मिथ्यात्वसे गया ।
इस प्रकार अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामकका उन्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है । यहाँ पर प्रारम्भमें
अनन्तानुबन्धीकी विमंजोयोजना करके स्थित हुए जीवके जो उपशमसम्यक्त्वका काल शेष बचता

सम्भक्तकालो पच्छिन्नमिच्छत्तजहण्णकालादो बहुओ तेण मिच्छत्तजहण्णकालमेत्तं तत्थ सोहिय सुद्धसेसेण सादरेयत्तं वत्तच्चं ।

❀ सेसाणमेक्कवीसाए पयडीणं संकामयंतरं केवचिरं कालादो होइ ?

§ १११. सुगमं ।

❀ जहण्णेण एयसमओ ।

§ ११२. तं जहा—इगिवीमपयडीणं संकामओ उवममसेट्ठिमारुहिय अप्पप्पणो ठाणे सच्चोवममं काऊणेयममयमंतरिय पुणो विदियममए कालं गदो संतो देवेमुप्पण्ण-पढमममए लद्धमंतरं करेइ त्ति वत्तच्चं ।

❀ उक्कस्सेण अंतोमहुत्तं ।

§ ११३. तं कथं ? अणियट्ठिअट्ठाणं मंखेज्जे भागे गंतूण मच्चामिमणंतरपरुविद-पयडीणं मगमगट्ठाणे सच्चोवममं काऊण अमंक्रामयभावेणंतरिय अणियट्ठि०-मुहुम०-उनमंत०गुणट्ठाणाणि क्रमेणाणुपालिय पुणो ओदरमाणो मुहुम०गुणट्ठाणं बोलीणो

है वह अन्तमें प्राप्त हुए मिथ्यात्वके जघन्य कालमें बहुत हैं, इसलिये उपशमसम्यक्त्वके पूर्वोक्त कालमेंमे मिथ्यात्वके जघन्य कालको घटाकर उपशमसम्यक्त्वका जो काल शेष रहे उतना अधिक कहना चाहिये। आशय यह है कि दूसरे छयासठ सागरमेंसे यद्यपि अन्तमें प्राप्त हुए मिथ्यत्व गुणस्थानका जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल घट जाता है पर इस छयासठ सागरमें विर्मयोजनाके बाद बचे हुए उपशमसम्यक्त्वके कालके मिला देने पर वह छयासठ सागरसे कुछ अधिक हो जाता है, इस लिये यहां अनन्तानुबन्धियोंके संक्रमका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधक दो छयासठ सागरप्रमाण कहा है।

* शेष इक्कीम प्रकृतियोंके संक्रामकका अन्तरकाल कितना है।

§ १११. यह सूत्र सुगम है।

* जघन्य अन्तरकाल एक समय है।

§ ११२. खुलासा इस प्रकार है—इक्कीम प्रकृतियोंके संक्रामक जिस जीवने उपशमश्रेणि पर चढ़ कर और अपने अपने स्थानमें उनका सर्वोपशम करके एक समय तक उनके संक्रमका अन्तर किया फिर दूसरे समयमें मर कर जो देव हुआ उसके वहां उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही इन प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर प्राप्त हो जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। आशय यह है कि जिस समयमें जिस प्रकृतिका सर्वोपशम होता है उसके एक समय बाद यदि वह उपशम करनेवाला जीव मर कर देव हो जाता है तो उस प्रकृतिके संक्रमका एक समय अन्तर प्राप्त होता है।

* उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।

§ ११३. शंका—सो कैसे ?

समाधान—अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यात भागोंको बिता कर पहले कही गईं सब प्रकृतियोंका अपने अपने स्थानमें सर्वोपशम होनेसे वे अस्क्रामभावको प्राप्त हो जाती हैं और इस प्रकार इनके संक्रमका अन्तर करके उमी अन्तरके साथ अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसम्पराय और उपशान्तमोह इन तीन गुणस्थानोंको क्रममें प्राप्त कर फिर उतरते समय सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थानको

माणओ मम्मत्ताहिमुहो होऊणंतगकरणं करिय मिच्छत्तपढमट्टिदिचरिमसमए सम्मामिच्छत्त-
चग्गिमुव्वेल्लणफालिं परमरूवेण संकामिय उवमममम्माइट्ठी पढममए, सम्मामिच्छत्त-
मंतुप्पायणवावारेणेयममयंतगिय पुणो विदियममए संकामओ जादो, लद्धमंतरं ।

❀ अणंताणुबंधीणं संकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ।

§ १०८. सुगमं ।

❀ जहणणेण अंतोमुहुत्तं ।

§ १०९. विमंजोयणचग्गिफालिं पादिय अंतग्दिस्स पुणो सच्चलहुएण कालेण
मंजुत्तम्म बंधावलयिवादिक्कंतमए लद्धमंतरं कायच्चमिदि वुत्तं होइ ।

❀ उक्कस्सेण वेल्लावट्टिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ११० तं जहा—पढमसम्मत्तं घेत्तुण उवमममम्मत्तकालवभतरे अणंताणुबंधि
विमंजोइय वेदयमम्मत्तं पडिवाज्जिय पढमहावट्टिं भमिय तत्थंतोमुहुत्तावसेसे सम्मामिच्छत्तं
पडिवाज्जिय पुणो अंतोमुहुत्तेण मम्मत्तमुवणमिय विदियछावट्टिमणुपालिय थोवावसेसे
मिच्छत्तं गदस्स लद्धमंतरं होदि । एत्थ पुच्चमणंताणुबंधिं विमंजोइय ट्टिदस्स उवसम-

सम्यक्त्वके अभिमुख्य होकर और अन्तरकरण करके मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके अन्तिम समयमें
सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम उद्वेलना फालिका पररूपसे संक्रमण करके उपशमसम्यग्दृष्टि हो गया है
यह अपने प्रथम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वके सत्त्वके उत्पन्न करनेमें लगी रहनेके कारण एक समय
तक सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रमका अन्तर करके दूसरे समयमें फिरसे संक्रामक हो गया । इस प्रकार
सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हो जाता है ।

* अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामकका अन्तरकाल कितना है ।

§ १०८. यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ १०९. कोई एक जीव है जिसने विमंजोयनाकी अन्तिम फालिका पतन करके अनन्तानु-
बन्धियोंके संक्रमका अन्तर किया । फिर अति स्वल्प काल द्वारा अनन्तानुबन्धियोंसे संयुक्त होकर
बन्धावलिकालके समाप्त होनेके अनन्तर समयमें पुनः संक्रामक हो गया । इस प्रकार अनन्तानु-
बन्धियोंके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल प्राप्त करना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक दो छयामठ सागर है ।

§ ११०. गुलाभा इस प्रकार है—कोई एक जीव है जिसने प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ग्रहण
करके उपशमसम्यक्त्रकालके भीतर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की । फिर वेदकसम्यक्त्वको
प्राप्त करके प्रथम छयामठ सागर काल तक परिभ्रमण किया । फिर उसके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल
शेष रहने पर सम्यग्मिथ्यात्व हो प्राप्त हुआ । फिर अन्तर्मुहूर्तमें सम्यक्त्वको प्राप्त करके और उसके
साथ दूसरे छयामठ सागर काल तक रहा । फिर उसमें थाड़ा काल शेष रहने पर मिथ्यात्वमें गया ।
इस प्रकार अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है । यहां पर प्रारम्भमें
अनन्तानुबन्धीकी विमंजोयना करके स्थित हुए जीवके जो उपशमसम्यक्त्वका काल शेष बचता

सम्मत्कालो पच्छिन्नमिच्छत्तजहण्णकालादो बहुओ तेण मिच्छत्तजहण्णकालमेत्तं तत्थ सोहिय सुद्धसेसेण सादिरेयत्तं वत्तव्वं ।

❖ **सेसाणमेक्कवीसाए पयडीणं संकामयंतरं केवच्चिरं कालादो होइ ?**

§ १११. सुगमं ।

❖ **जहणेण एयसमओ ।**

§ ११२. तं जहा—इगिवीमपयडीणं संकामओ उवममसेट्ठिमारुहिय अप्पप्पणो ठाणे सव्वोवसमं काउण्येयसमयमंतगिय पुणो विदियममए कालं गदो संतो देवेसुप्पण्ण-पढमममए लद्धमंतरं करेइ त्ति वत्तव्वं ।

❖ **उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।**

§ ११३. तं कथं ? अणियट्ठिअट्ठाए संखेज्जे भागे गंतूण सव्वामिमणंतरपरुविद-पयडीणं मगमगट्ठाणे सव्वोवसमं काउण अमंकामयभावेणंतगिय अणियट्ठि०-सुद्धम०-उवमंत०गुणट्ठाणाणि कमेणाणुपालिय पुणो ओदरमाणो सुद्धम०गुणट्ठाणं बोलीणो

है वह अन्तमें प्राप्त हुए मिथ्यात्वके जघन्य कालमें बहुत हैं, इसलिये उपशमसम्यक्त्वके पूर्वोक्त कालमेंसे मिथ्यात्वके जघन्य कालको घटाकर उपशमसम्यक्त्वका जो काल शेष रहे उतना अधिक कहना चाहिये । आशय यह है कि दूसरे छयासठ सागरमेंसे यद्यपि अन्तमें प्राप्त हुए मिथ्यत्व गुणस्थानका जघन्य अन्तमुहूर्त काल घट जाता है पर इस छयासठ सागरमें विमंयोजनाके बाद बचे हुए उपशमसम्यक्त्वके कालके मिला देने पर वह छयासठ सागरसे कुछ अधिक हो जाता है, इस लिये यहां अतन्तानुबन्धियोंके संक्रमका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण कहा है ।

❖ **शेष इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रामकका अन्तरकाल कितना है ।**

§ १११. यह सूत्र सुगम है ।

❖ **जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।**

§ ११२. गुलासा इम प्रकार है—इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रामक जिस जीवने उपशमश्रेणि पर चढ़ कर और अपने अपने स्थानमें उनका सर्वोपशम करके एक समय तक उनके संक्रमका अन्तर किया फिर दूसरे समयमें मर कर जो देव हुआ उसके वहां उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही इन प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर प्राप्त हो जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । आशय यह है कि जिस समयमें जिस प्रकृतिका सर्वोपशम होता है उसके एक समय बाद यदि वह उपशम करनेवाला जीव मर कर देव हो जाता है तो उस प्रकृतिके संक्रमका एक समय अन्तर प्राप्त होता है ।

❖ **उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है ।**

§ ११३. शंका—सो कैसे ?

समाधान—अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यात भागोंको घिता कर पहले कही गईं सब प्रकृतियोंका अपने अपने स्थानमें सर्वोपशम होनेसे वे असंक्रमभावको प्राप्त हो जाती हैं और इस प्रकार इनके संक्रमका अन्तर करके उसी अन्तरके साथ अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसम्पराय और उपशान्तमोह इन तीन गुणस्थानोंको क्रमसे प्राप्त कर फिर उतरते समय सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थानको

अणियट्टिभावेणप्पणो ङ्गणे पुणो वि संकामओ जादो, लद्धमंतरंतीमुहुत्तमेत्तं । णवरि लोभमंजलणस्माणुपुन्वीमंक्रमपारंभेणंतरस्सादि कादृण पुणो तदुवरमे लद्धमंतरं कायव्वं ।

एवमोधेणंतरं गयं ।

§ ११४. मंपहि देमामामियमुत्तेण सूचिदमादेममोघाणुवादपुग्ग्मग्गमुच्चारणमस्मिय परूवेमो । तं जहा अंतरगणुग्गेण दुविहो णिहेमो—ओधेण आदेसेण य । ओधेण मिच्छं-मम्मं जहं अंतोमुं, मम्मामिं जहं एगममओ, उक्कं तिण्हं पि उवड्डुपोग्गल-परियट्टं । अणंताणुं चउक्कस्म जहं अंतोमुं, उक्कं वेछावट्टिमागगेवमाणि मादिरेयाणि । वाग्गकं-णवणोकं जहं एगममओ, उक्कं अंतोमुहुत्तं ।

§ ११५. आदेसेण पोग्गयं मिच्छं-मम्मं-अणंताणुं चउक्कस्स जहं अंतोमुं, मम्मामिं एगममओ, उक्कं तेत्तीमं मागगे देसूणाणि । वाग्गकं-णवणोकं-संक्रामओ णत्थि अंतरं । एवं मव्वणेरइया । णवरि सग्गट्टिदी देसूणा ।

विता कर जब अनिबृत्तिकरणको प्राप्त होता है तब अपने अपने उपशम करनेके स्थानमें फिरसे संक्रामक हो जाता है और उस प्रकार इनका अन्तमुहूर्त अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है । किन्तु इतनी विशेषता है कि आनुपूर्वी संक्रमके प्रारम्भसे लोभसंज्वलनके संक्रमके अन्तरका प्रारम्भ करे जो आनुपूर्वी संक्रमके समाप्त होने तक चालू रहता है । इस प्रकार लोभसंज्वलनके संक्रमका अन्तर आनुपूर्वी संक्रमके प्रारम्भसे उसकी समाप्ति तक कहना चाहिये ।

इस प्रकार ओधमे अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

§ ११४. अब देशामर्षक सूत्रके द्वारा सूचित होनेवाले आदेशका ओघानुवादपूर्वक उच्चारणके आश्रयमें कथन करते हैं । जो इस प्रकार है—अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है । तथा तीनोंके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्थ पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । अन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामकका जघन्य अन्तर काल अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक दो छयामठ सागर है । बारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकका जघन्य अन्तर-काल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है ।

विशेषार्थ—उन सब अन्तरकालोंका ग्गुलासा चूणिग्गूओका व्याख्यान करते समय टीकाकार स्रयं कर आयं हैं उसलिये वहांमें जान लेना चाहिये ।

§ ११५ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है तथा सभीके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर है । किन्तु यहां बारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार सब नरकोंके नारकियोंमें अन्तरकालका कथन करना चाहिये । किन्तु उत्कृष्ट अन्तरकाल कहते समय सर्वत्र कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये ।

१. ता० प्रती -मंतरमेत्तमंतोमुहुत्तमेत्तं इति पाठः ।

§ ११६. तिरिक्खेमु मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि० ओघो । अणंताणु०चउक्कस्स जह० अंतोमु०, उक्क० तिण्णिण पलिदो० देसूणाणि । वारमक०-णवणोक०^१ णत्थि अंतरं । एवं पंचि०तिरिक्खितियस्स । णवरि मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि० जह० अंतोमु० एगस०, उक्क० तिण्णिण पलिदो० पुव्व० । पंचि०तिरि०अपज्ज०-मणुमअपज्ज०-अणुदिमादि-जाव मव्वट्ठा त्ति मव्वपयडीणं णत्थि अंतरं । मणुमतियम्मि पंचिदियतिरिक्खमंगो ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्क इनके संक्रामकके जघन्य अन्तरकालका खुलासा जिस प्रकार ओघप्ररूपणाके समय चूर्णिसूत्रोंकी व्याख्या करते हुए किया है उसी प्रकार यहाँ भी जान लेना चाहिये । तथा इन सबके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल नरककी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षामें बड़ा है जो अपनी अपनी दृष्टिमें घटित कर लेना चाहिये । उदाहरणार्थ एक ऐसा जीव लो जिनमें नरकमें उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्तवाद उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके मिथ्यात्वका संक्रम किया । फिर छह आवलि काल शेष रहने पर वह सामान्यभावको प्राप्त होकर उसका अमंक्रामक हुआ और फिर जीवन भर अमंक्रामक ही रहा । किन्तु अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर यदि वह उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके फिरसे मिथ्यात्वका संक्रम करने लगता है तो नरकमें मिथ्यात्वके संक्रमका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेत स सागर प्राप्त हो जाता है । जो जीव नरकमें उत्पन्न होकर एक समय तक सम्यक्त्वका उद्वेलना संक्रम करके दूसरे समयमें अमंक्रामक हो जाता है और फिर आयुके अन्तमें उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके अतिम्वल्प काल द्वारा मिथ्यात्वमें जाकर सम्यक्त्वका संक्रम करने लगता है उसके सम्यक्त्वके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर प्राप्त होता है । सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल भी इसी प्रकारसे घटित करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इस जीवका अन्तमें सम्यक्त्व उत्पन्न कराकर उसके दूसरे समयसे ही संक्रामक कठना चाहिये, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम सम्यग्दृष्टिके भी होता है । अनन्तानुबन्धीकी अपेक्षा यदि प्रारम्भमें विमंश्रोजना करावे और अन्तमें मिथ्यात्वमें ले जाय तो कुछ कम तेतीस सागरप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है । अब शेष रही वारह कपाय और नौ नोकपाय सो इनके संक्रामकका अन्तरकाल उपशमश्रेणमें ही सम्भव है और नरकमें उपशमश्रेणि होनी नहीं, अतः नरकमें इनके संक्रमके अन्तरकालका निषेध किया है

§ ११६. तिर्यंचोमे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका अन्तरकाल आर्यके समान है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तीन पलय है । किन्तु बारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकका अन्तरकाल नहीं है । पंचेन्द्रियतिर्यंचत्रिकमें अन्तरकालका कथन इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है । तथा इन सबके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पलय है । पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देय इनमें सब प्रकृतियोंके संक्रामकका अन्तरकाल नहीं है । बात यह है कि इन मार्गणाश्रमोंमें गुणस्थान नहीं बदलता, इसलिये अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता । मनुष्यत्रिकमें पंचेन्द्रिय तिर्यंचके समान भंग है । किन्तु इतनी

णवरि वाग्मक०-णवणोक० जह० उक० अंतोमुहुत्तं ।

११७. देवेषु मिच्छ०-मम्म०-अणंताणु०चउक०-मम्मामि० जह० अंतोमु० एगम०, उक० एकत्तीमं सागरो० देसूणाणि । वाग्मक०-णवणोक० णत्थि अंतरं । एवं भवणादि जाय उवग्मिगेवजा त्ति । णवरि मगद्धिदी देसूणा कायच्चा । एवं जाव० ।

❀ एणाजीवेहि भंगविचओ ।

११८. सुगममेदमहियाग्मंभालणमुत्तं । तन्थ ताव अट्टपदं परूवेमाणो सुत्त-
मुत्तरं भणइ—

❀ जेसिं पयडीणं संतकम्ममत्थि तेसु पयदं ।

११९. कुदो ? अकम्मएहि अच्चवहागदो । एदेणट्टपदेण दुविहो णिदेमो
ओघादेमभेएण । तन्थोघपस्वणट्टमाट—

विशेषता है कि इनमें वारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । आराम यह है कि इनमें उपशमश्रेणि सम्भव है अतः उक्त २१ प्रकृतियोंके संक्रामका अन्तरकाल बन जाता है ।

विशेषार्थ—तिर्यचोमे प्रारम्भमें अनन्तानुबन्धीकी धिगंयोजना करके अन्ततक वैसा रहे किन्तु अन्तमें मिथ्यात्वमे चला जाय । यह क्रम तिर्यचगतिमे एक पर्यायमे ही बन सकता है, अतः तिर्यचगतिमे अनन्तानुबन्धी चतुष्केके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तीन पत्त्य कहा है । तथा पंचेन्द्रियतिर्यचत्रिकमें जो मिथ्यात्व, सम्यक्त्व आर सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल पृथकोटिपृथक्त्व अत्रिक तीन पत्त्य कहा है सो यह उस उस पर्यायके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षासे कहा है । इसे नरकके समान यहां भी घटित कर लेना चाहिये । ओप कथन सुगम है ।

११७. देवोमे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्केके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और सबके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर है । किन्तु वारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार भवनवामियोंमे लेकर उपरिम प्रेययक तक जानना चाहिये । किन्तु सर्वत्र उत्कृष्ट अन्तर कहते समय कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मर्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—देवगतिमे उपरिम प्रेययक तक ही गुणस्थान परिवर्तन सम्भव है । इसीसे मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियोंके संक्रामका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर कहा है । ओप कथन सुगम है ।

❀ अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयका अधिकार है ।

११८. आधिकारकं निर्देश करनेवाला यह सूत्र सुगम है । अब यहाँ अथपदके बतलानेकी इच्छासे अगेका सूत्र कहते हैं—

❀ जिन प्रकृतियोंकी मत्ता है वे यहाँ प्रकृत हैं ।

११९ क्योंकि जो कर्मभावसे रहित है उनका प्रकृतमे उपयोग नहीं । इस अर्थपदके अनुसार ओव अर आदेशके भेदसे निर्देश दो प्रकारका है । उसीसे ओवका वचन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❁ मिच्छत्त-सम्मत्ताणं सञ्चजीवा णियमा संकामया च असं-
कामया च ।

§ १२०. कुदो ? मिच्छत्तस्स संकामयामंकायणं मग्गाइड्ढि-मिच्छाइड्ढीणं
सञ्चकालभवट्ठाणदंमणादो । एवं सम्मत्तस्स वि । णवरि विवज्जासेण वत्तव्वं ।

❁ सम्मामिच्छत्त सोलसकसाय-एवणोकसायाणं च तिण्णि भंगा
कायव्वा ।

§ १२१. तं जहा—मिया सञ्चे जीवा संकामया । मिया संकामया च असंकामओ
च १ । मिया संकामया च असंकामया च २ । ध्रुवसहिदा ३ तिण्णि भंगा ।

एवमोघेण भंगविचओ ममत्तो ।

§ १२२. आदेमपरूवणट्टमुच्चारणं वत्तइम्मामो । तं जहा—मणुमतियस्स
ओघभंगो । णेइएमु मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०-चउक्कम्म ओवो । वारमक०-
णवणोक० णियमा संकामया । एवं सञ्चणेइय-तिग्गिक्ख-पंचिदियतिग्गिक्खतिय-देवा

* मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके सब जीव नियमसे संक्रामक और असंक्रामक हैं ।

§ १२०. क्योंकि मिथ्यात्वका संक्रम करनेवाले सम्यग्दृष्टियोंका और संक्रम नहीं
करनेवाले मिथ्यादृष्टियोंका सर्वदा सद्भाव देखा जाता है । इसी प्रकार सम्यक्त्व कृत्वकी अपेक्षा
से भी कारणका कथन करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ विपरीतक्रमसे उक्त
कारणका कथन करना चाहिये ।

* सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके तीन भंग करना चाहिये ।

§ १२१. खुलासा इस प्रकार है—कदाचिन् सब जीव संक्रामक है । कदाचिन् बहुत जीव
संक्रामक है और एक जीव असंक्रामक है १ । कदाचिन् बहुत जीव संक्रामक है और बहुत जीव
असंक्रामक है २ । यहाँ इन दो भंगोंमें ध्रुव भंगके मिलाने पर तीन भंग होते हैं ।

विशेषार्थ—उक्त कथनका सार यह है कि मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके संक्रामक और
असंक्रामक बहुत जीव तो सदा पाये जाते हैं । किन्तु शेष प्रकृतियोंके विषयमें तीन भंग है ।
कदाचिन् सब जीव संक्रामक है यह ध्रुव भंग है । आशय यह है कि शेष प्रकृतियोंके संक्रामकोंका
सदा पाया जाना तो सम्भव है किन्तु असंक्रामकोंके विषयमें कोई निश्चित नियम नहीं कहा जा
सकता है । कदाचिन् एक ही जीव असंक्रामक नहीं होता । जब एक भी असंक्रामक जीव नहीं पाया
जाता तब उक्त ध्रुव भंग होता है । इसके अतिरिक्त शेष दो भंग स्पष्ट ही है ।

इस प्रकार ओघसे भंगविचय समाप्त हुआ ।

§ १२२. अब आदेशका कथन करनेके लिये उच्चारणको बतलाते हैं यथा—मनुष्यत्रिकमें
ओघके समान भंग है । अर्थात् ओघसे जो व्यवस्था बतलाई है वह मनुष्यत्रिकमें घटित हो जाती
है । नारकियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग ओघके
समान है । किन्तु बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी अपेक्षा नियमसे सब जीव संक्रामक हैं यही
एक भंग है । बात यह है कि इन इक्कीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा असंक्रामकोंका भंग उपशमश्रेणिमें

जाव उवरिमगेवज्जा ति ।

§ १२३. पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० सम्म०-सम्मामि० मिया मव्वे संकामया । मिया मंकामया च अमंकामओ च । मिया संकामया च अमंकामया च । सोलसक०-णवणोकमायाणं णियमा मंकामया ।

§ १२४. मणुमअपज्जत० सम्म०-सम्मामि० संकामयासंकामयाणमडु भंगा कायव्वा । सोलसक०-णवणोक० सिया संकामओ । मिया मंकामया । अणुदिसादि जाव मव्वट्टा ति मिच्छ०-सम्मामि०-वारसक०-णवणोक० णियमा संकामया । अणंताणु०चउक्कम्म ओघो । एवं जाव० ।

§ १२५. मंपहि भागाभाग-परिमाण-खेत-पोमणाणं परूवणट्टमुच्चारणमवलंवेमो । तं जहा—भागाभागानु० दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ०-मंकामया मव्वजीवाणं केव० ? अणंतभागो । अमंकाम० अणंतभागा । सम्म०मंकाम० मव्वजीवाणं केव० ? अमंवे०भागो । अमंकामया असंखेज्जा भागा । सम्मामि०-प्राप्त होता है । पर नरकमें उपशमश्रेणि सम्भव नहीं, इसलिए इनकी अपेक्षा यहाँ एक ही भंग बतलाया है । उसी प्रकार सब नारकी, तिर्यञ्चत्रिक, देव और उपरिम प्रैव्यक तकके देवोंके जानना चाहिये ।

§ १२३. पंचेन्द्रियतिर्यञ्चलच्छयपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके कदाचिन् सब जीव संक्रामक है । कदाचिन् बहुत जीव संक्रामक हैं और एक जीव असंक्रामक है । कदाचिन् बहुत जीव संक्रामक हैं और बहुत जीव असंक्रामक हैं । तथा सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके नियमसे सब जीव संक्रामक है ।

विशेषार्थ—आशय यह है कि इन जीवोंके मिथ्यात्वका संक्रम और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका असंक्रम तो सम्भव ही नहीं, क्योंकि यहाँ अतिरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान नहीं होता । अतः मिथ्यात्वके सिवा शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षासे उक्त प्रकारसे भंग बतलाये हैं ।

§ १२४. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक और असंक्रामकोंके आठ भंग कहने चाहिये । तथा सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी अपेक्षा कदाचिन् एक जीव संक्रामक होता है और कदाचिन् अनेक जीव संक्रामक होते हैं ये दो भंग होते हैं । तथा अनुदिशसे लेकर स्वार्थमिद्वि तकके देव मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंके नियमसे संक्रामक होते हैं । तथा यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग आठके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ १२५ अब भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र और स्पर्शनका कथन करनेके लिये उच्चारणाका अवलम्बन लेते हैं । यथा—भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्वके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं । असंक्रामक जीव कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्त बहुभागप्रमाण हैं । सम्यक्त्वके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

१. आ०प्रतौ संखेजा इति पाठः ।

संक्रामया अमंखेज्जा भागा । अमंक्रामया अमंखेज्जदिभागो । सोलसक०-णवणोक०-संक्रामया' अणंता भागा । असंक्रामया अणंतभागो ।

§ १२६. आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-सम्म०-संक्राम० अमंखे०भागो । असंक्रामया अमंखेज्जा भागा । सम्मामि०-अणंताणु०४संक्राम० अमंखेज्जा भागा । असंक्राम० अमंखे०भागो । वारसक०-णवणोक० णत्थि भागाभागो, संक्रामयाणमेव णिप्पडि-वक्खाणमेत्थ दंसणादो । एवं सच्चणेरइय-पंचिंदियतिरिक्खतिय-देवा जाव सहस्सारे त्ति ।

§ १२७. तिरिक्खेसु मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४ ओघं । वारसक०-णवणोक० णत्थि भागाभागो । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० सम्म०-सम्मामि०-संक्राम० अमंखेज्जा भागा । असंक्राम० अमंखे०भागो । सेसपयडीणं णत्थि भागाभागो ।

§ १२८. मणुस्सेसु मिच्छत्त० णारयभंगो । सम्म०-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० संक्रामया अमंखेज्जा भागा । अमंक्राम० अमंखे०भागो । एवं मणुमपज्ज०-मणुसिणीसु । णवरि मंखेज्जं कायव्वं ।

§ १२९. आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति णारयभंगो । णवरि मिच्छ०संक्रामया

असंक्रामक जीव कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभागप्रमाण है । सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । असंक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । गोलह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामक जीव अनन्त बहुभागप्रमाण हैं । असंक्रामक जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं ।

§ १२६. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके संक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । असंक्रामक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण है । असंक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । यहाँ बारह कपाय और नौ नोकपायोंका भागाभाग नहीं है, क्योंकि नरकमें इनके केवल संक्रामक जीव ही देखे जाते हैं । इसी प्रकार सव नारकी, पंचेन्द्रियतिर्यंचत्रिक, सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिये ।

§ १२७. तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा भागाभाग ओघके समान है । तथा यहाँ बारह कपाय और नौ नोकपायोंका भागाभाग नहीं है । पंचेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्त और मनुष्यअपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । असंक्रामक असंख्यातवें भागप्रमाण हैं यहाँ शेष प्रकृतियोंका भागाभाग नहीं है ।

§ १२८. मनुष्योंमें मिथ्यात्वका भंग नारकियोंके समान है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामक असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । असंक्रामक असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंके जानना चाहिये । किन्तु इनमें असंख्यातके स्थानमें संख्यातका कथन करना चाहिये ।

§ १२९. आनत कल्पके लेकर नौ भ्रैवेयक तकका कथन नारकियोंके समान है । किन्तु

१. आ०प्रती०सोलसक० संक्रामया इति पाठः ।

संखेजा भागा । अमंका मया संखे० भागो । अणुदिसादि [जाव] सव्वट्ठा त्ति अणंताणु०-
चउकस्म मंका मया अमंखेजा भागा । अमंका म० अमंखे० भागो । णवरि सव्वट्ठे संखेज्जं
कायव्वं । सेसाणं णत्थि भागा भागो । सव्वत्थ कारणं सुगमं । एवं जाव० ।

§ १३०. परिमाणणु० दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त०-
सम्म०-मम्मामि० मंका मया दव्वपमाणेण केवडिया ? अमंखेजा । सोलसक०-
णवणोक० मंका मया केत्तिया ? अणंता । एवं तिरिक्खा० ।

§ १३१. आदेसेण णेगइ० अट्ठावीमं पयडीणं मंका मया केत्तिया ? अमंखेजा ।
एवं सव्वणेगइय-पंचिंदियतिरिक्खवतिय-देवा जाव णवगेवजा त्ति । पंचि० तिरि०-
अपज्ज०-मणुमपज्ज०-अणुदिमादि जाव अवगइदा त्ति मत्तवीमपयडीणं मंका मया
केत्तिया ? अमंखेजा । मणुमसेमु मिच्छत्तस्म मंका मया मंखेजा । सेमाणममंखेजा ।
मणुमपज्ज०-मणुमिणी-मव्वट्ठेवेमु मव्वपयडीणं मंका मया केवडिया ? मंखेजा । एवं
जाव अणाहारि त्ति णेदव्वं ।

§ १३२. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ०-
सम्म०-मम्मामि० मंका मया केवडि खेत्ते ? लोगस्म अमंखे० भागो । एवममंका मया ।

इतनी विशेषता है कि यहाँ मिथ्यात्वके संक्रामक संख्यात बहुभागप्रमाण हैं और असंक्रामक संख्यातके भागप्रमाण हैं । अनुदिशमें लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । असंक्रामक जीव असंख्यातके भागप्रमाण हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वार्थसिद्धिमें असंख्यातके स्थानमें संख्यातका कथन करना चाहिये । यहाँ शेष प्रकृतियोंका भागाभाग नहीं है । सर्वत्र कारण सुगम है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ १३०. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-
निर्देश । ओघसे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक कितने हैं ? असंख्यात
हैं । सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामक कितने हैं ? अनन्त है । इसी प्रकार तिर्यच्चोंमें
संख्या कहनी चाहिये ।

§ १३१. आदेशमें नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव कितने हैं ? असंख्यात
है । उमी प्रकार सब नारकी, पंचेन्द्रियतिथेच्चत्रिक और नौ भ्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिये ।
पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें
सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । मनुष्योंमें मिथ्यात्वके संक्रामक जीव
संख्यात हैं । शेष प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यात हैं । मनुष्यपर्याप्त मनुष्यिनी और सर्वार्थसिद्धि
के देवोंमें सब प्रकृतियोंके संक्रामक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक
जानना चाहिये ।

§ १३२. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश निर्देश ।
ओघसे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके
असंख्यातके भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार उक्त प्रकृतियोंके असंक्रामक जीव भी लोकके

णवरि मिच्छ०अमंका० मच्चलोगे । सोलसक०-णवणोक०मंकांमया सच्चलोए । अमंकांम० लोगम्म अमंखे०भागे । एवं तिरिक्खा० । णवरि वारम्मक०-णवणोकमायाणं अमंकांमया णत्थि । सेमगइमग्गणासु मच्चपयडीणं मंकांमया जहामंभवमंकांमया च लोयस्स अमंखे०भागे । एवं जाव अणाहारि त्ति णेदव्वं ।

§ १३३. पोसणाणुगमेण दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ०संकांमएहि केवडियं० ? लोगम्म असंखे०भागो अट्ट चोहमभागा देसूणा । अमंकांमएहि मच्चलोओ । सम्म०-सम्मामि० मंकांमए० अमंकांम० लोगम्म अमंखे०-भागो अट्ट चोह० मच्चलोगो वा । सोलसक०-णवणोक०मंकांम० सच्चलोगो । अमंका० लोयस्स अमंखे०भागो । णवरि अणंताणु०४अमंका० ? अट्ट चोह० देसूणा ।

§ १३४. आदेसेण णेगइय० मिच्छ०संकांम० केव० ? लोगम्म अमंखे०भागो । सेमपयडीणं मंकांम० दंसणतियअमंकांम० लोयस्स अमंखे०भागो छ चोहम० । अणंताणु०४अमंका० खेत्तं । पटमाए खेत्तभंगो । विद्यादि जाव मत्तमा त्ति मिच्छ०-

असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके असंक्रामक जीव सब लोकमें रहते हैं । सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामक जीव सब लोकमें रहते हैं । तथा उनके असंक्रामक जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार तिर्यंचोके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें बारह कपाय और नौ नोकपायोंके असंक्रामक जीव नहीं हैं । इनके अतिरिक्त शेष गति मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंके संक्रामक और यथासम्भव असंक्रामक जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ १३३. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओवनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघमें मिथ्यात्वके संक्रामक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भागका और त्रम नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । मिथ्यात्वके असंक्रामकोंने सब लोकका स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक और असंक्रामक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामक जीवोंने सब लोकका स्पर्श किया है । असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ १३४. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्वके संक्रामक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष प्रकृतियोंके संक्रामकोंने और तीन दर्शनमाहनीयके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । पहली पृथिवीमें स्पर्श क्षेत्रके समान है । दूसरीसे लेकर सातवीं तक प्रत्येकमें

१ आ०प्रती अणंताणु०४ असंखे०भागो अट्ट इति पाठ । २. आ०प्रती अणंताणु०४ असंखे० खेत्तं इति पाठः ।

मंक्राम० लोयस्म अमंखे०भागो । सेमपयडीणं मंक्राम० दंमणतियअमंक्राम० लोय० अमंखे०भागो एक-वे-तिण्ण-चत्तारि-पंच-छचोदम० देसूणा । अणंताणु०४अमंक्राम० खेत्तं ।

§ १३५. तिग्गिखेसु मिच्छ०मंक्राम० लोयस्म अमंखे०भागो छ चोदम० देसूणा । अमंक्राम० मव्वलोओ । मम्म०-मम्मामि०मंक्राम०-अमंक्राम० लोयस्म अमंखे०भागो मव्वलोगो वा । सोलमक०-णवणोक०मंक्राम० सव्वलोगो । अणंताणु०४अमंक्राम० खेत्तं ।

§ १३६. पंचिदियतिग्गिखवतिण् मिच्छ०मंक्राम० लोयस्म अमंखे०भागो छ चोदम० देसूणा । सेमपयडीणं मंक्राम० दंमणतियअमंक्राम० लोयस्म अमंखे०भागो मव्वलोगो वा । अणंताणु०४अमंक्राम० खेत्तं ।

§ १३७. पंचि०तिग्गि०अपज्ज० मम्म०-मम्मामि०मंक्राम०-अमंक्राम० सोलमक०-णवणोक०मंक्राम० लोयस्म अमंखे०भागो मव्वलोगो वा । मिच्छ०अमंक्राम० एमो^१ चैव भंगो । एवं मणुगतिण् । णवरि मिच्छ०मंक्राम० सोलमक०-णवणोक०अमंक्राम० लोयस्म

मिथ्यात्वके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष प्रकृतियोंके संक्रामकोंने और तीन दर्शनमोहनीयके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे भाग क्षेत्रका तथा त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम एक भाग, कुछ कम दो भाग, कुछ कम तीन भाग, कुछ कम चार भाग, कुछ कम पांच भाग और कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कके असंक्रामकोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है ।

§ १३५. तिर्यचोमें मिथ्यात्वके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । असंक्रामकोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकों और असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे भाग और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकोंने सब लोकका स्पर्श किया है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है ।

§ १३६ पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिकमें मिथ्यात्वके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे भाग और त्रसनलीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष प्रकृतियोंके संक्रामकोंने और तीन दर्शनमोहनीयके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे भाग और सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है ।

§ १३७. पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकों और असंक्रामकोंने तथा सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे भाग और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । यहां मिथ्यात्वके असंक्रामकोंका भी यही भंग है । अर्थात् मिथ्यात्वके असंक्रामकोंने भी लोकके असंख्यातवे भाग और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्व के संक्रामकोंने तथा सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे

१. आ०प्रतो मिच्छ० अमंखे० एमो इति पाठः ।

अमंखे०भागो ।

§ १३८. देवेसु मिच्छ०मंका० लोयस्म अमंखे०भागो अट्ट चोदस० देसूणा । सेमपयडीणं मंका० दंमणतियअमंका० लो० अमंखे०भागो अट्ट णव चोद० देसूणा । अणंताणु०४अमंका० लो० अमंखे०भागो अट्ट चोदस० देसूणा । एवं भवण०-वाणवेत्तर-जोइमिएसु । णवरि मगपोमणं कायव्वं ।

§ १३९. मोहस्मीमाण० देवोवं । मणक्कुमागदि जाव महस्मार त्ति अट्टावीमं-पयडीणं मंका० दंमणतिय-अणंताणु०४अमंका० लोयस्म अमंखे०भागो अट्ट चोद० देसूणा । आणदादि जाव अचुदा त्ति अट्टावीमं पयडीणं मंका० दंमणतिय-अणंताणु०-४ अमंका० लो० अमंखे०भागो छ चोदस० देसूणा । उवरि खेत्तभंगो । एवं जाव० ।

❧ णाणाजीवेहि कालो ।

§ १४०. सुगममेदमहियारमंभालणमुत्तं ।

❧ सव्वकम्ममाणं संकामथा केवचिरं कालादो होति ?

§ १४१. एदं पि मुत्तं सुगमं ।

भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ १३८. देवोंमें मिथ्यात्वके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातव भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष प्रकृतियोंके संक्रामकोंने और तीन दर्शनमोहनीयके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातव भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ तथा कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातव भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग-प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार भवनवामी, व्यन्तर और ज्योतिषो देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपना अपना स्पर्श कहना चाहिये ।

§ १३९. सौधर्म और पेशान कल्पमें सामान्य देवोंके समान स्पर्श है । सनत्कुमारसे लेकर सहस्त्रार कल्प तकके देवोंमें अट्टाईस प्रकृतियोंके संक्रामकोंने तथा तीन दर्शनमोहनीय और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातव भागप्रमाण और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । आनतसे लेकर अच्युत कल्प तकके देवोंमें अट्टाईस प्रकृतियोंके संक्रामकोंने तथा तीन दर्शनमोहनीय और अनन्तानुबन्धी चतुष्कके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातव भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अच्युत स्वर्गसे ऊपर स्पर्श क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार अनाहारको तक जानना चाहिये ।

* अब नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका अधिकार है ।

§ १४०. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि कि इस द्वारा केवल अधिकारकी संभाल की गई है ।

* सब कर्मोंके संक्रामक जीवोंका कितना काल है ।

§ १४१. यह सूत्र भी सुगम है ।

१. ता० प्रती होइ इति पाठः ।

❀ सव्वद्धा ।

§ १४२. णाणाजीवे पडुच्च सव्वकम्मणं संकामयपवाहस्स सव्वकालं वोच्छेदा-
दंमणादो ।

§ १४३. मंपहि देसामामियसुत्तेणेदेण सूचिदासेमपरूवणदुमुच्चारणं वत्तइस्सामो ।
तं जहा—कालाणुगमेण दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण अट्टावीमंपयडीणं
मंकामया केवचिरं ? सव्वद्धा । मिच्छं०-मम्मं०अमंकामया सव्वद्धा । मम्मामि०-
अणंताणु०चउक्कअमंका० जहं० एगममओ ममयुणावलिया, उक्क० पल्लिदो० अमंवे०-
भागो । वारमक०-णवणोक०अमंका० जहं० एगमं०, उक्क० अंतोमु० । एवं चदुमु मदीमु ।
णवणि मणुमगदिवदिग्गिसेमगदीमु वारमक०-णवणोक०अमंकामया णत्थि । अणंताणु०-
अमंका० जहं० एगममओ । मणुमतिए अणंताणु०अमंका० जहं० एगममओ, उक्क०
अंतोमुहुत्तं । मणुमपज्ज०-मणुमिणीमु मम्मामि०अमंका० जहं० एगममओ, उक्क०
अंतोमुहुत्तं । पंचिदियनिग्गिस्वअपज्ज०-अणुहिमाटि जाव सव्वद्धा चि मत्तावीमं पयडीणं
संका० केव० ? सव्वद्धा । सव्वद्धे० अणंताणु०चउक्क०अमंकामया जहं० ममयुणावलिया,
उक्क० अंतोमु० । मणुमअपज्ज० मम्मं०-ममामि०अमंका०-अमंका० जहं० एगमं०, उक्क०

❀ सर्वदा काल है

§ १४२. क्योंकि नाना जीवोंकी अपेक्षा सब कर्मोंके संक्रम करनेवाले जीवोंके प्रवाहका
कभी भी विच्छेद नहीं देखा जाता है ।

§ १४३. यतः यह सूत्र देशामर्षक है, अतः इससे सूचित होनेवाले अयोग अर्थका कथन
करनेके लिये उच्चारणको वननाते हैं । यथा—कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ-
निर्देश और आदेशनिर्देश । अथमे अट्टाईम प्रकृतियोंके संक्रामक जीवोंका कितना काल है ?
सब काल है । मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके असंक्रामक जीवोंका सब काल है । सम्यग्मिथ्यात्वके
असंक्रामक जीवोंका जघन्य काल एक समय है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कके असंक्रामक जीवोंका
जघन्य काल एक समयकम एक आवालि है । तथा इन दोनोंके असंक्रामक जीवोंका उत्कृष्ट काल
पन्थके असंख्यातवे भागप्रमाण है । वारह कपाय और नौ नाकपायोंके असंक्रामकोंका जघन्य
काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये ।
किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिके सिवा शेष गतियोंमें वारह कपाय और नौ नाकपायोंके
असंक्रामक जीव नहीं है । किन्तु उनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामक जीवोंका जघन्य काल
एक समय है । मनुष्यत्रिकमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामक जीवोंका जघन्य काल एक
समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्यपयाप्त और मनुष्यनियोंमें सम्यग्मिथ्यात्वके
असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च
अपयाप्त और अनुदिशमें लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामकोंका
कितना काल है ? सब काल है । सर्वार्थसिद्धिमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका जघन्य
काल एक समय कम एक आवालि है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्य अपयाप्तकोंमें
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकों और असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है तथा

पलिदो० अमंखे०भागो । मोलमक०-णवणोक०मंक्राम० जह० खुदाभव०, उक०
पलिदो० अमंखे०भागो । एवं जाव० ।

उत्कृष्ट काल पत्यके अमंख्यातवे भागप्रमाण है । सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकोंका जघन्य काल खुदाभवग्रहणप्रमाण है तथा उत्कृष्ट काल पत्यके अमंख्यातवे भागप्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—नाना जीवोंकी अपेक्षा अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता और यथासम्भव उनका बन्ध सदा पाया जाता है अतः ओघसे सब प्रकृतियोंके संक्रमका काल सर्वदा कहा है । किन्तु असंक्रमकी अपेक्षा कुछ विशेषता है । वात यह है कि मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता है और सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें सम्यक्त्वका संक्रम नहीं होता है, किन्तु इन दोनों गुणस्थानवाले जीव सदा पाये जाते हैं अतः मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके असंक्रामकोंका काल भी सर्वदा कहा है । सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम सामादन और मित्र गुणस्थानमें नहीं होता है, किन्तु नाना जीवोंकी अपेक्षामें भी सामादनका जघन्य काल एक समय है, अतः सम्यग्मिथ्यात्वके असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय कहा है । जिन्होंने अनन्तानुबन्धीकी विमंयोजना की है उनके अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विमंयोजना करते समय अन्तमें एक समय कम एक आवृत्ति काल तक अनन्तानुबन्धीका संक्रम नहीं होता । इसीसे अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय कम एक आवृत्तिप्रमाण कहा है । सामादन या सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका उत्कृष्ट काल पत्यके अमंख्यातवे भागप्रमाण है । इसीसे सम्यग्मिथ्यात्वके असंक्रामकोंका उत्कृष्ट काल पत्यके अमंख्यातवे भागप्रमाण कहा है । जिन्होंने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विमंयोजना की है ऐसे जीव मिथ्यात्वमें या सामादनमें गये और वहाँ अनन्तानुबन्धीके संक्रामक होनेके पूर्व ही अन्य इसी प्रकारके जीव वहाँ उत्पन्न हुए । इस प्रकार ऐसे जीव वहाँ उक्त प्रकारसे यदि निरन्तर उत्पन्न होते रहे तो पत्यके अमंख्यातवे भागप्रमाण काल तक ही उत्पन्न हो सकते हैं इससे आग नहीं, इसीसे यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका उत्कृष्ट काल पत्यके अमंख्यातवे भागप्रमाण कहा है । बारह कपायों और नौ नोकपायोंके असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय उपशमश्रेणिमें मरणकी अपेक्षा से और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त पत्यके प्रकृतिके उत्कृष्ट उपशमकालकी अपेक्षासे कहा है । आशय यह है कि नाना जीवोंने उक्त प्रकृतियोंका उपशम क्रिया और जिस समय जिस प्रकृतिका उपशम क्रिया उसके दूसरे समयमें मरकर उनके देव हो जाने पर उक्त प्रकृतियोंके असंक्रमका जघन्य काल एक समय प्राप्त हो जाता है । इसी प्रकार निरन्तरक्रमसे नाना जीवोंने उक्त प्रकृतियोंका यदि उपशम क्रिया तो भी उस उपशमकालका जोड़ अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं प्राप्त होता, इसलिये उक्त प्रकृतियोंके असंक्रमका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं होता । निरनलिखित कुछ अपवादोंको छोड़कर यह ओघ व्यवस्था चारों गतियोंमें भी बन जाती है । अब कहा क्या अपवाद हैं उनका मकारण उल्लेख करते हैं—उपशमश्रेणिकी प्राप्ति मनुष्यगतिमें ही सम्भव है अतः मनुष्यगतिके सिवा शेष तीन गतियोंमें बारह कपाय और नौ नोकपायोंके असंक्रामकोंका निषेध क्रिया है । चारों गतियोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका जो जघन्य काल एक समय बनलाया है सो वह गति परिवर्तनकी अपेक्षासे बतलाया है । उदाहरणार्थ नरकगतिमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामक नाना जीव एक समय तक रहे और वे दूसरे समयमें मरकर अन्य गतिमें चले गये तो नरकगतिमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय बन जाता है । इसी प्रकार शेष तीन गतियोंमें उक्त काल घटित कर लेना चाहिये । या ऐसे नाना

❀ एणाजीवेहि अंतरं ।

§ १४४. मुगममेदं, अहियारमंभालणमेत्तवावारादो ।

❀ सच्चकम्मसंक्रामयाणं एत्थि अंतरं ।

§ १४५. एदस्स विवरणमुच्चारणामुहेण वत्तइस्सामो । तं जहा—अंतराणुगमेण

जीव, जो एक समयवाद अनन्तानुबन्धीचतुष्कका संक्रम करेंगे, देव, मनुष्य या तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न हुए हैं तो इनकी अपेक्षासे भी उक्त एक समय काल प्राप्त हो जाता है, क्योंकि नरकगतिमें सासादनवाला उत्पन्न नहीं होता और मिथ्यात्वमें जाकर सयोजना करनेवालेका अन्तर्मुहूर्तमें पहिले मरण नहीं होता। यद्यपि सामान्य मनुष्योंकी संख्या असंख्यात है पर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले मनुष्यत्रिककी संख्या संख्यात ही है। ऐसे जीव यदि मिथ्यात्व और सासादनमें इस क्रमसे उत्पन्न हों जिमसे वहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्कके ऋसंक्रामकोंका नैरन्तर्य बना रहे तो ऐसे कालका जोड़ अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं हो सकता, अतः उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अमंक्रामकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनिर्णयोंमें सम्यग्मिथ्यात्वके असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त कर लेना चाहिये, क्योंकि यहाँ नानाजीवोंकी अपेक्षा सासादनका जघन्य काल एक समय और सासादन या सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होता है। पंचेन्द्रिय तिर्यच अर्याप्रकोंके एक मिथ्यार्वाष्ट्र गुणस्थान होनेसे इनके मिथ्यात्वका संक्रम सम्भव नहीं और अनुदिशसे लेकर स्वार्थमिद्धि तकके देवोंमें एक अचिरतमस्यग्दृष्टि गुणस्थान होनेसे इनके सम्यक्त्वका संक्रम सम्भव नहीं, इसीसे इनके सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रमका उल्लेख किया है। स्वार्थमिद्धिमें संख्यात जीव ही होते हैं, अतः वहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अमंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय कम एक आवलि और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। मनुष्य अपेक्षा यह सान्तर मार्गणा है। इसका जघन्य काल खुदाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल पन्थके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः यहाँ सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकोंका उत्कृष्ट काल ता पन्थके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है किन्तु जघन्य कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि ऐसे नाना जीव जिन्हें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रममें एक समय शेष है, लब्धपथाप्त मनुष्योंमें उत्पन्न हुए और फिर द्वितीयादि समयोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम करनेवाले अन्य जीव नहीं उत्पन्न हुए तो ऐसी हालतमें लब्धपथाप्त मनुष्योंमें इन दो प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय बन जाता है। इसी प्रकार इन दो प्रकृतियोंके अमंक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित करना चाहिये। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक अपनी अपनी विशेषताको समझकर यथासम्भव प्रकृतियोंके संक्रामकों और अमंक्रामकोंका काल कहना चाहिये।

❀ अत्र नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर्कालका अधिकार है ।

§ १४४. यद् मूत्र मुगम है, क्योंकि इसका काम एक मात्र अधिकारकी मंहाल करना है ।

❀ एत्तं नृणोके संक्रामकोंका अन्तरकाल तद्गं है ।

§ १४५ अत्र उच्चारणा द्वारा इस मूत्रका विवरण करते हैं । यथा—अन्तरानुगमकी अपेक्षा

दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मच्चपयडीणं मंकायणं णत्थि अंतरं । एवं चदुसु गदीसु । णवरि मणुमअपज्ज० मत्तावीसं पयडीणं मंकायणं जह० एगममओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । एवं जाव० । णवरि मच्चत्थ जहागंभवं अमंकायण-मंतरं^१ गवेसणिज्जं, सच्चिस्से परूवणाए सप्पडिवक्खत्तदंसणादो^२ ।

❀ सण्णियासो ।

§ १४६. एत्तो सण्णियासो कीरदि ति भणितं होइ । तस्म दुविहो णिद्देसो ओघादेसभेदेण । तत्थोघपरूवणइमाह—

❀ मिच्छत्तस्स संकामओ सम्मामिच्छत्तस्स सिया संकामओ सिया असंकामओ ।

§ १४७. तं जहा—मिच्छत्तस्स संकामओ णाम अणावलियपविट्ठमंतकम्मिओ वेदयग्ग्माइट्ठी उवगमसग्ग्माइट्ठी च णिराणाणो । गो च सम्मामिच्छत्तमंकमे भज्जो,

निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे सब प्रकृतियोंके संक्रामकोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्रकोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पत्त्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र यथासंभव अमक्रामकोंके अन्तरका विचारकर कथन करना चाहिये, क्योंकि सभी प्ररूपणा सप्रतिपत्त देखी जाती है ।

विशेषार्थ—ओघसे सब प्रकृतियोंके संक्रामकोंका सर्वदा सदभाव होनेसे इनके अन्तरकालका निषेध किया है । यही बात चारों गतियोंमें भी जानना चाहिये । किन्तु लच्छ्यपर्याप्र मनुष्य यह मान्तर मार्गणा है और उसका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्त्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अतः इसमें जिन सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रम सम्भव है उनके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्त्यके असंख्यातवें भागप्रमाण वतलाया है । इसीप्रकार अपनी-अपनी विशेषताको जानकर अन्य मार्गणाओंमें अन्तरकाल जानना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

❀ अब सन्निकर्षका अधिकार है ।

§ १४६. अब इसके आगे सन्निकर्षका विचार करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश निर्देश । उनमेंसे ओघका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ मिथ्यात्वका संक्रामक सम्यग्मिथ्यात्वका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है ।

§ १४७. जिसके मिथ्यात्वकी सत्ता उदयावलिके भीतर प्रविष्ट नहीं हुई है वह वेदक-सम्यग्दृष्टि जीव तथा सामादनके बिना उपशमसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वका संक्रामक होता है । इसके सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम भजनीय है, क्योंकि प्रथमोपशम सम्यक्त्वके उत्पन्न होनेके प्रथम

१. आ०प्रतो -संभवं संकामयाणमंतरं इति पाठः । २. ता० -आ०प्रत्योः सव्वपयडिवक्खत्तदंसणादो इति पाठः ।

पहममम्मत्तुप्पाइयपहमममए तदभावादो । अण्णत्थ मच्चत्थ वि तद्वलंभादो ।

❀ सम्मत्तस्स असंकामओ ।

§ १४८. कुदो ? दोण्हं परोप्परपरिहारेणावड्ढित्तादो । एत्थ मिच्छत्तस्स संकामओ त्ति अहियाग्गमंबंधो कायच्चो । सुगममण्णं ।

❀ अणंताणुबंधीणं सिया कम्मंसिओ मिया अकम्मंसिओ । जदि कम्मंसिओ सिया संकामओ सिया असंकामओ ।

§ १४९. एत्थ वि पुच्चं व अहियाग्गमंबंधो कायच्चो, तेण मिच्छत्तसंकामओ मग्गाइट्ठी अणंतणुबंधिचउकम्म मिया कम्मंसिओ । तेमिमविसंजोयणाए मिया अकम्मंसिओ, विसंजोयणाए णिसंतीकरणस्स वि मंभवादो । तत्थ जइ कम्मंसिओ तो तेमि संकमे भयणिओ, आवलियपविट्ठगंतकम्मियम्मि तदणुवलंभादो इयग्गत्थ वि तद्वलंभादो त्ति मुत्तथो ।

❀ सेसाणमेक्कवीसाए कम्माणं सिया संकामओ सिया असंकामओ ।

§ १५०. एत्थ वि पुच्चं व अहियाग्गमंबंधो । कथमेदेमिमसंकामयत्तमेदस्स चे ? समयमे सम्यग्गिमिथ्यात्वका संक्रम न होकर वह अन्यत्र सर्वत्र पाया जाता है ।

* वह सम्यक्त्वका असंकामक है ।

§ १४८. क्योंकि ये दोनों संक्रम एक दूसरेके अभावमे पाये जाते हैं । आशय यह है कि मिथ्यात्वका संक्रम सम्यग्गृष्टि जीवके होता है और सम्यक्त्वका संक्रम मिथ्यागृष्टि जीवके होता है, अतः इनका एक साथ पाया जाना सम्भव नहीं है । इस सूत्रमे 'मिच्छत्तस्स संकामओ' इस पदका अधिकारवश सम्बन्ध कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

* उमके अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी कदाचित् सत्ता है और कदाचित् सत्ता नहीं है । यदि सत्ता है तो वह अनन्तानुबन्धीचतुष्कका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंकामक है ।

§ १४९. यहां भी पूर्ववत् अधिकारवश 'मिच्छत्तस्स संकामओ' पदका सम्बन्ध कर लेना चाहिये । इसलिये यह अर्थ हुआ कि मिथ्यात्वका संक्रामक जो सम्यग्गृष्टि जीव है वह जब तक अनन्तानुबन्धियोंकी विमंयोजना नहीं हुई है तब तक उनकी सत्तावाला है और अनन्तानुबन्धियोंकी विमंयोजना होकर अभाव हो जानेपर उनकी सत्तासे रहित है । अब यदि सत्तावाला है तो उमके इनका संक्रम भजनीय है, क्योंकि अनन्तानुबन्धियोंकी सत्ता आवलिके भीतर प्रविष्ट हो जानेपर उनका संक्रम नहीं पाया जाता । किन्तु अन्यत्र पाया जाता है यह इस सूत्रका अर्थ है । तात्पर्य यह है कि ऐसे जीवके विमंयोजनाकी अन्तिम फालिके पतनके समय एक समय कम एक आवलि काल तक अनन्तानुबन्धीका संक्रम नहीं होता ।

* वह शेष इकीम प्रकृतियोंका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंकामक है ।

§ १५०. यहां भी पूर्ववत् अधिकारवश 'मिच्छत्तस्स संकामओ' पदका सम्बन्ध कर लेना चाहिये ।

मच्चोवममकरणे । ण च सच्चोवणोवमंताणं मंकममंभवो, विरोहादो^१ । जइ एवं, मिच्छत्तम्मस वि तत्थ मंकमो मा होउ, उवमंतत्तं पडि विसेसाभावादो त्ति ? ण, दंमणतियम्मि उदयाभावो चेव उवसमो त्ति गहणादो ।

§ १५१. एवं मिच्छत्तणिकंभणेण सेसपयडीणमोघेण सण्णियामं काऊण मम्मत्त-सम्माभिच्छत्तादीणमप्पणं कुणमाणो उत्तरमुत्तं भणइ ।

❀ एवं सण्णियासो कायड्वो ।

§ १५२. एवमेदीए दिसाए सेमकम्माणं^२ पि सण्णियामो^३ णेदच्चो त्ति भणिदं होइ ।

शंका—मिथ्यात्वका संक्रामक जीव उक्त इक्कीस प्रकृतियोंका असंक्रामक कैसे है ?

समाधान—उक्त इक्कीस प्रकृतियोंका सर्वोपशम हो जानेपर वह उनका असंक्रामक होता है । यदि कहा जाय कि जिन प्रकृतियोंका सर्वोपशम हो गया है उनका भी संक्रम सम्भव है सो यह बात नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है ।

शंका—यदि ऐसा है तो मिथ्यात्वका भी वहाँ संक्रम मत होओ। क्योंकि उपशान्तपनेकी अपेक्षा उनसे इसमें कोई विशेषता नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंमें उनका उदयमें न आना ही उपशम है यह अर्थ लिया गया है ।

विशेषार्थ—सूत्रमें यह बतलाया है कि जो मिथ्यात्वका संक्रामक है वह कदाचिन् अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क आदि २१ प्रकृतियोंका संक्रामक है और कदाचिन् अमंक्रामक । जब तक इन इक्कीस प्रकृतियोंका उपशम नहीं होता तब तक संक्रामक है और उपशम हो जानेपर अमंक्रामक है । इस पर यह शंका हुई कि जो द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि २१ प्रकृतियोंका उपशम करता है उसके दर्शनमोहनीयत्रिकका भी उपशम रहता है, अतः जैसे उसके २१ प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता वैसे मिथ्यात्वका भी संक्रम नहीं होना चाहिये, इसलिये मिथ्यात्वका संक्रामक उक्त २१ प्रकृतियोंका असंक्रामक भी है यह कहना नहीं बन्ता है । इस शंकाका जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका उदयमें न आना यही उनका उपशम है, अतः उनका उपशम रहते हुए भी संक्रम बन जाता है इसलिये चूर्णिसूत्रकारने जो यह कहा है कि 'जो मिथ्यात्वका संक्रामक है वह शेष २१ प्रकृतियोंका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् असंक्रामक है' सो इस कथनमें कोई बाधा नहीं आती है । आशय यह है कि उपशमनाके विधानानुसार २१ प्रकृतियोंका सर्वोपशम होता है किन्तु तीन दर्शनमोहनीयका उपशम हो जाने पर भी उनका यथासम्भव संक्रम और अपकर्षण ये दोनों क्रियाएँ होती रहती है, अतः उक्त कथन बन जाता है ।

§ १५१. इस प्रकार मिथ्यात्वको विवक्षित करके शेष प्रकृतियोंका ओघसे सन्निकर्ष बतला कर अब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंको प्रधान करके आगेका सूत्र कहते हैं ।

* इसी प्रकार शेष कर्मोंका सन्निकर्ष करना चाहिये ।

§ १५२. इस प्रकार इसी पद्धतिसे शेष कर्मोंके सन्निकर्षका भी कथन करना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

१ ता० प्रती -मंभवाविरोहादो इति पाठः । २ आ० प्रती एवमेदीए सेमकम्माणं इति पाठः । ३ ता० प्रती -कम्माणं सण्णियामो इति पाठः ।

§ १५३. मंपहि एदेण मुत्तेण सचिदत्थविवरणदुमुच्चारणं वत्तइम्मामो । तं जहा—सम्मत्तम्म मंकांमओ मिच्छ० अमंका० । सम्मामि०-वारमक०-णवणोक्क० णियमा मंकांमओ । अणंताणु०चउक्कम्म मिया मंकांमओ मिया अमंकांमओ ।

§ १५४. सम्मामि० मंकांमैतो मिच्छ०-सम्म०-अणंताणु०४ मिया अत्थि मिया णत्थि । जइ अत्थि, मिया संका० मिया अमंका० । वारमक०-णवणोक्क० मिया मंका० मिया अमंका० ।

१५३. अब इस सूत्रसे सूचित होनेवाले अर्थका विवरण करनेके लिये उच्चारणाको बतलाते हैं। यथा—जो सम्यक्त्वका संक्रामक है वह मिथ्यात्वका असंक्रामक है; सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंका नियमसे संक्रामक है तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् असंक्रामक है।

विशेषार्थ—सम्यक्त्वका संक्रम मिथ्यात्वमें होता है किन्तु वहां मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता अतः जो सम्यक्त्वका संक्रामक है वह मिथ्यात्वका असंक्रामक है यह कहा है। सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंका संक्रम सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनोंके होता है, अतः सम्यक्त्वके संक्रामकको उक्त प्रकृतियोंका संक्रामक नियमसे बतलाया है। यद्यपि अनन्तानुबन्धीचतुष्कका संक्रम सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनोंके होता है तथापि जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्कको विमंयोजना की है उसके मिथ्यात्वमें आनेपर एक आवलिकालतक उनका संक्रम नहीं होता। अतः सम्यक्त्वके संक्रामकको अनन्तानुबन्धीचतुष्कका कदाचिन् संक्रामक और कदाचिन् असंक्रामक बतलाया है।

§ १५४ जो सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका कदाचिन् सत्त्व है और कदाचिन् सत्त्व नहीं है। यदि सत्त्व है तो वह उनका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् असंक्रामक है। वारह कपाय और नौ नोकपायोंका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् असंक्रामक है।

विशेषार्थ—सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम करनेवाले जिसने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विमंयोजना की है और जो दर्शनमोहनीयकी क्षण करत हुए मिथ्यात्वका क्षय कर चुका है उसके अनन्तानुबन्धीचतुष्क और मिथ्यात्वका सत्त्व नहीं पाया जाता। तथा जो सम्यक्त्वकी उद्वेलनाकर चुका है उसके भी सम्यक्त्वकी सत्ता नहीं पाई जाती है। किन्तु इसके अतिरिक्त सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम करनेवाले शेष सब जीवोंके उक्त प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है। सो यह जाव इन प्रकृतियोंका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् असंक्रामक है। मिथ्यात्वका मिथ्यात्व गुणस्थानमें असंक्रामक है और सम्यग्दृष्टि अवस्थामें संक्रामक है। सम्यक्त्वका सम्यग्दृष्टि अवस्थामें असंक्रामक है मिथ्यात्व गुणस्थानमें संक्रामक है। अनन्तानुबन्धीका दो स्थानोंमें असंक्रामक है। शेष सब जगह संक्रामक है। एक तो जब विमंयोजना करते हुए अनन्तानुबन्धीकी सत्ता आवलि-प्रविष्ट हो जाती है तब असंक्रामक है और दूसरे जिसने अनन्तानुबन्धीकी विमंयोजना की है ऐसा जीव जब मिथ्यात्वमें जाता है तब एक आवलि काल तक असंक्रामक है। इसी प्रकार वारह कपाय और नौ नोकपायोंका उपशम होनेके पूर्व संक्रामक है और उपशम होने पर असंक्रामक है। किन्तु लोभसंज्वलनका आनुपूर्वी संक्रमणके प्रारम्भ होनेपर असंक्रामक है। लोभसंज्वलनसम्बन्धी इस विशेषताका अन्यत्र जहां कहीं उल्लेख न किया हो वहाँ भी इसी प्रकार जान लेना चाहिये।

§ १५५. अणंताणुबंधिकोधं संक्रामंतो मिच्छ० सिया संक्रा० सिया अमंक्रा० । मम्म०-मम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि, सिया संक्राम० सिया असंक्राम० । पण्णाग्मक०-णवणोक० णियमा संक्रामओ । एवं तिण्हमणंताणुबंधि-कमायाणं ।

§ १५६. अपच्चक्खाणकोधं संक्रामंतो मिच्छ०-मम्म०-मम्मामि०-अणंताणु०४ सिया अत्थि सिया णत्थि । जइ अत्थि, सिया संक्राम० सिया अमंक्राम० । दस-कमायाणं णियमा संक्रामओ । लोभमंजलण-णवणोकमायाणं सिया संक्राम० सिया अमंक्राम० । एवं पच्चक्खाणकोधं ।

§ १५५ जो अनन्तानुबन्धी क्रोधका संक्रामक है वह मिथ्यात्वका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् अमंक्रामक है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कदाचिन् है और कदाचिन् नहीं है । यदि है तो उनका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् असंक्रामक है । किन्तु पन्द्रह कपाय और नौ नोकपायोंका नियमसे संक्रामक है । मान आदि तीन अनन्तानुबन्धियोंका इस प्रकार कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—अनन्तानुबन्धीका संक्रम मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनोंके सम्भव है किन्तु मिथ्यात्वका संक्रम केवल सम्यग्दृष्टिके ही होता है, अतः जो अनन्तानुबन्धी क्रोधका संक्रामक है वह मिथ्यात्वका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् असंक्रामक है यह कहा है । जो अनादि मिथ्यादृष्टि है या जिस मिथ्यादृष्टिने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर दी है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व नहीं हैं शेषके हैं । तथा सात्मादन और मिश्र गुणस्थानमें तो इनका मद्भाव नियमसे है । किन्तु एक तो इन दोनों गुणस्थानोंमें दर्शनमोहनीयकी प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता और दूसरे उद्वेलनाके अन्तमें जब इनकी सत्ता आवालिसे भीतर प्रविष्ट हो जाती है तब इनका संक्रम नहीं होता, अतः 'जो अनन्तानुबन्धीका संक्रामक है वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् संक्रामक नहीं है' यह कहा है । यहाँ इतना विशेष और जानना चाहिये कि सम्यक्त्वका संक्रम सम्यग्दृष्टि अवस्थामें नहीं होता है । शेष कथन सुगम है ।

§ १५६ जो अपत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्क कदाचिन् है और कदाचिन् नहीं है । यदि है तो इनका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् असंक्रामक है । तथापि अपत्याख्यानावरण मान आदि दश कपायोंका नियमसे संक्रामक है । किन्तु लोभ संज्वलन और नौ नोकपायोंका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् असंक्रामक है । इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रम करने-वाले जीवके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जिस जीवने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना और तीन दर्शनमोहनीयका क्षय कर दिया है उस अपत्याख्यानावरणक्रोधके संक्रामकके ये सात प्रकृतियां नहीं पाई जातीं, शेषके पाई जाती हैं । उममें भी सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्त्वके सम्बन्धमें और भी कई नियम हैं जिनका यथायोग्य पहले विवेचन किया ही है उमी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये । इन सात प्रकृतियोंका सत्त्व रहने पर भी अवस्था विशेषमें इनका संक्रम होता है और अवस्था विशेषमें इनका संक्रम नहीं होता, अतः जो अपत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रामक है वह इनका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् संक्रामक नहीं है यह कहा है । अन्तरकरण करनेके बाद

§ १५७. अपचक्रखाणमाणं संकामंतो मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०
चउक्काणमपचक्रखाणकोहभंगो । सत्तकमायाणं णियमा संकामओ । चत्तारिकसाय-
णवणोकमायाणं मिया संकाम० मिया अमंकाम० । एवं पचक्रखाणमाणं ।

§ १५८. अपचक्रखाणमायं संकामंतो मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०
चउक्काणमपचक्रखाणकोहभंगो । चत्तारि कमायाणं णियमा संकामओ । सत्तक०-
णवणोक० मिया संकाम० मिया अमंकाम० । एवं पचक्रखाणमायं ।

§ १५९. अपचक्रखाणलोभं संकामंतो दंमणतिय-अणंताणुवंधिचउक्काणमपच-

आनुपूर्वी संक्रम चालू हो जानेसे लोभमंज्वलनका संक्रम नहीं होता और अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका उपशम होनेके पूर्व ही नौ नोकपायोंका उपशम हो जाता है ऐसा नियम है, अतः अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रम चालू रहते हुए भी उक्त दस प्रकृतियोंका संक्रम होना रुक जाता है। इसीसे यहाँ पर जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रामक है वह उक्त प्रकृतियोंका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् असंक्रामक है यह कहा है। किन्तु इसके शेष अप्रत्याख्यानावरण मान आदि दस कपायोंका संक्रम अवश्य होता रहता है, क्योंकि अप्रत्याख्यानावरण क्रोधसे पहले न तो इन दस प्रकृतियोंका अभाव ही होता है और न उपशम ही होता है। प्रत्याख्यानावरण क्रोधकी स्थिति अप्रत्याख्यानावरण क्रोधसे मिलती जुलती है अतः इन दोनोंका कथन एक समान कहा है।

§ १५७. जो अप्रत्याख्यानावरण मानका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान है। तथापि यह सात कपायोंका नियमसे संक्रामक है। तथा चार कपाय और नौ नोकपायोंका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् असंक्रामक है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण मानका संक्रम करनेवाले जीवके विषयमें जानना चाहिये।

विशेषार्थ—अप्रत्याख्यानावरण मानके पहले अप्रत्याख्यानावरण माया और लोभ, प्रत्याख्यानावरण मान, माया और लोभ तथा संज्वलन मान और माया इन सात प्रकृतियोंका उपशम नहीं होता, अतः इन प्रकृतियोंका यह जीव नियमसे संक्रामक है यह कहा है। शेष कथन सुगम है।

§ १५८. जो अप्रत्याख्यानावरण मायाका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान है। तथापि यह चार कपायोंका नियमसे संक्रामक है। तथा सात कपाय और नौ नोकपायोंका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् असंक्रामक है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण मायाका संक्रम करनेवाले जीवके विषयमें जानना चाहिये।

विशेषार्थ—अप्रत्याख्यानावरण मायासे पहले अप्रत्याख्यानावरण लोभ, प्रत्याख्यानावरण माया और लोभ तथा संज्वलन माया इन चार प्रकृतियोंका उपशम नहीं होता, अतः इन प्रकृतियोंका यह जीव नियमसे संक्रामक है यह कहा है। शेष कथन सुगम है।

१५९. जो जीव अप्रत्याख्यानावरण लोभका संक्रम करता है उसके तीन दर्शनमोहनीय

कम्पाणकोधभंगो । पच्चक्खाणलोभं णियमा संकामेइ । दमकसाय-णवणोकसायाणं मिया संकामओ मिया अमंकाम० । एवं पच्चक्खाणलोभं ।

§ १६०. क्रोधसंजलणं संकामंतो भिच्छ०-मम्म०-सम्माभि०-वाग्गसक०-णवणोक० मिया अत्थि मिया णत्थि । जइ अत्थि, सिया संका० मिया अमंका० । दोणहं संजलणाणं णियमा संकामओ । लोभमंजलणस्स मिया संकाम० मिया अमंका० ।

§ १६१. माणमंजलणं संकामंतो मायामंजलणस्स णियमा संकामओ । लोभ-संजल० मिया संका० मिया अमंका० । सेंमं मिया अत्थि सिया णत्थि । जइ अत्थि, मिया संकाम० मिया अमंका० ।

§ १६२. मायामंजलणं संकामंतो लोभमंजल० सिया संका० सिया असंका० ।

और चार अनन्तानुबन्धियोंका भंग अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान है । यह प्रत्याख्यानावरण लोभका नियमसे संक्रामक है । तथा दस कपाय और नौ नोकपायोंका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् असंक्रामक है । इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण लोभका संक्रम करनेवाले जीवके विषयमें भी जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—अप्रत्याख्यानावरण लोभ और प्रत्याख्यानावरण लोभ इनका उपशम एक साथ होता है । अतः एकका संक्रामक दूसरेका संक्रामक नियमसे है यह कहा है । शेष कथन सुगम है ।

§ १६०. जो क्रोधमंज्वलनका संक्रम करता है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपाय इनका सत्त्व कदाचिन् है और कदाचिन् नहीं है । यदि है तो इनका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् असंक्रामक है । किन्तु यह द्वा संज्वलनोंका नियमसे संक्रामक है । लोभमंज्वलनका कदाचिन् संक्रामक है कदाचिन् असंक्रामक है ।

विशेषार्थ—क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा क्रोधसंज्वलनवालेके मिथ्यात्व आदि २४ प्रकृतियोंका सत्त्वनाश हो जाता है यह स्पष्ट ही है । अतः क्रोधसंज्वलनके संक्रामकके उक्त चौबीस प्रकृतियों कदाचिन् हैं और कदाचिन् नहीं हैं यह बात बन जाती है । इन प्रकृतियोंका सत्त्व रहने पर भी यथायोग्य स्थानमें इनका संक्रम नहीं होता, अन्यत्र होता है, अतः जो संज्वलन क्रोधका संक्रामक है वह उक्त चौबीस प्रकृतियोंका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् असंक्रामक है, यह कहा है । किन्तु इस जीवके संज्वलन मान और मायाका सत्त्वनाश या उपशम पीछेसे होता है, अतः यह इन दोनों प्रकृतियोंका नियमसे संक्रामक है । तथा लोभसंज्वलनका आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ होनेके पूर्वतक संक्रामक है और उसके बाद असंक्रामक है ।

§ १६१. जो मान संज्वलनका संक्रामक है वह माया संज्वलनका नियमसे संक्रामक है । वह लोभसंज्वलनका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् असंक्रामक है । इसके शेष प्रकृतियाँ कदाचिन् है और कदाचिन् नहीं हैं । यदि है तो उनका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् असंक्रामक है ।

विशेषार्थ—मानसंज्वलनके संक्रामकके एक माया संज्वलन ही ऐसी प्रकृति बचती है जिसका वह नियमसे संक्रम करता है । शेष कथनका खुलासा पूर्ववत् जानना चाहिये ।

§ १६२. जो माया संज्वलनका संक्रामक है वह लोभ संज्वलनका कदाचिन् संक्रामक है

सेमं मिया अत्थि मिया णत्थि । जदि अत्थि, मिया मंका० सिया अमंका० ।

§ १६३. लोभमंजलणं मंकांमंतो मिच्छ०-मम्म०-सम्मामि०-वारमक० मिया अत्थि मिया णत्थि । जइ अत्थि, मिया मंका० सिया अमंका० । तिण्हं मंजलणाणं णवणोकमायाणं च णियमा मंकांमओ ।

§ १६४. इत्थिवेदं मंकांमंतो मिच्छ०-मम्म०-सम्मामि०-वारमक०-णवुंसयवेद० सिया अत्थि मिया णत्थि । जइ अत्थि, सिया मंका० मिया अमंका० । तिण्हं मंजलणाणं मत्तणोकमायाणं च णियमा मंकांमओ । लोभमंजलणस्म मिया मंका० मिया अमंका० । एवं णवुंसयवेदं पि । णवगि इत्थिवेदस्म णियमा मंकांमओ ।

और कदाचिन् अमंकांमक है । जेप प्रकृतियाँ कदाचिन् हैं और कदाचिन् नहीं है । यदि हैं तो उनका कदाचिन् मंकांमक है और कदाचिन् असंकांमक है ।

विशेषार्थ—मायामंजलनके संकांमकके लोभमंजलन अवश्य पाया जाता है किन्तु उसका आनुपूर्वीमंक्रमका प्रारम्भ होनेपर मंक्रम नहीं होता अतः यह लोभमंजलनका कदाचिन् संकांमक है और कदाचिन् असंकांमक है यह कहा है । जेप खुनामा पूर्वजन जानना चाहिये ।

§ १६५. जो लोभमंजलनका मंकांमक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और वारह कपाय ये प्रकृतियाँ कदाचिन् हैं और कदाचिन् नहीं हैं । यदि हैं तो वह उनका कदाचिन् मंकांमक है और कदाचिन् असंकांमक है । किन्तु तीन संजलन और नौ नोकपायोंका नियमसे संकांमक है ।

विशेषार्थ—आनुपूर्वीमंक्रम अन्तरकरण करनेके बाद प्रारम्भ होता है किन्तु मिथ्यात्व आदि पन्द्रह प्रकृतियोंकी क्षपणा पहले सम्भव है, इसीसे लोभमंजलनके संकांमकके मिथ्यात्व आदि पन्द्रह प्रकृतियोंका कदाचिन् सत्त्व और कदाचिन् असत्त्व बतलाकर उनके मंक्रमके विषयमें भी अनियम बतलाया है । अब वहीं जेप तीन संजलन और नौ नोकपाय ये वारह प्रकृतियाँ सो इनकी असंक्रमरूप अवस्था आनुपूर्वी मंक्रमके प्रारम्भ होनेके बाद प्राप्त होती हैं, अतः लोभमंजलनके संकांमकको उनका संकांमक नियमसे बतलाया है ।

§ १६६. जो स्त्रीवेदका संकांमक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और नपुंसकवेद ये सोलह प्रकृतियाँ कदाचिन् हैं और कदाचिन् नहीं हैं । यदि हैं तो उनका कदाचिन् संकांमक है और कदाचिन् असंकांमक है । किन्तु तीन संजलन और सात नोकपायोंका नियमसे मंकांमक है । तथा लोभमंजलनका कदाचिन् संकांमक है और कदाचिन् असंकांमक है । जो नपुंसकवेदका संकांमक है उसका भी उसी प्रकारसे कथन करना चाहिये किन्तु यह स्त्रीवेदका नियमसे मंकांमक है ।

विशेषार्थ—क्षपणके स्त्रीवेदकी सत्त्वव्युच्छित्तिके पूर्व ही इन मिथ्यात्व आदि सोलह प्रकृतियोंकी सत्त्वव्युच्छित्ति हो जाती है । इसीसे स्त्रीवेदके संकांमकके इनके सत्त्वके विषयमें अनियम बतलाकर मंक्रमके विषयमें भी अनियम बतलाया है । किन्तु इसके मंजलन क्रोध आदि तीन संजलन और गान नारुपाय उनका मंक्रम पीछे तक होता रहता है, इसलिए इसे उन दस प्रकृतियोंका नियमसे मंकांमक बतलाया है । अब रहा लोभ मंजलन सो आनुपूर्वी मंक्रम चालू हो जानेके समयमें ही उसका मंक्रम होना बन्द हो जाता है अतः यह लोभमंजलनका कदाचिन् संकांमक है और कदाचिन् असंकांमक है यह बतलाया है । नपुंसकवेदकी स्त्रीवेदकी क्षपणा एक समय पूर्व या

§ १६५. पुरिसवेदं संक्रामेतो तिण्हं मंजलणाणं गियमा मंक्रामओ । लोभ-
मंजलणस्स सिया संक्रा० मिया अमंक्रा० । सेमं मिया अत्थि मिया णत्थि । जइ
अत्थि, मिया मंक्रा० मिया अमंक्रा० ।

§ १६६. हस्सं मंक्रामेतो मंजलणतियपुरिमवेद-पंचणोकसायाणं गियमा
संक्रामओ । लोभमंजलणस्स मिया मंक्रामओ० । सेमं मिया अत्थि० । जइ अत्थि सिया
मंक्रामओ मिया असंक्रा० । एवं पंचणोकसायाणं पि ।

§ १६७. आदेसेण गेग्गणुसु मिच्छत्तं मंक्रामेतो मम्मत्तस्स अमंक्रामओ ।
मम्मामि० मिया मंक्रा० मिया अमंक्रा० । अणंताणु०चउक्कं मिया अत्थि० । जइ
अत्थि मिया मंक्रामओ० । वारमक०-णवणोक० गियमा मंक्रामओ । सम्मत्ताणंताणु०-
चउक्क० ओघं । मम्मामिच्छत्तं मंक्रामेतो मिच्छ० सिया मंक्रामओ० । सम्मा०-

उसीके साथ होती है अतः नपुंसकवेदका संक्रामक स्त्रीवेदका भी नियमसे संक्रामक ठहरता है ।
शेष कथन पूर्ववत् है ।

§ १६५. जो पुरुषवेदका संक्रामक है वह तीन मंज्वलनोंका नियमसे संक्रामक है । लोभ-
मंज्वलनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । शेष प्रकृतियां कदाचित् हैं और
कदाचित् नहीं हैं । यदि है तो उनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है ।

विशेषार्थ—क्रोध आदि तीन मंज्वलनोंका संक्रम पीछे तक होता रहता है इसलिए पुरुष-
वेदके संक्रामकका उनका संक्रामक नियमसे बतलाया है । आनुपूर्वी संक्रमके चार हैं । जानेके समयसे
लोभमंज्वलनका संक्रम नहीं होता किन्तु तब भी पुरुषवेदका संक्रम होता रहता है, इसलिए
पुरुषवेदके संक्रामकके लोभमंज्वलनके संक्रमके विषयमें अनियम बतलाया है । शेष कथन
सुगम है ।

§ १६६. जो हास्यका संक्रामक है वह तीन संज्वलन, पुरुषवेद और पाँच नोकपायोका
नियमसे संक्रामक है । लोभसंज्वलनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । शेष
प्रकृतियां कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि है तो उनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित्
असंक्रामक है । इसीप्रकार पाँच नोकपायोंके संक्रामकका आश्रय लेकर कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—क्रोध आदि तीन संज्वलन और पुरुषवेदका संक्रम पीछे तक होता रहता है ।
तथा पाँच नोकपायोंका संक्रम हास्यके संक्रमका सहचारी है । इसीसे हास्यके संक्रामकको उक्त
प्रकृतियोंका संक्रामक नियमसे बतलाया है । लोभसंज्वलनका संक्रम पूर्वमें ही रुक जाता है तब भी
हास्यका संक्रम होता रहता है । इसीसे हास्यके संक्रामकके लोभमंज्वलनके संक्रमके विषयमें
अनियम बतलाया है । शेष कथन सुगम है ।

§ १६७. आदेशसे नारकियोमे जो मिथ्यात्वका संक्रामक है । वह सम्यक्त्वका असंक्रामक
है । सम्यग्मिथ्यात्वका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । अनन्तानुबन्धी-
चतुष्क कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उनका कदाचित् संक्रामक है और
कदाचित् असंक्रामक है । वारह कपाय और नौ नोकपायोका नियमसे संक्रामक है । सम्यक्त्व और
अनन्तानुबन्धीचतुष्कके आश्रयसे सन्निकर्षका कथन आद्यके समान है । जो सम्यग्मिथ्यात्वका
संक्रामक है वह मिथ्यात्वका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । सम्यक्त्व और

अणंताणु०४ मिया अत्थि०, जइ अत्थि मिया संकामओ० । वाग्मक०-णवणोक०
णियमा संका० । अपच्चक्खाणकोधं संकामेंतो मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०अणंताणु०४
मिया अत्थि मिया णत्थि । जइ अत्थि मिया संका० सिया अमंका० । एक्काग्मक०-
णवणोक० णियमा संकामओ । एवमेक्कारमक०-णवणोकमायाणं । एवं पढमाण् तिग्गिस्व-
पंचिदियतिग्गिस्वदुग्-देवगदि-देवा मोहम्मादि णवगेवजा त्ति । विदियादि मत्तमा त्ति
एवं चैव । णवरि अपच्चक्खाणकोधं संकामेंतो मिच्छत्तस्म मिया संकाम० सिया
अमंका० । एवं जोणिणी-भवणवामिय-वाणवेंतग-जोइमिएसु ।

§ १६८, पंचिदियतिग्गिस्वअपज्ज०-मणुमअपज्ज० सम्मत्तं संकामेंतो सम्मामि०-
मोलमक०-णवणोकमायाणं णियमा संकामओ । सम्मामिच्छत्तं संकामेंतो सम्मत्तं
मिया अत्थि । जदि अत्थि, मिया संकाम० । मोलमक०-णवणोक० णियमा संकामओ ।
अणंताणु०कोधं संकामेंतो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तं मिया अत्थि । जदि अत्थि, मिया
संकामओ । पण्णारग्मक०-णवणोकमायाणं णियमा संकामओ । एवं पण्णारग्मक०-
णवणोकमायाणं ।

अनन्तानुबन्धीचतुष्क कदाचिन् है और कदाचिन् नहीं है । यदि है तो इनका कदाचिन् संक्रामक
है और कदाचिन् असंक्रामक है । बारह कपाय और नौ नोकपायोंका नियमसे संक्रामक है । जो
अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानु-
बन्धीचतुष्क कदाचिन् है और कदाचिन् नहीं है । यदि है तो इनका कदाचिन् संक्रामक है और
कदाचिन् असंक्रामक है । ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंका नियमसे संक्रामक है । उसीप्रकार
ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंका आश्रय लेकर कथन करना चाहिये । इसीप्रकार प्रथम प्रियवी,
तिर्यञ्च पंचेन्द्रियतिर्यञ्चद्विक, सामान्य देव और सौधर्मसे लेकर नौ प्रेवयक तकके देवोंमें जानना
चाहिये । किन्तु इनकी विशेषता है कि जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रामक है वह मिथ्यात्वका
कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् असंक्रामक है । इसी प्रकार पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनित्ती, भवन-
वामी, व्यन्तर और ज्योतिपी देवोंके जानना चाहिये ।

§ १६८ पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त और मनुय अपर्याप्त जीवोंमें जो सम्यक्त्वका संक्रामक
है वह सम्यग्मिथ्यात्व मोलह कपाय और नौ नोकपायोंका नियमसे संक्रामक है । जो सम्यग्मिथ्या-
त्वका संक्रामक है उसके सम्यक्त्व कदाचिन् है और कदाचिन् नहीं है । यदि है तो उसका
कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् असंक्रामक है । मोलह कपाय और नौ नोकपायोंका
नियमसे संक्रामक है । अनन्तानुबन्धी क्रोधका जो संक्रामक है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व
कदाचिन् है और कदाचिन् नहीं है । यदि है तो इनका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन्
असंक्रामक है । पन्द्रह कपाय और नौ नोकपायोंका नियमसे संक्रामक है । इसी प्रकार पन्द्रह
कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकका आश्रय लेकर सन्निकर्ष कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—उक्त दो मार्गणाओंमें छद्मीय प्रकृतियाँ तो नियमसे हैं । किन्तु सम्यक्त्व
और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व पाया भी जाता है और नहीं भी पाया जाता है । उसमें भी जिसके

§ १६९. मणुसतिष् ओषं । णवरि मणुसिणीसु पुग्मिवेदं संकामंतो छण्णो-
कमायाणं णियमा संकामओ । अणुदिम० जाव सच्चव्वात्ति मिच्छत्तं संकामंतो मम्मामि०-
वारमक०-णवणोक० णियमा संकामओ । अणंताणु०चउकं सिया अत्थि० । जदि अत्थि,
मिया संकामओ० । एव मम्मामिच्छत्तस्स । अणंताणु०कोधं संकामंतो मिच्छ०-सम्मामि०-
पण्णारमक०-णवणोक० णियमा संकामओ । एव तिण्हं कमायाणं । अपच्चक्खाणकोहं
संकामंतो मिच्छ०-सम्मामि० मिया अत्थि० । जदि अत्थि, णियमा संकामओ ।
अणंताणु०४ सिया अत्थि० । जइ अत्थि, मिया संकामओ० । एकारमक०-णवणो-
कमायाणं णियमा संकामओ । एवमेक्कारसक०-णवणोकसायाणं । एवं जाव० ।

§ १७०. भावो मच्चत्थ ओदइओ भावो ।

❀ अप्पावहुअं ।

§ १७१. अहियाग्मंभालणमुत्तमेदं । सुगमं ।

❀ सच्चत्थोवा सम्मत्तस्स संकामया ।

सम्यक्त्वका सत्त्व है उसके सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व नियमसे है । किन्तु जिसके सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व है उसके सम्यक्त्वका सत्त्व है भी और नहीं भी है । इसी अपेक्षासे उक्त सन्निकर्ष कहा है ।

§ १६६. मनुष्यत्रिकमें सन्निकर्ष ओषके समान है । किन्तु उतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकमें जो पुरुषवेदका संक्रामक है वह छह नोकपायोंका नियमसे संक्रामक है । आशय यह है कि उनके दानोंका संक्रम एक साथ होता है अतः उक्त व्यवस्था बन जाती है । अनुदिशसे लेकर सन्निकर्षमिद्विकके देवोंमें जो मिथ्यात्वका संक्रामक है वह सम्यग्मिथ्यात्व, ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंका नियमसे संक्रामक है । अनन्तानुबन्धीचतुष्क कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो उनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका आश्रय लेकर सन्निकर्ष कहना चाहिये । जो अनन्तानुबन्धी क्रोधका संक्रामक है वह मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, पन्द्रह कपाय और नौ नोकपायोंका नियमसे संक्रामक है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीमान आदि तीन कपायोंके संक्रामकका आश्रय लेकर सन्निकर्ष कहना चाहिये । जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो उनका नियमसे संक्रामक है । अनन्तानुबन्धीचतुष्क कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो उनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंका नियमसे संक्रामक है । इसी प्रकार ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकका आश्रय लेकर सन्निकर्ष कहना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ १७०. भावका प्रकरण है । सर्वत्र औदयिक भाव है ।

❀ अब अल्पबहुत्वका अधिकार है ।

§ १७१. अधिकारमा निर्देश करनेवाला यह सूत्र सुगम है ।

❀ सम्यक्त्वके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं ।

§ १७२. कुदो ? उव्वेल्लणवावदपल्लदोवमासंखेज्जभागमेत्तजीवरासिस्स'गहणादो ।

❀ मिच्छत्तस्स संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ १७३. कुदो ? वेदगमम्माइड्डिगसिस्स पहाणभावेणेत्य गहणादो ।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ १७४. केत्तियमेत्तेण ? सादिरेयमम्मत्तसंकामय जीवमेत्तेण ।

❀ अणंताणुबंधीणं संकामया अणंतगुणा ।

§ १७५. कुदो ? एइंदियगमिस्स पहाणत्तादो ।

❀ अट्ठकसायाणं संकामया विसेसाहिया ।

§ १७६. केत्तियमेत्तेण ? चउवीम-तेवीम-वावीम-इगिवीमसंतकम्मिय जीवमेत्तेण ।

❀ लोभसंजलणस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ १७७. केत्तियमेत्तेण ? तेग्गमंसंकामयमेत्तेण । कुदो ? अट्ठकमाण्णु खीणेसु

वि जाव अंतरं ण करेइ ताव लोहसंजलणम्म संकमदंमणादो ।

§ १७२. क्योंकि उव्वेल्लणवावदपल्लदोवमासंखेज्जभागमेत्तजीवराशि है वह यहाँ ली गई है ।

* मिच्छयात्वके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १७३. क्योंकि यहाँ वेदकमन्यम्हृष्टियोंका प्रधानरूपसे ग्रहण किया है ।

* सम्यग्मिच्छयात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १७४. शंका—कितने अधिक हैं ?

समाधान—सम्यक्त्वके संक्रामक जितने जीव है उतने हैं ।

* अनन्तानुबन्धीके संक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं ।

§ १७५. क्योंकि अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामकोंमें एकेन्द्रिय राशिकी प्रधानता है ।

* आठ कषायोंके संक्रामक विशेष अधिक हैं ।

§ १७६. शंका—कितने अधिक हैं ?

समाधान—चौबीस, तेईस, बाईस और उक्कीसप्रकृतिक सत्त्वस्थानवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतने अधिक हैं ।

* लोभसंज्वलनके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १७७. शंका—कितने अधिक हैं ?

समाधान—तेरह प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतने अधिक हैं, क्योंकि आठ कषायोंका चय हो जाने पर भी जब तक अन्तर नहीं करता है तब तक लोभ-संज्वलनका संक्रम देखा जाता है ।

१. ता०प्रतौ—मेत्तरासिस्स इति पाठः ।

❀ ण्वंसयवेदस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ १७८. कुदो ? अंतरकरणे कदे लोहसंजलणम्म संकमाभावे वि ण्वंसयवेदस्स तत्थ अंतोमुहुत्तकालं मंक्रमपाओग्गतदंमणादो । केत्तियमेत्तो विसेसो ? वारस-संकामयमेत्तो ।

❀ इत्थिवेदस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ १७९. कुदो ? ण्वंसयवेदे ग्वीणे वि इत्थिवेदस्स अंतोमुहुत्तकालं मंक्रममंभव-दंमणादो । के०मेत्तो विसेसो ? एक्काग्गसंकामयजीवमेत्तो ।

❀ छुण्णोकसायाणं संकामया विसेसाहिया ।

§ १८०. के०मेत्तेण ? दग्गसंकामयजीवमेत्तेण ।

❀ पुरिसवेदस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ १८१. छमु कम्मंसेमु ग्वीणेमु उवग्गिदुग्गमऊर्ण-दोआवलियमेत्तकालमेदस्स मंक्रममंभवेण तत्थ संच्चिदच्चदुग्गसंकामयमेत्तेण विसेसाहियत्तमेत्थ गहेयव्वं ।

❀ कोहसंजलणस्स संकामया विसेसाहिया ।

* नपुंसकवेदके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १७८ क्योंकि अन्तरकरण करनेके बाद यद्यपि लोभ संज्वलनका संक्रम नहीं होता है तथापि वहाँ अन्तर्मुहूर्त कालतक नपुंसकवेदके संक्रमकी याग्यता देखी जाती है ।

शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ।

समाधान—वारह प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जितना प्रमाण है उतना है ।

* स्त्रीवेदके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १७९. क्योंकि नपुंसकवेदका क्षय हो जाने पर भी अन्तर्मुहूर्त काल तक स्त्रीवेदका संक्रम देखा जाता है ।

शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—ग्यारह प्रकृतियोंके संक्रामक जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है ।

* छह नोकपायोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १८०. शंका—कितने अधिक है ?

समाधान—दस प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जितना प्रमाण है उतने अधिक हैं ।

* पुरुषवेदके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १८१ छह नोकपायोंका क्षय हो जानेपर दो समथकम दो आवलि काल तक पुरुषवेदका संक्रम सम्भव होनेसे उस कालके भीतर चार प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जितना प्रमाण प्राप्त हो उतना यहाँ विशेष अधिक लेना चाहिये ।

* क्रोधसंज्वलनके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

१. ता०—आ०प्रत्याः उवरिमममऊण- इति पाठः ।

§ १८२. के०मेत्तेण ? अंतोमुहुत्तसंचिदतिविहमंकामयमेत्तेण ।

❀ माणसंजलणस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ १८३. विसेमपमाणमेत्थ द्दुविहमंकामयमेत्तं ।

❀ मायासंजलणस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ १८४. एकस्से संकामयजीवमेत्तेण ।

एवमोघो समत्तो ।

§ १८५. संपहि आदेसेण णिरयगईण पयदप्पावहुअपरूवणट्टुमुरिमो पबंधो—

❀ णिरयगदीए सच्चत्थोवा सम्मत्तसंकामया ?

§ १८६. कुटो ? सम्मत्तमुच्चेल्लमाणमिच्छाइट्टिमहिदाणमिह गहणादो ।

❀ मिच्छुत्तस्स संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ १८७. कुटो ? णेग्इयवेदयमम्माइट्टीणमुवमममम्माइट्टिमहिदाणमिह गहणादो ।

❀ सम्मामिच्छुत्तस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ १८८. के०मेत्तेण ? मादिरेयमम्मत्तसंकामयमेत्तेण ।

§ १८९. शंका — कितने अधिक हैं ?

समाधान—अन्तर्मुहूर्तमे तीन प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जितना प्रमाण मंचित हा उनने अधिक है ।

❀ मानसंज्वलनके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १८३. क्योंकि दो प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जितना प्रमाण है उतना यहाँ विशेष आधिकका प्रमाण जानना चाहिये ।

❀ मायासंज्वलनके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १८४. एक प्रकृतिके संक्रामक जीवोंका जितना प्रमाण है उतने अधिक है ।

इस प्रकार ओघप्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ १८५. अब आदेशसे नरकगतिमें प्रकृत अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिये आगेके प्रबन्धका निर्देश करते हैं—

❀ नरकगतिमें सम्यक्त्वके संक्रामक जीव मत्रसे थोड़े हैं ।

§ १८६. क्योंकि यहाँ सम्यक्त्वकी उद्धे लना करनेवाले मिथ्यादृष्टि जायोंकी राशिका ग्रहण किया है ।

❀ मिथ्यात्वके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १८७. क्योंकि यहाँ उपशमसम्यग्दृष्टियाके साथ वेदकसम्यग्दृष्टि नारकियोंका ग्रहण किया है ।

❀ सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १८८. शंका — कितने अधिक है ?

समाधान—सम्यक्त्वके संक्रामक जीवमात्र अधिक हैं ।

❀ अणंताणुबंधीणं संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ १८९. कुदो ? इगिवीम-चउवीसमंतकम्मिए मोत्तूण सेसमव्वणेरइयरासिस्स गहणादो ।

❀ सेसाणं कम्मणं संकामया तुल्ला विसेसाहिया ।

§ १९०. इगिवीम-चउवीसमंतकम्मियाणं पि एत्थ पवेसदंसणादो । एवं णिरयोधो परूविदो । एवं मत्तसु पुढवीसु वत्तव्वं ।

❀ एवं देवगदीए ।

§ १९१. एदम्म विवरणे कीरमाणे समणंतरपरूविदो सव्वो चैव अप्पाबहुआलावो वत्तव्व्या, विसेसाभावादो । भवणादि जाव महस्सारे त्ति एवं चैव वत्तव्वं । आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति मव्वत्थोवा मम्म० संकाम० । अणंताणु०४ संकाम० अमंग्वे०गुणा । मिच्छ० संकाम० विसेसा० । मम्मामि० संकाम० विसेसा० । वारमक०-णवणोक० संकाम० विसेसा० । अणुट्टिमादि मव्वट्टा त्ति मव्वत्थोवा अणंताणु०४ संकाम० । मिच्छ०-मम्मामि० संकाम० विसेसा० । वारमक०-णवणोक० संकाम० विसे० । जेणेयं मुत्तं देमामामियं तेणेमो मव्वो वि अत्थो एत्थ णिलीणो त्ति दडुव्वो ।

* अनन्तानुवन्धियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १८९. क्योंकि इक्कीस और चौबीस प्रकृतिक सत्त्वस्थानवाले जीवोंके सिवा शेष सब नारकराशिका यहाँ प्रहण किया गया है ।

* शेष कर्मोंके संक्रामक जीव परस्पर वरावर हैं किन्तु अनन्तानुवन्धियोंके संक्रामकोंसे विशेष अधिक हैं ।

§ १९०. क्योंकि इनमें इक्कीस और चौबीस प्रकृतिक सत्त्वस्थानवाले जीवोंका भी प्रवेश देया जाता है । उस प्रकार सामान्यसे नारकियोंमें सम्यक्त्व आदि प्रकृतियोंके संक्रामकोंका अल्पबहुत्व कदा । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें अल्पबहुत्व कहना चाहिये ।

* इसी प्रकार देवगतिमें अल्पबहुत्व जानना चाहिये ।

§ १९१. इस सूत्रका व्याख्यान करने पर इससे पूर्वके अल्पबहुत्वालापका पूराका पूरा कथन यहाँ पर भी करना चाहिये, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतक इसी प्रकार कथन करना चाहिये । आनतसे लेकर नौ प्रेयंकतकके देवोंमें सम्यक्त्वके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । इनमें अनन्तानुवन्धीचतुष्कके संक्रामक जीव असंख्यात गुणे हैं । इनमें नियत्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं । उनसे सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं । उनसे वारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं । अनुदिशने लेकर सर्वार्थसिद्धि तरुके देवोंमें अनन्तानुवन्धीचतुष्कके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनमें मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं । उनसे वारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं । यतः 'एवं देवगदीए' यह सूत्र देशामर्षक है अतः यह पूराका पूरा अर्थ इस सूत्रमें गभित है ऐसा जानना चाहिये । अब तिर्यंचगतिमें

संपहि तिरिक्खगदीए अप्पावहुअपरूवणहुमाह ।

❀ तिरिक्खगईए सव्वत्थोवा सम्मत्तस्स संकामया ।

§ १९२. सुगमं ।

❀ मिच्छत्तस्स संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ १९३. एत्थ वि कारणमोघसिद्धं ।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ १९४. केत्तियमेत्ते ण ? मादिरेयमम्मत्तसंकामयमेत्ते ण ।

❀ अणंताणुबंधीणं संकामया अणंतगुणा ।

§ १९५. कुदो ? किवृणतिरिक्खरामिस्म गहणादो ।

❀ सेसाणं कम्माणं संकामया तुल्ला विसेसाहिया ।

§ १९६. तिरिक्खगमिस्म मव्वस्म चेव गहणादो ।

❀ पंचिदियतिरिक्खतिए णारयभंगो ।

§ १९७. पंचिदियतिरिक्खव०-मणुमअपज्जत्तएमु मव्वत्थोवा सम्मत्तसंकामया ।

मम्मामिच्छत्तसंकामया विसेसाहिया । सोलमक०-णवणोक्क० संका० अमंगे०गुणा ।

मुत्ते अवुत्तमेदं कथं उच्चदे ? ण, मुत्तम्म सूचणामेत्ते वावागदो ।

अल्पवहुत्वका कथन करनेके लिये आगेके सूत्र कहते हैं—

* तिर्यंच गतिमें सम्यक्त्वके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं ।

§ १६२. यह सूत्र सुगम है ।

* मिथ्यात्वके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १६३. असंख्यातगुणका जो कारण ओंघ प्ररूपणके समय कहा है वही यहाँ भी जानना चाहिये !

* मम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १६४. शंका—कितने अधिक हैं ?

ममाधान—सम्यक्त्वके संक्रामक जीवमात्र अधिक हैं ।

* अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामक जीव अनन्तागुणे हैं ।

§ १६५. क्योंकि यहाँ कुल्लकम तिर्यंच राशिका ग्रहण किया है ।

* शेष कर्मोंके संक्रामक जीव परस्परमें तुल्य हैं तथापि अनन्तानुबन्धियोंके

संक्रामकोंसे विशेष अधिक हैं ।

§ १६६. क्योंकि यहाँ पूरी तिर्यंचराशिका ग्रहण किया है ।

* पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिकमें अल्पवहुत्व नागक्रियोंके समान है ।

§ १६७. पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें सम्यक्त्वके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं । सोलह कपाय और नौ लोकपायोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

❀ मणुसगईए सव्वत्थोवा मिच्छत्तस्स संकामया ।

§ १९८. मम्माइट्टिरामिपमाणत्तादो ।

❀ सम्मत्तस्स संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ १९९. कारणमुव्वेल्लमाणो पलिदोवमामंखेज्जदिभागमेत्तो मिच्छाइट्टिरासी गहिदो त्ति ।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ २००. किं कारणं ? अणंतरपरुविदपलिदोवमामंखे०भागमेत्तुव्वेल्लणरासी सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं मग्गिं लब्भइ । पुणो मम्मत्ते उव्वेल्लिदे मंते सम्मामिच्छत्तं उव्वेल्लमाणो पलिदो०असंखे०भागमेत्तो मिच्छाइट्टिगामी संखेज्जो सम्माइट्टिगामी च मम्मामिच्छत्तम्म लब्भइ । एदेण कारणेण विसेमाहियत्तं जादं ।

❀ अणंताणुबंधीणं संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ २०१. कुदो ? मणुमिच्छाइट्टिगामिम्म पहाणत्तादो ।

❀ सेसाणं कम्माणं संकामया ओघो ।

§ २०२. कुदो ? ओघालावं पडि विमेमाभावादो । तदो ओघालावो णिग्गसेसमेत्थ

शंका—यह अल्पबहुत्व सूत्रमें नहीं कहा गया है फिर यहां क्यों बतलाया जा रहा है ?

समाधान—नहीं क्योंकि सूत्रका काम सूचना करनामात्र है ।

* मनुष्यगतिमें मिथ्यात्वके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं ।

§ १६८. क्योंकि स्थूलरूपसे ये मनुष्य सम्यग्दृष्टियोंका जितना प्रमाण है उतने हैं ।

* सम्यक्त्वके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १६६. क्योंकि यहां उद्वेलना करनेवाले पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण मिथ्यादृष्टि जीवोंकी राशिका ग्रहण किया है ।

* सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ २००. क्योंकि समनन्तर पूर्व जो पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण जीवराशि कही है वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनोंके संक्रमकी अपेक्षा समान है किन्तु सम्यक्त्वकी उद्वेलना कर लेनेके बाद पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण ऐसी मिथ्यादृष्टि राशि है जो केवल सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करती है तथा ऐसे संख्यात सम्यग्दृष्टि जीव भी हैं जो केवल सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम करते हैं, इस कारणसे सम्यक्त्वके संक्रामकोंसे सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक मनुष्य विशेष अधिक हो जाते हैं ।

* अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ २०१. क्योंकि यहाँ मनुष्य मिथ्यादृष्टिराशिकी प्रधानता है ।

* शेष कर्मोंके संक्रामकोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है ।

§ २०२ क्योंकि ओघप्ररूपणसे इसमें कोई विशेषता नहीं है, इसलिये पूरेके पूरे ओघ-

कायव्वो । एवं मणुमपज्जत्ता । णवरि जम्हि अमंखेज्जगुणं तम्हि मंखेज्जगुणं कायव्वं । एवं चैव मणुग्गिणीसु वि वत्तव्वं । णवरि छण्णोक्कसाय-पुरिमवेदसंक्रामया सरिमा कायव्वा ।

एवं गइमग्गणा ममत्ता ।

§ २०३. मंपहि सेममग्गणाणं देयामामियभावेणिदियमग्गणावयवभूदेइंदिएसु पयदप्पावहुअपरूवणं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

❀ एइंदिएसु सव्वत्थोवा सम्मत्तस्स संक्रामया ।

§ २०४. सुगमं ।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स संक्रामया विसेसाहिया ।

§ २०५. सम्मत्तुव्वेल्लणकालादो सम्मामिच्छत्तुव्वेल्लणकालम्म विसेमाहियत्तादो ।

❀ सेसाणं कम्माणं संक्रामया तुल्ला अणंतगुणा ।

§ २०६. कुदो ? एइंदियरामिम्म सव्वस्सेव गहणादो । एवं जाव अणाहारि ति ।

एवमेगेगपयडिमंकमो समत्तो ।

प्ररूपणाको यहाँ कहना चाहिये । मनुष्य पर्याप्तकोमें इसी प्रकार अल्पबहुत्व कहना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है कि जहाँ असंख्यातगुणा कहा है वहाँ संख्यातगुणा कहना चाहिये । मनुष्यनियोमें भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ बृह नोकायय और पुरुषवदके संक्रामक जीव एक समान बतलाना चाहिये ।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई ।

§ २०३. अथ शेष मार्गणाओंके देशामर्परूपसे इन्द्रिय मार्गणाके एक भेद एकेन्द्रियोंमें प्रकृत अल्पबहुत्वका कथन करते हुए आगेका सूत्र कहते हैं—

* एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्वके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं ।

§ २०४. यह सूत्र सुगम है ।

* सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ २०५. क्योंकि सम्यक्त्वके उद्वेलना कालसे सम्यग्मिथ्यात्वका उद्वेलना काल विशेष अधिक है ।

* शेष कर्मोंके संक्रामक जीव परस्परमें तुल्य हैं, तथापि सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकोंसे अनन्तगुणे हैं ।

§ २०६. क्योंकि यहाँ पर समस्त एकेन्द्रिय जीवराशिका ग्रहण किया है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

इस प्रकार एकैकप्रकृतिमंक्रम अधिकार समाप्त हुआ ।

❀ एत्तो पयडिद्वाणसंकमो ।

§ २०७. एत्तो उवरि पयडिद्वाणसंकमो सप्पडिवक्खो सगंतोभाविदपयडिद्वाण-
पडिग्गहापडिग्गहो परूवेयच्चो त्ति भणिदं होइ ।

❀ तत्थ पुब्बं गमणिज्जा सुत्तसमुक्त्तिणा ।

§ २०८. तम्हि पयडिद्वाणसंकमे परूविज्जमाणे पुब्बमेव तत्थ ताव पडिच्चद्वाणं
गाहासुत्ताणं समुक्त्तिणा कायच्चा त्ति वुत्तं होइ ।

❀ तं जहा ।

§ २०९. सुगममेदं गाहासुत्तावयागवेक्खं पुच्छावकं ।

अट्ठावीस चउवीस सत्तरस सोलसेव परणरसा ।

एदे खलु मोत्तूणं सेसाणं संकमो होइ^१ ॥ २७ ॥

सोलसग वारसट्ठग वीसं वीसं तिगादिगधिगा य ।

एदे खलु मोत्तूणं सेसाणि पडिग्गहा होंति^२ ॥ २८ ॥

छब्बीस सत्तर्वामा य संकमो णियम चदुसु द्वाणेमु ।

वावीस परणरसगे एक्कारस ऊणवीसाए^३ ॥ २६ ॥

* अब इससे आगे प्रकृतिस्थानमंक्रमका अधिकार है ।

§ २०७. अब इससे आगे जिसमें प्रकृतिस्थानप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थान-अप्रतिग्रहका कथन आ जाता है ऐसे प्रकृतिस्थानसंक्रमका अपने प्रतिपक्षके साथ कथन करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* उममें मर्व प्रथम गाथासूत्रोंकी समुत्कीर्तना जाननी चाहिये ।

§ २०८. इस प्रकृतिस्थानमंक्रमका कथन करते समय सर्व प्रथम प्रकृतिस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाले गाथासूत्रोंकी समुत्कीर्तना करनी चाहिये यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है ।

* यथा—

§ २०९. गाथासूत्रोंके अवतारकी अपेक्षा रखनेवाला यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

अट्ठाईस, चौबीस, सत्रह, सोलह और पन्द्रह इन पाँच स्थानोंके सिवा शेष तेईस स्थानोंका मंक्रम होता है ॥२७॥

मोलह, वारह, आठ, बीस और तीन अधिक आदि बीस अर्थात् तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस और अट्ठाईस इन दस स्थानोंके सिवा शेष अठारह प्रतिग्रह-स्थान होते हैं ॥२८॥

छब्बीस और सत्ताईस मंक्रमस्थानोंका बाईस, पन्द्रह, ग्यारह और उन्नीस इन चार प्रतिग्रहस्थानोंमें नियमसे संक्रम होता है ॥२६॥

१. कर्मप्रकृति मंक्रम गा० १० । २. कर्मप्रकृति मंक्रम गा० ११ । ३. कर्मप्रकृति मंक्रम गा० १२ ।

सत्तारसेगवीसामु संक्रमो णियम पंचवीसाए ।
 णियमा चदुसु गदीसु य णियमा दिट्ठीगए तिविहे ॥३०॥
 वावीस पणणम्मगे सत्तग एककारसूणवीसाए ।
 तेवीस संक्रमो पुण पंचसु पंचिंदिएसु हवे ॥ ३१ ॥
 चोदसग दसग सत्तग अट्टारम्मगे च णियम वावीसा ।
 णियमा मणुसगईए विरदे मिस्से अविरदे य ॥३२॥
 तेरसय णवय सत्तय सत्तारस पणय एककवीसाए ।
 एगाधिगाए वीसाए संक्रमो छप्पि मम्मत्तो ॥ ३३ ॥
 एत्तो अवसेसा संजमहि उवमामगे च खवगे च ।
 वीमा य संक्रम दुगे छक्के पणए च बोद्धव्वा ॥ ३४ ॥

पञ्चमप्रकृतिक संक्रमस्थानका मत्रह और इक्कीम इन दो प्रतिग्रहस्थानोंमें नियम-
 से संक्रम होता है । यह संक्रमस्थान चारों गतियोंमें तथा दृष्टिगत अर्थात् मिथ्यादृष्टि,
 मायादनमम्यग्दृष्टि और मय्यग्मिथ्यादृष्टि इन तीन गुणस्थानोंमें नियमसे होता
 है ॥३०॥

तेईमप्रकृतिक संक्रमस्थानका वार्डम, पन्द्रह, मात, ग्यारह और उन्नीस इन पाँच
 प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम होता है । यह संक्रमस्थान मंजी पंचेन्द्रियोंमें ही पाया जाता
 है ॥३१॥

वार्डमप्रकृतिक संक्रमस्थानका चौदह, दम, मात, और अटारह इन चार प्रति-
 ग्रहस्थानोंमें नियमसे संक्रम होता है । यह संक्रमस्थान मनुष्यगतिके रहते हुए विरत,
 विरताविरत और अविरतमम्यग्दृष्टि इन तीन गुणस्थानोंमें ही पाया जाता है ॥३२॥

इक्कीमप्रकृतिक संक्रमस्थानका तेरह, नौ, मात, मत्रह, पाँच और इक्कीम इन
 छह प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम होता है । ये छहों प्रतिग्रहस्थान मम्यक्त्व अवस्थामें ही
 पाये जाते हैं ॥३३॥

हमसे आगेके वाकीके वचे हुए वीम आदि मच संक्रमस्थान और छह आदि मच
 प्रतिग्रहस्थान संयमयुक्त उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणिमें ही होते हैं । यथा—वीस
 प्रकृतिक संक्रमस्थानका छह और पाँच इन दो प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम जानना
 चाहिए ॥३४॥

१. कर्मप्रकृति संक्रम गा० १३ । २. कर्मप्रकृति संक्रम गा० १४ । ३. कर्मप्रकृति संक्रम
 गा० १५ । ४. कर्मप्रकृति संक्रम गा० १६ । ५. कर्मप्रकृति संक्रम गा० १७ ।

पंचसु च ऊणवीसा अट्टारस चदुसु होंति बोद्धव्वा ।
 चोदस छसु पयडीसु य तेस्सयं छक्क-पणगमहि' ॥३५॥
 पंच-चउक्के बारस एक्कारस पंचगे तिग चउक्के ।
 दसगं चउक्क-पणगे णवगं च तिगमहि बोद्धव्वा' ॥३६॥
 अट्ट दुग तिग चउक्के सत्त चउक्के तिगे च बोद्धव्वा ।
 छक्कं दुगमहि णियमा पंच तिगे एक्कग दुगे वा' ॥३७॥
 चत्तारि तिग चदुक्के तिगिण तिगे एक्कगे च बोद्धव्वा ।
 दो दुसु एगाए वा एगा एगाए बोद्धव्वा' ॥३८॥

उत्तीमप्रकृतिक मंक्रमस्थानका पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें, अटारहप्रकृतिक मंक्रमस्थानका चारप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें, चौदहप्रकृतिक मंक्रमस्थानका छह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें और तेरहप्रकृतिक मंक्रमस्थानका छह और पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें मंक्रम होता है ऐसा जानना चाहिये ॥३५॥

वारहप्रकृतिक मंक्रमस्थानका पाँच और चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें, ग्यारह प्रकृतिक मंक्रमस्थानका पाँच, तीन और चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें, दसप्रकृतिक मंक्रमस्थानका चार और पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें तथा नौप्रकृतिक मंक्रमस्थानका तीनप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें मंक्रम होता है ऐसा जानना चाहिये ॥३६॥

आठप्रकृतिक मंक्रमस्थानका दो, तीन और चारप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें, सातप्रकृतिक मंक्रमस्थानका चार और तीन प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें, छहप्रकृतिक मंक्रमस्थानका नियमसे दोप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें तथा पाँचप्रकृतिक मंक्रमस्थानका तीन, एक और दो प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें मंक्रम होता है ऐसा जानना चाहिये ॥३७॥

चारप्रकृतिक मंक्रमस्थानका तीन और चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें, तीन प्रकृतिक मंक्रमस्थानका तीन और एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें, दोप्रकृतिक मंक्रमस्थानका दो और एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें तथा एकप्रकृतिक मंक्रमस्थानका एकप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें मंक्रम होता है ऐसा जानना चाहिये ॥३८॥

१. कर्मप्रकृति सक्रम गा० १८ । २. कर्मप्रकृति सक्रम गा० १९ । ३. कर्मप्रकृति सक्रम गा० २० । ४. कर्मप्रकृति सक्रम गा० २१ ।

अणुपुव्वमणणुपुव्वं झीणमझीणं च दंसणे मोहे ।
 उवसामगे च खवगे च संकमे मग्गणोवायां ॥३६॥
 एककेककम्हि य द्वाणे पडिग्गहे संकमे तदुभए च ।
 भविया वाऽभविया वा जीवा वा केसु ठाणेषु ॥४०॥
 कदि कम्हि होंति ठाणा पंचविहे भावविधिविसेसम्हि ।
 संकमपडिग्गहो वा समाणणा वाध केवचिरं ॥४१॥
 णिरयगइ-अमर-पंचिंदिएसु पंचेव संकमट्टाणा ।
 सव्वे मणुमगईए सेसेसु तिगं असणणीसु ॥४२॥
 चदुर दुगं तेवीसा मिच्छत्ते मिस्सग्गे य मम्मत्ते ।
 वावीस पणय छक्कं विरदे मिस्से अविरदे य ॥४३॥
 तेवीस सुक्कलेस्से छक्कं पुण तेउ-पम्मलेस्सामु ।
 पणयं पुण काऊए णीलाए किणहलेस्साए ॥४४॥

आनुपूर्वीमंक्रमस्थान, अनानुपूर्वीमंक्रमस्थान, दर्शनमोहनीयके क्षयसे प्राप्त हुए मंक्रमस्थान, दर्शनमोहनीयके क्षयके विना प्राप्त हुए मंक्रमस्थान, उपशामकके प्राप्त हुए मंक्रमस्थान और क्षयके प्राप्त हुए मंक्रमस्थान इस प्रकार ये मंक्रमस्थानोंके विषयमें गवेषणा करनेके उपाय हैं ॥३९॥

प्रतिग्रह, मंक्रम और तदुभयरूप एक एक स्थानमेंसे कितने स्थानोंमें भव्य जीव होते हैं, कितने स्थानोंमें अभव्य जीव होते हैं और कितने स्थानोंमें अन्य मार्गणावाले जीव होते हैं ॥४०॥

यथायोग्य पाँच प्रकारके भावोंसे युक्त चौदह गुणस्थानोंमेंसे किस गुणस्थानमें कितने मंक्रमस्थान और कितने प्रतिग्रहस्थान होते हैं । तथा किमका कितना काल है ॥४१॥

नरकगति, देवगति और पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें पाँच, मनुष्यगतिमें सव तथा शेषमें अर्थात् एकेन्द्रियों और विकलत्रयोंमें तथा अमंजियोंमें तीन मंक्रमस्थान होते हैं ॥४२॥

मिथ्यात्वमें चार, मस्यग्मिथ्यात्वमें दो, सम्यक्त्वमें तेईम, विरतमें वाईस, विरताविरतमें पाँच और अविरतमें छह मंक्रमस्थान होते हैं ॥४३॥

शुक्ललेश्यामें तेईम, पीत और पद्मलेश्यामें छह तथा कापोत नील और कृष्ण लेश्यामें पाँच मंक्रमस्थान होते हैं ॥४४॥

अवगयवेद-णवुंसय-इत्थो-पुरिसेसु चाणुपुव्वीए ।
 अट्टारसयं णवयं एक्कारसयं च तेरसया ॥४५॥
 कोहादी उवजोगे चदुसु कसाएसु चाणुपुव्वीए ।
 सोलस य ऊणवीसा तेवीसा चेव तेवीसा ॥४६॥
 णाणम्हि य तेवीसा तिविहे एक्कम्हि एक्कवीसा य ।
 अण्णाणम्हि य तिविहे पंचेव य संकमट्टाणा ॥४७॥
 आहारय-भविएसु य तेवीसं होंति संकमट्टाणा ।
 अणाहारएसु पंच य एक्कं ट्टाणं अभविएसु ॥४८॥
 छव्वीस सत्तवीसा तेवीसा पंचवीस वावीसा ।
 एदे सुण्णट्टाणा अवगदवेदस्स जीवस्स ॥४९॥
 उगुवीसट्टारसयं चोदस एक्कारसादिया सेसा ।
 एदे सुण्णट्टाणा णवुंसए चोदसा होंति ॥५०॥
 अट्टारस चोदसयं ट्टाणा सेसा य दसगमादीया ।
 एदे सुण्णट्टाणा बारस इत्थीसु बोद्धव्वा ॥५१॥

अपगतवेद, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें क्रमसे अठारह, नौ ग्यारह और तेरह मंक्रमस्थान होते हैं ॥४५॥

क्रोधादि चार कपायोंमें क्रमसे सोलह, उन्नीस, तेईस और तेईस मंक्रमस्थान होते हैं ॥४६॥

मति आदि तीन प्रकारके ज्ञानोंमें तेईस, एक मनःपर्ययज्ञानमें इक्कीस और तीनों प्रकारके अज्ञानोंमें पाँच ही मंक्रमस्थान होते हैं ॥४७॥

आहारक और भव्य जीवोंमें तेईस, अनाहारकोंमें पाँच और अभव्योंमें एक ही मंक्रमस्थान होता है ॥४८॥

अपगतवेदी जीवोंमें छव्वीस, सत्ताईस, तेईस, पच्चीस और बाईस ये पाँच मंक्रमस्थान नहीं होते ॥४९॥

नपुंसकवेदमें उन्नीस, अठारह, चौदह और ग्यारह आदि शेष सब स्थान अर्थात् कुल मिलाकर चौदह मंक्रमस्थान नहीं होते ॥५०॥

स्त्रियोंमें अर्थात् स्त्रीवेदवाले जीवोंमें अठारह और चौदह तथा दस आदि शेष सब स्थान इस प्रकार ये चारह मंक्रमस्थान नहीं होते ॥५१॥

चोद्दसग-णवगमादी हवंति उवसामगे च खवगे च ।
 एदे सुरणद्याणा दस वि य पुरिसिसु बोद्धवा ॥५२॥
 णव अट्ट सत्त छक्कं पणग दुगं एककयं च बोद्धवा ।
 एदे सुरणद्याणा पढमकसायावजुत्तसु ॥५३॥
 सत्त य छक्कं पणगं च एककयं चैव आणुपुव्वीए ।
 एदे सुरणद्याणा विदियकसाओवजुत्तसु ॥५४॥
 दिट्ठे मुण्णामुण्णे वेदकसाएसु चैव द्वाणसु ।
 मग्गणगवेसणाए दु संकमो आणुपुव्वीए ॥५५॥
 कम्ममियद्याणेषु य बंधद्याणेषु सकमद्याणे ।
 एककेक्केण समाणय बंधेण य संकमद्याणे ॥५६॥
 सादि य जहण्ण संकम कदिखुत्तो होइ ताव एककेक्के ।
 अविग्गहिद सांतरं केवचिरं कदिभाग परिमाणं ॥५७॥
 एवं दब्बे खेत्ते काले भावे य सण्णिवादे य ।
 संकमणयं णयविदू णेया मुददेसिदमुदारं ॥५८॥

पुरुषोंमें उपशामक और क्षपकसे मन्वन्ध रखनेवाले चौदह और नौ आदि शेष सब स्थान इस प्रकार ये दस संक्रमस्थान नहीं होते ॥५२॥

प्रथम क्रोधकपायसे युक्त जीवोंमें नौ, आठ, सात, छह, पाँच, दो और एक ये सात संक्रमस्थान नहीं होते ॥५३॥

दूसरे मानकपायसे उपयुक्त जीवोंमें क्रमसे सात, छह, पाँच और एक ये चार संक्रमस्थान नहीं होते ॥५४॥

इस प्रकार वेद और कपाय मार्गणामें कितने संक्रमस्थान हैं और कितने नहीं हैं इसका विचार कर लेनेपर इसी प्रकार गति आदि शेष मार्गणाओंमें भी यत्रतत्रानुपूर्विके क्रमसे इनका विचार करना चाहिये ॥५५॥

गोहनीयके मत्क्रमस्थानोंमें और बन्धस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका विचार करते समय एक एक बन्धस्थान और मत्क्रमस्थानके साथ आनुपूर्वसे संक्रमस्थानोंका विचार करना चाहिये ॥५६॥

गादि, जवन्ध, अल्पवहुन्ध, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर और भागाभाग तथा इसी प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगावचय, द्रव्य-

§ २१०. एवमेदाओ वत्तीम सुत्तगाहाओ' पयडिड्ढाणमंकमे पडिवद्दाओ ति उक्तं होइ । एत्थ पढमगाहाए ठाणममुत्तिना मंगतोभावियपयडिड्ढाणमंकमामंकमपडिवद्दा । विदियगाहाए वि पयडिड्ढाणपडिग्गहो तदपडिग्गहो च पडिवद्दो । पुणो तदणंतगेवरिम-दसगाहाओ एदस्सेदस्म पयडिड्ढाणमंकमम्म एत्तियाणि एत्तियाणि पडिग्गह्ढाणाणि होंति ति एवंविहस्म अत्थविसेसम्म सामित्तमहगयम्म परूवणड्ढमोदिण्णाओ । पुणो अणुपुव्वमणणुपुव्वमिच्चेदीए तेरसमीए गाहाए पयडिमंकमद्ढाणाणं दंमण-चरित्तमोहक्खव-णोव्वमामणादिविमयविसेसमस्मिदण ममुत्तकमपरूवणड्ढमाणुपुव्विमंकमादिअट्ठपदाणि सूचिदाणि । तदणंतगेवरिमगाहा वि मंकमपडिग्गह-तदुभयद्ढाणाणं मग्गणड्ढदाए गदियादि-चोहममग्गणद्ढाणाणि देमामामियभावेण सूचेदि । तत्तो अणंतगेवरिमगाहामुत्तपुव्वद्द पयदमंकमद्ढाणाणमाधारभूदाणि गुणद्ढाणाणि सूचिदाणि, तेहि विणा सामित्तपरूवणो-वायाभावादो । पच्छिमद्दे वि सामित्तणंतपरूवणाजोग्गं कालाणिओगहारं सेमाणिओग-हाराणं देमामामियभावेण सूचिदमिदि घेत्तव्वं । पुणो एत्तो उव्वरिममत्तगाहामुत्तेहि गदियादिचोहममग्गणद्ढाणेसु जत्थतत्थाणुपुव्वीए मंकमद्ढाणाणं मग्गणा कीरदे । पुणो प्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, नाना जीवोंकी अपेक्षा काल, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर, भाव और मन्निर्कर्ष इन अनुयोगद्वारोंके आश्रयसे नयके जानकार पुरुष प्रकृतिमंकमविषयक उक्त गाथाओंके उदार अर्थको मूल श्रुतके अनुसार जानें ॥५७-५८॥

§ २१०. इस प्रकार प्रकृतिस्थानसंक्रमसे सम्बन्ध रखनेवाली ये वत्तीम सूत्रगाथाएँ हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । उनमेंसे पहली गाथामें स्थानोंका निर्देश किया है । उसमें बतलाया है कि कितने प्रकृतिस्थानसंक्रम हैं और कितने प्रकृतिस्थान असंक्रम हैं । दूसरी गाथामें प्रकृतिस्थान-प्रतिग्रह कितने हैं और प्रकृतिस्थानअप्रतिग्रह कितने हैं यह बतलाया है । फिर इन दो गाथाओंके वादकी दस गाथाएँ इस इस प्रकृतिस्थानसंक्रमके ये ये प्रतिग्रहस्थान होते हैं इस तरहके अर्थविशेष का कथन करनेके लिये आई हैं । साथ ही इनमें अपने अपने स्थानके स्वामीका भी निर्देश किया है । फिर अणुपुव्वमणणुपुव्वं इत्यादि तेरहवीं गाथा द्वारा दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी क्षण और उपशमना आदि विषयक विशेषताका आश्रय लेकर प्रकृतिसंक्रमस्थानोंके उत्पत्तिका क्रम दिखलानेके लिये आनुपूर्वीसंक्रम आदि आठ स्थान सूचित किये गये हैं । फिर इससे अगली गाथा भी संक्रमस्थान, प्रतिग्रहस्थान और तदुभयस्थान इनकी गवेषणा करनेके लिये देशामर्षकरूपसे गति आदि चौदह मार्गस्थानोंको सूचित करती है । फिर इससे आगेकी गाथाके पूर्वार्धमें प्रकृतसंक्रमस्थानोंके आधारभूत गुणस्थानोंका संकेत किया है, क्योंकि इनका निर्देश किये बिना स्वामित्वका कथन नहीं किया जा सकता है । फिर इसी गाथाके उत्तरार्धमें स्वामित्वके वाद कथन करने योग्य कालानुयोगद्वारोंके ग्रहण किया है जिससे कि देशामर्षकरूपसे शेष अनुयोगद्वारोंका सूचन होता है । फिर इससे आगेकी सात गाथाओं द्वारा गति आदि चौदह मार्गस्थानोंमें यत्रतत्रानुपूर्वीके क्रमसे संक्रमस्थानोंका विचार किया गया है । फिर भी इससे आगेकी सात गाथाएँ

१. ता० प्रती वत्तीसगाहाओ इति पाठः । २. ता० प्रती सुत्तगामु तेहि इति पाठः ।

वि उवरिमसत्तगाहाओ मग्गणाविसेसे अस्सिऊण सुण्णट्ठाणाणि परूवेति । किं सुण्णट्ठाणं
णाम ? जत्थ जं संतकम्मट्ठाणं ण संभवइ तन्थ तस्म सुण्णट्ठाणववएसो । तदणंतरो-
वरिमाए पुण गाहाए बंध-संकम-संतकम्मट्ठाणाणमण्णोणसण्णियासविहाणं सूचिदं ।
अवसेसदोगाहाओ गुणट्ठाणमबंधेण पुच्चपरूविदाणमणिओगदाराणं गुणट्ठाणविवक्खाए
विणा मग्गणट्ठाणमबंधेण विसेभेयूणं परूवणट्ठमागदाओ त्ति णिच्छओ कायव्वो ।
एवमेवो गाहासुत्ताणं ममुदायत्थो परूविदो । अवयवत्थविवरणं पुण पुरदो वत्तइस्सामो ।

§ २११. मंपहि सुत्तसमुक्कित्तणाणंतरं तदत्थविवरणं कुणमाणा चुण्णिमुत्तपारो
सुत्तसूचिदाणमणियोगदाराणं परूवणट्ठमुत्तगसुत्तं भणइ—

❀ सुत्तसमुक्कित्तणाए समत्ताए इमे अणियोगदारा ।

§ २१२. गाहासुत्तसमुक्कित्तणाणंतरमेदाणि अणियोगदाराणि पयडिट्ठाणमंकम-
विसयाणि णादब्बाणि त्ति भणिदं होइ ।

❀ तं जहा ।

§ २१३. सुगमं ।

❀ टाणसमुक्कित्तणा सच्चसंकमो णोसच्चसंकमो उक्कस्ससंकमो

मार्गणाविशेषोंकी अपेक्षा अन्यस्थानोंका कथन करती हैं ।

शंका—अन्यस्थान किसे कहते हैं ?

समाधान—जहाँ जो सत्कर्मस्थान सम्भव नहीं है, वहाँ वह अन्यस्थान कहलाता है ।

फिर इसमें आगेकी गाथामें बन्धस्थान, संक्रमस्थान और सत्कर्मस्थान इनके परस्परमें
सन्निकर्षकी विधि सूचित की गई है । अब रहीं शेष दो गाथाएँ सो वे जिन अनुयोगद्वारोंका
गुणस्थानोंके सम्बन्धसे पहले कथन कर आये हैं उनका गुणस्थानोंकी विवक्षा किये बिना मार्गणाओं-
के सम्बन्धसे विशेष कथन करनेके लिये आई हैं ऐसा निश्चय करना चाहिये । इस प्रकार यह
गाथासूत्रोंका समुच्चयार्थ है जिसका कथन किया । किन्तु उनके प्रत्येक पदका अर्थ आगे
कहेंगे ।

§ २११. अब गाथा सूत्रोंकी समुत्कीर्तना करनेके बाद उनके अर्थका विवरण करते हुए चूर्णि-
सूत्रकार गाथासूत्रोंमें सूचित होनेवाले अनुयोगद्वारोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* गाथासूत्रोंकी समुत्कीर्तना करनेके बाद ये अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं ।

§ २१२. गाथासूत्रोंकी समुत्कीर्तना करनेके बाद प्रकृतिस्थानसंकमसे सम्बन्ध रखनेवाले ये
अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है ।

* यथा—

§ २१३. यह सूत्र सुगम है ।

* स्थानसमुत्कीर्तना, सर्वसंकम, नोसर्वसंकम, उत्कृष्ट संक्रम, अनुत्कृष्ट संक्रम,

१. आ०प्रतौ विमेसे पुण इति पाठः ।

अणुक्कस्ससंकमो जहणसंकमो अजहणसंकमो सादियसंकमो अणादिय-
संकमो धुवसंकमो अद्धुवसंकमो एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं एणा-
जीवेहि भंगविचओ कालो अंतरं सणियासो अप्पाबहुअं भुजगारो
पदणिकखेवो' बड्ढि त्ति ।

§ २१४. एत्थ ट्राणसमुक्तिणादीणि वट्ठिपजंताणि अणियोगद्वाराणि णादव्वाणि
भवन्ति त्ति मुत्तत्थमंबंधो । तत्थ समुक्तिणादीणि अप्पावहुअपज्जवमाणानि चउवीस-
अणियोगद्वाराणि, भागाभाग-परिमाण-वेत्त-पोसण-भावणुगमाणमेत्थ देसामामयभावेण
संगहियत्तादो । एवमेदाणि चउवीसमणियोगद्वाराणि सामण्णेण मुत्ते परूविदाणि ।
एदेषु सव्व-णोमसव्व-उक्कम्माणुक्कम्म-जहणणाजहणमंकमा मणियामो च एत्थ ण
संबवन्ति, पयडिट्ठाणमंकमे णिरुद्धे तेमिं संबवाणवलंभादां । तदो सेमसत्ताग्मअणियोग-
द्वाराणि एत्थ गहियव्वाणि । पुणो एदेहितो पुधभूदाणि भुजगागदीणि तिण्णि
अणियोगद्वाराणि मुत्तणिट्ठिदाणि धेत्तव्वाणि । संपहि एत्थं परूविदमव्वाणियोगद्वारेहि
गाहामुत्तथविहामणं कुणमाणो चुण्णिमुत्तयारो तत्थ ताव ट्राणसमुक्तिणापरूवणडु-
मुवग्गिमपवंधमाह ।

❀ ट्राणसमुक्तिणा त्ति जं पदं तस्स विहासा जत्थ एया गाहा ।

जघन्यसंक्रम, अजघन्यसंक्रम, गार्हिसंक्रम, अनादिमंक्रम, ध्रुवसंक्रम, अध्रुवसंक्रम, एक
जीवकी अपेक्षा स्नामित्त्व, काल और अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, काल,
अन्तर, सन्निकर्ष, अन्यत्रहृत्त्व, भुजगार, परनिक्षेप आः वृद्धि ।

§ २१४. यहाँ स्थानसमुत्कीर्तनाके लेकर वृद्धि पर्यन्त अनुयोगद्वार ज्ञातव्य है यह इस
सूत्रका अभिप्राय है । उनमेंसे समुत्कीर्तनासे लेकर अन्यत्रहृत्त्व तक चौबीस अनुयोगद्वार है क्योंकि
इनमें देशामर्षभावसे भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन और भावानुगमका संग्रह हो जाता है ।
इस प्रकार ये चौबीस अनुयोगद्वार सामान्यरूपसे मूलमें कहे गये हैं । इनमेंसे सर्वसंक्रम,
नोमर्षसंक्रम, उत्कृष्टसंक्रम, अनुत्कृष्टसंक्रम, जघन्यसंक्रम, अजघन्यसंक्रम और सन्निकर्ष ये सात
अनुयोगद्वार यहाँ सम्भव नहीं हैं, क्योंकि प्रकृतिस्थानसंक्रमके विवक्षित रहते हुए उक्त अनुयोग-
द्वारोंका प्रायः जाना सम्भव नहीं है । उमलिये यहाँ पर शेष सूत्रह अनुयोगद्वारोंका ग्रहण करना
चाहिये । तथा इनसे अनिरिक्त भुजगार आदि जो तीन अनुयोगद्वार हैं जो कि सन्निकर्ष हैं उनको
ग्रहण करना चाहिये । अब इस प्रकार कहे गये सब अनुयोगद्वारोंके द्वारा गाथामंत्रोंके अर्थका
विशेष व्याख्यान करनेकी उच्छ्रायो चूर्णिसूत्रकार पहले उन अनुयोगद्वारोंमेंसे स्थानसमुत्कीर्तनाका
कथन करनेके लिये आगेके प्रबन्धका निर्देश करते हैं—

* अब 'स्थानसमुत्कीर्तना' पदका विशेष व्याख्यान करते हैं जिसमें एक
गाथा निबद्ध है ।

१. ता०—आ०पत्थाः भुजगारो अप्पारो, अणदिदो अवन्तव्वओ पदणिकखेवो इति पाठः ।

§ २१५. पुञ्चुत्ताणमणियोगदागणमादिम्मि जं पदं ठविदं ठाणसमुक्कित्तणा त्ति तस्स विहामा कीग्दि त्ति मुत्तन्थमंबंधो । तत्थ य एगा गाहा पडिवद्धा त्ति जाणावणट्ठं 'जत्थ एया गाहा' पडिवद्धा त्ति भणिदं । मंपहि का सा गाहा त्ति आसंकाए इदमाह—

अट्टावीस चउवीस सत्तरस सोलसेव पणणरसा ।

एदे खलु मोत्तणं सेमाणं संकमो होइ ॥२७॥

§ २१६. एमा गाहा ठाणसमुक्कित्तणे पडिवद्धा त्ति उत्तं होइ । मंपहि एदिस्से गाहाए अर्थविहासणइमिदमाह—

❖ एवमेदाणि पंच द्वाणाणि मोत्तणं सेसाणि तेवीस संकमद्वाणाणि ।

§ २१७. 'एवमेदाणि' त्ति वयणेण गाहामुत्तपुञ्चद्वणिदिद्वाणमट्टावीसादीणं पगमग्गो कओ । तेमिं मंखाविसेमावहारणट्ठं 'पंच द्वाणाणि' त्ति उत्तं । ताणि मोत्तणं सेमाणि संकमद्वाणाणि होति । तेमिं च मंखाणं विसेमणिद्वाणट्ठं 'तेवीस' ग्गहणं कयं । तदो २८, २४, १७, १६, १५ एदाणि पंच द्वाणाणि अंकमपाओग्गाणि । सेमाणि मत्तावीसादीणि तेवीस संकमद्वाणाणि त्ति मिदं । तेमिसंकमविण्णामो एमो २७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १ । मंपहि एदेमिं द्वाणाणं पयडिणिदेमकरणइमुत्तरमुत्तावयागे कीग्दे—

§ २१५. पूर्वोक्त अनयोगदु वेदिं आदिमे जो 'स्थानसमुत्कीर्तना' पद आया है उनका विशेष व्याख्यान करते हैं यह उक्त सूत्रका प्रकरणसंगत अर्थ है । इस विषयमें एक गाथा आई है यह जाननेके लिये सूत्रमें 'जत्थ एया गा । पडिवद्धा' यह कहा है । अब वह कौनसी गाथा है ऐसी आशंका होने पर उक्तका निर्देश करते हैं—

'अट्टाईस, चौवीस, सत्रह, सोलह और पन्द्रह इन पाँच स्थानोंके सिवा शेष तेईस स्थानोंका संक्रम होता है ।'

§ २१६. यह गाथा स्थान समुत्कीर्तन अनुपागद्वारमें सम्बन्ध रखती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब उस गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❖ इस प्रकार इन पाँच स्थानोंके सिवा शेष तेईस संक्रमस्थान हैं ।

§ २१७. चणिसूत्रमें जो 'एवमेदाणि' पद आया है सो इस पदके द्वारा गाथासूत्रके पूर्वार्धमें बतलाये गये अट्टाईस आदि स्थानोंका निर्देश किया है । उनकी संख्याविशेषका निश्चय करनेके लिये 'पंच द्वाणाणि' यह कहा है । उनके सिवा शेष संक्रमस्थान हैं । उनकी संख्याविशेषका निश्चय करनेके लिये 'तेवीस' पदको ग्रहण किया है । इसलिये २८, २४, १७, १६ और १५ ये पाँच स्थान संक्रमके अयोग्य हैं और शेष २३ आदि तेईस संक्रमस्थान हैं यह बात सिद्ध होती है । उनका अंकविन्यास उस प्रकार है—२७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, और १ । अब इन स्थानोंकी प्रकृतियोंका निर्देश करनेके लिये

१. ता०प्रती अद्द (त्थ)— इति पाठः ।

❀ एत्थ पयडिणिहेसो कायच्चो ।

२१८. एदंमु अणंतगणिहिदुमंक्रममंक्रमद्वारेणमु एदाहिं पयडीहिं एदं ठाणं होइ ति जाणावणणिमित्तं पर्याडिणिहेसो कायच्चो ति भणिदं होइ । तत्थ ताव अट्टावीम-पयडिद्वारेणम्म पयडिणिहेसो सुबोद्धो ति कादण तदमंक्रमपाआंग्गत्ते काण्णगवेमणद्वं पुच्छवक्कमाह —

❀ अट्टावीसं केण कारयेण ए संकमइ ?

२१९. सुगममेदमामंकावयणं ।

❀ दंसणमोहणीय-चरित्तमोहणीयाणि एक्केक्कम्मि ए संकमंति ।

२२०. कुदो ? महावदो चेव तंमिमण्णोण्णपडिग्गहमत्तीए अभावादो ।

❀ तदो चरित्तमोहणीयस्स जाओ पयडीओ वज्जंति तत्थ पणुवीसं पि संकमंति ।

२२१. ममाणजाइयत्तं पडि विमंमाभावादो । अवज्जमाणियागु किं कारणं पत्थि गंक्रमो ? ण, तत्थ पांडग्गहमत्तीए अभावादो ।

❀ दंसणमोहणीयस्स उक्कस्सेण दो पयडीओ संकमंति ।

आगका मूत्र कर्तते हैं—

* यहाँ पर प्रकृतियोंका निर्देश करना चाहिये ।

§ २१८. ये जो समनन्तरपूय संक्रमस्थान और अमंक्रमस्थान बतला दायें हैं उनमेंसे इस स्थानकी जितनी प्रकृतियाँ हांती हैं यह जनानेके लिये प्रकृतियोंका निर्देश करना चाहिये यह उक्त सूत्रका तात्वय है । उसमें भी अट्टाईस प्रकृतिक स्थानकी प्रकृतियोंका निर्देश सुगम है ऐसा मान कर यह स्थान संक्रमके अयोग्य क्यों हैं इसके कारणका विचार करनेके लिये पुच्छवक्कमाह कहते हैं—

* अट्टाईस प्रकृतिक स्थान किस कारणसे संक्रमित नहीं होता ।

§ २१९. यह आशंक सूत्र सुगम है ।

* क्योंकि दर्शनमोहनीय और चाग्निमोहनीय ये परस्परमें मंक्रम नहीं करतीं ।

§ २२०. क्योंकि स्वभावसे ही इनमें परस्पर प्रतिग्रहरूप शक्ति नहीं पाई जाती है ।

* इसलिये चाग्निमोहनीयकी जितनी प्रकृतियाँ बंधती हैं उनमें पच्छीस प्रकृतियाँका ही संक्रमित होती हैं ।

§ २२१. क्योंकि एक जातिकी अपेक्षा उनमें कोई भेद नहीं है ।

शंका—नहीं बंधनेवा नी प्रकृतियोंमें संक्रम क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं क्योंकि उनमें प्रतिग्रहरूप शक्ति नहीं पाई जाती ।

* तथा दर्शनमोहनीयकी अधिकसे अधिक दो प्रकृतियाँ संक्रमित होती हैं ।

§ २२२. किं कारणं ? अट्टावीगमंतकम्मियमिच्छाइड्ढिमि मिच्छत्तपडिग्गहेण सम्भत्त-सम्मामिच्छत्ताणं संकंतिदंमणादो ।

✽ एदेण कारणेण अट्टावीसाए णत्थि संकमो ।

§ २२३. जेण कारणेण निण्हं दंमणमोहपयडोणमक्कमेण संकमसंभवो णत्थि तेण कारणेण अट्टावीगाए संकमो णत्थि ति भणिदं होइ ।

§ २२४. एवमेत्तिएण पवंघेण अट्टावीगमपर्याणट्टाणस्स अमंकमपाओग्गत्ते कारणं परुविय मंपहि मत्तावीगमपर्याणमंकमट्टाणस्स पर्याणिहेमविहासणट्टमिदमाह—

✽ सत्तावीसाए काओ पयडीओ ।

§ २२५. मुगममेदं पुच्छामुत्तं ।

✽ पणुवीसं चरित्तमोहणीयाओ दोसिण दंसणमोहणीयाओ ।

§ २२२. क्योंकि अट्टाईग प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके सिध्यात्व प्रकृति प्रतिग्रहरूप रहती हैं, उनमें सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंका ही संक्रम पाया जाता है । तथा सम्यग्दृष्टिके भी मिथ्यात्व या सम्यग्मिथ्यात्वका ही संक्रम देखा जाता है । आशय यह है कि दर्शनमोहनीय ही तीन प्रकृतियोंका एक साथ संक्रम नहीं होता किन्तु अधिकसे अधिक दो प्रकृतियोंका ही संक्रम पाया जाता है ।

✽ इम कारणसे अट्टाईम प्रकृतिक स्थानका संक्रम नहीं होता ।

§ २२३. यतः दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका मुगम संक्रम हे ना सम्भव नहीं हे अतः अट्टाईम प्रकृतिक स्थानका संक्रम नहीं होता यह उक्त पथकवा तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—मोहनीयकी अट्टाईम प्रकृतियां मुख्यतया दर्शनमोहनीय और चारित्रमाहनीय इन दो भागोंमें बँटी हुई हैं । इनमेंसे दर्शनमोहनीयके तीन और चारित्रमोहनीयके पचचीम भेद हैं । ऐसा नियम है कि दर्शनमोहनीयका चारित्रमोहनीय और चारित्रमोहनीयका दर्शनमोहनीयमें संक्रम नहीं होता, क्योंकि उनकी एक जाति नहीं है । तथापि जिन समय चारित्रमोहनीयकी जितनी प्रकृतियाँ बँधती हैं उनमें उसकी सब प्रकृतियोंका तो संक्रम बन जाता है किन्तु दर्शनमोहकी अपेक्षा एक साथ दो प्रकृतियोंमें अधिकका संक्रम नहीं होता, क्योंकि मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्व प्रकृति प्रतिग्रहरूप रहती हैं, वहाँ उनका संक्रम सम्भव नहीं और सम्यग्दृष्टिके सम्यक्त्व प्रकृति प्रतिग्रहरूप रहती हैं, वहाँ उनका संक्रम सम्भव नहीं है । उन्हींमें प्रकृति अट्टाईम प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं होता या बतलाया है ।

§ २२४. उप प्रकाश इनमें प्रथमों द्वारा अट्टाईम प्रकृतिक स्थान संक्रमके अयोग्य हैं इमका कारण यह है अब सत्तावाले प्रकृतिक संक्रमस्थानकी प्रकृतियोंका विधान करनेके लिये यह सूत्र कहते हैं—

✽ मत्ताईम प्रकृतिक स्थानकी कौनसी प्रकृतियाँ हैं ?

§ २२५. ता पचचोस म्माव हे ।

✽ चारित्रमोहनीयकी पचचीम और दर्शनमोहनीयकी दो ये मत्ताईम प्रकृतियाँ हैं ।

§ २२६. सोलसकसाय-णवणोकसायभेएण पणुवीसं चरित्तमोहणीयपयडीओ मम्मत्त-मम्मामिच्छत्तमण्णिदाओ मिच्छत्त-मम्मामिच्छत्तमण्णिदाओ वा दोण्णि दंसण-मोहणीयपयडीओ च घेत्तण मत्तावीमाण मंकमट्टाणमुप्पज्जदि त्ति भणिदं होइ ।

* छुब्बीसाण सम्मत्ते उच्चेल्लिदे ।

§ २२७. मत्तावीमसंकामयमिच्छाईट्टिणा मम्मत्ते उच्चेल्लिदे मंते सेमछुब्बीस-पयडिममुदायपयसेदं गंकमट्टाणमुप्पज्जइ त्ति मुत्तत्थो । पयारंतरेणावि तप्पदुप्पायणट्ट-मुत्तंगे मुत्तावयागे—

❊ अहवा पढमसमयसम्मत्ते उप्पाइदे ।

२२८. पढमसमयविमोसिदं मम्मत्तं पढमसमयसम्मत्तं । तस्मि उप्पाइदे पयदमंसकमट्टाणमुप्पज्जइ, तत्थ मम्मामिच्छत्तम्प गंकमाभावाटो । तं कथं ? छुब्बीस-मंतकस्मियमिच्छाईट्टिस्म पढमसम्मत्तुप्पायणममण मिच्छत्तकम्मं मम्मत्त-मम्मामिच्छत्त-मरुत्तण पाणिमइ, ण तस्मि गमण मम्मामिच्छत्तम्प गंकमसंभवो, पुत्तमणुप्पणस्म ताये च उप्पज्जत्ताणम्प तप्पणिमार्त्तित्ताओ संत्तुप्पायणे वावदस्म जीवस्म गंकामण-

§ २२६. जे लह कयाग ओर तो तो जपाय के भेदने चरित्रमोहनीयकी पचीस प्रकृतियाँ तथा सम्यक्त्व और सम्यग्दर्शन या मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो दर्शनमोहनीयकी प्रकृतियाँ मिलाने से उत्पन्न प्रकृतिक संक्रमण माने जाते हैं यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है ।

* इन मत्ताईममेंसे सम्यक्त्वकी उद्वेलना होने पर छुब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २२७. मत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रमक मिथ्यादृष्टि जीवके द्वारा सम्यक्त्वकी उद्वेलना कर लेने पर केप छुब्बीस प्रकृतियोंका समुदायरूप संक्रमस्थान उत्पन्न होता है यह उक्त सूत्रका अर्थ है । अब प्रकारान्तरमें उक्त स्थानमें उत्पन्न करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* अथवा सम्यक्त्वके उत्पन्न करनेके प्रथम समयमें छुब्बीस प्रकृतिक संक्रम-स्थान होता है ।

§ २२८. सूत्रमें 'प्रथम समय' पद सम्यक्त्वका विशेषण है और 'सम्यक्त्व' विशेष्य है । इसलिये उस सूत्रका यह अर्थ है कि प्रथम समयमें युक्त सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होने पर अर्थात् सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि वहाँ सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता ।

शंका—तो कैसे ?

समाधान— छुब्बीस प्रकृतियोंकी मत्तावाला जो मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है उसके प्रथमोपशम सम्यक्त्वके उत्पन्न करनेके प्रथम समयमें मिथ्यात्व कर्म सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वरूपमें परिणामन करता है । इसलिये उस समय सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम संभव नहीं है, क्योंकि जो प्रकृति पहले उत्पन्न होकर उसी समय उत्पन्न हो रही है उसका उसी समय संक्रमरूप परिणामन माननेमें विरोध आता है । दूसरे जो जीव मत्ताके उत्पन्न करनेमें लगा हुआ है उसके उसी समय संक्रमकरणकी प्रवृत्ति माननेमें विरोध आता है, इसलिये

करणवावाविगोहादो च । तम्हा छव्चीममंतकम्मियस्म पणुवीसमंकमट्टाणे सम्मत्तुप्पत्ति-
पढमसमए मिच्छत्तस्म मंकमपाओग्गत्तसिद्धीएँ छव्चीमसंकमट्टाणसंभवो त्ति सिद्धं ।

❀ पणुवीसाए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेहि विणा सेसाओ ।

§ २२९. पणुवीसाए मंकमट्टाणस्स काओ पयडीओ त्ति आमंकिय सम्मत्त-
सम्मामिच्छत्तेहि विणा सेसाओ हांति त्ति उत्तं । सेमं मुगमं ।

❀ चउवीसाए किं कारणं णत्थि ।

§ २३०. एत्थ मंकमो त्ति पयरणवसेणाहिसंवंधो कायव्वो । सेमं मुगमं ।

छव्चीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके पचचीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके रहते हुए जब वह
सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके प्रथम समयमें मिथ्यात्वका संक्रमके योग्य कर लेता है तब उसके छव्चीस
प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है यह सिद्ध हुआ ।

विशेषार्थ—यहो छव्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे बनलाया है । प्रथम प्रकारमें
सोलह कपाय, नौ नाकपाय तथा सम्यग्मिथ्यात्व ये छव्चीस प्रकृतियां ली हैं । यह संक्रमस्थान
सम्यक्त्वकी उद्वेजनाके वद मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें प्राप्त होता है । यद्यपि यहां सत्ताईस प्रकृतियोंकी
सत्ता है तथापि यहां मिथ्यात्वका संक्रम सम्भव नहीं, इसलिए संक्रमस्थान छव्चीस प्रकृतिक ही
होता है । दूसरे प्रकारमें सोलह कपाय, नौ नाकपाय और मिथ्यात्व ये छव्चीस प्रकृतिया ली है ।
यह संक्रमस्थान जो छव्चीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जोव प्रथमोपराम सम्यक्त्वका प्राप्त करता है
उसके प्रथम समयमें होता है । यद्यपि यहां सत्ता अष्टाईस प्रकृतियोंकी हो जाती है, तथापि यहां
प्रथम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता, इसलिए यहां भी छव्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान
होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* पचचीस प्रकृतिक संक्रमस्थानमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके विना शेष
सब प्रकृतियाँ हैं ।

§ २२६ पचचीस प्रकृतिक संक्रमस्थानकी कौनसी प्रकृतियाँ हैं ऐसी आशंका करके सम्यक्त्व
और सम्यग्मिथ्यात्वके विना शेष सब प्रकृतियाँ हैं यह कहा है । शेष कथन मुगम है ।

विशेषार्थ—पहले यह बतला आये हैं कि सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानमें चारित्रमोहनीयकी
पचचीस तथा दर्शनमोहनीयकी दो ये सत्ताईस प्रकृतियाँ होती हैं । उनमेंसे दर्शनमोहनीयकी
दो प्रकृतियाँ निकाल लेने पर पचचीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । तथापि वे दो प्रकृतियाँ
कौनसी हैं जो सत्ताईस प्रकृतियोंमेंसे निकाली गई है । यह एक प्रश्न है । जिम्हा उत्तर देते हुए
चृण्णिसूत्रमें यह बतलाया है कि वे दो प्रकृतियाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व है । जिन्हें निकाल
देने पर पचचीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । आशय यह है कि मिथ्यादृष्टि जीवके जब सम्य-
ग्मिथ्यात्वकी भी उद्वेजना हो जाती है तब यह पचास प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है । या
अनादि मिथ्यादृष्टिके भी मिथ्यात्वके विना यह संक्रमस्थान होता है ।

* चौवीस प्रकृतिक स्थानका किम कारणसे संक्रम नहीं होता ।

§ २३१. इम सूत्रमें प्रकरणवश 'संक्रम' इम पदका सम्बन्ध कर लेना चाहिये । शेष
कथन मुगम है ।

१. ता० प्रतो पाओग्गत्ता सिद्धीएँ हत्ति पाः ।

❀ अणंताणुबंधिणो सञ्चे अवणिज्जंति ।

§ २३१. जेण कारणेण अणंताणुबंधिणो सञ्चे जुगवमवणिज्जंति तेण चउवीसाए पयडिद्वानस्स संकमो णत्थि त्ति मुत्तत्थमंबंधो । तेमिमकमेणावणयणे चउवीममंतकम्मं होदूण तेवीससंकमद्वानमेवुप्पज्जदि त्ति भावत्थो ।

❀ एदेण कारणेण चउवीसाए णत्थि ।

§ २३२. एदेणाणंतरपरूविदेण कारणेण चउवीसाए णत्थि संकमो त्ति भणिदं होइ ।

❀ तेवीसाए अणंताणुबंधीसु अवगदेसु ।

§ २३३. अणंताणुबंधीसु विमंजोइदेसु इगिवीमकसाय-दोदंसणमोहणीयपयडीओ घेत्तूण तेवीमसंकमद्वानं होदि त्ति मुत्तत्थो ।

❀ वावीसाए मिच्छुत्ते खविदे सम्मामिच्छुत्ते सेसे ।

* क्योंकि सब अनन्तानुबन्धियों निकल जाती हैं ।

§ २३१. यतः सब अनन्तानुबन्धियों युगपत् निकल जाती हैं अतः चौबिस प्रकृतिक स्थानका संक्रम नहीं होता यह इस सूत्रका तात्पर्य है । उन चार अनन्तानुबन्धियोंके एक साथ निकल जाने पर चौबीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होकर संक्रमस्थान तेईसप्रकृतिक ही उत्पन्न होता है यह उक्त कथनका भावार्थ है ।

* इस कारणसे चौबीस प्रकृतिक स्थानका संक्रम नहीं होता ।

§ २३२. यह जा अनन्तरपूर्व कारण कह आये है उससे चौबीस प्रकृतिक स्थानका संक्रम नहीं होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—चौबीस प्रकृतिकस्थान चार अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना होने पर ही प्राप्त होता है अन्य प्रकारसे नहीं । किन्तु उन चौबीस प्रकृतियोंमें दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियाँ भी सम्मिलित हैं, अतः चौबीस प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं होता यह कहा है ।

* चार अनन्तानुबन्धियोंके अपगत होने पर तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २३३. अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना हो जाने पर इक्कीस कपाय और दो दर्शनमोहनीय इन प्रकृतियोंको लेकर तेईस प्रकृतिकसंक्रमस्थान होता है यह इस सूत्रका अर्थ है ।

विशेषार्थ—आशय यह है कि जब यह जीव चार अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना कर लेता है तब चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता और तेईस प्रकृतियोंका संक्रम होता है । यहाँ दर्शनमोहनीयकी दो प्रकृतियोंसे मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ संक्रमयोग्य ली गई हैं । किन्तु ऐसे जीवके मिथ्यात्वमें जाने पर सत्ता तो अट्टाईसकी हो जाती है तथापि संक्रम एक आवलि काल तक तेईसका ही होता रहता है, क्योंकि तब एक आवलि काल तक चार अनन्तानुबन्धियोंका संक्रम नहीं होता ऐसा नियम है । इस अपेक्षासे यहाँ दर्शनमोहनीयकी सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ लेनी चाहिये, क्योंकि मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता ऐसा नियम है ।

* मिथ्यात्वका क्षय हो जाने पर और सम्यग्मिथ्यात्वके शेष रहने पर बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २३४. तेणेव विमंजोइदाणंताणुवंधीचउक्केण दंमणमोहकखवणमन्हुट्टिय मिच्छते खविदे इगिवीमकमाय-मम्मामिच्छत्तपयडीओ घेत्तणेदं मंक्रमदुणमुप्पज्जइ ति उत्तं होइ ।

✽ अहवा चउवीसदिसंतकम्मियस्स आणुपुन्वीसंकमे कदे जाव णवुंसयवेदो अणुवसंतो ।

§ २३५. 'चउवीसमंतकम्मिय' वयणं सेममंतकम्मियपडिसेहफळं, तन्थ पयद-संकमदुणमंभवाभावादो । 'आणुपुन्वीसंकमे कदे' ति वयणमणाणुपुन्वीसंकमपडिसेहट्टं, तम्म पयदविगेहित्तादो । तन्थ वि णवुंसयवेदे अणुवसंते चैव पयदसंकमदुणमुप्पज्जइ ति जाणावणदुं णवुंसयवेदे अणुवसंते ति भणितं । तम्म उक्कंते पयदसंकमदुणादो हेट्टिमदुणम्म समुप्पत्तिदंसणादो । ओदरमाणम्म चउवीसमंतकम्मियम्म इत्थिवेदे ओकडिदे जाव णवुंसयवेदो अणोक्कडिदो ताव पयददुणमंभवा अनि । णवुरि मो एत्थ ण विवक्खिओ, चटमाणस्सेव पहाणभावेणावलंबियतादो ।

§ २३६. जिनसे अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी विनंयोजना की है ऐसा जी. दर्शनमोहनीयकी चरणके लिये उद्यत होकर जब मिथ्यात्वका क्षय कर देता है तब उक्क का कपाय और सम्यग्मिथ्यात्व इन प्रकृतियोंको लेकर यह संक्रमस्थान उत्पन्न हो जाता है यह उक्क का प्रथम उपाशम है ।

विशेषार्थ—यद्यपि मिथ्यात्वकी चरणके बाद जन्ता तैसम प्रकृतियोंकी होती है तथापि सम्यग्दृष्टिके सम्यक्त्व संक्रमके अयेन्य होनेसे संक्रम वाईस प्रकृतियोंका ही होता है यह उक्क का अभिप्राय है ।

✽ अथवा चौवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवने आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ करने पर जब तक नपुंसकवेदका उपशम नहीं होता है तब तक वाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २३५. सूत्रमे जो 'चउवीसमंतकम्मिय' यह वचन दिया है सो इयत्ता फल जेप सत्कर्म-स्थानोंका निषेध करना है, क्योंकि उनके सद्भावमे प्रकृत संक्रमस्थान नहीं हो सकता है । सूत्रमे 'आणुपुन्वीसंकमे कदे' यह वचन अन्तानुपूर्वी संक्रमका निषेध करनेके लिये आया है, क्योंकि वह प्रकृतका विरोधी है । उममें भी नपुंसकवेदका उपशम न होने पर ही प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है यह वचनके लिये 'णवुंसयवेदे अणुवसंते' यह कहा है, क्योंकि नपुंसकवेदका उपशम हो जाने पर प्रकृत संक्रमस्थानसे नीचेके स्थान ही उत्पत्ति देखी जाती है । उपशमश्रेणिसे उत्तरत समय चौवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवने खीवेदका अवकाश होकर जब तक नपुंसकवेदका अपकर्षण नहीं होता है तब तक प्रकृत स्थान सम्भव है, किन्तु वह यहाँ विवर्जित नहीं है, क्योंकि उपशम-श्रेणि पर चढ़नेवाला जीव ही प्रधानरूपमे यहाँ स्वीकार किया गया है ।

विशेषार्थ—उपशमश्रेणिमे यह वाईस प्रकृतिकसंक्रमस्थान दो प्रकारमे बतलाया है । यथा—उपशमश्रेणि पर चढ़ते समय चौवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जिन जीवने अन्तरकरण करनेके बाद आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ कर दिया है उमके जब तक नपुंसकवेदका उपशम नहीं होता है तब तक यह वाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है । यद्यपि इस जीवके सत्ता इक्क स कपाय और तीन दर्शनमोहनीय इन चौवीस प्रकृतियोंकी है तथापि इनमेंसे सम्यक्त्व और संबलन

❊ एकवीसाए खीणदंसणमोहणीयस्स अक्खवग अणुवसामगस्स ।

§ २३६. खीणदंसणमोहणीयस्स अक्खवगणुवसामगस्स इगिवीससंकमट्ठाण-
मुप्पज्झ त्ति सुत्तथमंबंधो खवगमुवसामगं च वज्जिययूणणत्थं खीणदंसणमोहणीयस्स
पयदसंकमट्ठाणमंभवो त्ति भणिदं होइ । किमिदि खवगोवमामगपरिवज्जणं कीरदे ? ण,
तत्थाणुपुव्वीसंकमादिवसेण ट्ठाणंतरूपत्तिदंसणादो । एत्थ खवगोवसामगववएसो
अणियट्ठिअट्ठाए संखेज्जेसु भागोसु गदेसु संखेज्जदिमे भागे सेसे विवक्खिओ, तत्थेव
खवणोवसामणवावारपउत्तिदंसणादो ।

❊ चउवीसदिसंतकम्मियस्स वा णउंसयवेदे उवसंते इत्थिवेदे
अणुवसंते ।

लोभ इन दो प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता, अतः यहाँ वाईस प्रकृतिवसंक्रमस्थान प्राप्त होता है ।
दूसरा प्रकार यह है कि यह जीव उपशमश्रेणियोंसे उतरता हुआ स्त्रीवेदका अपकर्षण करनेके बाद
जब तक नपुंसकवेदका अपकर्षण नहीं करता है तब तक वाईस प्रकृतिकसंक्रमस्थान होता है ।
यहाँ आनुपूर्वीसंक्रमके न रहनेसे यद्यपि लोभका संक्रम तो होने लगता है पर अभी नपुंसकवेदका
संक्रम नहीं प्रारम्भ हुआ है इसलिये वाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । इस प्रकार यद्यपि
उपशमश्रेणियोंमें वाईस प्रकृतिक दो संक्रमस्थान होते हैं तथापि चूर्णिकारने चढ़ते समयके एक संक्रम-
स्थानका ही निर्देश किया है दूसरेका नहीं । दूसरेका क्यों निर्देश नहीं किया इसका कारण बतलाते
हुए टीकामें जो कुछ लिखा है उसका भाव यह है कि उतरते समय जो वाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान
प्राप्त होता है उसे प्रधान न मानकर उसका उल्लेख नहीं किया है ।

* जिमने दर्शनमोहनीयका क्षय कर दिया है किन्तु जो क्षपक या उपशमक
नहीं है उसके इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

२३६ जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय कर दिया है किन्तु जो क्षपक या उपशमक नहीं
है उसके इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है यह इस सूत्रका तात्पर्य है । क्षपक या
उपशमकका छोड़कर जिसने दर्शनमोहनीयकी क्षपणा कर दी है ऐसे जीवके अन्यत्र प्रकृत संक्रम-
स्थान सम्भव है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—क्षपक और उपशमकका निषेध क्यों किया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि क्षपक या उपशमकके आनुपूर्वी संक्रम आदिके कारण दूसरे
स्थानोंकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

प्रकृतमें क्षपक और उपशमक यह संज्ञा अनिवृत्तिकरणके कालका बहुभाग व्यतीत होकर
एक भाग शेष रहने पर जो जीव स्थित है उनकी अपेक्षा विवक्षित है, क्योंकि क्षपणा और
उपशमनारूप व्यापारकी प्रवृत्ति वहीं पर देखी जाती है ।

* अथवा चौबीस प्रकृतिक मत्कर्मवाले जीवके नपुंसकवेदका उपशम होने पर
और स्त्रीवेदका उपशम नहीं होने पर इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

१. आ० प्रती वज्जियमणुत्थ इति पाठ ।

§ २३७. आणुपुञ्जीसंकमवसेण लोभस्सामंकागगो होऊण जो द्विओ चउवीस-संतकम्मिओ उवसामओ तस्स वावीसमंकमपयडीसु णवुंसयवेदे उवसंते इत्थिवेदे चाणु-वसंते इगिवीससंकमट्टाणं पयारंतरपडिबद्धमुप्पज्जइ । जेणेदं सुत्तं देसामासियं तेण चउवीससंतकम्मियउवसमसम्माइट्टिस्स सासणभावं पडिवण्णस्स पट्टमावलियाए चउवीस-संतकम्मियसम्माभिच्छाइट्टिस्स वा इगिवीससंकमट्टाणं पयारंतरपडिग्गहियं होइ त्ति वत्तव्वं, तत्थ पयारंतरपरिहारेण पयदसंकमट्टाणसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो । अदो चेष ओदग्गमाणगस्स वि चउवीससंतकम्मियस्स सत्तसु कम्मेषु ओकड्ढिदेसु जाव इत्थि-णवुंसयवेदा उवसंता ताव इगिवीससंतकम्मट्टाणसंभवो सुत्तंतब्भूदो वक्खाणेष्वो ।

§ २३७. आनुपूर्वी संक्रमके कारण लोभ संज्वलनका संक्रम नहीं करनेवाला जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव है उसके बाईस संक्रम प्रकृतियोंमेंसे नपुंसकवेदका उपशाम होने पर और स्त्रीवेदका उपशाम नहीं होने पर प्रकारान्तरसे इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । यतः यह सूत्र देशामर्षक है अतः इससे यह भी सूचित होता है कि जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशाम सम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है उसके पहली आवलि कालके भीतर या चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टिके अन्य प्रकारके प्रतिग्रहके साथ यह इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि वहाँ पर प्रकारान्तरके परिहार द्वारा प्रकृत संक्रमस्थानकी सिद्धि निर्बाधरूपसे पाई जाती है । तथा इससे सूत्रमें अन्तर्भूत हुए इम स्थानका भी व्याख्यान करना चाहिये कि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव उपशामश्रेणिसे उतर रहा है उसके सान नोकषाय कर्मोंका अपकर्षण तो हो गया है किन्तु जब तक स्त्रीवेद और नपुंसकवेद उपशान्त हैं तब तक इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान सम्भव है ।

विशेषार्थ—यहाँ पर इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान पाँच प्रकारसे बतलाया है । यथा—(१) जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव जब तक अन्य प्रकृतियोंका क्षय नहीं करता या उपशामश्रेणिमें आनुपूर्वी संक्रमको नहीं प्राप्त होता है तबतक इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । (२) जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशामश्रेणि पर चढ़ता है उसके नपुंसकवेदका उपशाम हो जाने पर जब तक स्त्रीवेदका उपशाम नहीं होता तब तक इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । इस स्थानमें सम्यक्त्व, संज्वलन लोभ और नपुंसकवेदका संक्रम नहीं होता, शेषका होता है । (३) चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता-वाला जो उपशामसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है उसके एक आवलि कालतक इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । यहाँ पर तीन दर्शनमोहनीय और चार अनन्तानुबन्धी इन सातका संक्रम नहीं होता । (४) चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव मिश्र गुणस्थानको प्राप्त होता है उसके इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । इसके अनन्तानुबन्धीचतुष्क तो हैं ही नहीं और तीन दर्शनमोहनीयका संक्रम नहीं होता है । (५) जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशामश्रेणिसे उतर रहा है उसके और सब कर्मोंके अनुपशान्त हो जाने पर भी जब तक स्त्रीवेद और नपुंसकवेद उपशान्त रहते हैं तब तक इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । इसके भी चार अनन्तानुबन्धियोंका तो सद्भाव ही नहीं है और सम्यक्त्व, स्त्रीवेद तथा नपुंसकवेदका संक्रम नहीं होता है । इस प्रकार ये पाँच प्रकारसे इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं । इनमेंसे प्रारम्भके दो संक्रमस्थानोंका तो चूर्णिसूत्रकारने स्वयं उल्लेख किया है किन्तु शेष तीन संक्रमस्थानोंका नहीं किया है । सो चूर्णिसूत्र देशामर्षक होनेसे सूचित हो जाते हैं ऐसा जानना चाहिये ।

❀ बीसाण एकवीसदिसंतकम्मियस्स आणुपुञ्चीसंकमे कदे जाव णवंसयवेदो अणुवसंतो ।

§ २३८. णवुंसयवेदोवसमो किमट्टमेत्थ णेच्छिज्जदे ? ण, तम्मिं उवसंते पयद-
विरोहिसंकमट्ठाणंतरुप्पत्तिदंसणादो^१ । तदो एकारसकसाय-णवणोकसायसमुदायप्पयमेदं
संकमट्ठाणमिगिबीसमंतकम्मियस्सुवसामगस्स अंतरकरणपढमसमयादो जाव णवुंसय-
वेदाणुवसमो ताव होदि त्ति सुत्तत्थमंगहो । ओदग्माणगस्स पुण णवुंसयवेदे उवसंते
चेय पयदसंकमट्ठाणसंभवो त्ति एसो वि अत्थो एत्थेव सुत्ते णिलीणो त्ति वक्खाणेत्येवो ।

❀ चउवीसदिसंतकम्मियस्स वा आणुपुञ्चीसंकमे कदे इत्थिवेदे उवसंते
छसु कम्मेषु अणुवसंतेसु ।

§ २३९. चउवीसदिमंतकम्मंसियस्सं वा उवसामगस्स पयदसंकमट्ठाणमुप्पज्ज
त्ति संबंधो । कधंभूदस्स तस्स ? आणुपुञ्चीसंकमे कदे णवुंसयवेदोवसामणाणंतरमित्थि-

* इक्कीम प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ हो जाने पर जब तक नपुंसकवेदका उपशम नहीं होता तब तक बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २३८. शंका—यहां पर नपुंसकवेदका उपशम क्यों नहीं स्वीकार किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उसका उपशम हो जाने पर प्रकृत संक्रमस्थानके विरोधी दूसरे संक्रमस्थानकी उत्पत्ति देखी जाती है, इसलिये यहां नपुंसकवेदका उपशम नहीं स्वीकार किया गया है ।

इसलिए इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके अन्तरकरण करनेके प्रथम समयसे लेकर जब तक नपुंसकवेदका उपशम नहीं होता है तब तक ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंके समुदायरूप यह बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है यह इस सूत्रका समुच्चयार्थ है । किन्तु उपशामश्रेणिसे उतरनेवाले जीवके तो नपुंसकवेदके उपशान्त रहते हुए ही प्रकृत संक्रमस्थान सम्भव है इस प्रकार यह अर्थ भी इसी सूत्रमें गर्भित है यह व्याख्यान यहां करना चाहिये ।

* अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके आनुपूर्वी संक्रमके बाद स्त्री-वेदका उपशम होकर जब तक छह नोकषायोंका उपशम नहीं हुआ है तब तक बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २३९. अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ऐसा यहाँ सम्बन्ध करना चाहिये ।

शंका—यह चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव कैसा होना चाहिये जब इसके प्रकृत संक्रमस्थान होता है ?

समाधान—जिसने आनुपूर्वीसंक्रम करके नपुंसकवेदका उपशम करनेके बाद स्त्रीवेदका उपशम तो कर लिया है किन्तु छह नोकषायोंका उपशम कर रहा है उस चौबीस प्रकृतियोंकी

१. ता० प्रतो ए तत्थ (त०) म्मि इति पाठः । २. ता० प्रतो -ट्ठाणंतरुक्खलंभदंसणादो । इति पाठः ।

३. ता० प्रतो -कम्मियस्स इति पाठः ।

वेदे उवमंते छण्णोकमायाणमुवमामयभावेणावड्ढिदस्स । तत्थ दो दंसणमोहणीयपयडीहिं सह एक्कायमकमाय-मत्तणोकमायाणं मंकमपाओग्गाणमुवलंभादो ।

❀ एगुणवीसाए एकवीसदिसंतकम्मंसियस्स एवुंसयवेदे उवसंते इत्थिवेदे अणुवसंते ।

§ २४०. इगिवीममंतकम्मियस्सुवमामगस्स लोभाणुपुञ्जीसंकमवसेण समासादिद-वीमपयडिमंकमट्टाणम्म क्रमेण णवुंसयवेदे उवमंते पयदमंकमट्टाणमुप्पज्जइ ति सुत्तत्थ-मंवंधो । ओदग्माणगं पि समस्मिगुणेदस्स ट्टाणस्स संभवो समयविरोहेणाणुगंतव्वो, सुत्तस्सेदम्म देमामासयत्तादो ।

❀ अट्टारसएहमेक्कावीसदिकम्मंसियस्स इत्थिवेदे उवसंते जाव ह्यणो-कसाया अणुवसंता ।

§ २४१. तस्सेव इगिवीममंतकम्मंसियस्स अंतर्करणे कदे णवुंसय-इत्थिवेदेसु

सत्तावाले उपशामक जीवके प्रकृत संक्रमस्थान होता है, क्योंकि यहाँ पर संक्रमके योग्य दो दर्शन मोहनीयके साथ ग्यारह कपाय और सात नोकपाय प्रकृतियां पाई जाती हैं ।

विशेषार्थ—यहाँ पर बीम प्रकृतिक संक्रमस्थान तीन प्रकारसे प्राप्त होता है दो क्षायिक सम्यग्दृष्टिके और एक द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टिके । ये तीनों ही संक्रमस्थान उपशमश्रेणिमें होते हैं । उनका विशेष गुलाभा टीकामे ही किया है अतः यहाँ नहीं करते है ।

* इक्षीय प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके नपुंसकवेदका उपशम होकर जब तक स्त्रीवेदका उपशम नहीं होता तब तक उन्नीय प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २४० जिम इक्कीम प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवने लोभसंज्वलनमे होनेवाले आनुपूर्वी संक्रमके कारण बीम प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त कर लिया है उसके क्रमसे नपुंसकवेदके उपशान्त हो जाने पर प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है यह इस सूत्रका तात्पर्य है । इसी प्रकार उपशमश्रेणिमे उतरनेवाले जीवकी अपेक्षामे भी आगमानुसार इस स्थानको जान लेना चाहिये, क्योंकि यह सूत्र देशामर्षक है ।

विशेषार्थ—यहाँ उन्नीय प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया है । एक तो जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणि पर चढ़ रहा है उसके नपुंसकवेदका उपशम हो जाने पर प्राप्त होता है, क्योंकि तब लोभसंज्वलन और नपुंसकवेदका संक्रम नहीं जाता है शेषका होता है । दूसरे यह जीव जब उपशमश्रेणिमे उतर कर हृद् नोकपायोंका तो अपकर्षण कर लेता है किन्तु स्त्रीवेद और नपुंसक वेद उपशान्त ही रहते है तब प्राप्त है । उसके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका संक्रम नहीं होता शेषका होता है । यद्यपि दूसरा प्रकार चृणिसूत्रमे नहीं बतलाया है तथापि यह सूत्र देशामर्षक होनेसे इस स्थानका ग्रहण हो जाता है ।

* इक्षीय प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके स्त्रीवेदका उपशम होकर जब तक छह नोकपायोंका उपशम नहीं होता है तब तक अटारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २४१. उमी इक्कीम प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके अन्तरकरण करनेके बाद नपुंसकवेद

१. ताप्रता तदो दमग्गमाहपयडीहिं इति पाठः ।

उवसंतेसु जाव छण्णोकसाया अणुवसंता ताव पयदसंकमट्टाणमेकारसकसाय-सत्तणोकसाय-पडिचद्वमुप्पज्झइ, पुव्वुत्तसंकमपयडीसु इत्थिवेदस्स बहिम्भावादो । एवमिगिवीस-चउवीस-संतकम्मिए अवलंविण उवसमसेदीपाओग्गाणि संकमट्टाणाणि वीसादीणि परूविय संपहि सत्तारसादीणं तिण्हमसंकमपाओग्गट्टाणाणमसंभवे कारणणिदेसं कुणमाणो उवरिमं पवंधमाह—

❀ सत्तारसण्हं केण कारणेण णत्थि संकमो ?

§ २४२. सत्तारसण्हं पयडीणं संकमपाओग्गभावेण संभवो केण कारणेण णत्थि त्ति पुच्छिदं होइ ।

❀ खवगो एक्कावीसादो एकपहारेण अट्ट कसाए अवणेदि ।

§ २४३. खवगो ताव एकवीससंतकम्मट्टाणादो एकवारेणेव अट्ट कसाए अवणेइ । एवमवणिदे पयदट्टाणुप्पत्ती तत्थ णत्थि त्ति भणिदं होइ । संपहि एदस्सेव फुडीकरट्ट-मुत्तरमुत्तमाह ।

❀ तदो अट्टकसाएमु अवणिदेसु तेरसण्हं संकमो होइ ।

§ २४४. जेण कारणेण अट्टकसाएमु जुगवमवणिदेसु तेग्गमसंकमट्टाणमुप्पज्झइ तेण खवगमस्सियूण सत्तारसपयडिट्टाणस्स णत्थि संभवो त्ति मुत्तत्थमंगहो ।

और स्त्रीवेदका उपशम होकर जयतक छह नोकपायोंका उपशम नहीं होता तबतक ग्यारह कपाय और सात नाकपायोंमें सम्बन्ध रखनेवाला प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि यहां पर पूर्वोक्त उन्नीस संक्रम प्रकृतियोंमेंसे स्त्रीवेद प्रकृति और कम हो गई है। आशय यह है कि चढ़ते समय पीछे जो उन्नीस प्रकृतिकसंक्रमस्थान बतला आये हैं उसमेंसे स्त्रीवेदके कम कर देने पर अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। इस प्रकार इक्कीस और चौबीस प्रकृतिक सत्त्वस्थानोंका आलम्बन लेकर उग्रमश्रेणिके योग्य बीस आदि संक्रमस्थानोंका कथन करके अब जो सत्रह आदि तीन संक्रमके अयोग्य स्थान बचलाये हैं उनका संक्रम क्यों सम्भव नहीं है इसके कारणका निर्देश करनेकी इच्छासे आगेके प्रबन्धका निर्देश करते हैं—

* सत्रह प्रकृतियोंका किस कारणसे संक्रम नहीं होता ।

§ २४२. सत्रह प्रकृतियों संक्रमके योग्य क्यों नहीं हैं यह उस सूत्रके द्वारा पृष्ठा गया है ।

* क्योंकि क्षपक जीव इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे एक प्रहागके द्वाग आठ कपायोंका अभाव करता है ।

§ २४३. क्षपक तो इक्कीस प्रकृतिक सत्त्वस्थानसे एक बारमें ही आठ कपायोंको निकाल फेंकना है और इस प्रकार निकाल देने पर वहां प्रकृत स्थानकी उत्पत्ति नहीं होती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब इसी बातको स्पष्ट करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* इस लिये आठ कपायोंका अभाव कर देने पर तेरहप्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २४४. यतः आठ कपायोंका एक साथ अभाव कर देने पर तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है अतः क्षपक जीवकी अपेक्षा सत्रह प्रकृतिकस्थान सम्भव नहीं है यह इस सूत्रका

❊ उवसामगस्स वि एक्कावीसदिकम्मंसियस्स छसु कम्मेषु उवसंतेसु वारसएहं संकमो भवदि ।

§ २४५. एकवीममंतकम्मियस्सुवसामगस्स वि पयडिट्ठाणसंभवो णत्थि त्ति मुत्तत्थसंबंधो । कुदो ? तस्माणुपुव्वीमंकमवसेण लोभस्सासंकमं कादूण णवुंस-इत्थिवेदे जहाकममुवसामिय अट्टाग्ममंकामयभावेणावट्टिदस्स छसु कम्मेषु उवसंतेसु वारसएहं पयडीणं मंकमुवलंभादो ।

❊ चउवीसदिकम्मंसियस्स छसु कम्मेषु उवसंतेसु चोइसएहं संकमो भवदि ।

§ २४६. चउवीममंतकम्मियस्स वि उवसामगस्स पयदट्टाणसंभवासंका ण कायव्वा, तस्स वि तेवीमसंकमट्टाणादो आणुपुव्वीमंकमादिवसेण वावीम-इगिवीम-वीस-मंकमट्टाणाणि उपाइय ममवट्टिदस्स छसु कम्मेषु उवसंतेसु पुग्गिवेदेण सह एक्कारम-कमाय-दोदंमणमोहपयडीणं मंकमपाओग्गभावेणुप्पत्तिदंमणादो ।

❊ एदेण कारणेण सत्तारसएहं वा सोलसएहं वा पण्णारसएहं वा संकमो णत्थि ।

§ २४७. एदेणांतरपरुविदेण कारणेण मत्तारमण्हं पयडीणं संकमो णत्थि । जहा मत्तारमण्हमेवं सोलमण्हं पण्णारमण्हं च पयडीणं णत्थि चेव मंकमो, त्तिपुग्गिस-

समुदायार्थं हे ।

* इक्कीम प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके भी छह नोकपायोंका उपशम होने पर बारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २४५. इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके भी प्रकृत संक्रमस्थान सम्भव नहीं है यह इस मूत्रका तात्पर्य है, क्योंकि आनुपूर्वी संक्रमके कारण लोभसंवलनका संक्रम न करके तथा नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका क्रमसे उपशम करके अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त होकर स्थित हुए इस जीवके छह नोकपायोंके उपशान्त होनेपर बारहप्रकृतिक संक्रमस्थान उपलब्ध होता है ।

* तथा चौवीम प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके छह नोकपायोंके उपशान्त होने पर चौदहप्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २४६. जो चौवीम प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव है उसके भी प्रकृत स्थान सम्भव होगा ऐसी आशाका करना ठीक नहीं है, क्योंकि तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानमेंसे आनुपूर्वी संक्रम आदिके कारण बाईस, इक्कीस और चीम प्रकृतिक संक्रमस्थानोंको उत्पन्न करके अवस्थित हुए उसके क्रमसे छह नोकपायोंके उपशान्त हो जानेपर पुरुषवेदके साथ ग्यारह कपाय और दो दर्शन-मोहनीय इन चौदह प्रकृतियोंकी संक्रमप्रायोग्यरूपसे उत्पत्ति देखी जाती है ।

* इस कारणसे मत्रह मोलह और पन्द्रह प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता ।

§ २४७. यह जो अनन्तर कारण कह आये हैं उमसे मत्रह प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता है । और जिस प्रकार मत्रह प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता उसीप्रकार सोलह और पन्द्रह

संबंधेण गवेसिज्जमाणानं तेषिं संभवाणुवलंभादो ।

§ २४८. एवं पयदत्थोवसंहारं काऊण मंपहि चोदससंकमट्टाणस्स पयडिणिहेस-
सुहेण परूवणदुमुत्तरसुत्तं भणइ—

✽ चोदसएहं षडवीसदिकम्मंसियस्स छुसु कम्मेसु उवसाभिदेसु
पुरिसवेदे अणुवसंते ।

§ २४९. सुगममेदं सुत्तं, अणंतरादीदकारणपरूवणाए गयत्थत्तादो । ओदरमाण-
संबंधेण वि पयदट्टाणसंभवो एत्थाणुमग्गियव्वो ।

प्रकृतियोंका भी संक्रम नहीं होता है, क्योंकि तीन पुरुषों (स्वामियों) के सम्बन्धसे विचार करनेपर उक्त स्थानोंकी संक्रमस्थानरूपसे सम्भावना नहीं उपलब्ध होती ।

विशेषार्थ—यहां सत्रह, सोलह और पन्द्रह प्रकृतिक स्थानोंका संक्रम क्यों नहीं होता है यह बतलाया है जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके जब आठ कषायोंका क्षय होता है तब इक्कीससे इकदम तेरह प्रकृतिक संक्रम स्थान उत्पन्न होता है, इसलिये तो क्षपक-श्रेणीवाले जीवके ये स्थान सम्भव नहीं होनेसे इनका संक्रम नहीं बनता । उपशमश्रेणीकी अपेक्षा भी यदि इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशमश्रेणि पर चढ़ता है तो पहले वह आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ करके २० प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त करता है । फिर नपुंसकवेदका उपशम करके १६ प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त करता है । फिर स्त्रीवेदका उपशम करके १८ प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त करता है । इसके बाद इसके एक साथ छह नोकषायोंका उपशम होनेसे बारह प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है इसलिये इसके भी सत्रह, सोलह और पन्द्रह प्रकृतिक संक्रमस्थान सम्भव न होनेसे उनका संक्रम नहीं बनता है । अब रहा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशमक जीव सो इसके प्रारम्भमें तो तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है, क्योंकि उसके सम्यक्त्वप्रकृतिका संक्रम नहीं होता । फिर आनुपूर्वीसंक्रमका प्रारम्भ होने पर बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । फिर नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम होने पर क्रमसे इक्कीस और बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । इसके बाद इसके भी छह नोकषायोंका एक साथ उपशम होनेके कारण चौदह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । इस प्रकार इसके भी सत्रह, सोलह और पन्द्रह प्रकृतिक संक्रमस्थान सम्भव नहीं होनेसे उनका संक्रम नहीं होता है । यही कारण है कि प्रकृतमें इन तीन संक्रमस्थानोंका निषेध किया है ।

§ २४८. इस प्रकार प्रकृत अर्थका उपसंहार करके अब चौदह संक्रमस्थानकी प्रकृतियोंके निर्देश द्वारा कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

✽ चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके छह नोकषायोंका उपशम होकर पुरुष वेदका उपशम नहीं होने तक चौदह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २४९. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि अनन्तरपूर्व कारणका कथन करते समय इसका विचार कर चुके हैं । उपशमश्रेणिसे उतरनेवाले जीवके सम्बन्धसे भी यहाँ पर प्रकृत स्थानका विचार करना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहाँ चौदह प्रकृतिकसंक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया है । एक चढ़ते समय और दूसरा उतरते समय । चढ़ते समय चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जिस जीवके क्रमसे आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ होकर नपुंसकवेदका उपशम, स्त्रीवेदका उपशम और छह नोकषायोंका उपशम हो गया है उसके यह स्थान प्राप्त होता है । तथा उतरते समय अप्रत्याख्यानावरण क्रोध और प्रत्याख्यानावरण

❀ तेरसण्हं चउवीसदिकम्मसियस्स पुरिसवेदे उबसंते कसाएसु अणुवसंतेसु ।

§ २५०. तस्सेव चउवीममंतकम्मियस्स चोदमसंकायभावेणावड्ढिदस्स पुच्चुत्त-
चोदमपयडीसु पुरिमवेदे उबसंते पयदमंकमट्टाणमुप्पज्झइ, कसायाणमणुवसमे तदुप्पत्तीए
विरोहाभावादो । एवं चउवीमसंतकम्मियसंबंधेण तेरसमंकमट्टाणमुप्पाइय पयारंतरेणावि
तदुप्पायणट्टमुत्तरसुत्तमाह—

❀ खवगस्स वा अट्टकसाएसु खविदेसु जाव अणाणुपुव्वीसंकमो ।

§ २५१. इगिनीममंतकम्मादो अट्टकसाएसु खविदेसु चदुसंजलण-णवणोकसायाणं
संकमपाओग्गभावेण परिप्फुडमुवलंभादो । तदो चेव जाव अणाणुपुव्वीसंकमो त्ति उच्चं,
आणुपुव्वीसंकमे जादे लोभमंजलणस्स संकमपाओग्गत्तविणासेण ट्ठाणंतरुप्पत्तिदंसणादो ।

क्रोधका अपकर्षण होकर जब तक पुरुषवेद उपशान्त रहता है तब तक यह स्थान होता है । 'थम प्रकारमें लोभसंज्वलनके सिवा ग्यारह कपाय, पुरुषवेद और दो दर्शनमोहनीय इन चौदह प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है । तथा दूसरे प्रकारमें बारह कपाय और दो दर्शनमोहनीय इन चौदह प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है ।

* चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके पुरुषवेदके उपशान्त और कपायोंके अनुपशान्त रहते हुए तेरहप्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २५०. चौदह प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले उसी चौबीस प्रकृतिक सत्कर्मवाले जीवके पूर्वोक्त चौदह प्रकृतियोंमेंसे पुरुषवेदके उपशान्त होने पर प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि जब तक कपायोंका उपशाम नहीं होता तब तक इस स्थानकी उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं आता । इस प्रकार चौबीस प्रकृतिक सत्त्वस्थानके सम्बन्धसे तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थानको उत्पन्न करके प्रक्षारान्तरसे भी उस स्थानको उत्पन्न करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* तथा क्षपक जीवके आठ कपायोंका क्षय हो जाने पर जब तक अनानुपूर्वी संक्रमका सद्भाव है तब तक तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २५१. क्षपकके सत्ताको प्राप्त इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे आठ कपायोंका क्षय होनेपर संक्रमके योग्य चार संज्वलन और नौ नोकपाय ये तेरह प्रकृतियों स्पष्ट रूपसे पाई जाती हैं, इसीलिये जब तक अनानुपूर्वी संक्रम है ऐसा कहा है, क्योंकि आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ होनेपर लोभ संज्वलन संक्रमके योग्य नहीं रहनेसे दूसरे संक्रमस्थानकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

विशेषार्थ—यहांसे तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे उत्पन्न होता है ऐसा बतलाया

है—प्रथम उपशमश्रेणिकी अपेक्षा और दूसरा क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा । प्रथम स्थान तो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके पुरुषवेदका उपशाम होनेपर प्राप्त होता है और दूसरा स्थान आठ कपायोंका क्षय होनेपर प्राप्त होता है । प्रथम प्रकारमें लोभ संज्वलनके सिवा ग्यारह कपाय और दो दर्शनमोहनीय इन तेरह प्रकृतियोंका संक्रम हाता रहता है और दूसरे प्रकारमें चार संज्वलन और नौ नोकपाय इन तेरह प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है ।

❀ बारसण्हं खवगस्स आणुपुब्बीसंकमो आढत्तो जाव एवुंसयवेदो अक्खीणो ।

§ २५२. तस्सेव तेरससंकामयस्स खवगस्स आणुपुब्बीसंकमो आढत्तो जाव णवुंसयवेदो अक्खीणो ताव बारसण्हं संकमट्ठाणं होइ ति सुत्तत्थमंगहो ।

❀ एककावीसदिकम्मंसियस्स वा ह्वस्सु कम्मेषु उवसंतेसु पुरिसवेदे अणुवसंते ।

§ २५३. एकवीसकम्मंसियस्स वा उवमामयस्स ह्वसु कम्मेषु उवसंतेसु तं चैव संकमट्ठाणमुप्पज्जइ, पुग्गिवेदे अणुवसंते तेण मह एक्कारम्मकमायाणं परिग्गहादो । ओदरमाणगम्म इगिवीसमंतकम्मियस्स पयदसंकमट्ठाणमंभवो वत्तव्वो, निविहे कोहे ओक्कड्ढिदं तदुवलंभादो । चउवीसमंतकम्मियस्स वाग्गससंकमट्ठाणमंभवो णत्थि ।

* क्षपक जीवके आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ होकर जब तक नपुंसकवेदका क्षय नहीं होता है तब तक वारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २५२. तेरह प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले उमी क्षपक जीवके आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ होकर जब तक नपुंसकवेदका क्षय नहीं होता है तब तक वारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है यह उक्त सूत्रका सामुच्चयार्थ है ।

* अथवा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके छह नोकपायोंका उपशम होकर पुरुषवेदके अनुपशान्त रहने हुए वारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २५३. अथवा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशमक जीवके छह नोकपायोंके उपशान्त हो जानेपर वही संक्रमस्थान उपपन्न होता है, क्योंकि यहाँ पुरुषवेदका उपशम नहीं होनेसे उसके साथ संक्रमके योग्य ग्यारह कपायोंको ग्रहण किया है । इसी प्रकार उत्तरनेवाले इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके प्रकृत संक्रमस्थानका कथन करना चाहिये, क्योंकि तीन प्रकारके क्रोधका अपकर्षण होने पर उक्त स्थान उपलब्ध होता है । किन्तु चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके वारह प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं प्राप्त होता ।

विशेषार्थ—यहाँ वारह प्रकृतिक संक्रमस्थान तीन प्रकारसे बतलाया है—प्रथम क्षपक श्रेणिकी अपेक्षा और अन्तके दो उपशमश्रेणिकी अपेक्षा । प्रथम स्थान तो क्षपक जीवके आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ होनेके बाद जब तक नपुंसकवेदका क्षय नहीं होता तब तक प्राप्त होता है । दूसरा स्थान क्षायिक सम्यग्रष्टि उपशमकके चतुर्थ समय छह नोकपायोंका उपशम होकर जब तक पुरुषवेद का उपशम नहीं होता तब तक प्राप्त होता है और तीसरा स्थान इसी जीवके उत्तरते समय तीन प्रकारके क्रोधोंके अपकर्षण होनेके समयसे लेकर जब तक पुरुषवेद उपशान्त रहता है तब तक प्राप्त होता है । प्रथम प्रकारमें चार संज्वलन और नौ नोकपाय इन तेरह प्रकृतियोंकी सत्ता हैं पर संज्वलन लोभके सिवा संक्रम वारहका होता है । दूसरे प्रकारमें सत्ता तो इक्कीस प्रकृतियोंकी है पर संक्रम संज्वलन लोभके सिवा ग्यारह कपाय और पुरुषवेद इन वारह प्रकृतियोंका होता है । इसी तरह तीसरे प्रकारमें सत्ता तो इक्कीस प्रकृतियोंकी है पर संक्रम वारह कपायका ही होता है ।

१. आ० प्रता - संकमादो इति पाठः ।

❀ एककारसग्रहं खवगस्स णउंसयवेदे खविदे इत्थिवेदे अक्खीणे ।

§ २५४. खवगस्स अट्टकमायकभवणवावारेण तेरमसंक्रामयभावेणावट्टिदस्स पुणो आणुपुव्वीमंक्रमवसेण ममुप्पाइद्वारममंक्रमट्टाणस्स णवुंसयवेदे परिक्खीणे एककारस-संक्रमट्टाणमुप्पज्जइ, तिमंजलण-अट्टणोक्रमायाणं तत्थ मंक्रमदंमणादो ।

❀ अथवा एककावीसदिकम्मंसियस्स पुरिसवेदे उवसंते अणुवसंतेसु कसाएसु ।

§ २५५. कुदो ? एकाम्मकमायाणं परिप्फुडमेव तत्थमंक्रतिदंमणादो ।

❀ चउवीसदिकम्मंसियस्स वा दुविहे कोहे उवसंते कोहसंजलणे अणुवसते ।

§ २५६. चउवीसदिकम्मंसियस्स वा णिरुद्धमंक्रमट्टाणमुप्पज्जइ । कुदो ? पुव्वुत्त-विहाणेण तेरमसंक्रामयभावेणावट्टिदस्स तम्म दुविहकोहोवममे मंते कोहमंजलणेण मह एकाम्मपयडीणं मंक्रमोवलंभादो । ओदग्माणमंवेधेण वि पयदगंक्रमट्टाणमंभवो वत्तव्वो, मुत्तस्सेदस्स देमामामियभावेणावट्टाणादो ।

यहां तीसरा स्थान चृग्निमूत्रकारने नहीं कहा है सो चृग्निमूत्रका देशामर्क मानकर उसका स्वीकार करना चाहिये ।

* क्षपक जीवके नपुंसकवेदका क्षय होकर स्त्रीवेदका क्षय नहीं होने पर ग्यारह प्रकृतिक मंक्रमस्थान होता है ।

§ २५७. जिस क्षपक जीवने आठ कपायोंका क्षय करके तेरह प्रकृतिक मंक्रमस्थान प्राप्त कर लिया है फिर आनुपूर्वीमंक्रमके कारण बारह प्रकृतिक मंक्रमस्थानको उत्पन्न कर लिया है उसके नपुंसकवेदका क्षय होनेपर ग्यारह प्रकृतिक मंक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि यहां तीन संज्वलन और आठ नोकपायोंका संक्रम देखा जाता है ।

* अथवा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके पुरुषवेदका उपशम होकर कपायोंके अनुपशान्त रहते हुए ग्यारह प्रकृतिक मंक्रमस्थान होता है ।

§ २५८. क्योंकि यहां ग्यारह कपायोंक, स्पष्ट रूपसे संक्रम देखा जाता है ।

* अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दो प्रकारके क्रोधोंका उपशम होकर क्रोधमंज्वलनके अनुपशान्त रहते हुए ग्यारह प्रकृतिक मंक्रमस्थान होता है ।

§ २५९. अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके विवक्षित मंक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि पूर्वोक्त विधिसे जो तेरह प्रकृतिक संक्रमभावमे अवस्थित हैं उसके दो प्रकारके क्रोधोंका उपशम हो जाने पर क्रोध संज्वलनके साथ ग्यारह प्रकृतियोंका मंक्रम उपलब्ध होता है । इसी प्रकार उतरनेवाले जीवके मन्वन्धसे भी प्रकृत संक्रमस्थानका कथन करना चाहिये, क्योंकि यह सूत्र देशामर्कभावसे अवस्थित है ।

विशेषार्थ—यहाँ ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान चार प्रकारसे बतलाया है । प्रथम क्षपक श्रेणिकी अपेक्षा और जेप तीन उपशमश्रेणिकी अपेक्षा । क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा नपुंसकवेदका

❀ दसण्हं खवगस्स इत्थिवेदे खीणे छसु कम्मसेसु अक्खीणेषु ।

§ २५७. दसण्हं मंकमट्ठाणं खवगस्म होइ ति सुत्तत्थसंबंधो । कम्मि अवत्थाए तं होइ ति उत्ते इत्थिवेदे खीणे छण्णोकसाएमु अक्खीणेषु होइ ति घेतव्वं, तत्थ सत्तणोकमाय-संजलणतियस्म मंकमोवलंभादो ।

❀ अथवा चउवीसदिकम्मंसियस्स कोधसंजलणे उबसंते सेसेसु कसाएसु अणुवसंतेसु ।

§ २५८. चउवीसदिकम्मंसियस्म दुविहं कोहमुवमामिय एक्कारसपयडीणं संकमंसामित्तेणावट्ठिदस्म कोहमंजलणोवममे जादे पयदमंकमट्ठाणमुपज्जइ ति सुत्तत्थ-

क्षय होकर जब तक खीवेदका क्षय नहीं होता तब तक यह संक्रमस्थान होता है । इसके चार संज्वलन और आठ नोकपाय इन चारह प्रकृतियोंकी सत्ता है पर संक्रम संज्वलन लोभके बिना ग्यारह प्रकृतियोंका होता है । उपरामश्रेणिकी अपेक्षा प्रथम प्रकार इकके प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके उपशमश्रेणि पर चढ़ते समय प्राप्त होता है । यह स्थान पुरुषवेदके उपशमके बाद होता है । उसमें संज्वलन लोभके बिना ग्यारह कपायोंका संक्रम होता रहता है । उपशमश्रेणिकी अपेक्षा दूसरा प्रकार चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके उपशमश्रेणि पर चढ़ते समय प्राप्त होता है । यह स्थान अपत्याख्यान,वरण क्रोध और अन्याख्यान,वरण क्रोध इन दो प्रकारके क्रोधोंके उपशान्त होने पर प्राप्त होता है । इसमें अन्याख्यान,वरण मान, माया, लोभ ये तीन, प्रत्याख्यान,वरण मान, माया, लोभ ये तीन संज्वलन क्रोध, मान, माया ये तीन और दर्शनमोहनीयकी दो इस प्रकार इन ग्यारह प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है । चौथा स्थान इसी जीवके उतरते समय संज्वलन क्रोधके उपशान्त रहते हुए प्राप्त होता है । इसके तीनों प्रकारके मान, माया और लोभ ये नौ और दर्शनमोहनीयकी दो इन ग्यारह प्रकृतियोंका संक्रम होता है । इस प्रकार ग्यारह प्रकृतिक संक्रम-स्थानके कुल भेद चार होते हैं यह सिद्ध हुआ ।

* क्षपक जीवके स्त्रीवेदका क्षय होकर छह नोकपायोंका क्षय नहीं होनेपर दस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २५७. दस प्रकृतिक संक्रमस्थान क्षपकके होता है यह इस सूत्रका तात्पर्य है ।

शंका—किस अवस्थाके होने पर वह होता है ?

समाधान—स्त्रीवेदका क्षय होकर छह नोकपायोंके अक्षीण रहने हुए वह होता है ऐसा अर्थ लेना चाहिये, क्योंकि यहाँ सात नोकपाय और तीन संज्वलनोंका संक्रम उपलब्ध होता है ।

* अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके क्रोध संज्वलनका उपशम होकर शेष कपायोंके अनुपशान्त रहने हुए दस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २५८. चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव दो प्रकारके क्रोधोंका उपशम कर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानके स्वामीरूपसे अवस्थित है उसके क्रोध संज्वलनका उपशम हो जाने पर प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है यह इस सूत्रका अभिप्राय है । यहाँ सूत्रमें जो 'संसकसाएसु

संबंधो । एत्थ सेमकमाएमु अणुवसंतेमु त्ति वयणमडुकमाय-दोदंसणमोहपयडीणं गहणट्टं ।

❀ एवएहं एक्कावीसदिकम्मंसियस्स दुविहे कोहे उवसंते कोहसंजलणे अणुवसंते ।

१०७०. एगिवीगरंतकम्मियम्म एक्कावीसपयडिमंकमादो लोभाणपुच्चो संकमं काऊण कमेण णवणोऱ्णाय उवयामिय एक्काग्गमंकायभावेणावट्टिडस्स पुणो दुविहे कोहे उवसंते पयदग्गमट्टाणमुपज्ज, कोहसंजलणेण सह तिविहमाण-माया-दुविहलोभ-पयडीणं संकमोवर्त्तंभादो । ओट्टग्गमाणसंबंधेण त्ति एत्थ पयदमंकमट्टाणमंभवो वत्तच्चो, विरोहाभावादो । एत्थ पयारंतग्गभवागंकाणिगायग्गट्टमुत्तग्गमुत्तमाह—

❀ चउवीसदिकम्मंसियस्स खवगस्स च णत्थि ।

अणुवसंतेमु? यह वचन दिया है सो यह आठ कपाय और दो दर्शनमोहनीय इन दस प्रकृतियोंके ग्रहण करनेके लिये दिया है ।

विशेषार्थ—यहाँ दस प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया है—प्रथम क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा आर दूसरा उपशमश्रेणिकी अपेक्षा । क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा स्त्रीवेदक क्षय करके उह नोकपायोका क्षय करने समय यह स्थान प्राप्त होता है । उस स्थानमें चार संज्वलन और सात नाकपायोकी मत्ता पाइ जाती है किन्तु रज्ज्वलन लोभके बिना और दूसरा संक्रम होता है । उपशमश्रेणिकी अपेक्षा चौथीय प्रकृतियोंकी मत्तावाले जीवके दूसरा संक्रमस्थान पाया जाता है । यह स्थान जब क्रोधसंज्वलनका उपशम करनेके बाद दो मानोका उपशम करनेका प्रारम्भ करता है तब प्राप्त होता है । इनके प्रत्याग्यानावरण मान, माया और लोभ ये तीन, अप्रत्याग्यानावरण मान माया और लोभ ये तीन; संज्वलन मान और माया ये दो तथा दर्शनमोहनीयकी दो इन दस प्रकृतियाका संक्रम पाया जाता है ।

* इक्कीय प्रकृतियोंकी मत्तावाले जीवके दो प्रकारके क्रोधका उपशम होकर क्रोधसंज्वलनके अनुपशान्त रहने हुए नो प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

१०७१. जो इक्कीय प्रकृतियोंकी मत्तावाला जीव इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रमके बाद लोभमे आनुपूर्वी संक्रमको प्राप्त करके आर क्रममे ना नाकपायोका उपशम करके ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका प्राप्त होकर स्थित है उसके दो प्रकारके क्रोधका उपशम होने पर प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि उसके क्रोधसंज्वलनके साथ तीन प्रकारके मान, तीन प्रकारकी माया और दो प्रकारके लोभ इन नो प्रकृतियोंका संक्रम उत्पन्न होता है । उपशमश्रेणिकी उतरनेवाले संस्वन्वसे भी यहा पर प्रकृत संक्रमस्थानका स्थान करना चाहिये, क्योंकि इसमे कोई विरोध नहीं आता । यहा पर यह नो प्रकृतिक संक्रमस्थान प्रकारान्तरसे भी सम्भव है क्या उम आशंकाके निवारण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते है—

* किन्तु चौथीय प्रकृतियोंकी मत्तावाले उपशामक जीवके और क्षपक जीवके यह स्थान नहीं होता ।

§ २६०. चउवीमदिकम्मंभियस्स ताव पयदमंकमट्टाणसंभवो णत्थि, कोहमंजलण-
सुवमामिय दमण्हं मंक्रामयभावेणावट्ठिदस्स तस्स दुविहे माणे उवसंते ततो हेट्ठिम-
ट्टाणुप्पत्तिदंसणादो । खवगस्स वि इत्थिवेदकखण्ण दसमंक्रामयस्स छमु कम्मेषु खीणेषु
चउण्हं मंक्रमट्टाणुप्पत्तिदंसणादो णत्थि पयदमंकमट्टाणसंभवो । तम्हा पुव्वुत्तो चव
तदुप्पत्तिपयागे णाण्णो त्ति मिट्ठं ।

✽ अट्टण्हं एक्कावीसदिकम्मंसियस्स तिविहे कोहे उवसंते सेसेसु
कसाएसु अणुवसंतेसु ।

२६१. इगिर्वामंतकम्मियस्सुयमामगस्स तिविहकोहोवममे संते मंक्रमट्टाणमेद-
मुप्पज्जइ, ममणंतण्णविदमंक्रमपयडोमु कोहमंजलणस्य वहिण्णभावदंसणादो ।

✽ अहवा चउवीमदिकम्मंसियस्स दुविहे माणे उवसंते माणसंजलणे
अणुवसंते ।

§ २६०. चौवास प्रकृतियोंका सत्तावाले जीवके प्रकृत संक्रमस्थान दो सम्भव नहीं है, क्योंकि क्रोधसंज्वलन का उपशम करके जो दोस प्रकृतियोंका संक्रम करता हुआ स्थित है उनके दो प्रकारके मानका उपशम करने पर नौ प्रकृतिक संक्रमस्थानके नीचेके स्थानकी उत्पत्ति देखी जाती है । इसी प्रकार खीणिका क्षय हो जाने पर दोस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाला दोस जीवके भी छह नेकपायोंका क्षय हो जाने पर चार प्रकृतिक संक्रम स्थानकी उत्पत्ति देखी जाती है, इसलिये इनके प्रकृत संक्रमस्थान सम्भव नहीं है । अतः उनके उत्पत्तिका प्रकार पूर्वोक्त ही है अन्य नह यह बात सिद्ध होती है ।

विशेषार्थ—यहां नौ प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे बताया है । जो दोसो ही प्रकार उपशमश्रेणिकी अपेक्षासे प्राप्त होते हैं । जब इकीस प्रकृतिय की सत्तावाले जीवके दो प्रकारके क्रोध का उपशम हो जाता है किन्तु क्रोधसंज्वलन अनुपशान्त रहता है तब प्रथम प्रकार प्राप्त होता है । उस स्थानमें क्रोधसंज्वलन, तीन मान, तीन माया और संज्वलन लोभके सिवा शेष दो लोभ इन नौ प्रकृतियोंका संक्रम होता है । दूसरा प्रकार उपशमश्रेणिकी उत्पत्ति समय इसी इकीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके प्राप्त होता है । किन्तु इसके संज्वलन क्रोध उपशान्त रहता है अतः तीन मान, तीन माया तथा तीन लोभ ये नौ प्रकृतियों अनुपशान्त होकर इनका संक्रम होता रहता है । इन दो प्रकारोंको छोड़कर अन्य किसी प्रकारसे इस स्थानकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है । पर्यट्टीकरण मूलमें किया ही है ।

✽ इकीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारके क्रोधका उपशम होकर शेष कपायोंके अनुपशान्त रहने हुए आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २६१. इकीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशमके जीवके तीन प्रकारके क्रोधका उपशम होने पर प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि इसमें पूर्वके स्थानमें जो संक्रमरूप प्रकृतियों कही है उनमेंसे क्रोधसंज्वलन का वहिर्भाव देखा जाता है ।

✽ अथवा चौवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दो प्रकारके मानका उपशम होकर मानसंज्वलनके अनुपशान्त रहने हुए आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

१. आ० प्रतो हेट्ठिमाणुप्पत्तिदंसणादो इति पाठः । २. ता० प्रतो पयदट्टाणसंभवो इति पाठः ।

§ २६२. क्रोहमंजलणमुवमामिय दमण्हं मं कामयत्तेणावट्टिदम्म तस्स द्दुविह-
माणोवममे णिक्कमंक्रमद्वानुप्पत्तिं पडि विरोहाभावादो । एत्थ वि ओदग्माणसंबंधेण
पयदमंक्रमद्वानुपस्वणा कायव्वा ।

❁ सत्तण्हं चउवीसदिकम्मंसियस्स तिविहे माणे उवसंते सेसेसु
कसाणसु अणुवसंतेसु ।

§ २६३. चउवीसदिकम्मंसियस्से त्ति वयणेण इगिवीसकम्ममियम्म ख्वगम्म च
पडिसेहो कओ, तत्थ पयदमंक्रमद्वानुप्पत्तीण अमंभवादो । तदो चउवीसमंतकम्मियस्स
तिविहे माणे उवसंते तिविहमाय-दुविहलोह-दंमणमोहपयडीओ धेत्तण पयदमंक्रम-
द्वानुप्पज्जड त्ति धेत्तव्वं ।

§ २६२. क्रोहमंजलनको उपशमा कर जो दम प्रकृतियोंका संक्रम करने हुए अवस्थित है
उमके दो प्रकारके मानका उपशम होने पर प्रकृत संक्रमस्थानकी उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं
आता है । यहाँ पर भी उपशमश्रेणिये उतरनेवाले जीवके सम्बन्धमें प्रकृत संक्रमस्थानका कथन
करन चाहिये ।

विशेषार्थ—यहाँ पर आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान तीन प्रकारसे बतलाया गया है । ये तीनों
ही संक्रमस्थान उपशमश्रेणिये प्राप्त होते हैं । उनमेंसे दो चढ़नेवाले जीवके प्राप्त होते हैं और एक
उतरनेवाले जीवके प्राप्त होता है । चढ़नेवाले में पहला इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके और
दूसरा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके होता है । प्रथम स्थान तीनों क्रोधके उपशान्त होने पर
प्राप्त होता है । इसके तानो मान, तीनों माया और लोभ संजलनके बिना दो लोभ इन आठ
प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है । दूसरा स्थान दो प्रकारके मानके उपशान्त होने पर प्राप्त होता
है । इसके मान संजलन, तीन माया, लोभसंजलनके बिना दो लोभ और दो दर्शनमोहनीय इन
आठ प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है । उन दो स्थानके सिवा जो तीसरा स्थान उतरनेवालेके प्राप्त
होता है सो वह चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके ही प्राप्त होता है । इसके तीन माया, तीन
लोभ और दो दर्शनमोहनीय इन आठ प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है ।

❁ चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारके मानका उपशम हाकर
शेष कथायोंके अनुपशान्त रहने हुए मान प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २६३. सत्रमे 'चउवीसदिकम्मंसियम्म' वचन आया है सो इस द्वारा इक्कीस प्रकृतियोंकी
सत्तावाले उपशमकका और क्षरकका निषेध किया है, क्योंकि उमके प्रकृत संक्रमस्थानकी उत्पत्ति
होना अभिभव है । अतः चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारका मान उपशान्त होने
पर तीन प्रकारकी माया, दो प्रकारका लोभ और दो दर्शनमोहनीय प्रकृतियाँ इन आठकी अपेक्षा
प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ऐसा जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—मान प्रकृतिक संक्रमस्थान एक ही प्रकारका है जिसका टीकामे ही खुलासा
किया है ।

१. ता०प्रतो णिक्कमे सकमद्वानुप्पत्ति इति पाठः ।

✽ छग्रहमेकावीसदिकम्मंसियस्स दुविहे माणे उवसंते सेसेसु कसाएसु अणुवसंतेसु ।

§ २६४. कुदो ? तत्थ माणसंजलणेण सह तिविहमाय-दुविहलोभाणं संक्रमदंमणादो । ओयरमाणसंबंधेण वि पयदमंकमट्टाणमेत्थाणुगंतव्वं ।

✽ पंचग्रहमेकावीसदिकम्मंसियस्स तिविहे माणे उवसंते सेसकसाएसु अणुवसंतेसु ।

§ २६५. कुदो ? तत्थ तिविहमाय-दुविहलोभाणं संक्रमदंमणादो ।

✽ अथवा चउवीसदिकम्मंसियस्स दुविहाए मायाए उवसंताए सेसेसु अणुवसंतेसु ।

§ २६६. किं कारणं ? तत्थ मायासंजलणेण सह दुविहलोभ-दोदंमणमोहपयडीणं संक्रमोवलंभादो ?

✽ इक्कीम प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दो प्रकारके मानका उपशम होकर शेष कर्पायोंके अनुपशान्त रहने हुए छह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २६४ क्योंकि इस संक्रमस्थानमें मान संज्वलनके साथ तीन प्रकारकी माया और दो प्रकारका लोभ इन छह प्रकृतियोंका संक्रम देखा जाता है । उतरनेवाले जीवके सम्बन्धमें भी यहां पर प्रकृत संक्रमस्थान जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहां पर छह प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया गया है । ये दोनों ही स्थान इक्कीम प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके उपशमश्रेणियोंमें प्राप्त होने हैं । उनमेंसे पहला चढ़नेवालेके और दूसरा उतरनेवाले जीवके होता है । चढ़नेवालेके तो दो प्रकारके मानका उपशम होने पर होता है । इसके मान संज्वलन, तीन माया और दो लोभ इन छह प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है । तथा उतरनेवालेके मान संज्वलनके उपशान्त रहते हुए ही यह स्थान होता है । इसके तीन माया और तीन लोभ इन छह प्रकृतियोंका संक्रम होने लगता है ।

✽ इक्कीम प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारके मानका उपशम होकर शेष कर्पायोंके अनुपशान्त रहने हुए पांच प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २६५. क्योंकि यहां पर तीन प्रकारकी माया और दो प्रकारके लोभका संक्रम देखा जाता है ।

✽ अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दो प्रकारकी मायाका उपशम होकर शेष प्रकृतियोंके अनुपशान्त रहने हुए पांच प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २६६. क्योंकि यहां पर माया संज्वलनके साथ दो प्रकारके लोभ और दो दर्शनमोहनीय इन पांच प्रकृतियोंका संक्रम देखा जाता है ।

विशेषार्थ—यहां पर पांच प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया है । ये दोनों ही स्थान उपशमश्रेणियोंमें चढ़ते समय प्राप्त होते हैं । पहला स्थान इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावालेके होता है । इसके और सब प्रकृतियोंका तो उपशम हो जाता है किन्तु तीन माया और दो लोभ

❀ चउरहं खवगस्स हसु कम्मेषु खीणेषु पुरिसवेदे अक्खीणं ।

। २६७. मवगम्म इत्थिवेदकस्वयाणंतरमुप्पाइददमंक्रमद्वाणम्म पुणो छण्णो-
कमाणमु खीणेषु पयदमंक्रमद्वाणमुप्पज्जइ ति मुत्तत्थणिच्छओ ।

❀ अहवा चउवीसदिकम्मंसियस्स तिषिहाण मायाण उवसंताण
सेसेसु अणुवसंतेसु ।

२६८. तत्थ द्दुविहलोह-दोदंमणमोहपयडीणं मंक्रमम्म परिप्फुडडुवलंभादो ।
पत्थ त्ति ओदरमाणमंवंधेणेदं मंक्रमद्वाणमणुमग्गियच्चं ।

❀ तिणहं खवगस्स पुरिसवेदे खीणे सेसेसु अक्खीणेषु ।

यच रहते है । संव्रलन लोभका आनुपूर्वी संक्रमके कारण संक्रम नहीं होता । दूसरा स्थान चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावालेके होता है । इसके और मवग उपशम तो हो जाता है किन्तु माया संव्रलन, दो लोभ और दो दर्शनमोहनीय इन पांच प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है । यहां भी संव्रलन लोभका संक्रम नहीं होता ।

* क्षपकके छट नोकपायोंका क्षय होकर पुरुषवेदके अधीण रहते हुए चार प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

। २६७. मीधेदके क्षयके बाद जिरने दम प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न कर लिया है ऐसे क्षपक जीवके तदनन्तर छः नोकपायोंका क्षय करने पर प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है यह इस गृत्रका भाग है ।

* अथवा, चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारकी मायाका उपशम होकर शेष प्रकृतियोंके अनुपस्थान रहते हुए चार प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

। २६८. क्योंकि यहां पर दो प्रकारके लोभ और दर्शनमोहनीयकी दो प्रकृतियां इन चारका स्वरूपमें संक्रम उपपत्त्य होता है । यहां पर भी उतरनेवाले जीवके सम्बन्धसे यह संक्रमस्थान जान लेना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहां पर चार प्रकृतिक संक्रमस्थान तीन प्रकारसे बतलाया है । एक क्षपक-श्रेणिकी अपेक्षा और दो उपशमश्रेणिकी अपेक्षा । उपशमश्रेणिके भी प्रथम चढ़नेवालेके और दूसरा उतरनेवालेके होता है । क्षपकश्रेणिके पहला स्थान छह नोकपायोंका क्षय होने पर प्राप्त होता है । इसमें चार संव्रलन और एक पुरुषवेद इन पांचकी सत्ता रहती है किन्तु संक्रम संव्रलन लोभके बिना चारका होता है । दूसरा स्थान चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावालेके होता है । इसमें दो लोभ और दो दर्शनमोहनीय इन चार प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है । संव्रलन लोभका संक्रम नहीं होता । तीसरा स्थान इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके उपशमश्रेणिके उतरते हुए तीन प्रकारके लोभके साथ संव्रलन मायाके संक्रमित करने पर होता है । उस समय इस जीवके तीन लोभ माया संव्रलन यह चार प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

* क्षपक जीवके पुरुषवेदका क्षय होकर शेष प्रकृतियोंके अधीण रहते हुए तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २६६. तत्थ तिण्हं मंजलणाणं संकमदंमणादो ।

* अथवा एककावीसदिकम्मंसियस्स दुविहाए मायाए उवसंताए सेसेसु अणुवसंतेसु ।

§ २७०. तत्थ मायामंजलणेण सह दोण्हं लोहाणं मंमदंमणादो ।

* दोएहं खवगस्स कोहे खविदे सेसेसु अक्खीणेषु ।

§ २७१. माण-मायासंजलणाणं दोण्हं चैव तत्थ संकमदंमणादो ।

* अहवा एककावीसदिकम्मंसियस्स तिविहाए मायाए उवसंताए सेसेसु अणुवसंतेसु ।

§ २७२. तिविहमायोवममे दुविहलोहस्सेव तत्थ संकमोवलंभादो ।

* अहवा चउवीसदिकम्मंसियस्स दुविहे लोहे उवसंते ।

§ २७३. तस्म दुविहलोहोवममेण दोदंमणमोहपयडीणं चैव संकमोवलंभादो ।

§ २६६. क्योंकि यहाँ पर तीन संज्वलनोंका संक्रम देखा जाता है ।

* अथवा इक्कीम प्रकृतियोंकी मत्तावाले जीवके दो प्रकारकी मायाका उपशम होकर शेष प्रकृतियोंके अनुपशान्त रहने हुए तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २७०. क्योंकि यहाँ पर माया संज्वलनके साथ दोनों लोभोंका संक्रम देखा जाता है ।

विशेषार्थ—यहाँ पर तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया है—एक क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा और दूसरा उपशमश्रेणिकी अपेक्षा । क्षपकश्रेणिमें जो स्थान प्राप्त होता है वह पुरुषवेदके क्षय होनेपर प्राप्त होता है । यहाँ यद्यपि सत्ता चारों संज्वलनोंकी है तथापि संक्रम संज्वलन लोभके बिना शेष तीनका होता है । उपशमश्रेणिमें प्राप्त होनेवाला स्थान इक्कीस प्रकृतियोंकी मत्तावाले जीवके प्राप्त होता है । यह जीव जब दो प्रकारकी मायाका उपशम कर लेता है तब यह स्थान होता है । इसमें माया संज्वलनका और संज्वलन लोभके सिवा शेष दो लोभोंका संक्रम होता है ।

* क्षपक जीवके क्रोधका क्षय होकर शेष प्रकृतियोंके अधीण रहते हुए दो प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २७१. क्योंकि यहाँपर मान और माया इन दो संज्वलन प्रकृतियोंका ही संक्रम देखा जाता है ।

* अथवा इक्कीम प्रकृतियोंकी मत्तावाले जीवके तीन प्रकारकी मायाका उपशम होकर शेष प्रकृतियोंके अनुपशान्त रहते हुए दो प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २७२. क्योंकि यहाँ पर तीन प्रकारकी मायाका उपशम होने पर दो प्रकारके लोभका ही संक्रम पाया जाता है ।

* अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी मत्तावाले जीवके दो प्रकारके लोभका उपशम होनेपर दो प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २७३. क्योंकि इसके दो प्रकारके लोभका उपशम होकर दर्शनमोहनीयकी दो प्रकृतियोंका

एवं दोदंमणमोहपयडिमंकमट्टाणं कम्म होइ त्ति आसंकाए इदमाह —

❁ सुहुमसांपराइय-उवसामयस्स वा उवसंतकसायस्स वा ।

§ २७४. सुगमं ।

❁ एकस्से संकमो खवगस्स माणे खविदे मायाए अक्खीणाए ।

§ २७५. सुगमं ।

एवं ट्टाणममुक्कित्तणाए पयडिणिदेसो ममत्तो ।

एवं पढमगाहाए अत्थो ममत्तो ।

§ २७६. संपहि विदियादिगाहाणमत्थो सुगमो त्ति चुण्णिमुत्ते ण परूविदो । तमिदाणि वत्तइस्सामो—‘सोलसय वारसट्टय० पडिग्गहा होति।’ एसा विदिया गाहा पयडि-ट्टाणपडिग्गहापडिग्गहपरूवणे पडिवट्ठा । तं जहा—गाहापुच्चद्वणिद्विद्विदाणि सोलसादीणि अपडिग्गहट्टाणाणि णाम १६, १२, ८, २०, २३, २४, २५, २६, २७, २८ । एदाणि मोत्तूण सेमाणि वावीमादीणि एयपयडिपज्जंताणि पडिग्गहट्टाणाणि होति । तेमिमंकविण्णामो

मंकम उपलब्ध होता है । यह दर्शनमोहनीयकी अपेक्षा दो प्रकृतिक संक्रमस्थान किसके होता है ऐसी आशंका होने पर यह आगेका सूत्र कहते हैं—

* सूक्ष्मसम्पगय उपशामक और उपशान्तकपाय जीवके होता है ।

§ २७४ यह सूत्र सुगम है ।

विशेषार्थ—यहाँ दो प्रकृतिक संक्रमस्थान तीन प्रकारसे बतलाया है । इनमेंसे अन्तिम संक्रमस्थानका स्वामा सूक्ष्मसम्पगय उपशामक और उपशान्तकपाय जीव है । शेष कथन सुगम है ।

* क्षपक जीवके मानका क्षय होकर मायाके अक्षीण रहते हुए एक प्रकृतिक मंकमस्थान होता है ।

§ २७५. यह सूत्र सुगम है ।

विशेषार्थ—आशय यह है कि उपशमश्रेणियोंमें एक प्रकृतिक संक्रमस्थान सम्भव नहीं है । वह केवल क्षपकश्रेणियों ही प्राप्त होता है जिसका निर्देश चूणिसूत्रमें किया ही है ।

इस प्रकार स्थानसमुत्कीर्तना अनुयोगद्वारमें प्रकृतियोंके निर्देशका कथन समाप्त हुआ ।

इस प्रकार पहली गाथाका अर्थ समाप्त हुआ ।

§ २७६. द्वितीयादि गाथाओंका अर्थ सुगम होनेसे चूणिसूत्रमें नहीं कहा है । उसे इस समय बतलाते हैं—‘सोलसय वारसट्टय० पडिग्गहा होति’ यह दूसरी गाथा है जो प्रकृतिस्थानप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थान अप्रतिग्रहके कथन करनेमें प्रतिबद्ध है । यथा—गाथाके पूर्वार्धमें निर्दिष्ट किये गये सोलह आदि अप्रतिग्रहस्थान हैं—१६, १२, ८, २०, २३, २४, २५, २६, २७, और २८ । इन स्थानोंके सिवा शेष बाईससे लेकर एक प्रकृति तक प्रतिग्रहस्थान हैं । उनका अंशविन्यास इस प्रकार है—

एसो—२२, २१, १०, १८, १७, १५, १४, १३, ११, १०, ६, ७, ६, ५, ४, ३, २, १।
संपहि एदेसिं पयडिङ्गिहेसो कीरदे । तं जहा—मिच्छत्त-सोलसक० तिण्हं वेदाणमेकदरं
हस्स-रदि अरदि-मोग दोण्हं जुगलाणमण्णदरं भय-दुगुंछाओ च एवमेदाओ वावीस-
पयडीओ घेत्तुण पढमं पडिङ्गहट्ठाणमुप्पज्जइ, अट्ठावीस-सत्तावीसाणमण्णदरसंतकम्मिय-
मिच्छाइडिम्मि जहाकमं सत्तावीस-छव्वीसरयडिङ्गाणमंकमस्स तदाहारत्तेण पउत्ति-
दंमणादो । तेणेव वावीसबंधणेण सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणि उव्वेन्निय मिच्छत्तपडिङ्गह-
वोच्छेदे कदे इगिवीसकमायपयडिपडिवद्धं विदियं पडिङ्गहट्ठाणमुप्पज्जइ, एत्थ वि
छव्वीससंतकम्मसहगदपणुवीममंकमट्ठाणस्माहारभावदंमणादो । अहवा मासणसम्मा-
इडिम्मि मिच्छत्तं मोत्तुण सेमपयडीओ बंधमाणस्स पयदपडिङ्गहट्ठाणमुप्पज्जइ, तत्थ वि
इगिवीसपयडिपडिङ्गहपडिवद्धपणुवीस-इगिवीसपयडिङ्गाणमंकमोवलंभादो ।

२०, २१, १६, १८, १७, १५, १४, १३, ११, १०, ९, ७, ६, ५, ४, ३, २, और १। अब इन
स्थानोंकी प्रकृतियोंका निर्देश करते हैं—मिथ्यात्व, मोलह, कपाय, तीन वेदोंमेंसे कोई एक वेद,
हाम्य-रति या अरति-शोक इन दो युगलोंमेंसे कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा इन वाईस
प्रकृतियोंका प्रथम प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि अट्ठाईस और सत्ताईस इनमेंसे किसी एक स्थानके
सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीवके क्रमसे सत्ताईस और छव्वीस प्रकृतिकस्थानके संक्रमके आधाररूपसे
इस स्थानकी प्रवृत्ति देखी जाती है। वाईस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला यही जीव जब सम्यक्त्व
और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके मिथ्यात्व प्रकृतिका प्रतिग्रहरूपमें विच्छेद कर देता है तब
कपायोंकी इक्कीस प्रकृतियोंसे सम्बन्ध रखनेवाला दूसरा प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है क्योंकि यह
स्थान भी छव्वीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीवके पञ्चम प्रकृतिक संक्रमस्थानका आधार
देखा जाता है। अथवा मिथ्यात्वके सिवा शेष प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाले सामादनसम्यग्दृष्टिके
प्रकृत प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि यहाँ पर भी इक्कीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध
रखनेवाले पञ्चम प्रकृतिकसंक्रमस्थानका और इक्कीसप्रकृतिकसंक्रमस्थानका संक्रम पाया जाता है।

विशेषार्थ—प्रकृतमें दूसरी गाथाके अर्थका खुलासा करते हुए प्रतिग्रहस्थान कितने हैं और
अप्रतिग्रहस्थान कितने हैं यह बतलाकर किस प्रतिग्रहस्थानकी कौन कौन प्रकृतियाँ हैं और उनमेंसे
किस प्रतिग्रहस्थानमें किस किस संक्रमस्थानका संक्रम होता है यह बतलाया जा रहा है। प्रतिग्रहका
अर्थ स्वीकार करता है और प्रकृतस्थानका अर्थ प्रकृतियोंका समुदाय है। आशय यह है कि
जो प्रकृतियोंका समुदाय संक्रमको प्राप्त हुए कर्मोंका स्वीकार करके अपनेरूप परिणाम लेता
है उसे प्रतिग्रहस्थान कहते हैं। इसका दूसरा नाम पतद्ग्रहस्थान भी है सो इससे पड़नेवाले
कर्मोंका जो प्रकृतियोंका समुदाय स्वीकार करता है वह पतद्ग्रहस्थान है ऐसा अर्थ लेना चाहिये।
प्रकृतमें मोहनीय कमकी अपेक्षा १२ प्रतिग्रहस्थान और १० अप्रतिग्रहस्थान बतलाये हैं।
ऐसा नियम है कि बंधनेवाली प्रकृतियोंमें ही संक्रम होता है और मोहनीयकी एक साथ अधिकसे
अधिक २२ प्रकृतियोंका ही बन्ध होता है अतः सबसे उत्कृष्ट प्रतिग्रहस्थान २२ प्रकृतिक ही हो
सकता है। यद्यपि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता तथापि
ये प्रतिग्रहरूप स्वीकार की गई है। पर इनमें यह योग्यता सम्यग्दृष्टि जीवके सिवा अन्यत्र नहीं
पाई जाती ऐसा नियम है। अतः २२ प्रकृतिक स्थानसे ऊपर तो प्रतिग्रहस्थान ही ही नहीं सकते
यह सिद्ध होता है इसीसे २३, २४, २५, २६, २७ और २८ ये छह अप्रतिग्रहस्थान बतलाये हैं

§ २७७. अमंजदमम्मादिट्टिमि एगूणवीसाए पडिग्गहट्टाणं होइ, तस्स सत्तारस-
बंधपयडीसु मम्मत्त-मम्मामिच्छत्ताणं पडिग्गहत्तेण पवेसदंभणादो । एदमि पडिग्गह-
ट्टाणमि पडिबद्धमत्तावीम-च्छवीम-तेवीममंकमट्टाणाणमुवलंभादो । एदेण चैव मिच्छत्तं
खविय मम्मामिच्छत्तपडिग्गहे णामिदे अट्टारमपडिग्गहट्टाणं होइ, एत्थ वि वावीसपयडि-
ट्टाणमंकभोवलंभादो । पुणो वि एदेण सम्मामिच्छत्तं खइय सम्मत्तपडिग्गहे वि णासिदे
सत्ताग्गं पडिग्गहट्टाणमुप्पजइ, इगिवीमकसायपयडीणमेत्थ मंकमंताणमुवलंभादो ।

किन्तु इनके अतिरिक्त २०, १६, १२ और ८ ये चार अप्रतिग्रहस्थान और हैं, क्योंकि गुणस्थान भेदसे प्रतिग्रहरूप प्रकृतियोंका जोड़ने पर जैसे अन्य प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न हो जाते हैं वैसे ये चार स्थान नहीं उत्पन्न होते। इसीसे इन्हें अप्रतिग्रहस्थान बनलाया है। इन अप्रतिग्रहस्थानोंके सिवा शेष २२, २१, १६, १८, १७, १५, १४, १३, ११, १०, ६, ७, ६, ५, ४, ३, २, और १ ये १८ प्रतिग्रहस्थान हैं। उनमेंसे २२ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान २८ या २७ प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके होता है। जो २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि है उसके २२ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २७ प्रकृतियोंका संक्रम होता है। मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्वप्रकृति संक्रमके अयोग्य हैं, अतः उसे छोड़ दिया है। तथा जो २७ प्रकृतियोंकी सत्तावाला है उसके भी २२ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २६ प्रकृतियोंका संक्रम होता है। २१ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान २३ प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके या २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाले सामादनसम्यग्दृष्टिके होता है। जो २६ प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि है उसके २१ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २५ प्रकृतियोंका संक्रम होता है। मिथ्यादृष्टिके यद्यपि बन्ध तो २२ प्रकृतियोंका ही होता है तथापि उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंकी उद्वेलना हो जानेके बाद मिथ्यात्व प्रकृति प्रतिग्रह रूप नहीं रहती, अतः २१ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान मिथ्यादृष्टिके भी बन जाता है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीव दो प्रकारके होते हैं। प्रथम तो वे जो अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना किये बिना उपशमसम्यक्त्वसे च्युत होकर सासादन गुणस्थानका प्राप्त हुए हैं और दूसरे वे जो अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके बाद उपशमसम्यक्त्वसे च्युत होकर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए हैं। २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सामादन गुणस्थानको प्राप्त होता है उसके सासादनमें तीन दर्शनमोहनीयके सिवा शेष २५ प्रकृतियोंका संक्रम होता है। तथा जो अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके बाद सासादन गुणस्थानको प्राप्त होते हैं उनके सासादनमें एक आवलि काल तक अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भी संक्रम नहीं होता, अतः इसके एक आवलि कालतक तीन दर्शनमोहनीय और चार अनन्तानुबन्धी इन सातके सिवा इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रम होता है। इस प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टिके २१ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २५ प्रकृतियोंका या २१ प्रकृतियोंका संक्रम होता है यह सिद्ध हुआ।

§ २७७. असंयत सम्यग्दृष्टिके उन्नीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि उसके सत्रह बन्ध प्रकृतियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका प्रतिग्रहरूपसे प्रवेश देखा जाता है। इस प्रतिग्रह स्थानमें सत्ताईस, छव्वीस और तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका संक्रम उपलब्ध होता है। और जब इसी जीवके मिथ्यात्वका नाश होकर सम्यग्मिथ्यात्व प्रतिग्रहप्रकृति नहीं रहती तब अठारह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि इसमें भी बाईस प्रकृतिक स्थानका संक्रम उपलब्ध होता है। फिर भी इस जीवके सम्यग्मिथ्यात्वका नाश होकर जब सम्यक्त्व भी प्रतिग्रहप्रकृति नहीं रहती तब सत्रह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि उसमें कपाय और नोकपायकी इक्कीस प्रकृतियोंका

सम्मामिच्छाइद्विम्बि वि एदं पडिङ्गाहट्टाणं पणुवीस-इगिवीसमंकमट्टाणपडिबद्धमणुगंतव्वं ।

§ २७८. संजदामंजदगुणट्टाणमस्मिगुण पण्णारसपडिङ्गाहट्टाणमुपपज्जदे, तेगसविधं बंधमाणस्म तस्स बंधपयडीसु पुव्वं व सत्तावीस-छव्वीस-तेवीसमंकमट्टाणाणमाहारभावेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तपयडीणं पवेमणादो । पुणो इमेण दंमणमोहक्खवणमभुट्टिय

संकम उपलब्ध होता है । यह सत्रह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्यग्मिथ्यादृष्टिके भी जानना चाहिये । किन्तु उसके इसमें पञ्चीस और इकीस प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका संक्रम होता है ।

विशेषार्थ—अविरतसम्यग्दृष्टिके १६, १८, और १७, प्रकृतिक तीन प्रतिग्रहस्थान होते हैं । दर्शनमोहनीयकी सत्तावाले सम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंका संक्रम अवश्य होता है । मिथ्यात्वका संक्रम तो सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इन दोनोंमें होता है किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम केवल सम्यक्त्वमें होता है । इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वरूप इन दो प्रतिग्रहप्रकृतियोंको वहां बंधनेवाली सत्रह प्रकृतियोंमें मिला देने पर १९ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है । किन्तु दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करके जब यह जीव मिथ्यात्वका क्षय कर देता है तब सम्यग्मिथ्यात्व प्रतिग्रहप्रकृति नहीं रहती इसलिये १८ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है । और इसी प्रकार जब यह जीव सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय कर देता है तब सम्यक्त्व प्रतिग्रहप्रकृति नहीं रहनेसे १७ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है । इस प्रकार अविरत सम्यग्दृष्टिके कुल तीन प्रतिग्रहस्थान होते हैं यह बात सिद्ध हुई । अब इसके किन्ने संक्रमस्थान होते हैं और किन संक्रमस्थानोंका किस प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है इसका विचार करते हैं—जो छव्वीस प्रकृतियोंका सत्तावाला जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके प्रथम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम न होनेसे छव्वीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । और द्वितीयादि समयमें उसके सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम होने लगनेसे २७ प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । इसी प्रकार जब यह जीव अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करता है तब २३ प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । ये तीनों संक्रमस्थान उन्नीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके रहते हुए सम्भव हैं, क्योंकि इन स्थानोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता आवश्यक है । इसलिये उन्नीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें इन तीन स्थानोंका संक्रम होता है यह बात सिद्ध होती है । १८ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान मिथ्यात्वका क्षय होनेपर ही होता है और मिथ्यात्वका क्षय होनेपर संक्रमस्थान २२ प्रकृतिक पाया जाता है, इसलिये १८ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २२ प्रकृतिक स्थानका संक्रम होता है यह बात सिद्ध होती है । १७ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय होनेपर होता है और तब संक्रमस्थान इक्कीसप्रकृतिक पाया जाता है, इसलिये १७ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २१ प्रकृतिकस्थानका संक्रम होता है यह बात सिद्ध होती है । इस प्रकार अविरत सम्यग्दृष्टिके प्रतिग्रहस्थान और संक्रमस्थानोंका विचार करके अब सम्यग्मिथ्यादृष्टिके इनका विचार करते हैं—इस गुणस्थानमें दर्शनमोहकी प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता और बन्ध सत्रह प्रकृतियोंका होता है, अतः प्रतिग्रहस्थान एक १७ प्रकृतिक ही पाया जाता है । तथापि सत्ता २८ या २४ प्रकृतियोंकी होनेसे संक्रमस्थान २५ या २१ प्रकृतिक ये दो पाये जाते हैं, क्योंकि २८ या २४ प्रकृतियोंमेंसे दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंके संक्रम न होनेसे मिश्रगुणस्थानमें संक्रमस्थान २५ या २१ प्रकृतिक ही प्राप्त होते हैं ।

§ २७८. संयतासंयत गुणस्थानकी अपेक्षा पन्ध्र प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि तेरह प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाले संयतासंयतके बन्धप्रकृतियोंमें पूर्ववत् २७, २६ और २३ प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके आधाररूपसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंका प्रवेश और हो जाता है । फिर इसके द्वारा दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके लिये उद्यत होकर मिथ्यात्वका

मिच्छते खविदे सम्मामिच्छतेण विणा चोदसपडिग्गहट्टाणं होदि । एदेणेव सम्मामिच्छते खविदे सम्मत्तेण विणा तेरमपडिग्गहो होइ, जहाकममेदेसु वावीस-इगिवीम-पयडीणं संकमदंमणादो ।

§ २७९. पमत्तापमत्ताणमेक्काग्गम० पडिग्गहो होइ, तच्चंधपयडीसु पुच्चं व सत्तावीम-छन्वीम-तेवीमसंकमट्टाणाणं पडिग्गहभावेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पवेमिदत्तादो । एत्थेव मिच्छत्तं खइय सम्मामिच्छत्तपडिग्गहे णायिदे दमपडिग्गहो होइ । तेणेव सम्मामिच्छत्तं खइय सम्मत्तं पडिग्गहाभावे कदे णवपयडिपडिग्गहट्टाणं होइ, जहाकममेदेसु वावीस-इगिवीमपयडीणं संकमदंमणादो ।

§ २८०. अपुच्चकरणगुणट्टाणम्मि एक्कारम वा णव वा तेवीम-इगिवीमसंकम-णाणमाहाग्गभावेण पडिग्गहा होति, तत्थ पयारंतामंभवादो ।

ज्ञय कर देने पर सम्यग्मिथ्यात्वके विना चांद्रप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है । और जब यह जीव सम्यग्मिथ्यात्वका भी ज्ञय कर देता है तब तेरहप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि इन दोनों स्थानोंमें क्रमसे २२ और २१ प्रकृतियोंका संक्रम देखा जाता है ।

विशेषार्थ—यहां संयतासंयतके प्रतिग्रहस्थान और संक्रमस्थान बतलाने हुए किस प्रतिग्रहस्थानमें किस संक्रमस्थानोंका संक्रम होता है इस बातका निर्देश किया गया है । अविरत-सम्यग्दृष्टिके जो संक्रमस्थान बतलाये हैं वे ही संयतासंयतके होते हैं, क्योंकि सत्ता और श्रपणाकी अपेक्षासे इन दोनों गुणस्थानोंमें कोई अन्तर नहीं है । किन्तु बन्धका अपेक्षासे संयतासंयतके चार प्रकृतियाँ कम हो जाती हैं । अतः १६, १८ और १७ मेंसे ४ प्रकृतियाँ कम करने पर इसके क्रमसे १५, १४ और १३ वे तीन प्रतिग्रहस्थान प्राप्त होते हैं । अब इनमेंसे किसमें कितनी प्रकृतियोंका संक्रम होता है सो यह सब कथन अविरतसम्यग्दृष्टिके संक्रमस्थानोंके स्वामित्वको देखकर घटित कर लेना चाहिये ।

§ २७६. प्रमत्तसंयत और अमत्तमयतके ग्यारहप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि इनकी बन्धप्रकृतियोंमें पूर्ववत् सत्ताईम, छन्वीस और तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका प्रतिग्रहपना पाया जानेके कारण इन बन्धप्रकृतियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंका प्रवेश किया गया है । जब इनके मिथ्यात्वका ज्ञय होकर सम्यग्मिथ्यात्व प्रतिग्रह प्रकृति नहीं रहती तब दसप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है । और जब यही जीव सम्यग्मिथ्यात्वका ज्ञय करके सम्यक्त्वका प्रतिग्रह प्रकृतिरूपसे अभाव कर देता है तब नौप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि इन दोनों प्रतिग्रहस्थानोंमें क्रमसे बाईस और इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रम देखा जाता है ।

विशेषार्थ—संयतासंयतके बंधनेवाली १३ प्रकृतियोंमेंसे ४ प्रकृतियाँ कम होकर इन दो गुणस्थानोंमें ६ प्रकृतियोंका बन्ध होता है, अतः यहाँ १५, १० और ६ प्रकृतिक तीन प्रतिग्रहस्थान प्राप्त होते हैं । शेष कथन सुगम है ।

§ २८०. अपूर्वकरण गुणस्थानमें तेईस और इक्कीस प्रकृतियोंके आधारभूत ग्यारह प्रकृतिक या नौ प्रकृतिक ये दो प्रतिग्रहस्थान हाते हैं, क्योंकि यहाँ पर और कोई दूसरा प्रकार सम्भव नहीं है ।

विशेषार्थ—अपूर्वकरणमें २४ प्रकृतिक या २१ प्रकृतिक ये दो प्रतिग्रहस्थान हाते हैं । इसीसे यहाँ २३ प्रकृतिक या २१ प्रकृतिक ये दो संक्रमस्थान और क्रमसे उनका आधारभूत

§ २८१. संपहि उवसमसेटीए चउवीससंतकम्मियमस्सिऊण पडिग्गाहट्टाणाण-
मुप्पत्ति वचइस्सामो । तं कथं ? चउवीससंतकम्मियस्स उवसमसेटिं चट्ठिय अणियड्ढि
गुणट्टाणम्मि पंचविहं बंधमाणस्स सत्तपयडिपडिग्गाहो होइ, तत्थ चउसंजलण-पुरिसवेद-
सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तममूहस्स तेवीस-वावीस-इगिवीससंकमाणं पडिग्गाहत्तदंसणादो ।
एदेणेव णवुंस-इत्थिवेदमुवमामिय पुरिसवेदपडिग्गाहवोच्छेदे कदे छप्पयडिपडिग्गाहो होइ,
चदुसंजलण दोदंसणमोहपयडीणमेत्थ वीसाए संकमस्साहारभावोवलंभादो । एत्थेव
छण्णोकसाय-पुरिसवेदाणं जहाकममुवसमेण चोद्दस-तेरससंकमट्टाणाणमुवलंभादो च ।
पुणो वि एदेण दुविहकोहोवसमं काऊण कोहमंजलणपडिग्गाहविणासे काए पंचपयडि-
पडिग्गाहट्टाणमेकारममंकमाहारभूदमुप्पज्जदि । एत्थेव कोहमंजलणोवसममस्सिऊण
दममंकमाहारं तं चेव पडिग्गाहट्टाणं होदि । तेणेव दुविहमाणमुवसामिय माणसंजलण-
पडिग्गाहवोच्छेदे कदे चउपयडिपडिग्गाहद्वमट्टपयडिमंकमाहारभूदं पडिग्गाहट्टाणं होइ ।
एत्थेव माणमंजलणोवममे कदे सत्तपयडिमंकमपडिग्गाहं तं चेव पडिग्गाहट्टाणं होदि ।
तेणेव दुविहमायोवममेण मायामंजलणपडिग्गाहवोच्छेदे कदे लोभमंजलण-दोदंसणमोह-
पयडिपडिग्गाहं तिणहं पडिग्गाहट्टाणं पंचपयडिमंकमावेक्खं मायामंजलणोवममेण चदुपयडि-

११ प्रकृतिक और ६ प्रकृतिक ये दो प्रतिग्रहस्थान बनलाये हैं। यहाँ दर्शनमोहनीयकी क्षण न होनेसे १० प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्भव नहीं हैं।

§ २८१. अब उपशमश्रेणिये चौबीस प्रकृतिक मत्त्वस्थानकी अपेक्षा प्रतिग्रहस्थानोंकी उत्पत्ति बनलाते हैं। यथा—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशमश्रेणिये पर चढ़कर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें पाँच प्रकृतियोंका बन्ध करता है उसके सात प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि वहाँ पर चार संज्वलन, पुरुषवेद, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन सात प्रकृतियोंके समुदायमें तेईस, बाईस और इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रमका प्रतिग्रहपना देखा जाता है। तथा जब यही जीव स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका उपशम करके पुरुषवेदकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है तब छह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि यहाँपर चार संज्वलन और दो दर्शनमोहनीय ये छह प्रकृतियां बीस प्रकृतियोंके संक्रमके आधाररूपसे उपलब्ध होती हैं। फिर जब यह जीव इन बीस प्रकृतियोंमेंसे छह नाकपाय और पुरुषवेदका क्रमसे उपशमा देता है तब चौदह और तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान उपलब्ध होते हैं। फिर भी जब यह जीव दो प्रकारके क्रोधको उपशमा देता है तब क्रोधसंज्वलन प्रतिग्रह प्रकृति न रह कर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका आधारभूत पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है। फिर यहीं पर क्रोधसंज्वलनका उपशम कर लेनेपर दस प्रकृतिक संक्रमस्थानका आधारभूत वही प्रतिग्रहस्थान होता है। फिर जब यही जीव दो प्रकारके मानका उपशम करके मानसंज्वलनकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है तब आठ प्रकृतिक संक्रमस्थानका आधारभूत चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है। फिर यहीं पर मानसंज्वलनका उपशम कर लेनेपर सात प्रकृतिक संक्रमस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला वही प्रतिग्रहस्थान होता है। फिर जब वही जीव दो प्रकारकी मायाका उपशम करके मायासंज्वलनकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है तब पाँच प्रकृतियोंके संक्रमकी अपेक्षा रखनेवाला या मायासंज्वलनका उपशम हो जानेपर चार प्रकृतियोंके संक्रमकी अपेक्षा रखनेवाला लोभसंज्वलन और दो दर्शनमोहसम्बन्धी तीन प्रकृतिक

मंकमावेक्खं वा समुवजायदे । एदेणेव द्रुविहलोहमुवमामिय लोभमंजलणपडिग्गह-
वोच्छेदे कदे मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तमंकमपाओग्गं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तपडिबद्धं दोण्हं
पयडिपडिग्गहट्टाणमुप्पज्जइ ।

§ २८२. मंपहि इगिवीममंतकम्मियमस्सिऊणुवममसेटीए मंभवताणं पडिग्गह-
ट्टाणाणमुप्पत्ती वुच्चदे । तं कथं ? इगिवीममंतकम्मियस्म उवममसेट्ठिं चट्ठिय अणियट्ठि-
गुणट्टाणम्मि पंचविहं वंधमाणस्म एक्कावीस-वीस-एगूणवीमपयडिमंकमाहाग्भृदं पंचपडि-
ग्गहट्टाणमुप्पज्जइ । पुणो एदेण णवुंस-इत्थिवेदाणमुवममं काऊण पुरिसवेदपडिग्गह-
विणासे कए चउण्हं पडिग्गहट्टाणमट्टारमपयडिमंकमपडिबद्धमुप्पज्जइ । तेणेव सत्त-
णोकमाय-द्रुविहकोहोवममणवावारेण कोहमंजलणपडिग्गहवोच्छेदे कदे तिण्हं पडिग्गहट्टाणं
णवपयडिमंकमपडिबद्धमुप्पज्जइ । पुणो कोहमंजलणेण मह द्रुविहमाणोवममं काऊण
माणमंजलणपडिग्गहवोच्छेदे कदे दोण्हं पडिग्गहट्टाणं छप्पयडिमंकमपडिबद्धमुप्पज्जइ ।
पुणो माणमंजलण-द्रुविहमायोवमामणेण मायामंजलणपडिग्गहवोच्छेदे कदे एकस्से
पडिग्गहट्टाणं तिण्हं पयडिमंकमट्टाणपडिबद्धमुप्पज्जइ, मायामंजलणेण मह द्रुविहलोहम्म
लोहमंजलणम्मि ताधे मंकतिटंगणादो । एवं खवग्गम्म वि पंचविहबंधगप्पट्टि उवरिम-
पडिग्गहट्टाणाणं समुप्पत्ती वत्तत्ता, जहाकमं तत्थ पंच-चट्ठ-ति-दु-एक्कविधबंधट्टाणेसु

प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है । फिर जब वही जीव दो प्रकारके लोभका उपशम करके लोभसंज्वलन-
की प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है तब मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रमके योग्य सम्यक्त्व
और सम्यग्मिथ्यात्वसम्बन्धी दो प्रकृतिक प्रतिग्रह स्थान उत्पन्न होता है ।

§ २८२. अब इक्कीस प्रकृतिक सत्तास्थानकी अपेक्षा उपशमश्रेणियोंमें सम्भव प्रतिग्रहस्थानों-
की उत्पत्तिका विवेचन करते हैं । यथा—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणिएपर
चढ़कर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें पांच प्रकृतिक बन्ध करता है उसके इक्कीस, बीस और उन्नीस
प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका आधारभूत पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है । फिर जब यह जीव
नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम करके पुरुषवेदकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति करता है तब अठारह
प्रकृतिक संक्रमस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है । फिर जब
वही जीव सात नोकपाय और दो प्रकारके क्रोधका उपशम करके क्रोधसंज्वलनकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति
कर देता है तब उसके नौ प्रकृतिक संक्रमस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला तीन प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान
उत्पन्न होता है । फिर जब वही जीव क्रोधसंज्वलनके साथ दो प्रकारके मानका उपशम करके मान-
संज्वलनकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है तब छह प्रकृतिक संक्रमस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला दो
प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है । फिर जब वही जीव मानसंज्वलन और दो प्रकारकी
मायाका उपशम करके मायासंज्वलनकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है तब उसके तीन प्रकृतिक
संक्रमस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि तब माया-
संज्वलनके साथ दो प्रकारके लोभका लोभसंज्वलनमें संक्रम देखा जाता है । इसीप्रकार चपक
जीवके भी पांच प्रकारके बन्धस्थानसे लेकर आगेके प्रतिग्रहस्थानोंकी उत्पत्तिका कथन करना चाहिये,
क्योंकि वहाँ क्रमसे पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें इक्कीस, तेरह, बारह और ग्यारह प्रकृतिक संक्रम

एकवीस-तेरस-चारसेकारसण्हं दस-चउक्काणं तिण्हं दोण्हमेकिस्से च संकमट्टाणस्स संकंतिदंसणादो । एवमेदोए विदियगाहाए पढमगाहापरूविदसंकमट्टाणाणमाहारभूदाणि पडिग्गहट्टाणाणि सामण्णेण णिदिट्टाणि ।

स्थानोंका, चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमे दस और चार प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका, तीन प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानका, दो प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें दो प्रकृतिकसंक्रमस्थानका और एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें एक प्रकृतिक संक्रमस्थानका संक्रम देखा जाता है । इसप्रकार इस दूसरी गाथाद्वारा प्रथम गाथामें कहे गये संक्रमस्थानोंके आधारभूत प्रतिग्रहस्थानोंका सामान्य-रूपसे निर्देश किया है ।

विशेषार्थ—अब यहां गुणस्थानके क्रमसे प्रतिग्रहस्थान, संक्रमस्थान तथा उनकी प्रकृतियोंका कोष्ठकद्वारा निर्देश करते हैं—

गुणस्थान	प्रतिग्रह स्थान	प्रकृतियाँ	संक्रमस्थान	प्रकृतियाँ
मिथ्यात्व	२२ प्र०	मिथ्यात्व, मोलह कपाय, तीन वेदोंमेंसे कोई एक, दो युगलोंमेंसे एक युगल, भय और जुगुप्सा	२७ प्र०	मिथ्यात्वके बिना
			२६ प्र०	मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके बिना
	२१ प्र०	मिथ्यात्वके बिना पूर्वोक्त	२५ प्र०	तीन दर्शनमोहके बिना
सामादन	२१ प्र०	मिथ्यात्वके बिना पूर्वोक्त किन्तु नपुंसकवेदका वन्ध न होनेसे दो वेदोंमेंसे कोई एक	२५ प्र०	तीन दर्शनमोहके बिना
			२१ प्र०	तीन दर्शनमोह व अनन्तानुबन्धी चारके बिना
मिश्र	१७ प्र०	पूर्वोक्त २१ मेंमे चार अनन्तानुबन्धीके बिना किन्तु वेदमें मात्र पुरुषवेद	२५ प्र०	तीन दर्शनमोहके बिना
			२१ प्र०	तीन दर्शनमोह व चार अनन्तानुबन्धीके बिना
अविरत सम्य०	१९ प्र०	पूर्वोक्त १७ में सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व मिला देनेपर	२७	सम्यक्त्वके बिना
			२६	सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्वके बिना
			२३	अनन्तानुबन्धी ४ व सम्यक्त्वके बिना
	१८ प्र०	सम्यग्मिथ्यात्वके बिना	२२	पूर्वोक्त ५ व मिथ्यात्वके बिना
१७ प्र०	सम्यक्त्वके बिना	२१	१२ कपाय ६ नोकपाय	

गुण०	प्रति०	प्रकृतियां०	संक्रमस्थान०	प्रकृतियाँ
देशविरत	१५ प्र०	पूर्वोक्त १६ मेंसे अपत्याख्यानावरण ४ के बिना	२७, २६, २३	पूर्ववत्
	१४ प्र०	सम्यग्मि० के बिना	२२ प्र०	पूर्ववत्
	१३ प्र०	सम्यक्त्वके बिना	२१ प्र०	पूर्ववत्
प्रमत्त व अप्रमत्त	११ प्र०	पूर्वोक्त १५ मेंसे प्रत्याख्यानावरण ४ के बिना	२७, २६ व २३ प्र०	पूर्ववत्
	१० प्र०	सम्यग्मिथ्यात्वके बिना	२२ प्र०	पूर्ववत्
	६ प्र०	सम्यक्त्वके बिना	२१ प्र०	पूर्ववत्
अपूर्वकरण	११ प्र०	पूर्ववत्	२३ प्र०	पूर्ववत्
	९ प्र०	पूर्ववत्	२१ प्र०	पूर्ववत्
उपशम श्रंणि २४ प्र० सत्कर्मकी अपेक्षा	७ प्र०	चार संज्ञ०, पुरुषवेद, सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व	२३, २२ व २१ प्र०	२३ पूर्ववत्, २२ सं० लोभके बिना, २१ नपुंसकवेदके बिना
	६ प्र०	पुरुषवेदके बिना	२० प्र०	२३ मेंसे नपुंसकवेद, स्त्रीवेद व संज्वलनलोभ कम कर देने पर
			१४ प्र०	२० मेंसे छह नोकपाय कम कर देने पर
			१३ प्र०	१४ मेंसे पुरुषवेदके कम कर देने पर
	५ प्र०	क्रोधसंज्वलनके बिना	११ प्र०	१३ मेंसे दो क्रोधोको कम कर देने पर
			१० प्र०	११ मेंसे क्रोधसंज्वलन के कम कर देने पर
			८ प्र०	दो मान कमकर देनेपर
	४ प्र०	मानसंज्वलनके बिना	७ प्र०	मानसं० कम कर देने पर
			५ प्र०	दो माया कमकर देनेपर
	३ प्र०	माया संज्वलनके बिना	४ प्र०	मायामं० कमकर देनेपर
			२ प्र०	मिथ्या० व सम्यग्मि०
	२ प्र०	लोभसं० के बिना सम्यक्त्व व सम्यग्मि०	२ प्र०	

§ २८३. संपहि सत्तावीसादिसंक्रमद्वयाणाणि परिवाडीए डुविय पादेकमेकेकसंक्रम-
द्वयाणिरुंभणं काउणेदस्स संक्रमद्वयाणस्स एत्तियाणि पडिग्गहद्वयाणाणि होंति ति
जाणावणडुमुवरिमदसगाहाओ । तत्थ ताव तासिमादिमगाहा छ्वीस सत्तावीसा य ।
एदीए तदियगाहाए छ्वीस सत्तावीससंक्रमद्वयाणाणं पडिग्गहद्वयाणियमो कीरदे—
चदुसु चेव पडिग्गहद्वयाणेसु छ्वीस-सत्तावीसाणं संक्रमो णाणत्थ इदि । एत्थ णियमसदो

गुण	प्रति०	प्रकृतियां	संक्रमस्थान	प्रकृतियां
उपशम श्रेणि २१ प्रकृतिक सत्कर्मकी अपेक्षा	५ प्र०	चार संज्व० व पुरुषवेद	२१ प्र०	१२ कषाय नौ नोकषाय
			२० प्र०	संज्व०लो० बिना पूर्वोक्त
			१६ प्र०	नपु०वेद बिना पूर्वोक्त
	४ प्र०	पुरुषवेदके बिना	१८ प्र०	स्त्रीवेद बिना पूर्वोक्त
	३ प्र०	संज्वलनक्रोधके बिना	६ प्र०	सात नोकषा० दो क्रोध के बिना
	२ प्र०	संज्वलनमानके बिना	६ प्र०	दो मानके बिना
	१ प्र०	माया संज्वलनके बिना	३ प्र०	दो मायाके बिना
क्षपकश्रेणि	५ प्र०	चारमं० व पुरुषवेद	२१ प्र०	पूर्ववत्
			१३ प्र०	मध्यके आठकषाय बिना
			१२ प्र०	संज्व०लोभ बिना
			११ प्र०	नपुंसकवेद बिना
	४ प्र०	चार संज्वलन	१० प्र०	स्त्रीवेदके बिना
			४ प्र०	छह नोकषाय बिना
			३ प्र०	संज्व०क्रोध, मान व माया
			२ प्र०	संज्व० मान व माया
			१ प्र०	संज्वलन माया बिना

§ २८३. अब सत्ताईस आदि संक्रमस्थानोंको क्रमसे रखकर प्रत्येक संक्रमस्थानकी अपेक्षा
इस संक्रमस्थानके इतने प्रतिग्रहस्थान होते हैं यह बतलानेके लिये आगेकी दस गाथाएं आई हैं ।
उनमेंसे 'छ्वीस सत्तावीसा य' यह पहली गाथा है जो क्रमानुसार तीसरे नम्बरपर प्राप्त होती है ।
इस तीसरी गाथामें छ्वीस प्रकृतिक और सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके प्रतिग्रहस्थानोंका नियम
करते हैं—छ्वीस प्रकृतिक और सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका चार प्रतिग्रहस्थानोंमें ही संक्रम
होता है अन्यत्र नहीं होता । इस गाथामें आया हुआ 'नियम' शब्द पंचमी विभक्तिका एकवचनान्त

पंचमिण्यवयणंतो छंदोभंगमण पडियतलोवं काऊण रहसादेसेण णिहिट्टो । संकम-
ट्टाणाणमेत्थ णियमो पडिग्गहट्टाणाणमणियमो । तदो तेसु तेवीमाए वि संकमो ण
विरुज्झदे । एवं सत्तावीम-छ्वीससंकमाहारत्तेणावहारियाणं चउण्हं पडिग्गहट्टाणाणं
सरूवणिहेमट्टं गाहापच्छट्टो 'वावीस पण्णरसगो ।' पादेकमेदेसु चट्टुसु पडिग्गहट्टाणेसु
छ्वीस-सत्तावीमाणं संकमो होइ त्ति वुत्तं होइ ।

§ २८४. तत्थ ताव सत्तावीमसंतकम्मियमिच्छाइट्टिमि पणुवीमकमाय-मम्मा-
मिच्छत्तमंकायमि छ्वीमसंकमस्स वावीमपडिग्गहो लब्भदे । पुणो छ्वीससंत-
कम्मियमिच्छाइट्टिणा उवममममत्त-मंजमामंजमगहणपटमममए मम्मामिच्छत्तमंका-
भावेण छ्वीमसंकमस्स पण्णारम पडिग्गहो होइ । तेग्गविहत्तबंधपयडीसु मम्मत्त-
मम्मामिच्छत्ताणं पवेमादो । तेणेव पटमममत्त-मंजमजुगवगहणपटमममयमि छ्वीम-
संकमस्स एक्कारम०पडिग्गहो होइ, तत्थ मम्मत्त-मम्मामिच्छत्तेहि मह चट्टुकमाय-
पंचणोकमायाणं पडिग्गहत्तदंमणादो । पुणो पटमममत्तगहणपटमममए वट्टमाणस्स
अमंजदमम्माइट्टिस एगूणवीमपडिग्गहट्टाणपडिग्गहिआं छ्वीमसंकमो होइ, तदवत्थाए
पडिग्गहट्टाणंवरस्सामंभवादो ।

है, इसलिए छन्द भंग होनेके भयसे अन्तमें प्राप्त हुए 'त' का लोप करके और उसके स्थानमें ह्रस्व का आदेश करके निर्देश किया है । यहा पर संक्रमस्थानोंका नियम किया गया है प्रतिग्रहस्थानोंका नियम नहीं किया गया है, इसलिये इन प्रतिग्रहस्थानोंमें तैईम प्रकृतिक स्थानका संक्रम भी विरोधका नहीं प्राप्त होता है । उम प्रकार सत्ताईम प्रकृतिक और छ्वीस प्रकृतिक संक्रमोंका आधाररूपसे निश्चित किये गये चार प्रतिग्रहस्थानोंके स्वरूपका निर्देश करनेके लिये 'वावीस पण्णरसगो' यह गाथाका उत्तरार्ध कहा है । इन चारों प्रतिग्रहस्थानोंमेंसे प्रत्येकमें छ्वीसप्रकृतिक और सत्ताईस-प्रकृतिक स्थानोंका संक्रम होता है यह उक्त कथनका तत्पर्य है ।

§ २८४. उनमेंसे पच्चीस कपाय और सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम करनेवाले सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके छ्वीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका बाईसप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान प्राप्त होता है । फिर जो छ्वीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्व और संयमासंयमका एकसाथ प्राप्त करता है उसके प्रथम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होनेसे छ्वीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका पन्द्रहप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान प्राप्त होता है, क्योंकि संयतासंयतके बधनेवाली तरह प्रकारकी प्रकृतियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका प्रतिग्रहरूपसे प्रवेश देखा जाता है । तथा वही छ्वीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव जब प्रथम सम्यक्त्व और संयम इन दोनोंको एक साथ ग्रहण करता है तब उसके प्रथम समयमें छ्वीस प्रकृतिक संक्रम-स्थानका ग्यारह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि वहां पर सम्यक्त्व आर सम्यग्मिथ्यात्वके साथ चार कपाय और पांच नोकपाय यं ग्यारह प्रतिग्रह प्रकृतियां देखी जाती है । पुनः प्रथम सम्यक्त्वका ग्रहण करनेके प्रथम समयमें विद्यमान हुए असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके उन्नीसप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला छ्वीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है, क्योंकि उम अवस्थामें दूसरा प्रतिग्रहस्थान नहीं हो सकता है ।

§ २८५. मंपहि सत्तावीसाए उच्चदे—अट्टावीससंतकम्मियमिच्छाइट्टिमि सत्तावीससंकमो वावीसपयडिपडिग्गहविसईकओ समुप्पजइ । पुणो उवसमसम्मत्तग्गहण- विदियसमयप्पहुडि जाव अणंताणुबंधीणं विमंजोयणा णत्थि ताव संजदासंजद-संजद- अमंजदसम्माइट्टिगुणट्टाणेसु मत्तावीससंकमस्म जहाकमं पण्णारसेक्कारस-एगूणवीस- पडिग्गहा होति । एवं तदियगाहाए अत्थो समत्तो ।

§ २८६. सत्तारसेक्कवीमासु०—पंचवीसाए संकमो कम्मि पडिग्गहट्टाणम्मि होइ त्ति आसंक्रिय 'मत्तारसेक्कवीमासु' त्ति उच्चं । एदेसु दोसु पडिग्गहट्टाणेसु पणुवीसाए संकमो णिवट्ठो त्ति उच्चं होइ । एत्थ वि णियममदो पडिग्गहट्टाणेसु संकमट्टाणाव-

§ २८५. अब सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके प्रतिग्रहस्थान कहते हैं—अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके बाईस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानका विषयभूत सत्ताईसप्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । पुन. उपशमसम्यक्त्वके ग्रहण करनेके दूसरे समयसे लेकर जब तक अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना नहीं होती है तब तक संयतासंयत, संयत और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानोंमें सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके क्रमसे पन्द्रहप्रकृतिक, ग्यारहप्रकृतिक और उन्नीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होते हैं ।

विशेषार्थ—यहां पर प्रकृतिमंक्रमस्थानके मिलसिलेमें आई हुई ३२ गाथाओंमेंसे तीसरी गाथाका व्याख्यान किया गया है । इस गाथासे लेकर १२वीं गाथा तक १० गाथाओंमें किस संक्रमस्थानके कितने प्रतिग्रहस्थान हैं यह बतलाया गया है । उनमेंसे तीसरी गाथामें २७ प्रकृतिक और २६ प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके २०, १६, १५, और ११ प्रकृतिक चार प्रतिग्रहस्थान बतलाये गये हैं सो इनका विशेष गुणासा टीकामें किया ही है । इस तीसरी गाथाके पूर्वाधमें 'णियम' पद आया है । यह 'नियमान्' इस पंचमी विभक्तिके एक वचनका रूप है । प्राकृतके नियमानुसार आदि, मध्य और अन्तमें आये हुए वर्णों और स्वरोका लोप हो जाता है, अत. इस पदमेंसे 'न्' का लोप करके फिर छन्दोभंग दोषको टालनेके लिये ह्रस्व कर दिया गया है । इसलिये 'णियम' यह 'नियमान्' का रूप जानना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यह 'नियम' पद संक्रमस्थानों का नियम करता है कि इन दो संक्रमस्थानोंके ये चार ही प्रतिग्रहस्थान होते हैं अन्य नहीं, किन्तु प्रतिग्रहस्थानोंका नियम नहीं करता है । ये चार प्रतिग्रहस्थान इन दो संक्रमस्थानोंके तो होते ही हैं किन्तु इनके सिवा अन्य संक्रमस्थान भी इन प्रतिग्रहस्थानोंमें सम्भव हो सकते हैं । यथा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके बाद जो तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है उसके उन्नीस, पन्द्रह और ग्यारहप्रकृतिक तीन प्रतिग्रहस्थान होते हैं । इस प्रकार गाथामें आये हुए नियम पदसे संक्रमस्थानोंका नियम किया गया है प्रतिग्रहस्थानोंका नहीं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

इस प्रकार तीसरी गाथाका अर्थ समाप्त हुआ ।

§ २८६. अब 'सत्तारसेक्कवीमासु' इस चौथी गाथाका व्याख्यान करते हैं—पंचवीस प्रकृतिक संक्रम किस प्रतिग्रहस्थानमें होता है ऐसी आशंका करके सत्रह प्रकृतिक और इक्कीस प्रकृतिक इन दो प्रतिग्रहस्थानोंमें होता है ऐसा कहा है । इन दो प्रतिग्रहस्थानोंमें पचीस प्रकृतिक संक्रम निबद्ध है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यहाँ भी गाथामें 'नियम' शब्द आया है सो वह इस संक्रमस्थानके

हारणफलो पुवं व पडियतलोवादिविहाणेण णिदिट्ठो दट्ठव्वो । तत्थ छव्वीससंत-
कम्मियमिच्छाइट्ठिस्म वावीमविहं बंधमाणयस्म इगिवीसपडिग्गहालंबणो होऊण
पणुवीमकमायसंकमो होइ । अहवा अणंताणुबंधी अविमंजोएदूण ट्ठिदउवसमसम्माइट्ठिस्स
आसाणं पडिवज्जिय इगिवीमबंधमाणस्म पणुवीससंकमो इगिवीसपडिग्गहपडिवद्धो होइ,
तत्थ सहावदो दंसणतियस्म संकम-पडिग्गहसत्तीणमभावादो । पुणो अट्ठावीमसंतकम्मिय-
मिच्छाइट्ठि-सम्माइट्ठीणमण्णदरस्स सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जिय सत्तारसपयडीओ
बंधमाणस्म पणुवीससंकमो सत्तारसपडिग्गहपडिग्गहिओ होइ, एत्थ वि दंसणतियस्स
संकमाभावादो । एवं पडिग्गहट्ठाणविसेमविसयत्तेणावहारियस्स पणुवीससंकमट्ठाणस्स
गइगयविसेमणिद्वारणट्ठमिदमाह—‘णियमा चदुसु गदीसु य’ णियमा णिच्छएण चदुसु
वि गईगु पणुवीससंकमट्ठाणमवट्ठिदं दट्ठव्वं, अण्णदरगइविसयणियमाभावादो । एत्थेव
गुणट्ठाणगयमामिन्विसेमणिद्वारणट्ठमाह—‘णियमा ‘दिट्ठीगए तिविहे’ गुणट्ठाणमादीदो
पट्ठिदि तिविहे गुणट्ठाणे मिच्छाइट्ठि-सामणमम्माइट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति दिट्ठि-
विसेमणविमिदुत्तादो दिट्ठिगए पयदमंकमट्ठाणमंभवो णाण्णत्थ, तत्थेव तदुप्पत्तिणियम-
दंसणादो । एदेण ‘दिट्ठीगय’ विसेमणेण मंजदामंजदादीणमुवरिमगुणट्ठाणाणं उदासो

ये ही प्रतिग्रहस्थान हैं यह बतलानेके लिए दिया है । तथा इस नियम शब्दके ‘त्’ का लोप और
ह्रस्व विधि पूर्ववत् जान लेना चाहिये । जो छव्वीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव बाईस
प्रकृतियोंका बन्ध करता है उसके इक्कीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके रहते हुए पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान
होता है । अथवा अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना किये बिना जो उपशमसम्यग्दृष्टि जीव
सासदन गुणस्थानको प्राप्त होकर इक्कीस प्रकृतियोंका बन्ध करता है उसके इक्कीस प्रकृतिक
प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है, क्योंकि वहाँपर स्वभावसे
ही दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियोंमें संक्रम और प्रतिग्रहरूप शक्तिका अभाव है । पुनः अट्ठाईस
प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सत्रह
प्रकृतियोंका बन्ध करता है उसके सत्रह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला पच्चीस प्रकृतिक
संक्रमस्थान होता है, क्योंकि यहाँपर भी दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता है ।
इस प्रकार प्रतिग्रहविशेषके विषयरूपसे निश्चय किये गये पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका
गतिसम्बन्धी विशेषताका निश्चय करनेके लिये गाथामे ‘णियमा चदुसु गदीसु य’ यह कहा है ।
आशय यह है कि यह पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान नियमसे चारों गतियोंमें होता है ऐसा जानना
चाहिये, क्योंकि यह अमुक गतिमें ही होता है ऐसा कोई नियम नहीं है । तथा यहाँपर गुणस्थानों
की अपेक्षा स्वामित्व विशेषका निधारण करनेके लिये ‘णियमा दिट्ठीगए तिविहे’ यह कहा है ।
यहां गाथामे दृष्टि विशेषण होनेसे आदिके तीन मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या-
दृष्टि गुणस्थानोंका ग्रहण होता है । इन तीन गुणस्थानोंमें ही प्रकृत संक्रमस्थान सम्भव है
अन्यत्र नहीं, क्योंकि इन्हीं तीन गुणस्थानोंमें इस संक्रमस्थानकी उत्पत्ति देखी जाती है । यहाँ जो
यह ‘दृष्टिगत’ विशेषण दिया है सो इससे संयतासंयत आदि आगेके गुणस्थानोंका निषेध कर

१. ता०प्रता पाठमहट्ठाणविसेमविसयत्तेणावहारियस्म पणु वीससंकमट्ठाणविसेमविम इत्तेणावहारियस्म
पणुवीससंकमट्ठाणस्स इति पाठः ।

कओ । 'तिविह' विसेसणेण च असंजद०गुणट्टाणस्स बहिब्भावो कओ । एवं चउत्थ-
गाहाए अत्थपरूवणा समत्ता ।

§ २८७. 'वावीस पण्णरसगे०' एसा पंचमी गाहा तेवीससंक्रमट्टाणस्स पडिग्गहट्टाणपरूवणट्टुमागया । एदिस्से अत्थविवरणं कस्सामो—तेवीससंक्रमो पंचसु ट्टाणेसु होइ चि एत्थ संबंधो । तेसिं पंचसंखाविसेसियाणं पडिग्गहट्टाणाणं सरूव-
णिद्वारणट्टुं 'वावीसादि' वयणं । कघमेत्थ वावीसाए तेवीससंक्रमोवलंभो ? ण, अणंताणुबंधी-
विसंजोयणापुरस्सरसंजुत्तमिच्छादिट्टिपढमसमयप्पहुडि आवलियमेत्तकालमणंताणुबंधीणं
संक्रमाभावेण तेवीससंक्रामयस्स तदुवलंभविरोहाभावादो । पण्णरसगे पयदमंक्रमट्टाण-
मंभवो संजदासंजदम्मि दट्टुस्वो, विसंजोइदाणंताणुबंधिचउक्कसंजदासंजदस्स पण्णारस-
पडिग्गहट्टाणाधारत्तेण तेवीससंक्रमट्टाणपउत्तिदंमणादो । एवं सत्तगे वि पयदसंक्रमट्टाण-
संभवो जोजेयव्वो । णवरि चउवीससंतकम्मियाणियट्टिम्मि अंतरकरणादो हेट्टा तदुप्पत्ती
वत्तव्वा, अणाणुपुव्वीसंक्रामयस्सं तस्स तदविरोहादो । एक्कारसूणवीसासु पयदजोयणा एवं

दिया है और 'त्रिविध' इस विशेषण द्वारा असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानका निषेध कर दिया है ।

विशेषार्थ—आशय यह है कि मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टिके २१ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टिके १७ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २५ प्रकृतियोंका संक्रम होता है । पंचवीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके ये दो ही प्रतिग्रहस्थान हैं अन्य नहीं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

इस प्रकार चौथी गाथाके अर्थका कथन समाप्त हुआ ।

§ २८७. 'वावीस पण्णरसगे०' यह पांचवी गाथा है जो तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके प्रतिग्रहस्थानोंका कथन करनेके लिये आई है । अब इस गाथाका अर्थ लिखते हैं—तेईस प्रकृतिक संक्रम पांच स्थानोंमें होता है ऐसा यहां सम्बन्ध करना चाहिये । उन पांच संख्यासे विशेषताको प्राप्त हुए प्रतिग्रहस्थानोंके स्वरूपका निरवच्य करनेके लिये गाथामें 'वावीस' अदि वचन दिया है ।

शंका—बाईस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें तेईस प्रकृतिक संक्रम कैसे उपलब्ध होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना पूर्वक उससे संयुक्त हुए मिथ्यादृष्टिके प्रथम समयसे लेकर एक आवलि कालतक अनन्तानुबन्धियोंका संक्रम नहीं होनेसे तेईस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवके बाईस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान पाये जानेंमें कोई विरोध नहीं आता है ।

पन्द्रह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें प्रकृत संक्रमस्थानका सम्भव संयतासंयतके जानना चाहिये, क्योंकि जिसने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना की है ऐसे संयतासंयतके पन्द्रह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके आधाररूपसे तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानकी प्रवृत्ति देखी जाती है । इसी प्रकार सात प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें भी प्रकृत संक्रमस्थानको घटित कर लेना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले अनिवृत्तिकरणमें अन्तरकरण क्रिया करनेके पहले इसी स्थानकी उत्पत्ति कहनी चाहिये, क्योंकि जिसने आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ नहीं किया है उस जीवके सात

चेव कायव्वा । णवरि पमत्तापमत्तापुव्वकरणोवसामगगुणट्ठाणेसु असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे च जहाकमं तदुभयमंभवो त्ति वत्तव्वं, णव-सत्तारमविहवंधएसु तेसु चउवीससंतकम्मिणएसु तदुभयाधारतेवीससंकममुप्पत्तीए णाइयत्तादो । एवमेदेसु पंचसु पडिग्गहट्ठाणेसु तेवीस-संकमट्ठाणणियमो त्ति जाणावणट्ठं पंचग्गहणमेत्थ कयं । एत्थेव विसेसंतरपदुप्पायणट्ठं 'पंचिदिण्णु' त्ति वयणं । तेण पंचिदिण्णु चेव तेवीससंकमो णाण्णत्थे त्ति घेत्तव्वं । तत्थ वि मण्णिणपंचिदिण्णु चेव णामण्णोसु । कुत एतत् ? व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तेः ।

एवं पंचमगाहाए अत्थो समत्तो ।

§ २८८. 'चोदसय-दसय-सत्तय०'-एदेसु चदुसु पडिग्गहट्ठाणेसु वावीससंकम-णियमो ददुव्वो त्ति गाहापुव्वट्ठे संबंधो । कथमेदेसिं संभवो त्ति उत्ते उच्चदे—संजदा-संजदस्स दंसणमोहक्खवणमभुट्ठिय णिस्सेसीकयमिच्छत्तकम्मस्स सम्मामिच्छणेण विणा

प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके आश्रयमे तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके होनेमें कोई बाधा नहीं आती है । ग्यारह प्रकृतिक और उन्नीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें प्रकृत संक्रमस्थानकी योजना इसी प्रकार करनी चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण उपशामक इन तीन गुणस्थानोंमें तथा अमंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्रममे व दोनों सम्भव हैं ऐसा यहाँ कथन करना चाहिये, क्योंकि जो नौ और सत्रह प्रकृतियोंका बन्ध कर रहे हैं और जिनके चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता है उनके इन दोनों प्रतिग्रहस्थानोंके आश्रयसे तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानकी उत्पत्ति मानना सर्वथा न्यायवन्त है । इस प्रकार इन पाँच प्रतिग्रहस्थानोंमें तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका नियम है यह जतानेके लिये गाथामें 'पंच' पदका ग्रहण किया है । तथा यहीं पर दूसरी विशेषताका कथन करनेके लिये पंचिदिण्णु, वचन दिया है । इससे यह तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान 'पंचिन्द्रियोंके ही होता है अन्यके नहीं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये । उसमें भी संज्ञी पंचेन्द्रियोंके ही होता है असंज्ञियोंके नहीं होता इतना विशेष जानना चाहिये ।

शंका—यह कैसे जाना ?

समाधान—व्याख्यानसे विशेषका ज्ञान होता है, यह नियम है । तदनुसार प्रकृतमें भी यह तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान संज्ञियोंके ही होता है असंज्ञियोंके नहीं होता यह विशेष जाना जाता है ।

विशेषार्थ—इस पांचवी गाथामें तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका २२, १९, १५, ११ और ७ प्रकृतिक पाँच प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम होता है यह बतलाया गया है । उसमें भी यह संक्रमस्थान संज्ञियोंके ही होता है अन्यके नहीं होता इतना विशेष जानना चाहिये ।

इस प्रकार पाँचवी गाथाका अर्थ समाप्त हुआ ।

§ २८८. अब 'चोदसय-दसय-सत्तय०' इस छठी गाथाका अर्थ कहते हैं—चौदह, दस, सात और अठारह इन चार प्रतिग्रहस्थानोंमें बाईस प्रकृतिक संक्रमका नियम जानना चाहिये यह इस गाथाके पूर्णार्थका तात्पर्य है । इनका यहाँ कैसे सम्भव है ऐसा पूछनेपर कहते हैं—दर्शन-मोहनीयकी क्षणिक लिये उगत होकर जिसने मिथ्यात्वका ज्ञय कर दिया है उस संयतासंयतके

चौदमपडिग्गहो होऊण वावीससंक्रमणमुप्पज्जइ । एवं सेसाणं पि वत्तच्चं, पमत्तापमत्त-
संजदाणियट्टिगुणट्टाणाविग्दसम्माइट्ठीसु जहाकम्मं तदुप्पत्तीदो । कधमणियट्टि ट्टाणे
वावीससंक्रमसंभवो त्ति णामंकाणिज्जं, आणुपुव्वीसंक्रमे चउवीससंतकम्मियस्स तद-
विरोहादो । एत्थेव गइविसयणियमावहाग्गणट्टमिदं वयणं 'णियमा मणुसगईए ।' कुदो
एस णियमो ? सेमगईसु दंमणमोहक्खवणाए आणुपुव्वीसंक्रमस्स वा असंभवादो ।
एत्थेव गुणट्टाणगयमामित्तविसेमावहारणट्टमिदमाह—'विरदे मिस्से अविरदे य ।'
मंजदासंजद-संजद-असंजदसम्माइट्टिगुणट्टाणेसु चेवेदाणि पडिग्गहट्टाणाणि होंति त्ति
भणिदं होइ ॥६॥

§ २८०. 'तेरसय णवय सत्तय०'—एत्थ एगाधिगाए वीमाए संक्रमो तेरसादिसु
छसु पडिग्गहट्टाणेसु होइ त्ति मुत्तत्थमबंधो । कथमेदेसिं संभवो ? वुच्चदे—खइयसम्माइट्टि-
मंजदासंजदम्मि पयदसंक्रमट्टाणस्स तेरसपडिग्गहसंभवो पमत्तापमत्तापुव्वकरणेसु णव-

सम्यग्मिथ्यात्वके विना चौदह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके साथ बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न
होता है । इसी प्रकार शेष प्रतिग्रहस्थानोंके विषयमें भी कथन करना चाहिये, क्योंकि क्रमसे
प्रमत्ताप्रमत्तसंयतके दस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके रहते हुए, अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें सात
प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके रहते हुए और अविरतसम्यग्दृष्टिके अठारह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके रहते
हुए बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानकी उत्पत्ति होती है ।

शंका—अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें बाईस प्रकृतिक संक्रम कैसे सम्भव है ?

समाधान—यह आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ हो
जानेपर चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके होनेमें कोई विरोध नहीं
आता है ।

यहींपर गतिविषयक नियमका निश्चय करनेके लिये 'णियमा मणुसगईए' पद दिया है ।

शंका—यह नियम किस कारणसे किया गया है ?

समाधान—क्योंकि मनुष्यगतिके सिवा शेष गतियोंमें दर्शनमोहकी क्षण और आनुपूर्वी-
संक्रम सम्भव नहीं है ।

यहींपर गुणस्थानसम्बन्धी स्वामित्वविशेषका निश्चय करनेके लिये 'विरदे मिस्से अविरदे
य' पद कहा है । इसका यह आशय है कि ये प्रतिग्रहस्थान संयतासंयत, संयत और असंयत-
सम्यग्दृष्टि इन गुणस्थानोंमें ही होते हैं ।

विशेषार्थ—इस छठी गाथामें बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके बौद्ध-कौन प्रतिग्रहस्थान होते हैं
और वे किस गतिमें तथा किस किस गुणस्थानमें होते हैं यह बतलाया है । गुणस्थानोंका उल्लेख
गाथामें 'विरदे मिस्से अविरदे य' इस रूपमें किया है । यहाँ मिश्रसे विरताविरत लिया है, क्योंकि
चौदह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान विरताविरतके ही पाया जाता है ।

§ २८१. अब 'तेरसय णवय सत्तय०' इस सातवीं गाथाका अर्थ कहते हैं—इक्कीस प्रकृतियों-
का संक्रम तेरह आदि छह प्रतिग्रह स्थानोंमें होता है यह इस गाथा सूत्रका तात्पर्य है । इनका यहाँ
कैसे सम्भव है ? बतलाते हैं—ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतके प्रकृत संक्रमस्थानका तेरहप्रकृतिक

पयडिपडिग्गहमंभवो असंजदमम्माइड्डिड्डाणे अणियड्डिकरणपविट्टखवगोवमामगेसु च जहाकमं सत्ताग्म-पंचपडिग्गहट्टाणमंभवो, इगिवीमसंतकम्मिण्णसु तेसु तदुप्पत्तिविमेमा-भावादो । संतकम्मियमस्मिउणाणियड्डिड्डाणम्मि मत्तपयडिपडिग्गहट्टाणमंभवो, आणुपुन्वी-संकमं काऊण णवुंमयवेदे उवमामिदे तत्थ मत्तपडिग्गहट्टाणपडिवट्टेकावीमसंकमट्टाणुब-लंभादो । सामणमम्माइड्डिम्मि एकवीमपडिग्गहट्टाणमंभवो वत्तव्वो, अणंताणुबंधि-विमंजोयणापरिणदउवमममम्माइड्डिम्मि मासणगुणं पडिवण्णे तप्पटमावलियाए तदुव-लद्धीदो । मंपहि एदेमिं पडिग्गहट्टाणाणमाधारभूदगुणट्टाणविसेमावहारणट्टमिदमाह—
'छप्पि मम्मत्ते' इदि । एदाणि छप्पि पडिग्गहट्टाणाणि मम्मत्तोवलक्खिण्णं चेव गुणट्टाणे
होति णाण्णत्थ मंभवन्ति त्ति उत्तं होइ । कथं पुण सामणमम्माइड्डिम्मि मम्माइड्डि-
ववण्णो ? ण दंमणतियस्स उदयाभावं पेक्खिण्णं तस्स मम्माइड्डित्तोवयागदो ॥७॥

प्रतिग्रहस्थान सम्भव है । प्रसन्नसंयत, अप्रसन्नसंयत और अपूर्वकरणमें प्रकृतसंक्रमस्थानका तो प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्भव है । असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें तथा अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट हुए क्षपक और उपशामकके क्रमसे सत्रह प्रकृतिक और पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्भव है । अर्थात् असंयत सम्यग्दृष्टिके सत्रह प्रकृतिक तथा अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती क्षपक और उपशामकके पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान हैं, क्योंकि उक्तीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उक्त जीवोंके उक्त प्रतिग्रहस्थानोंकी उत्पत्ति होनेमें कोई बाधा नहीं आती है । तथा चौबीस प्रकृतिक संक्रमकी अपेक्षा अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें सात प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्भव है, क्योंकि आनुपूर्वी संक्रमको करके नपुंसकवेदका उपशाम कर लेनेपर वहाँ सातप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्यग्ध रखनेवाला इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उपलब्ध होता है । इसीप्रकार उक्तीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानका सम्भव सासादनसम्यग्दृष्टिके कहना चाहिये, क्योंकि जिस उपशामसम्यग्दृष्टिने अनन्तानुबन्धीचतुष्कर्की विसंयोजना की है उसके सामादन गुणस्थानको प्राप्त होनेपर उसकी प्रथम आवृत्तिके भीतर उक्त प्रतिग्रहस्थान व संक्रमस्थान पाया जाता है । अब इन प्रतिग्रहस्थानोंके आधारभूत गुणस्थान-विशेषोंका अवधारण करनेके लिये 'छप्पि मम्मत्ते' पद कहा है । ये छह प्रतिग्रहस्थान सम्यक्त्वसहित गुणस्थानोंमें सम्भव हैं अन्यत्र सम्भव नहीं हैं यह इस कथनका तात्पर्य है ।

शंका—यहाँ सासादनसम्यग्दृष्टिका सम्यग्दृष्टि यह संज्ञा कैसे दी है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सासादन गुणस्थानमें दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका उदय नहीं होता यह देखकर उपचारसे उसे सम्यग्दृष्टि संज्ञा दी है ।

विशेषार्थ—प्रकृतिसंक्रमस्थानकी इस सातवीं गाथामें इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके कितने प्रतिग्रहस्थान और कौन कौन स्वामी हैं यह बतलाया है । स्वामीका निर्देश करते हुए गाथामें केवल 'मम्मत्ते' पद दिया है । जिसका अर्थ होता है कि इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके ये छहों प्रतिग्रहस्थान सम्यग्दृष्टिके होते हैं । तथापि इनमेंसे इक्कीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके रहते हुए इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान सामादन सम्यग्दृष्टिके भी होता है, इसलिए यह प्रश्न हुआ कि सामादन सम्यग्दृष्टिको सम्यग्दृष्टि कैसे कहा जाय ? टीकामें इसका यह समाधान किया गया है कि सासादनमें तीन दर्शनमोहनीयका उदय नहीं होता है और इस अपेक्षामें उसे उपचारसे सम्यग्दृष्टि कहा जा सकता है । इस प्रकार यद्यपि इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके रहते हुए इक्कीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्यग्दृष्टिके बन जाता है तथापि इन छह प्रतिग्रहस्थानोंमें एक सत्रह प्रकृतिक

§ २९०. 'एत्तो अवसेमा' पयडिद्वानसंक्रमा वीसादयो पयडिद्वानपडिग्गहा च छक्-पणगादयो मंजमस्हि मंजमोवलक्खिण्णसु चैव गुणद्वानेषु होति पाण्णत्थ, तेषि तत्थेव णियमदंमणादो । तत्थ वि खवगोवममसेटीसु चैव होति त्ति जाणावणद्वं 'उवमामामगे च खवगे च' इदि भणिदं । एवं मामण्णेण परूविय संपहि एदस्सेव विमोसिऊण परूवणद्वमिदमाह 'वीसा य मंक्रमदुगे' । वीसाए मंक्रमो दोसु चैव पडिग्गहद्वानेषु होइ । काणि ताणि दोपडिग्गहद्वानाणि त्ति आमंकाए 'छक्के पणगे च वोद्धव्वा' त्ति भणिदं । तं कथं ? चउवीसगंतकम्मिण्णुवमममेहिं चट्टिय णवुंसय-इत्थिवेदोवममं काऊण पुग्गिमेदपडिग्गहवोच्छेदे कदे मम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-चउमंजलण-मण्णदछप्पयडिपडिग्गहपडिबद्धो वीमपयडिमंक्रमो होइ । पुणो इग्गिवीममंतकम्मिण्णु-वमममेहिं चट्टिय आणुपुच्चीमंक्रमे कदे वीमपयडिमंक्रमो पंचपयडिपडिग्गहपडिबद्धो समुप्पज्जइ । तम्हा छक्के पणगे च वीसाए मंक्रमो त्ति सिद्धं ॥८॥

प्रतिग्रहस्थान भी सम्मिलित हैं । यह प्रतिग्रहस्थान सम्यग्रदृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि इन दोनोंके सम्भव हैं और उन दोनोंके उभये इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रम भी सम्भव है । यद्यपि स्थिति ऐसी है तथापि गायामं या उसकी टीकामं सम्यग्मिथ्यादृष्टिके उस संक्रम व प्रतिग्रहस्थानका निर्देश नहीं किया गया है । इसका निर्देश क्यों नहीं किया गया है उसके दो कारण हो सकते हैं । प्रथम तो यह कि सम्यक्त्वके ग्रहण करनेसे उसके प्रतिपत्ती भावका भी ग्रहण हो जाता है, इसलिये यद्यपि पृथक्में निर्देश नहीं किया है तथापि उसका ग्रहण हो जाता है और दूसरा यह कि गौण समभक्कर उसे छोड़ दिया है । तथापि गायामं आया हुआ 'सम्मत्ते' पद देशामपरु होनेसे उसका ग्रहण हो जाता है ।

§ २९०. अब 'एत्तो अवसेमा०' इस आठवीं गाथाका अर्थ लिखते हैं—ये पूर्वमें जितने भी संक्रमस्थान और प्रतिग्रहस्थान कह आये हैं उनके सिवा वीम आदिक जितने संक्रमस्थान हैं और छह, पाँच आदिक जितने प्रतिग्रहस्थान हैं वे सब संयमसे युक्त गुणस्थानोंमें ही होते हैं । अन्यत्र नहीं होते हैं, क्योंकि उनके वहाँ होनेका नियम देखा जाता है । उसमें भी ये क्षपकश्रेणि और उपशमश्रेणिमें ही होते हैं, इसलिये इस बातके जतानेके लिये गायामं 'उवमामगे च खवगे च' पाठ कहा है । उस प्रकार सामान्यरूपमें कथन करके अब इसी बातका विशेषरूपसे कथन करनेके लिये गायामं 'वीसा य मंक्रमदुगे' पाठ कहा है । इसका यह आशय है कि बीस प्रकृतिक संक्रम दो प्रतिग्रहस्थानोंमें होता है । वे दो प्रतिग्रहस्थान कौनसे हैं ऐसी आशंका होने पर 'छक्के पणगे च वोद्धव्वा' यह पद कहा है । मुत्तामा इस प्रकार है—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणि पर चढ़कर नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम करके पुरुषवेदकी प्रतिग्रहव्युच्छित्त कर देता है उसके सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और चार संवलन इन छह प्रकृतियोंके प्रतिग्रहरूप स्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला वीम प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । तथा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव उपशमश्रेणि पर चढ़कर आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ कर देता है उसके पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला वीम प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । अतएव छह और पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें बीस प्रकृतियोंका संक्रम होता है यह बात सिद्ध हुई ॥८॥

§ २०१. 'पंचसु च ऊणवीमा०' एसा णवमी गाहा १०, १८, १४, १३ चउण्हमेदेसिं संक्रमद्व्याणाणं पडिग्गहद्व्याणपरूवणद्विमागया। तत्थ ताव 'पंचसु च ऊणवीमा' ति भणिदे पंचसु पयडीसु पडिग्गहभावमावण्णासु एऊणवीमाए मंक्रमो होइ ति घेत्तव्वं। काओ ताओ पंच पयडीओ ? पुगिसवेद-चउसंजलणमण्णिणदाओ, इगिवीसमंतकम्मियाणियद्विउवमामगस्म लोभासंक्रमाणंतरमुवमामिदणवुंसयवेदस्स तप्पडि-

विशेषार्थ—प्रकृतिसंक्रमस्थानकी इस आठवीं गाथामे दो बातें बतलाई हैं। प्रथम बात तो यह बतलाई है कि अब तक जितने संक्रमस्थान और प्रतिग्रहस्थान कहे गये हैं उनके सिवा आगे जितने भी संक्रमस्थान और प्रतिग्रहस्थान कहे जायेंगे वे सब उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणिमे ही होते हैं। तथा दूसरी यह बात बतलाई गई है कि २० प्रकृतिक संक्रमस्थानका छह और पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमे संक्रम होता है अन्यत्र नहीं। किन्तु श्वेताम्बर परम्परामे प्रसिद्ध कर्मप्रकृतियं इस बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके प्रतिग्रहस्थान दो न बतलाकर ७, ६ और ५ प्रकृतिक तीन बतलाये हैं। इस मतभेदका कारण क्या है अब इस पर विचार कर लेना आवश्यक है। यह तो दोनों परम्पराओंमे समानरूपसे स्वीकार किया है कि उपशमश्रेणिमे अन्तरकरण क्रिया कर लेनेके बाद दूसरे समयसे आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ होता है। किन्तु आनुपूर्वी संक्रमके क्रमके विषयमे दोनों परम्पराओंमे थोड़ा मतभेद मिलता है। यतिवृषभ आचार्य ने अपनी चूर्णिमे बतलाया है कि अन्तर करनेके बाद प्रथम समयसे लेकर छह नोकपायोंका क्रोधमे संक्रम^१ होता है अन्य किमीमे संक्रम नहीं होता है। किन्तु श्वेताम्बर परम्परामे प्रसिद्ध कर्मप्रकृतिके उपशमनाकरणकी गाथा ४७ की चूर्णिमे लिखा है कि 'पुरुषवेद' की प्रथम स्थितिमे दो आवलि शेष रहने पर आगालका विच्छेद हो जाता है किन्तु अनन्तरवर्ती आवलिमेसे उद्दीरणा होती रहती है। तथा उन्नी समयसे लेकर छह नोकपायोंके द्रव्यका पुरुषवेदमे संक्रम नहीं होता है।^२ इस मतभेदमे यह स्पष्ट हो जाता है कि कपायप्राभृतके अनुसार तो नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम हो जानेके बाद पुरुषवेदकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति हो जाती है किन्तु कर्मप्रकृतिके अनुसार नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम हो जानेके बाद भी पुरुषवेदमे प्रतिग्रहशक्ति बनी रहती है। यही कारण है कि कपायप्राभृतमे बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके ६ प्रकृतिक और ५ प्रकृतिक ये दो प्रतिग्रहस्थान बतलाये हैं और कर्मप्रकृतियं बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके ७, ६ और ५ प्रकृतिक तीन संक्रमस्थान बतलाये हैं।

§ २११. 'पंचसु च ऊणवीसा०' यह नौवीं गाथा १९, १८, १४ और १३ इन चार संक्रमस्थानोंके प्रतिग्रहस्थानका कथन करनेके लिये आई है। वहाँ गाथामे जो 'पंचसु च ऊणवीसा' पद कहा है सो इससे प्रतिग्रहरूप पांच प्रकृतियोंमे उन्नीस प्रकृतिक संक्रम होता है यह अर्थ लेना चाहिये। वे पांच प्रकृतियाँ कौन सी हैं? पुरुषवेद और चार संजलन ये पांच प्रकृतियाँ हैं जो प्रकृतमे प्रतिग्रहरूप हैं, क्योंकि इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले अनिवृत्तिकरण उपशामक जीवके लोभ संजलनका संक्रम न होनेके बाद नपुंसकवेदका उपशम हो जानेपर पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखने वाला उन्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थान देखा जाता है। 'अट्ठारस चटुसु०' यह

१ अतगदा हुममयकदादा पाये ह्यरणोस्माए कोवे सद्धुर्हादि ण अरण्णि कम्मि वि। कपाय० उपशा. चु. ६७९०

२. पुगिसवेय्यम पटमद्वितिते दुयाव्वालयमेसाए आगालो वार्द्धन्ने। अणत्तगालिगतो उदीरणा एत्ति, तादे छएह नोकसायाणं सद्धोभा एत्थ पुरिसवदे, सजलणेसु सद्धुमान्ते। कर्मप्र० उपशा. गा. ६७ चु.

वद्वेऊणवीससंक्रमणोवलंभादो । 'अट्टारस चदुसु०' एसो सुत्तस्म विदियावयवो अट्टारसपयडिसंक्रमस्स चदुसु पडिग्गहपयडीसु संभवावहारणफलो, तेणेवित्थिवेदोवममं करिय पुरिसवेदपडिग्गहवोच्छेदे कदे चउमंजलणपयडिपडिबद्धे पयदसंक्रमणो-वलंभादो । 'चोदस छसु०' एदेण वि सुत्तस्म तइज्जावयणेण चोदमसंक्रमणस्स छसु पयडीसु पडिबद्धत्तं परूविदं, चउवीसमंतकम्मियाणियट्टिउवमामयस्स पुरिसवेदणवक-बंधोवमामणावत्थाए चउसंजलण-दोदंसणमोहमण्णिणदछप्पयडिपडिग्गहेण पुरिसवेदे-कारमकसाय-दोदंसणमोहपयडिपडिबद्धचोदमसंक्रमणोवलंभादो । 'तेरसयं छक-पणगम्हि' एदेण वि चउत्थावयवेण तेरमसंक्रमणस्स छक-पणगसु णिवंधणत्तं परूविदं । तत्थ ताव मणंतरपरूविदचोदमसंक्रामएण पुरिमवेदोवममे कदे तेरमपयडि-संक्रमो छप्पयडिपडिग्गहमबंधिओ ममुप्पज्जइ, पुव्वुत्तपडिग्गहपयडीणं छणहं पि तत्थ तहावट्टाणदंसणादो । एदम्म चेव कोहमंजलणपटमट्टिदीए तिसु आवलियासु ममयूणामु सेसामु तेरमसंक्रमणं पंचपयडिपडिग्गहियमुप्पज्जइ । अथवा अणियट्टिखवणेण अट्टकमाएसु खविदेसु पंचपडिग्गहट्टाणमबंधियं तेरमसंक्रमणमुवल्लभइ ॥९॥

गाथाका दृश्या पद अट्टारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थाना संक्रम होता है यह अवधारण करानेके लिए दिया है, क्योंकि वही पूर्वोक्त जीव जब स्त्रीवंदका उपशम करके पुरुषवंदकी प्रतिग्रहव्युत्पत्ति कर देता है तब उसके चार संज्वलनरूप प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला प्रकृत संक्रमस्थान उपलब्ध होता है । गाथाके 'चोदम छसु०' इस तीसरे चरण द्वारा भी चोदह प्रकृतिक संक्रमस्थान उह प्रतिग्रह प्रकृतियोंसे प्रतिबद्ध है यह बतलाया है, क्योंकि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले अनिवृत्तिकरण उपशामकके पुरुषवंदके नवकबन्धकी उपशामना करते समय चार संज्वलन और दो दर्शनमोहनीय इन छह प्रकृतियोंके प्रतिग्रहरूपसे पुरुषवंद, ग्यारह कपाय और दो दर्शनमोहनीय प्रकृतियोंसे सम्बन्ध रखनेवाला चोदह प्रकृतिक संक्रमस्थान उपलब्ध होता है । गाथाके 'तेरसयं छक-पणगम्हि' इस चौथे चरण द्वारा भी तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान छह और पाँच प्रतिग्रह प्रकृतियोंसे प्रतिबद्ध है यह बतलाया है । यहाँपर समनन्तर पूर्व कहे गये चोदह प्रकृतियोंके संक्रामक जीवके द्वारा पुरुषवंदका उपशम कर लेने पर छह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि पूर्वोक्त छह प्रतिग्रह प्रकृतियों इस तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थानके समय पूर्ववत् अवस्थित देखी जाती हैं । तथा इसी जीवके जब क्रोध संज्वलनकी प्रथम स्थितिमें एक समय कम तीन आवली काल शेष रह जाता है तब पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । अथवा अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती क्षपणके द्वारा आठ कपायोंका क्षय कर देने पर पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

विशेषार्थ—इस गाथामे १९, १८, १४ और १३ इन चार संक्रमस्थानोंका किस किस प्रतिग्रहस्थानसे संक्रम होता है यह बतलाया है । विशेष खुलासा टीकामे किया ही है । किन्तु

§ २०२. 'पंच चउक्के वारम०' एया दममगाहा १२, ११, १०, ९ चउण्ह-
मेदेमि संकमट्टाणाणं पडिग्गहट्टाणपक्खट्टमागया । तत्थ पठमावयवेण वारमसंकमट्टाणस्स
पंच-चदुकमणिणदपडिग्गहट्टाणेसु संभवावहारणं कीरदे, इगिवीमसंतकम्मियखवगोव-
मामगेसु जहाकमं लोभासंकम-छण्णीकमायोवसामणपग्णिदेसु तहाविहसंभवोवलंभादो ।
'एक्कारम पंचगे०' एदेण च विदियावयवेण पंच-तिग-चदुकमणिणदेसु तिसु पडिग्गह-
ट्टाणेसु एक्कारमपयडिमंकमस्म विमयावहारणं कीरदे । तं कथं ? खवगस्म णवुंसयवेदे
खीणे पंचपडिग्गहट्टाणाहारमेक्कारमसंकमट्टाणमुपज्जइ । अहवा चउवीसदिकम्मंसिएण
दुविहकांहोवममं काउण कोहसंजलणपडिग्गहवोच्छेदं कदे तमेव संकमट्टाणं
तेणेव पडिग्गहट्टाणेण पडिग्गहिदमुवजायदे, तत्थ माण-माया-लोहसंजलण-सम्मत्त-
सम्मामिच्छत्ताणं^१ कोहसंजलण-तिविहमाण-तिविहमाय-दुविहलोभ-मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त-
गम्हाग्गपयदसंकमट्टाणस्साहारभावोवलंभादो । पुणो इगिवीमसंतकम्मिओवसामगेण

यहां एक बातका निर्देश कर देना आवश्यक प्रतीत होता है । बात यह है कि यहां अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका चार प्रकृतिक एक प्रतिग्रहस्थान बतलाया है किन्तु कर्म-प्रकृतिमें १८ प्रकृतिक संक्रमस्थानके ५ और ४ ये दो प्रतिग्रह स्थान बतलाये हैं । २१ प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीवके आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ हो जानेके बाद नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम हो जानेपर यह अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । तत्र कपायप्राभूतके अनुसार पुरुषवेद प्रतिग्रह प्रकृति नहीं रहती, अतः चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान ही प्राप्त होता है किन्तु कर्मप्रकृतिक अनुसार उसमें जब तक छह नोकपायोंका संक्रम होता रहता है तब तक पांच प्रकृतिक और उसके बाद चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान प्राप्त होता है । इस प्रकार मतभेदका यह कारण जानना चाहिये ।

§ २०२. 'पंच-चउक्के वारम०' यह दसवीं गाथा १२, ११, १० और ९ इन चार संक्रम-स्थानोंके प्रतिग्रहस्थानोंका कथन करनेके लिये आई है । वहां गाथाके प्रथम चरणद्वारा वारह प्रकृतिक संक्रमस्थानके पांच प्रकृतिक और चार प्रकृतिक ये दो प्रतिग्रहस्थान सम्भव हैं यह अवधारण किया गया है, क्योंकि जो क्षरक आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ हो जानेके कारण लोभसंज्वलनका संक्रम नहीं कर रहा है उसके वारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उपलब्ध होता है और इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशामक छह नोकपायोंका उपशमन कर रहा है उसके वारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उपलब्ध होता है । गाथाके एक्कारम पंचगे०' इस दूसरे चरण द्वारा यह निश्चय किया गया है कि ग्यारह प्रकृतिक संक्रम-स्थानका पांच, चार और तीन प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम होता है, क्योंकि क्षरक जीवके नपुंसकवेदका चय कर देने पर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका आधारभूत पांच प्रकृतिक प्रतिग्रह-स्थान उत्पन्न होता है । अथवा चौथीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशामक जीव दो प्रकारके क्रोधका उपशम करके क्रोध संज्वलनकी प्रतिग्रह व्युच्छित्ति कर देता है उसके उसी पूर्वोक्त प्रति-ग्रहस्थानमें सम्बन्ध रखनेवाला वही पूर्वोक्त संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि वहाँ पर क्रोध-संज्वलन, तीन मान, तीन माया, दो लोभ, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इनके समूह रूप प्रकृत संक्रमस्थानका आधारभूत मान संज्वलन, माया संज्वलन, लोभ संज्वलन, सम्यक्त्व आर सम्यग्मिथ्यात्व इन पाँच प्रकृतिरूप प्रतिग्रहस्थान उपलब्ध होता है । तथा इक्कीस प्रकृतियोंकी

१. आ०प्रता - संजलणस्स सम्मत्त- इति पाठः । २. ता०प्रता सम्मत्तसम्माइडोणं इति पाठः ।

णवणोकसायोवसमे कदे तिविहकोह-माण-माया-दुविहलोहपयडिसमुदायणिप्पण-
मेक्काम्पयडिमंकमद्वारणं चदुमंजलणपडिगहविसयं होउण समुप्पज्जइ । एदस्स चेव
कोहमंजलणपठमद्विदीए तिण्हमावलियाणं समयुणाणमवसेसे दुविहं कोहं तत्थासंकामेउण
माणमंजलणमरूवेण संकामेमाणस्म तक्काले तिण्हं संजलणपयडीणं पडिगहभावेण
एक्कारससंकमद्वारणमुप्पज्जइ । 'दसगं चउक्क-पणगे'—दमपयडिसंकमो चउक्क-पणयपडिगह-
द्वारणविमए पडिणियदो त्ति दट्टुव्वो । तत्थ ताव चउवीससंतकम्मिणए तिविहकोहोवसमे
कदे तिविहमाण-माया-दुविहलोह-मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तसण्णिणददमपयडिमंकमो माण-
माया-लोहमंजलण--सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तपंचपयडिपडिगहद्वारणाहिद्वारणो समुप्पज्जइ ।
एदस्म चेव माणमंजलणपठमद्विदीए मयूणावलियतियमेत्तावसेसे दुविहं माणमेत्था-
मंकामेउण मायामंजलणे मंछुहमाणयस्म माया-लोहमंजलण-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-
चउपयडिपडिगहावेवखो दसपयडिमंकमो होइ । अहवा खवगेण इत्थिवेदे खविदे
दमपयडिमंकमद्वारणं चउमंजलणपयडिपडिगहपडिवद्वमुप्पज्जइ । 'णवगं च तिगग्ग्हि
वोद्वुव्वा' एदेण चउत्थावयवेण णवमंकमद्वारणस्स तिण्हं पयडीणं पडिगहभावो
परुविदो । तं जहा—इगिवीममंतकम्मिणए दुविहकोहोवसमे कदे कोहसंजलण-

सत्तावाला जो उपशामक जीव नौ नोकपायोका उपशाम कर देता है उसके प्रतिग्रहरूप चार संज्वलनोंका विषयभन तीन प्रकारका क्रोध, तीन प्रकारका मान, तीन प्रकारकी माया और दो प्रकारका लोभ इन प्रकृतियोंका समुदायरूप ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। यही जीव जब क्रोध संज्वलनकी प्रथम स्थितिमें एक समयकम तीन अवलि जेप रहने पर इसमें दो प्रकारके क्रोधका संक्रम न करके केवल मान संज्वलनका संक्रम करता है तब तीन संज्वलन प्रकृतियोंके प्रतिग्रहरूपसे ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। 'दसगं चउक्क-पणगे' यह गाथाका तीसरा चरण है। इसमें चार प्रकृतिक और पाँचप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके विषयरूपसे दस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्रतिनियत हैं यह बतलाया गया है। खलासा इस प्रकार है—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव तीन प्रकारके क्रोधका उपशाम कर देता है उसके तीन प्रकारका मान, तीन प्रकारकी माया, दो प्रकार का लोभ, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दस प्रकृतियोंका संक्रम मान, माया और लोभ संज्वलन तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन पाँच प्रतिग्रहरूप प्रकृतियोंके आधारसे उत्पन्न होता है। तथा जब यही जीव मान संज्वलनकी प्रथम स्थितिमें एक समयकम तीन अवलि कालके जेप रह जानेपर इसमें दो प्रकारके मानके संक्रमका अभाव करके माया संज्वलनमें संक्रम करता है तब मायामंज्वलन, लोभसंज्वलन, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन चार प्रतिग्रहरूप प्रकृतियोंकी अपेक्षा रखनेवाला दस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। अथवा जब लपक जीव स्त्रीवेदका क्षय कर देता है तब प्रतिग्रहरूप चार संज्वलन प्रकृतियोंसे सम्बन्ध रखनेवाला दस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। गाथाके 'णवगं च तिगग्ग्हि वोद्वुव्वा' इस चौथे चरण द्वारा नौ प्रकृतिक संक्रमस्थानका तीन प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है यह बतलाया है। यथा—इक्कीम प्रकृतियोंकी सत्तावाले जिस जीवने दो प्रकारके क्रोधका उपशाम कर दिया है उसके क्रोध संज्वलन, तीन प्रकारका

तिविहमाण-माया-दुविहलोहपयडिमंकमो तिगु मंजलणपयडीसु लब्भदे, ताहे कोह-मंजलणणवकवंधस्म मंकमं मोत्तूण पडिग्गहिच्चाभावादो ॥१०॥

§ २०३. 'अट्ट दुग तिग चदुक्के०' एमा एकारसमी गाहा ८, ७, ६, ५ एदेसिं चउण्हं मंकमट्टाणाणं पडिग्गहणियमपरूवणट्टमागया । तत्थ पढमावयवो अट्टपयडि-मंकमस्स दुग-तिग-चदुक्केसु पडिग्गहट्टाणेसु पडिवद्वपरूवणट्टमागओ । इगिवीस-चउवीमसंतकम्मियोवमामगेसु जहाकमं तिविहकोह-दुविह-माणोवसमेण परिणदेसु तिग-चउक्कपडिग्गहट्टाणपडिवद्वपढममयअट्टपयडिमंकमट्टाणमुवलब्भदे, इगिवीससंतकम्मियस्स माणंसंजलणपढमट्टिदीए समयूणावलयितियमेत्तावसेमाण दुविहमाणं तत्थासंक्रामिय मंजलणमायाए मंजुहमाणस्स माणमंजलणपडिग्गहमत्तिविग्हेणं माया-लोभमंजलणाणं दोण्हमेव पडिग्गहभावेण अट्टपयडिमंकमो लब्भइ । 'सत्त चदु०'—सत्तपयडिमंकमो चदुक्के तिगे च पडिणियदो बोद्धवो । चउवीमसंतकम्मियस्स तिविहमाणोवममाणंतरं चउण्हं पडिग्गहभावेण सत्तपयडिमंकमो लब्भदे । एदस्स चैव ममयूणावलयितियमेत्त-मायासंजलणपढमट्टिदिवाग्यस्स मायासंजलणपडिग्गहस्स विगमेण तिण्हं पडिग्गहत्त-

मान, तीन प्रकारकी माया और दो प्रकारका लोभ इन नौ प्रकृतियोंका तीन संज्वलन प्रकृतियोंमें संक्रम उपलब्ध होता है, क्योंकि तब क्रोधसंज्वलनके नवकवन्धका संक्रम तो होता है पर उसमें प्रतिग्रहरूपनेका अभाव रहता है ॥१०॥

विशेषार्थ—इस दसवीं गाथा द्वारा १२, ११, १० और ९ इन चार मंकमस्थानोंके प्रतिग्रहस्थान बतलाये हैं । विशेष खुनासा टीकामे ही किया है ।

§ २९३. 'अट्ट दुग तिग चदुक्के०' यह ग्यारहवीं गाथा ८, ७, ६ और ५ इन चार संक्रम-स्थानोंके प्रतिग्रहस्थानोंका कथन करनेके लिये आई है । उसमें भी गाथाका प्रथम चरण आठ प्रकृतिक संक्रमस्थानका दो, तीन और चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंसे सम्बन्ध है यह बतलानेके लिये आया है । इक्कीस प्रकृतियोंकी या चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले जिन उपशामक जीवोंने तीन प्रकारके क्रोध और दो प्रकारके मानका उपशाम कर लिया है उनके प्रथम समयमें क्रमसे तीन प्रकृतिक और चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंसे सम्बन्ध रखनेवाला आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है, क्योंकि जां इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव मान संज्वलनकी प्रथम स्थितिमें एक समय कम तीन आवलि कालके शेष रह जाने पर दो प्रकारके मानका उसमें संक्रम न करके संज्वलन मायामें संक्रम करता है उसके मान संज्वलनमें प्रतिग्रहरूप शक्ति न रहनेके कारण मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन इन दो प्रकृतियोंके प्रतिग्रहरूपसे आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान उपलब्ध होता है । 'सत्त चदु०' इत्यादि गाथाका दूसरा चरण है । इस द्वारा चार प्रकृतिक और तीन प्रकृतिक इन दो प्रतिग्रहस्थानोंमें सात प्रकृतियोंका संक्रम प्रतिनियत जानना चाहिए । यथा—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारके मानका उपशाम होनेके बाद चार प्रकृतियोंके प्रतिग्रहरूपसे सात प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है । तथा इसी जीवके मायासंज्वलनकी एक समय कम तीन आवलिप्रमाण प्रथम स्थिति शेष रहने पर माया संज्वलनमें प्रतिग्रह शक्ति न रहनेसे तीन प्रकृतिक

१. ता०प्रती दुविहं माणं दति पाठः । २. आ०प्रती—संजलणविग्गहसत्तिविरहेण इति पाठः ।

संभवो दद्वुव्वो । 'छक्कं दुगम्हि णियमा'—छण्हं संक्रमो णियमा दुगम्हि पडिबद्धो वोद्वुव्वो, एकावीसदिकम्मंसियस्स द्दुविहमाणोवसममस्सियूण तदुवलद्वीदो । 'पंच तिगे एक्कग दुगे वा'—पंचसंक्रमो तिगे दुगे एक्कगे वा होइ त्ति सुत्तत्थसंबंधो । तत्थ ताव चउवीमसंतकम्मिण्ण द्दुविहमायोवममे कदे मायामंजलण-द्दुविहलोह-मिच्छत्त-सम्मा-मिच्छत्तपंचपयडिसंक्रमो लोहसंजलण-सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ततिविहपडिग्गहावेक्खो समु-प्पज्जदि । पुणो इगिवीससंतकम्मियोवसामगेण तिविहमाणोवसमे कदे तिविहमाय-द्दुविहलोहमण्णिणदंपंचपयडिसंक्रमो माया - लोहमंजलणद्दुविहपडिग्गहद्व्याणावलंबणो समुप्पज्जइ । एदस्म चेव मायामंजलणपढमद्विदीए समयूणावलियतियमेत्तावसेसे द्दुविहं मायमसंक्रामियं लोहमंजलणम्मि संछुहमाणस्म एगपयडिपडिग्गहपडिबद्धो पंचपयडिद्व्याण-संक्रमो होइ ॥११॥

§ २०४. 'चत्तारि तिग-चदुक्के०' एसा चारममी गाथा ४, ३, २, १ चदुण्ह-मेदेमिं संक्रमद्व्याणं पडिग्गहणियमपरूवणद्वुमागया । एदिस्से पढमावयवो चदुपयडि-संक्रमम्म तिग-चदुक्केसु पडिबद्धत्तं परूवेदि, खवगस्स छण्णोकसायपग्गिक्खए चदुण्हं

प्रतिग्रहस्थानका सद्भाव जानना चाहिये । 'छक्कं दुगम्हि णियमा' यह गाथाका तीसरा चरण है । इस द्वारा छह प्रकृतियोंका संक्रम नियमसे दो प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला जानना चाहिए, क्योंकि इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दो प्रकारके मानके उपशमका आश्रय लेकर उक्त संक्रम व प्रतिग्रहस्थानकी उपलब्धि होती है । 'पंच तिगे एक्कग दुगे वा' यह गाथाका चौथा चरण है । तीन, दो और एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें पांच प्रकृतियोंका संक्रम होता है यह इस सूत्रवचनका तात्पर्य है । उसमें सर्वप्रथम जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव दो प्रकारकी मायाका उपशम कर लेता है उसके लोभ संज्वलन, सम्यक्त्व और सम्यग्मिभ्यात्व इस तीन प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला मायासंज्वलन, दो प्रकारका लोभ, मिभ्यात्व और सम्यग्मिभ्यात्व यह पांच प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । तथा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशामक जीव तीन प्रकारके मानका उपशम कर देता है उसके माया संज्वलन और लोभ संज्वलन इस दो प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला तीन प्रकारकी माया और दो प्रकारका लोभ यह पाँच प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । तथा यही जीव जब माया संज्वलनकी प्रथम स्थितिमें एक समय कम तीन आवलि काल शेष रहने पर दो प्रकारकी मायाका माया संज्वलनमें संक्रम न करके लोभ संज्वलनमें संक्रम करने लगता है तब एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला पाँच प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ॥ ११ ॥

विशेषार्थ—इस गाथामें आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक, छह प्रकृतिक और पाँच प्रकृतिक इन चार संक्रमस्थानोंके कौन कौन प्रतिग्रहस्थान हैं यह बतलाया है । विशेष खुलासा टीकामें किया ही है ।

§ २१४. 'चत्तारि तिग चदुक्के०' यह बारहवीं गाथा ४, ३, २ और १ इन चार संक्रम-स्थानोंके प्रति ग्रहस्थानोंके नियमका कथन करनेके लिये आई है । इस गाथाका प्रथम चरण चार प्रकृतिक संक्रमस्थानका तीन और चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंसे सम्बन्ध है यह बतलाती है, क्योंकि

१. ता०प्रती मायमो (म) सकामिय, आ०प्रती मायमोगकामिय इति पाठः ।

चदुमु संक्रमोवलंभादो चउवीसदिक्रम्मंभियस्स तिविहमायोवसमे चदुण्हं तिसु संक्रमोवलंभादो च । 'तिण्ण तिगं एकगो च बोद्धव्वा' खवगस्स पुग्गिस्सवेदपरिक्खवाए तिण्हं तिसु संक्रमदंमणादो इगिवीम०उवमामगस्स दुविह-मायोवसमे तिण्हमेक्किस्से पडिग्गहत्त-दंमणादो च । 'दो दुमु एक्काए वा' खवगस्स कोहे णिल्लेविदे इगिवीममंतकम्मियस्स च तिविहे मायोवसमे जादे जहाकमं दोण्हं दुमु एक्किस्से च संक्रमोवलंभादो चउवीसदिक्रम्मंभियस्स वि दुविहलोहोवसमे जादे दोण्हं दुमु संक्रमस्स संभवोवलंभादो । 'एगा एगाए बोद्धव्वा', संजलणमाणे खविदे परिण्णुडमेव तदुवलंभादो ॥१२॥

एक तो जिस क्षपकने छह नोकपायोका क्षय कर दिया है उसके चार प्रकृतियोंका चार प्रकृतियोंमें संक्रम उपलब्ध होता है और दूसरे चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारकी मायाका उपशम हो जाने पर चार प्रकृतियोंका तीन प्रकृतियोंमें संक्रम उपलब्ध होता है । 'तिण्ण तिगो एकगो च बोद्धव्वा' यह गाथाका दूसरा चरण है । इस द्वारा तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानका तीन और एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है यह बतलाया गया है क्योंकि एक तो क्षपक जीवके पुरुषवेदका क्षय हो जाने पर तीन प्रकृतियोंका तीन प्रकृतियोंमें संक्रम देखा जाता है और दूसरे इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके दो प्रकारकी मायाका उपशम हो जानेपर तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानका एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान देखा जाता है । 'दो दुमु एक्काए वा' यह गाथाका तीसरा चरण है । इस द्वारा दो प्रकृतिक संक्रमस्थानका दो और एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है यह बतलाया है, क्योंकि क्षपक जीवके क्रोधका नाश हो जाने पर दो प्रकृतियोंका दो प्रकृतियोंमें और इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके तीन प्रकारकी मायाका उपशम हो जाने पर दो प्रकृतियोंका एक प्रकृतिक संक्रम उपलब्ध होता है तथा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके भी दो प्रकारके लोभका उपशम हो जानेपर दो प्रकृतियोंका दो प्रकृतियोंमें संक्रम उपलब्ध होता है । 'एगा एगाए बोद्धव्वा' इस द्वारा एक प्रकृतिक संक्रमस्थानका एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है यह बतलाया है, क्योंकि क्षपक जीवके मंउवलन मानका क्षय हो जानेपर स्पष्ट रूपसे उक्त संक्रमस्थान और प्रतिग्रहस्थान उपलब्ध होता है ॥१२॥

विशेषार्थ—इस गाथा द्वारा चार प्रकृतिक, तीन प्रकृतिक, दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके कौन कौन प्रतिग्रहस्थान हैं इसका खुलासा किया है । अब संक्रमस्थानों और प्रतिग्रहस्थानोंकी उक्त १० गाथाओंमें कही गई विशेषताका ज्ञान करनेके लिए कोष्ठक दिया जाता है—

सत्तास्था०	संक्रमस्था०	प्रकृतियां	प्रतिग्रहस्था०	प्रकृतियाँ	स्वामी
२८ प्र०	२७ प्र०	मिथ्यात्वके विना सब	२० प्र०	मिथ्यादृष्टिके बंधनेवाली २० प्रकृतियाँ	२८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्या- दृष्टि
२८ प्र०	२७ प्र०	सम्यक्त्वके विना सब	१९ प्र०	अविरत सम्य- दृष्टिके बंधनेवाली १७ प्रकृतियाँ व सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व	अविरत सम्य- दृष्टि

सत्तास्था०	संक्रमस्था०	प्रकृतियाँ	प्रतिग्रहस्था०	प्रकृतियाँ	स्वामी
२८ प्र०	२७ प्र०	सम्यक्त्वके विना	१५ प्र०	अप्रत्याख्यानावरण ४ के बिना पूर्वोक्त १९	देशविरत
२८ प्र०	२७ प्र०	„	११ प्र०	प्रत्याख्यानावरण ४ के बिना पूर्वोक्त १५	संयत
२७ प्र०	२६ प्र०	पञ्चमि कपाय और सम्यग्मिभ्यात्व	२२ प्र०	मिभ्याहृष्टि के बन्धनेवाली २२ प्रकृतियाँ	मिभ्याहृष्टि २७ प्रकृतियोंकी सत्तावाला
२८ प्र०	२६ प्र०	सम्यक्त्व और सम्यग्मिभ्यात्वके बिना सब	१९ प्र०	पूर्वोक्त १९ प्र०	अविरतम० के प्रथम समयमे
२८ प्र०	२६ प्र०	„	१५ प्र०	पूर्वोक्त १५ प्र०	देशवि० के प्र० समय मे
२८ प्र०	२६ प्र०	„	११ प्र०	पूर्वोक्त ११ प्र०	संयतके „ „
२६ प्र०	२५ प्र०	२५ कपाय	२१ प्र०	२१ कपाय	२२ प्र० का बन्ध करनेवाला मिभ्याहृष्टि
२८ प्र०	२५ प्र०	२५ कपाय	२१ प्र०	२१ प्र० का बन्धक	मामादन सम्य०
२८ प्र०	२५ प्र०	२५ कपाय	१७ प्र०	१७ प्र० का बन्धक	सम्यग्मिभ्याहृष्टि
२८ प्र०	२३ प्र०	चार अनन्तानुबन्धी व मिभ्यात्वके बिना २३ प्र०	२२ प्र०	पूर्वोक्त	एक अवलिकाल तक मिभ्याहृष्टि
२४ प्र०	२३ प्र०	चार अनन्तानुबन्धी व सम्यक्त्वके बिना	१९ प्र०	पूर्वोक्त	विमंयोजक अविरत सम्यग्हृष्टि

सन्नाम्या०	संक्रमम्या०	प्रकृतियां	प्रतिग्रहम्या०	प्रकृतियां	स्वामी
२४ प्र०	२३ प्र०	चार अनन्तानु- बन्धी व सम्यक्त्व के बिना	१५ प्र०	पूर्वोक्त	विसंयो० देशविरत
२४ प्र०	२३ प्र०	" "	११ प्र०	पूर्वोक्त	विसंयो० प्रमत्त, अप्र० अप्र० संयत
२४ प्र०	२३ प्र०	" "	७	चार संज्वलन, पुरुषवेद सम्यक्त्व व सम्यग्मि०	अनिवृत्तिकरण उपशा०
२३ प्र०	२२ प्र०	चार अनन्तानु- बन्धी मिथ्यात्व व सम्यक्त्व के बिना	१८ प्र०	पूर्वोक्त १९ में से सम्यग्मिथ्यात्वके क्रम कर देने पर	जिसने मिथ्यात्व की क्षपणा कर दी है एसा अविरत सम्यग्दृष्टि
२३ प्र०	२२ प्र०	" "	१४ प्र०	१८ में से अप्रत्या० ४ के क्रम कर देने पर	मिथ्यात्वका क्षपक देशविरत
२३ प्र०	२२ प्र०	" "	१० प्र०	१४ में से प्रत्याख्या ४ के क्रम कर देने पर	मिथ्यात्वका क्षपक प्रमत्त व अप्रमत्त
२४ प्र०	२२ प्र०	अनन्तानु० ४, सम्यक्त्व व संज्व- लन लोभके बिना २० प्र०	७ प्र०	पूर्वोक्त ७ प्र०	अनिवृत्ति० उपशा०
२८ प्र०	२१ प्र०	अनन्तानुबन्धी ४ व ३ दर्शन- मोहके बिना	२१ प्र०	पूर्वोक्त २१ प्र०	सासादन सम्य० के एक आवलि तक
२१ प्र०	२१ प्र०	" "	१७ प्र०	पूर्वोक्त १७ प्र०	ज्ञायिक अविरतस०
२१ प्र०	२१ प्र०	" "	१३ प्र०	देशविरतके बंधने वाली ४३ प्र०	ज्ञायिक० देशवि०
२१ प्र०	२१ प्र०	" "	९ प्र०	चार संज्व, ५ नोकपाय	प्रथम आदि तीन क्षायिक सम्यग्दृष्टि
२४ प्र०	२१ प्र०	४ अनन्ता०, सम्य- क्त्व, संज्व० लोभ व नपुंसकवेदके बिना २१ प्र०	७ प्र०	पूर्वोक्त ७ प्र०	अनिवृत्ति० उपशा०

सत्तास्था०	संक्रमस्था०	प्रकृतियां	प्रतिग्रहास्था०	प्रकृतियां	स्वामी
२१ प्र०	२१ प्र०	१२ कपाय ९ नोकपाय	५ प्र०	चार संज्वलन व पुरुषवेद	क्षयक या उपशामक के अनिवृत्ति० के प्रारंभ में
२५ प्र०	२० प्र०	४अनन्ता०, सम्य- क्त्व, संज्व० लोभ, नपुंसक वेद व स्त्रीवेदके बिना २० प्र०	६ प्र०	चार संज्व०, सम्य० व सम्य- गिमिथ्यात्व	अनिवृत्ति उपशा०
२१ प्र०	२० प्र०	५ अनन्ता० ३ दर्शनमाह व संज्व० लोभके बिना २० प्र०	५ प्र०	४ संज्वलन व पुरुषवे०
२१ प्र०	१९ प्र०	पूर्वोक्त २० मेंसे नपुंसकवेदके कम करनेपर १९ प्र०	५ प्र०	" "	" "
२१ प्र०	१८ प्र०	१९ मेंसे स्त्रीवेदके कम करने पर १८ प्र०	४ प्र०	४ संज्वलन०	" "
२४ प्र०	१४ प्र०	पुरुषवेद, ११ कपाय, मिथ्यात्व व सम्यगिमिथ्यात्व ये १४	६ प्र०	४ संज्व०, सम्य- क्त्व व सम्य- गिमिथ्यात्व ये ६ प्र०	" "
२४ प्र०	१३ प्र०	पूर्वोक्त १४ मेंसे पुरुषवेद कम कर देने पर १३ प्र०	६ प्र०	" "	" "
२४ प्र०	१३ प्र०	" "	५ प्र०	मान आदि ३ संज्व०; सम्यक्त्व व सम्यगिमिथ्यात्व	" "
१३ प्र०	१३ प्र०	४ संज्व० व ९ नोकपाय	५ प्र०	४ संज्वलन व पुरुषवेद	अनिवृत्ति० नपक
१३ प्र०	१२ प्र०	लोभके बिना ३ संज्व० व ९ नोक- पाय ये १२ प्र०	५ प्र०	" "	" "

सत्तास्था०	संक्रमस्था०	प्रकृतियां	प्रतिक्रहस्था०	प्रकृतियां	स्वामी
२१ प्र०	१२ प्र०	संज्व० लोभ के बिना ११ कपाय व पुरुषवेद ये १२ प्र०	४ प्र०	४ संज्वलन	अनिवृत्ति० उपशा०
१२ प्र०	११ प्र०	लोभके बिना ३ संज्व० व नपुंसक वेदके बिना ८ नोकपाय ये ११ प्र०	५ प्र०	४ संज्व० व पुरुषवेद	अनिवृत्ति० क्षपक
२४ प्र०	११ प्र०	१ क्रोध, ३ मान, ३ माया, २ लोभ, मिथ्यात्व व सम्य- गिमिथ्यात्व ये ११ प्र०	५ प्र०	मान आदि ३ संज्व; सम्यक्त्व व सम्यगिमि० ये ५ प्र०	अनिवृत्ति० उपशा०
२१ प्र०	११ प्र०	तीन क्रोध, तीन मान, तीन माया व दो लोभ	४ प्रकृ०	४ संज्वलन	क्षायिक सम्य- गृष्टि उपशामक अनिवृत्ति
२१ प्र०	११ प्र०	" "	३ प्रकृ०	मान आदि ३ संज्वलन	" "
२४ प्र०	१० प्र०	३ मान, ३ माया, २ लोभ मिथ्यात्व व सम्यगिमिथ्यात्व	५ प्र०	मान आदि ३ संज्वलन, सम्यक्त्व व सम्यगिमिथ्यात्व	उपशामक अनि०
२४ प्र०	१० प्र०	" "	४ प्र०	माया व लोभ संज्वलन व दो दर्शनमोह	" "
११ प्र०	१० प्र०	६ नोकपाय, पुरुषवेद व लोभ के बिना ३ संज्व०	४ प्र०	चार संज्वलन	क्षपक "
२१ प्र०	९ प्र०	१ क्रोध, ३ मान ३ माया व २ लोभ	३ प्रकृ०	मान आदि ३ संज्वलन	क्षायिक सम्य० अनिवृत्ति उप- शामक
२४ प्र०	८ प्र०	१ मान, ३ माया २ लोभ, मिथ्यात्व व सम्यगिमिथ्यात्व	४ प्र०	माया आदि २ संज्वलन, सम्यक्त्व व सम्यगिमिथ्यात्व	अनिवृत्ति० उप- शामक

सत्तास्था०	संक्रमस्था०	प्रकृतियां	प्रतिग्रहस्था०	प्रकृतियां	स्वामी
२१ प्र०	८ प्र०	३ मान, ३ माया व २ लोभ	३ प्र०	मान आदि ३ संज्वलन	ज्ञायिक सम्य० अनिवृत्ति० उप- शामक
२१ प्र०	८ प्र०	” ”	२ प्र०	माया व लोभ संज्वलन	” ”
२४ प्र०	७ प्र०	३ माया, २ लोभ मिथ्यात्व व सम्यगिमिथ्यात्व	४ प्र०	माया आदि २ संज्व०, सम्यक्त्व व सम्यगिम०	अनिवृत्ति० उपशामक
२४ प्र०	७ प्र०	” ”	३ प्र०	संज्व० लोभ, सम्यक्त्व व सम्यगिमिथ्यात्व	” ”
२१ प्र०	६ प्र०	१ मान, ३ माया व २ लोभ	२ प्र०	माया व लोभ संज्वलन	ज्ञायिक सम्य- गदृष्टि अनिवृत्ति० उपशामक
२४ प्र०	५ प्र०	१ माया, २ लोभ, मिथ्यात्व व सम्यगिमिथ्यात्व	३ प्र०	लोभसंज्व०, सम्य० व सम्यगिम०	अनिवृत्ति० उप- शामक
२१ प्र०	५ प्र०	३ माया व २ लोभ	२ प्र०	माया व लोभ संज्वलन	ज्ञायिक सम्य० अनि० उप०
२१ प्र०	५ प्र०	” ”	१ प्र०	संज्वलन लोभ	” ”
५ प्र०	४ प्र०	पुरुषवेद व लोभ के विना तीन संज्वलन	४ प्र०	४ संज्वलन	क्षपक अनि०
२४ प्र०	४ प्र०	२ लोभ, मिथ्यात्व व सम्यगिमिथ्यात्व	३ प्र०	१ लोभ, सम्य० व सम्यगिमिथ्यात्व	उपशाम स०अनि० उपशामक
४ प्र०	३ प्र०	लोभ के विना ३ संज्वलन	३ प्र०	मान आदि ३ संज्वलन	क्षपक अनि०
२१ प्र०	३ प्र०	१ माया व २ लोभ	१ प्र०	संज्वलन लोभ	ज्ञायिक स०अनि० उपशामक
३ प्र०	२ प्र०	मान व माया संज्वलन	२ प्र०	माया व लोभ संज्वलन	क्षपक अनि०
२१ प्र०	२ प्र०	दो लोभ	१ प्र०	लोभ संज्वलन	ज्ञायिक स०अनि० उपशामक

१ २०५. एवमेत्तिण गाहामुत्तमबंधेण संकमट्टाणाणं पडिग्गहट्टाणेसु णियमं कादण मंपहि तं मग्गणोवायभूदाणमत्थपदाणं परूवणट्टमुत्तरं गाहामुत्तमोइण्णं—‘अणुपुच्चमणणुपुच्चं’—पयडिट्टाणमंकमे परूवणिज्जे पुच्चमेव इमे संकमट्टाणाणं मग्गणोवाया अणुगंतव्वा, अण्णहा तच्चिमयणिण्णयाणुप्पत्तीदो । के ते ? अणुपुच्चं अणणुपुच्चमिच्चादओ । तत्थाणुपुच्चिमंकमो एक्को, अणाणुपुच्चिमंकमो विदिओ, दंमणमोहस्स खयमस्मियुण तदियो, तदक्खयमवलंविण चउत्थो, चरित्तमोहोवमामगविसए पंचमो, चरित्तमोहक्खवणणिवंधणो छट्ठो एवमेदे संकमट्टाणाणं मग्गणोवाया णादव्वा भवंति । एदेहि पुच्चुत्तमंकमट्टाणाणं पडिग्गहट्टाणाणमुप्पत्ती साहेयव्वा त्ति उत्तं होइ ।

१ २०६. एत्थाणुपुच्चिमंकमविमए संकमट्टाणगवेमणे कीरमाणे चउवीसमंतकम्मियोवमामगस्स ताव वावीस-इगिवीमादओ पुच्चुत्तकमेणाणुमग्गिदव्वा । तेसि पमाणमेदं—२२, २१, २०, १४, १३, ११, १०, ८, ७, ५, ४, २ । इगिवीसमंतकम्मियस्स

सत्तास्थानं	संकमस्थानं	प्रकृतियां	प्रतिग्रहस्थानं	प्रकृतिया	स्वामी
२४ प्र०	२ प्र०	मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व	२ प्र०	सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व	मूढममांपराय व उपशांतमोह उपशामक
२ प्र०	१ प्र०	संज्वलन माया	१ प्र०	संज्वलन लाभ	क्षपक अनिग्रति

१ २०५. इस प्रकार इतने गाथासूत्रोंके सम्बन्धमें संकमस्थानोंका प्रतिग्रहस्थानोंमें नियम करके अब हम नियमका अन्वेषण करनेके उपायभूत अर्थपदोंका कथन करनेके लिये आगेका गाथासूत्र आया है—‘अणुपुच्चमणणुपुच्चं’ प्रकृतिसंस्थानोंके संकमका कथन करते समय सर्व प्रथम संकमस्थानोंके अन्वेषणके ये उपाय जानना चाहिये, अन्यथा उनका समुचित निर्णय नहीं किया जा सकता है ।

शंका—वे अन्वेषण करनेके उपाय कौनसे हैं ?

समाधान—आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी इत्यादिक । उनमेंसे आनुपूर्वीसंकम यह प्रथम उपाय है, अनानुपूर्वीसंकम यह दूसरा उपाय है, दर्शनमोहके क्षयके आश्रयसे प्राप्त होनेवाला तीमरा उपाय है, दर्शनमोहके क्षयके न होनेसे सम्बन्ध रखनेवाला चौथा उपाय है, चारित्रमोहनीय की उपशमनाको विषय करनेवाला पाँचवां उपाय है और चारित्रमोहकी क्षपणाके निमित्तसे होनेवाला छठा उपाय है । इस प्रकार ये संकमस्थानोंके अनुसंधान करनेके उपाय जानने चाहिये । इनके द्वारा पूर्वोक्त संकमस्थानों और प्रतिग्रहस्थानोंकी उत्पत्ति साध लेनी चाहिये वह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

१ २०६. अब यहाँपर आनुपूर्वीसंकम विषयक संकमस्थानोंका अन्वेषण करने पर चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके पूर्वोक्त क्रमसे २२, २१ आदि प्रकृतिक संकमस्थान जानना चाहिये । उनका प्रमाण यह है—२२, २१, २०, १४, १३, ११, १०, ८, ७, ५, ४ और २ ।

वि वीसेकोणवीमपहुडयो तेणेव विहाणेणाणुगंतव्वा । तेमिं पमाणमेदं—२०, १०, १८, १२, ११, ०, ८, ६, ५, ३, २ । खवगस्स वि वारममंकमट्टाणप्पहुडि एदाणि संकमट्टाणाणि दट्टव्वाणि—१२, ११, १०, ४, ३, २, १ । अणुपुञ्जीविमयाणं पि संकमट्टाणाणमणुगमो कायव्वो । तेमिमेसा ठवणा—२७, २६, २५, २३, २२, २१, १३ । एत्थेवोदरमाणमस्मिण्णुण मंभवंताणं संकमट्टाणाणमणुमग्गणा कायव्वा, तेमिमणाणुपुञ्जिविमयाणमिह परूवणाए विगेहाभावादो ।

२०७. मंपहि 'झीणमझीणं च दंसणे मोहे' इच्चेदमत्थपदमवलंबियं संकमट्टाणाणं मग्गणे कीग्गणे तत्थ ताव दंसणमोहक्खयमस्मिण्णुण इगिवीमसंतकम्मियाणुपुञ्जी-संकमट्टाणाणि चेव इगिवीमसंकमट्टाणम्भहियाणि लब्भंति । एत्थेव खवगसेट्ठिपाओग्ग-संकमट्टाणाणि वि वत्तव्वाणि, मव्वेसिमेव तेमिं दंसणमोहक्खयपच्छाकालभावीणं तण्णिणवंधणत्तमिद्धीदो । तदपरिक्खए च सत्तावीसादिसंकमट्टाणाणि इगिवीसपज्जंताणि मंभवंति त्ति वत्तव्वं । चउवीमसंतकम्मियाणुपुञ्जीसंकमट्टाणाणि वि एत्थेव पवेसियव्वाणि ।

२०८. मंपहि उवमामगे च खवगे च' एदमत्थपदमवलंबियं संकमट्टाणमग्गणाए चउवीम-इगिवीमसंतकम्मियोवमामग-खवगोसु जहाकमं तेवीस-इगिवीमप्पहुडिसंकम-

इक्कीम प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके भी उसी विधिसे २० और १९ आदि प्रकृतिक संकमस्थान जानना चाहिये । उनका प्रमाण यह है—२०, १६, १८, १२, ११, ६, ८, ६, ५, ३ और २ । क्षपक जीवके भी वारह प्रकृतिक संकमस्थानसे लेकर ये संकमस्थान जानना चाहिये—१०, ११, १०, ४, ३, २ और १ । इसी प्रकार अनानुपूर्वी संकमस्थानोंका भी विचार करना चाहिये । उनकी स्थापना इस प्रकार है—२७, २६, २५, २३, २२, २१ और १३ । तथा यहीं पर उपशामश्रेणीसे उतरनेवाले जीवकी अपेक्षा भी जो संकमस्थान सम्भव हैं उनका विचार करना चाहिये, क्योंकि वे अनानुपूर्वीको विषय करते हैं इसलिये उनका यहाँ कथन करनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

२०९. अथ 'झीणमझीणं च दंसणे मोहे' इस अर्थपदकी अपेक्षा संकमस्थानोंका विचार करनेपर इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके जो पहले आनुपूर्वीसंकमस्थान कह आये हैं उनमें इक्कीस प्रकृतिक संकमस्थानके मिला देने पर वे सबके सब दर्शनमोहके क्षयकी अपेक्षा संकमस्थान प्राप्त होते हैं । तथा क्षपकश्रेणिके योग्य संकमस्थान भी यहीं पर कहने चाहिये, क्योंकि वे सब दर्शनमोहनीयके क्षय होनेके बाद होते हैं, इसलिये वे भी तन्निमित्तक मिट्ट होते हैं । और दर्शनमोहके क्षयके अभावमें सत्ताईस प्रकृतिक संकमस्थानमें लेकर इक्कीस प्रकृतिक संकमस्थान तक छह होते हैं ऐसा कहना चाहिये । तथा चौवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके जो आनुपूर्वी संकमस्थान होते हैं उनका समावेश भी यहीं पर कर लेना चाहिये । अर्थात् २४ प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके जितने संकमस्थान होते हैं वे भी दर्शनमोहके क्षयके अभावमें हंते हैं अतः उनकी गणना भी दर्शनमोहके क्षयके अभावमें होनेवाले संकमस्थानोंमें हो जाती है ।

२१०. अथ 'उवमामगे च खवगे च' इस अर्थपदकी अपेक्षा संकमस्थानोंका विचार करने पर चौवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके और इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक

१. ता०— आ०प्रत्योः २, १ इति पाठः । २. ता०— आ०प्रत्योः—मद्धपदमवलंबिय इति पाठः ।

ट्टाणाणि वत्तव्वाणि, खवगोवसमसेट्टिपाओग्गमंक्रमट्टाणाणं सव्वेमिमेत्थेवं संभवदंमणादो । ओदग्गमाणमस्सियूण वि उवसमसेट्टीए संक्रमट्टाणाणि लब्धंति । तं जहा—चउवीममंत-
कम्मिओ सुहुभोवमंतगुणट्टाणेसु दुविहमंकासगो अट्टाक्खण्ण परिवडमाणगो अणियट्टि-
गुणट्टाणपवेमकाले चेय दुविहं लोहं लोहमंजलणम्मि संकामेइ । तदो तत्थ चदुण्हं^१
संक्रमो तिसु पयडीसु पडिग्गहभावमावण्णाणु संभवइ । पुणो जहाकमं तिविहमाय-
तिविहमाण—तिविहकोह—सत्तणोकमाय—इत्थि—णवुंसयवेदाणमोकडुणवावारेण परिणदस्म
तस्सेव अट्टण्हमेक्कारमण्हं चोदसण्हमेक्कावीमाए वावीसाए तेवीसाए च संक्रमट्टाणाणि
उप्पजंति—४, ८, ११, १४, २१, २२, २३ । एवमिगिवीममंतकम्मियस्म वि
परिवदमाणयस्म संक्रमट्टाणाणमुप्पत्ती वत्तव्वा । ताणि च एदाणि—२^३, ६, ९, १२,
१९, २०, २१, सव्वेसिमेदाणं पडिग्गहट्टाणजोयणा च जाणिय कायच्चा ॥१३॥

और क्षपकके क्रमसे तेईस प्रकृतिक आदि और इक्कीस प्रकृतिक आदि संक्रमस्थान कहने चाहिये, क्योंकि क्षपक और उपशमश्रेणिके योग्य सभी संक्रमस्थान यहाँपर लिये गये हैं । तथा उपशम-
श्रेणिके उतरनेवाले जीवकी अपेक्षा भी उपशमश्रेणिके संक्रमस्थान प्राप्त होते है । यथा सूक्ष्मसाम्भराय
और उपशान्तकपाय गुणस्थानोंमें दो प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाला चौबीस प्रकृतियों की
सत्तावाला जो जीव उन गुणस्थानोंका काल समाप्त होनेसे गिरकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें
प्रवेश करता है उसके उम समय ही दो प्रकारके लोभका लोभ संवलनमें संक्रम करता है,
इसलिये वहाँ प्रतिग्रहभावको प्राप्त हुई तीन प्रकृतियोंमें चार प्रकृतियोंका संक्रम होता है । फिर
क्रमसे जब वही जीव तीन प्रकारकी माया, तीन प्रकारका मान, तीन प्रकारका क्रोध, मान
नोकपाय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद इनका अपकर्षण करता है तब उसीके आठ, ग्यारह, चौदह,
इक्कीस, बाईस और तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होते हैं । पूर्वोक्त सब स्थान ये है—४, ८,
११, १४, २१, २२ और २३ । इसी प्रकार जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणिके
च्युत होता है उसके भी संक्रमस्थानोंकी उत्पत्ति कहनी चाहिये । वे ये हैं—२, ६, ९, १२, १९, २०
२१ । इन सब स्थानों के प्रतिग्रहस्थानोंकी योजना जानकर लेना चाहिये ॥१३॥

विशेषार्थ—२७ प्रकृतिक संक्रमस्थानसे लेकर १ प्रकृतिक संक्रमस्थान तक जितने संक्रम
स्थान हैं उनमेंसे पहले तो इस बातका विचार करना चाहिये कि इनमेंसे कितने संक्रमस्थान तो
आनुपूर्वी क्रमसे उत्पन्न होते हैं और कितने आनुपूर्वीके बिना उत्पन्न होते हैं । अन्तरकरणके
पश्चात् क्रमोंकी होनेवाली उपशमना या क्षपणके अनुसार उत्तरोत्तर हीन क्रमको लिये हुए जो
संक्रमस्थान उत्पन्न होते हैं वे आनुपूर्वी क्रमसे उत्पन्न हुए संक्रमस्थान कहलाते हैं और शेष
अनानुपूर्वी संक्रमस्थान कहलाते हैं । इसी प्रकार जो संक्रमस्थानों और प्रतिग्रहस्थानोंके अन्वेषण
करनेके अन्य उपायोंका निर्देश किया है सो उनका भी स्वरूप जान लेना चाहिये । उनके स्वरूपके
कथन करनेमें कोई विशेषता न होनेसे यहाँपर हमने उसका निर्देश नहीं किया है । अब यहाँ
आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी क्रमसे प्राप्त होनेवाले संक्रमस्थानोंका सरलतासे ज्ञान करानेके लिये
कोष्ठक दिया जाता है—

१. आ०प्रतौ—मेवत्थ इति पाठः । २. ता०प्रतौ तदो ति चदुण्हं, आ०प्रतौ तदो त्व चदुण्हं
इति पाठः । ३. ता०—आ०प्रत्यो. ३ इति पाठः ।

२००. एवमेदीए गाहाए संक्रमद्वाराणां समगणोवायभूदाणि अत्थपदाणि परूविय मंपहि संक्रम-पडिग्गह-तदुभयद्वाराणाणमादेसपरूवणदुं गदियादिचोदसमगण-द्वाराणाणि परूवेमाणो गाहासुत्तमुत्तरं भणइ—‘एक्केकम्हि य द्वाणे०’ एक्केकम्हि द्वाणे संक्रम-पडिग्गह-तदुभयभेदभिण्णे गदियादिचोदसमगणद्वाराणविसेसिदजीवाणं गवेसणे कीरमाणे तत्थ केसु द्वाणेसु भवसिद्धिया जीवा होंति, केसु वा द्वाणेसु अभवसिद्धिया जीवा होंति, सेसमगणद्वाराणविसेसिदा वा जीवा केसु द्वाणेसु होंति ति पुच्छा कदा भवदि । एवमेदीए गाहाए भवियाभवियसमगणाणं णामणिहेमं कादृण सेसमगणाणं च ‘जीवा वा’ इदि एदेण सामणवयणेण संगहो कदो दट्टव्वो । एत्थ भवियाभवियजीवेसु

आनुपूर्वी			अनापूर्तुर्वी		
२१ प्र० उपशा० संक्र० प्रति०	२४ प्र० उपशा० संक्र० प्रति०	क्षपक संक्र० प्रति०	संक्र० प्रति०	उपश० श्रेणिसे पड़नेवाला २४ प्र०	उपशमश्रेणिसे पड़नेवाला २१ प्र०
२० ५	२२ ७	१२ ५	२७ २, १९ १५, ११	४ ३	० १
१९ ५	२१ ७	११ ५	२६ ”	८ ४	६ २
१८ ८	२० ६	१० ८	२५ २१, १७	११ ५	६ ३
१७ ४	१९ ६	९ ४	२३ २, १६ १५, ११, ७	१४ ६	१० ४
१६ ४	१८ ६	८ ३	२२ १८, १८ १०	२५ ७	१९ ५
९ ८	११ ३	२ २	२१ २१, १७ १३, ९, ५	२२ ७	२० ५
८ ३	१० ४	१ १	१३ ५	२३ ७, ११	२१ ५, ६
६ २	८ ४				
५ २	७ ४				
३ १	५ ३				
२ १	४ ३				
	३ २				

२९९. इस प्रकार इस गाथा द्वारा संक्रमस्थानोंके अन्वेषणके उपायभूत अर्थपदोंका कथन करके अब संक्रमस्थानों, प्रतिग्रहस्थानों और तदुभयस्थानोंका आदेशकी अपेक्षा कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—अब ‘एक्केकम्हि य द्वाणे०’ इस द्वारा संक्रम, प्रतिग्रह और तदुभय-रूप भेदोंसे अनेक भेदोंको प्राप्त हुए एक एक स्थानमे गति आदि चौदह मार्गणाओंवाले जीवोंका विचार करने पर उनमेंसे किन स्थानोंमें भव्य जीव होते हैं, किन स्थानोंमें अभव्य जीव होते हैं और किन स्थानोंमें शेष मार्गणावाले जीव होते हैं यह पृच्छा की गई है । इस प्रकार इस गाथामें भव्य और अभव्य मार्गणाका नाम निर्देश करके शेष मार्गणाओंका ‘जीवा वा’ इस सामान्य वचनद्वारा संग्रह किया गया है ऐसा जानना चाहिये । इस गाथामें भव्य और अभव्य जीवोंके

काणि द्वाणाणि हांति त्ति अभणिदृण केसु द्वाणेसु भवियाभवियजीवा हांति त्ति भणंतस्माहिप्पाओ मग्गणद्वाणाणं संकमद्वाणेसु गवेमणे कदे वि मग्गणद्वाणेसु संकम-
द्वाणाणि गवेमिदाणि हांति त्ति एदेणाहिप्पाएण तहा णिदेमो कदो त्ति घेतत्वो, इच्छा-
वसेण तेमिमाधाराधेयभावोववत्तीदो ॥१४॥

§ ३००. एवमेदेण गाहामुत्तेण परुविदमग्गणद्वाणाणं संकमद्वाणाणं गुणद्वाणेसु
वि मग्गणा कायव्वा त्ति जाणावणद्धमुवग्गिमगाहामुत्तमोइण्णं—‘कदि कम्मि हांति
टाणा०’ एत्थ पंचविहो भाववियप्पो ओदइयादिभेदेण तस्म विसेमो मिच्छाइट्ठिप्पहुडि
जाव अजोगिकेवल्लि त्ति एदाणि गुणद्वाणाणि, पंचविहभावे अम्मियुण तेमिमवट्ठित्तादो ।
तत्थ कम्मिह गुणद्वाणे कदे कदि संकमद्वाणाणि हांति केत्तियाणि वा पडिग्गहद्वाणाणि
हांति त्ति एदेण मुत्तेण पुच्छा कदा भवदि । तत्थ ताव ओदइयभावपरिणदे मिच्छाइट्ठि-
गुणद्वाणे मत्तावीमादीणि चत्तारि संकमद्वाणाणि हांति—२७, २६, २५, २३ ।
पडिग्गहद्वाणाणि पुण दोणिण चैव तत्थ संभवंति, वावीम-इगिवीमाणि मोत्तृणण्णेमिं

कितने स्थान हाते है ऐसा न कहकर जो ‘कितने स्थानोंमें भव्य और अभव्य जीव हाते है’ ऐसा
कहा गया है सो यद्यपि इस कथन द्वारा मार्गणास्थानोंका संक्रमस्थानोंमें विचार करनेकी सूचना
की गई है तथापि मार्गणास्थानोंमें संक्रमस्थानोंके अन्वेषण करनेके अभिप्रायसे ही उस प्रकारका
निर्देश किया गया है यह अर्थ यहाँ लेना चाहिये, क्योंकि इच्छावश उनमें आधार-आधेयभाव
की उत्पत्ति होती है ॥१४॥

विशेषार्थ—पूर्वमें जो संक्रमस्थानों, प्रतिग्रहस्थानों और तदुभयस्थानोंकी सूचना की गई है
सो उनमेंसे भव्य, अभव्य और अन्य मार्गणावाले जीवोंके कौन स्थान कितने हाते है इसके ज्ञान
करनेकी उस गाथामें सूचना की गई है । यद्यपि गाथामें यह निर्देश किया गया है कि ‘संक्रम, प्रतिग्रह
और तदुभयरूप एक एक स्थानमेंसे किन स्थानोंमें भव्य, अभव्य या अन्य मार्गणावाले जीव
हाते है, इसका विचार करना चाहिये, तथापि इसका आशय यह है कि भव्य, अभव्य या अन्य
मार्गणाओंमें जहाँ जितने स्थान सम्भव हों उनका विचार कर लेना चाहिये ।’ ऐसा अभिप्राय
बिठानेके लिए यद्यपि विभक्ति परिवर्तन करना पड़ता है । पर ऐसा करनेमें कोई आपत्ति नहीं आती ।
साथ ही इसमें ठीक अर्थका ज्ञान करनेमें सुगमता जाती है, इसलिये अर्थ करते समय यह परिवर्तन
किया गया है ।

§ ३००. इस प्रकार इस गाथासूत्रके द्वारा कहे गये मार्गणास्थानों और संक्रमस्थानोंका
गुणस्थानोंमें भी विचार करना चाहिये यह जतानेके लिये आगेका गाथासूत्र आया है—‘कदि कम्मि
हांति टाणा०’ इसमें औद्द्यिक आदिके भेदसे पाँच प्रकारके भावोंका निर्देश किया है । मिथ्यात्वसे
लेकर अयोगिकेवली तक जो चौदह गुणस्थान हैं वे इन्हींके भेद है, क्योंकि पाँच प्रकारके भावोंका
आश्रय लेकर ही वे अवस्थित है । उनमेंसे किस गुणस्थानमें कितने संक्रमस्थान और कितने प्रति-
ग्रहस्थान हाते है यह इस गाथासूत्र द्वारा पृच्छा की गई है । उनमेंसे औद्द्यिक भावरूप मिथ्यात्व
गुणस्थानमें तो सत्ताईस प्रकृतिक आदि चार संक्रमस्थान हाते है—२७, २६, २५, और २३ । किन्तु
वहाँ प्रतिग्रहस्थान दो ही हाते है, क्योंकि वहाँ वाइस और इकीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंके सिवा

तत्थासंभवादो । तहा विदियगुणट्ठाणे पारिणामियभावपरिणदे पणुवीसेक्कवीमसंक्रम-
ट्ठाणाणि २५, २१, इगिवीमपडिग्गहट्ठाणं च होइ २१ । एदीए दिमाए सेमगुणट्ठाणेषु
वि पयदमग्गणा समयाविगेहेण कायच्चा । एदेण मामित्तणिहेमो वि सूचिदो दट्ठुवो,
गुणट्ठाणवदिरेगेण मामित्तमंबंधारिहाणमण्णेमिमणुवलट्ठीदो । तदो चेव तदणंतरपरूवणा-
जोग्गस्स कालाणुगमस्स सेमाणियोगद्वाराणं देमामासियभावेण परूवणावीजमिदमाह—
'समाणा वाध केवचिरं' केवचिरं कालमेक्केक्कस्स संक्रमणस्स ममाणणा होइ
किमेगममयं दो वा समए इच्चादिकालविसेमावेक्खमेदं पुच्छामुत्तमिदि घेत्तव्वं ॥१५॥

§ ३०१. एवमेदाओ दो गाहाओ गुणट्ठाण-मग्गणट्ठाणेषु संक्रम-पडिग्गह-तदुभय-
ट्ठाणपरूणाए तप्पडिवट्ठमामित्तादिअणियोगद्वाराणं च बीजपदभूदे परूविय संपहि
मग्गणट्ठाणेषु जत्थतत्थाणुपुव्वीए संक्रमट्ठाणाणमुव्वरिममत्तगाहाहिं मग्गणं कुणमाणो
तत्थ ताव पढमगाहाए गदिसग्गणाविसए संक्रमट्ठाणाणमियत्तावहारणं कुणइ—'णिरय-
गइ-अमर-पंचिदिएसु०' एदिस्से गाहाए पुव्वट्ठेण णिरय-देवगइ-पंचिदियतिरक्खेसु पंचणहं
संक्रमट्ठाणाणं संभवावहारणं कयं दट्ठुव्वं । काणि ताणि पंच संक्रमट्ठाणाणि ? सत्तावीम-
छव्वीस-पणुवीम-तेवीम-इगिवीममण्णिणदाणि—२७, २६, २५, २३, २१ । कत्थमेत्थ

अन्य प्रतिग्रहस्थान सम्भव नहीं है । तथा पारिणामिक भावरूप दूसरे गुणस्थानमें पञ्चीम और
इक्कीस प्रकृतिक २५, २१ ये दो संक्रमस्थान और इक्कीस प्रकृतिक २१ एक प्रतिग्रहस्थान होता है ।
शेष गुणस्थानोंमें भी उन्नी प्रकार यथाविधि प्रकृत विषयका विचार कर लेना चाहिये । इस कथनसे
स्वामित्वका निर्देश भी सूचित हुआ जानना चाहिये, क्योंकि गुणस्थानोंके सिवा स्वामित्वके
योग्य अन्य यत्र नहीं पाई जाती है । फिर इसके बाद कथन करनेके योग्य कालानुयोगद्वाराका
निर्देश करनेके लिये 'समाणा वाध केवचिरं' यह पद कहा है जो देशामर्पकरूपसे शेष अनुयोग-
द्वारोंको सूचित करनेके लिये बीजभूत है । एक एक संक्रमस्थानकी कितने कालतक प्राप्ति होती है ।
क्या एक समय तक होती है या दो समय तक होती है इत्यादि रूपसे कालविशेषकी अपेक्षा
रखनेवाला यह पृच्छामुत्र जानना चाहिये ॥१५॥

विशेषार्थ—इस गाथामे संक्रमस्थानों और प्रतिग्रहस्थानोंके स्वामी व कालके जान लेनेकी
तो स्पष्ट सूचना की है किन्तु शेष अनुयोगद्वारों की सूचना नहीं की है । तथापि यह सूत्र देशामर्पक
है अतः उनका सूचन हो जाता है ।

§ ३०१. इस प्रकार गुणस्थानों और मार्गणास्थानोंमें संक्रमस्थानों, प्रतिग्रहस्थानों और
तदुभयस्थानोंके कथनमे सम्बन्ध रखनेवाली और इन संक्रमस्थान आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले
स्वामित्व आदि अनुयोगद्वारोंके बीजभूत इन दो गाथाओंका कथन करके अब मार्गणास्थानोंमें
यत्रतत्रानुपूर्वीके हिमावसे आगेकी सात गाथाओं द्वारा संक्रमस्थानोंका विचार करते हुए उसमें भी
सर्व प्रथम गाथाद्वारा गतिमार्गणामे संक्रमस्थानोंके प्रमाणका निश्चय करते हैं—'णिरयगइ-
अमर-पंचिदिएसु०' इस गाथाके पूर्वार्धद्वारा नरकगति, देवगति और पंचेन्द्रिय तिर्यंचामे पाँच
संक्रमस्थान सम्भव है यह बतलाया गया है ।

शंका—व पाँच संक्रमस्थान कौनसे है ?

समाधान—सत्ताईस, छव्वीस, पञ्चीस, तेईस, और इक्कीस ये पाँच संक्रमस्थान हैं—
२७, २६, २५, २३, २१ ।

पंचिन्द्रियग्रहणेण चउगइसाहारणेण तिरिक्खाणमेव पडिवत्ती ? ण, पारिसेसियण्णाएण तत्थेव तप्पउत्तीए विरोहाभावादो । किमेवं चेव मणुमगईए वि होदि त्ति आसंकाए उत्तरमाह—‘सव्वे मणुमगईए’ मणुमगईए सव्वाणि वि संक्रमट्टाणाणि संभवन्ति त्ति उत्तं होइ, सव्वेमिमेव तत्थ संभवे विरोहाभावादो । एत्थ ओघपरूवणा अणूणाहिया वत्तव्वा । पंचिन्द्रियतिरिक्खेसु कथं होइ त्ति आमंकाए इदमुत्तरं—‘सेसेसु तिगं’ । सेसग्रहणेण एइंदिय-विगल्लिंदियाणं गहणं कायव्वं, तेसु सत्तावीस-छव्वीम-पणुवीस-सण्णिदमंक्रमट्टाणतियमेव संभवइ । एवमसण्णिपंचिंदिएसु वि वत्तव्वं, विसेसाभावादो त्ति पदुपायणट्टमिदं वयणं—‘असण्णीसु’ । असण्णिपंचिंदिएसु वि संक्रमट्टाणत्तियमेवाणंत-परूविदं संभवइ त्ति उत्तं होइ । अहवा ‘सेसेसु तियं असण्णीसु’ त्ति उत्ते सेसग्रहणेणा-सण्णिविसेसिंदेण एइंदिय-विगल्लिंदियाणमसण्णिपंचिंदियाणं च मंगहो कायव्वो, तेमिं सव्वेमिमसण्णित्तं पडि भेदाभावादो । तदो तेसु संक्रमट्टाणतियमेवाणंतपरूविदं होइ त्ति घेतव्वं । एत्थ णिरयादिगईसु संभवन्ताणं पडिग्रहट्टाणाणं च जहागममणुगमो

शंका—इम गाथामे जो ‘पंचिन्द्रिय’ पदका ग्रहण किया है सो यह चारों गतियोंम साधारण है । अर्थात् पंचेन्द्रिय चारों गतियोंके जीव होते हैं फिर उससे केवल तिर्यंचोंका ही ज्ञान कैसे किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पारिशेष न्यायसे तिर्यंचोंमे ही इस पदकी प्रवृत्ति माननेमे कोई विरोध नहीं आता है ।

क्या इसी प्रकार मनुष्य गतिमे भी संक्रमस्थान होते हैं ? इस प्रकारकी शंकाके होनेपर उसके उत्तररूपमें ‘सव्वे मणुमगईए’ यह सूत्रवचन कहा है । मनुष्यगतियमें सभी संक्रमस्थान सम्भव हैं यह इसका तात्पर्य है, क्योंकि वहाँ पर सभी संक्रमस्थानोंके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है । यहाँ मनुष्यगतियमें ओघपरूपका न्यूनताधिकतासे रहित पूरी कइनी चाहिए ।

अब पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंसे अतिरिक्त तिर्यंचोंमें कौनसे संक्रमस्थान होते हैं ऐसी आशंका होनेपर उसके उत्तररूपमें ‘सेसेसु तिगं’ यह सूत्रवचन कहा है । यहाँ शेष पदसे एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि उनमे सत्ताईस, छव्वीस और पच्चीस प्रकृतक तीन संक्रमस्थान ही सम्भव हैं । तथा इसी प्रकार असंज्ञी पंचेन्द्रियोंमे भी कथन करना चाहिये, क्योंकि एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियोंके कथनसे इनके कथनमें कोई विशेषता नहीं है । इस प्रकार इस बातका कथन करनेके लिये सूत्रमे ‘असण्णीसु’ वचन दिया है । असंज्ञी पंचेन्द्रियोंमें भी पूर्वमे कह गये तीन संक्रमस्थान ही होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अथवा ‘सेसेसु तियं असण्णीसु’ इम वचनमें जो ‘शेष’ पदका ग्रहण किया है सो इससे असंज्ञी विशेषणमे युक्त एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रियोंका संग्रह करना चाहिये, क्योंकि असंज्ञित्वकी अपेक्षा इन सबमे कोई भेद नहीं है । इसलिये उनमे वे ही तीन संक्रमस्थान होते हैं जिनका पूर्वमे उल्लेख कर आये हैं ऐसा यहाँ जानना चाहिये । यहाँ पर नरकादि गतियोंमें प्रतिग्रहस्थानोंका यद्यपि गाथासूत्रमे उल्लेख नहीं किया है तथापि आगमानुसार उनका विचार कर लेना चाहिये । तथा इसी प्रकार तदुभयस्थानोंका

१. आ०प्रतो वत्तव्वा । अट्टमा पंचिन्द्रिय-- इति पाठः । २. ता०प्रतो वयणं असण्णिणपंचिंदिएसु इति पाठः ।

कायव्वो । तदो तदुभयद्वाराणि च परूवेयव्वणि । एवं कए गइमगगणा समप्पइ । एत्थेव काइंदिय-जोग-सण्णमगगणं च संगहो कायव्वो, सुत्तस्सेदस्स देसामासियत्तादो ॥१६॥

भी कथन कर लेना चाहिये । इस प्रकार कथन करने पर गतिमार्गणा समाप्त होती है । यहीं पर काय, इन्द्रिय, योग और संज्ञी मार्गणाका भी संग्रह करना चाहिये, क्योंकि यह सूत्र देशामर्षक है ॥१६॥

विशेषार्थ—इस गाथासूत्रमें चारों गतियोंमेंसे किसमें कितने संक्रमस्थान होते हैं इसका स्पष्ट उल्लेख किया है । उसमें भी तिर्यच गतिमें एकेन्द्रियोंके कितने, विकलेन्द्रियोंके कितने और असंज्ञियोंके कितने संक्रमस्थान होते हैं इसका भी उल्लेख किया है । इतने निर्देशसे काय, इन्द्रिय, योग और संज्ञी मार्गणामें कहीं कितने संक्रमस्थान होते हैं इसका भी ज्ञान हो जाता है इसलिये देशामर्षक रूपसे इस सूत्रद्वारा उन मार्गणाओंका भी यहाँ संकलन करनेके लिये निर्देश किया है । खुलासा इस प्रकार है—काय मार्गणाके स्थावर और त्रस ये दो भेद हैं । इनमेंसे स्थावर एकेन्द्रिय ही होते हैं और शेष सब त्रस होते हैं, इनमें मनुष्य भी सम्मिलित हैं । इसलिये स्थावरोंके २८, २७ और २६ ये तीन संक्रमस्थान तथा त्रसोंके सब संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं, क्योंकि एकेन्द्रियोंके उक्त तीन और मनुष्योंके सब संक्रमस्थान बतलाये हैं । उन्द्रिय मार्गणाके एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि पाँच भेद हैं । सो गाथा सूत्रमें एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय अर्थात् द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरन्द्रिय जीवोंके २७, २६ और २५ ये तीन संक्रमस्थान होते हैं इसका स्पष्ट निर्देश किया ही है । अब रहे पंचेन्द्रिय सो इनमें तिर्यच पंचेन्द्रिय और शेष तीन गतियोंके सब जीव सम्मिलित हैं अतः इनके भी सब संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं । योगके स्थूल रूपसे तीन भेद हैं और मनुष्योंके ये तीनों योग सम्भव हैं अतः प्रत्येक योगमें सब संक्रमस्थान सम्भव हैं यह सिद्ध होता है । यह तो ह्या सामान्य विचार किन्तु योगोंके उत्तर भेदोंकी अपेक्षासे विचार करने पर मनोयोगके चारों भेदोंमें और वचन योगके चारों भेदोंमें सब संक्रमस्थान सम्भव है, क्योंकि इनका सत्त्व मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर उभयान्तकपाय गुणस्थान तक पाया जाना सम्भव है, इसलिये इनमें सब संक्रमस्थान बन जाते हैं । अब रहे काययोगके सात भेद सो औदारिककाययोग पर्याप्त अवस्थामें मनुष्योंके भी सम्भव हैं और मनुष्योंके सब संक्रमस्थान बतलाये हैं इसलिये इसमें सब संक्रमस्थान बन जाते हैं । औदारिकमिश्रकाययोग प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ गुणस्थानकी अपर्याप्त अवस्थामें मनुष्य और तिर्यचोंके ही होता है । यहाँ सयोगकेवली गुणस्थान अविच्छिन्न है । किन्तु ऐसी दशामें २७, २६, २५, २३ और २१ ये पाँच संक्रमस्थान सम्भव हैं शेष नहीं, इसलिये औदारिक मिश्रकाययोगमें ये पाँच संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार वैक्रियकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोगमें भी जानना चाहिये, क्योंकि इन योगोंका सम्बन्ध भी अपर्याप्त दशासे है तथा देवोंके ये ही संक्रमस्थान होते हैं अन्य नहीं । वैक्रियक काययोग देव और नारकियोंके होता है, इसलिये देव और नारकियोंके जो भी संक्रमस्थान होते हैं व वैक्रिय काययोगमें भी प्राप्त होते हैं । अब रहे आहारक और आहारकमिश्रकाययोग सो ये दोनों योग प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें तो होते ही हैं साथ ही या तो वेदकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतके होते हैं या ज्ञायिक सम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतके होते हैं । इसलिये इनमें २७, २३, और २१ ये तीन ही संक्रमस्थान सम्भव हैं ऐसा जानना चाहिये । तथा संज्ञी मार्गणाके संज्ञी और असंज्ञी ये दो भेद हैं । सो इनमेंसे असंज्ञियोंके २७, २६ और २५ ये संक्रमस्थान होते हैं यह तो गाथामें ही बतलाया है । तथा मनुष्य संज्ञी ही होते हैं और मनुष्योंके सब संक्रमस्थान बतलाये हैं इसलिये संज्ञियोंके भी सब संक्रमस्थान सम्भव हैं यह बात सहज फलित हो जाती है । इस प्रकार इस गाथासूत्रसे काय आदि पूर्वोक्त चार गाथाओंमें कहीं कितने संक्रमस्थान होते हैं यह कथन देशामर्षकभावसे सूचित हो जाता है यह बात सिद्ध हुई ।

§ ३०२. एवं गडमगणमंतोभाविर्दकाइंदिय-जोग-सण्णियाणुवादं परुविय संपहि मम्मत्त-मंजममगणगयविसेमपदुप्पायट्टमुत्तरमुत्तं भणइ—‘चदुर दुगं तेवीमा०’ एत्थ जहामंखमहिसंबंधो कायव्वो । मिच्छते चत्तारि संकमट्टाणाणि, मिस्सगे दोण्णि, मम्मत्ते तेवीसं मंकमट्टाणाणि होति । तत्थ मिच्छाइट्टिम्मि सत्तावीम-छव्वीस-पणुवीस-तेवीमसण्णियाणि चत्तारि मंकमट्टाणाणि होति—२७, २६, २५, २३ । सम्मामिच्छा-इट्टिम्मि पणुवीम-इगिवीमसण्णियाणि दोण्णि मंकमट्टाणाणि भवंति—२५, २१ । सम्म-त्तोवलक्खियगुणट्टाणे मव्वमंकमट्टाणमंभवो सुगमो । कधमेत्थ पणुवीसमंकमट्टाणसंभवो त्ति णामंकाणिज्जं, अट्टावीससंतकम्मियोवसममम्माइट्टिपच्छायदसासणसम्माइट्टिम्मि तदुवलंभादो । कधमेदम्म मम्माइट्टिववएसो त्ति ण पच्चवट्टाणं कायव्वं, दत्तुत्तरत्तादो । गाहापच्छद्वे वि जहामंखं णायावलंबणेण संबंधो जोजेयव्वो । तत्थ विग्दे वावीस संकमट्टाणाणि होति, मंजमोवलक्खियगुणट्टाणेषु पणुवीममंकमट्टाणं मोत्तणं मेसाणं

यद्यपि गाथामें केवल संक्रमस्थानोंका ही निर्देश किया है प्रतिग्रहस्थानों और तदुभयस्थानोंका निर्देश नहीं किया है तथापि संक्रमस्थानोंका ज्ञान हो जाने पर प्रतिग्रहस्थानों और तदुभयस्थानोंका ज्ञान सहज हो जाता है इसलिये उनका अलगसे निर्देश नहीं किया है इतना जानना चाहिये ।

§ ३०२. इस प्रकार गति मार्गणा और उनके भीतर आई हुई काय, इन्द्रिय, योग और मंजी मार्गणाओंका कथन करके अब सम्यक्त्व और संयमगत विशेषताका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—‘चदुर दुगं तेवीमा०’ इनमें क्रमसे सम्बन्ध करना चाहिये । आशय यह है कि मिथ्यात्वमें चार, मिश्रमें दो और सम्यक्त्वमें तेईस संक्रमस्थान होते हैं । उनमेंसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें सत्ताईस, छव्वीस, पच्चीस और तेईस प्रकृतिक ये चार संक्रमस्थान होते हैं २७, २६, २५, २३ । सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें पच्चोस और इक्कीस प्रकृतिक दो संक्रमस्थान होते हैं २४, २१ । तथा सम्यक्त्व सहित गुणस्थानोंमें सब संक्रमस्थान सम्भव हैं सो यह कथन सुगम है ।

शंका—सम्यक्त्व सहित गुणस्थानोंमें पच्चोस प्रकृतिक संक्रमस्थान कैसे सम्भव है ?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशमसम्यग्दृष्टि जीव पीछेसे सासादनसम्यक्त्वमें वापिस आता है उसके पच्चोस प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है ।

शंका—इसे सम्यग्दृष्टि संज्ञा कैसे दी गई है ?

समाधान—ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि इसका उत्तर दिया जा चुका है । आशय यह है कि एक तो उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर ही सासादन सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है और दूसरे इसके सासादन गुणस्थानके प्राप्त हो जाने पर भी दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका अनुदय बना रहनेके कारण मिथ्यात्व भाव प्रकट नहीं होता है इसलिये सासादन-सम्यग्दृष्टिका सम्यग्दृष्टि संज्ञा दी है । गाथाके उत्तरार्धमें भी यथामंख्य न्यायका अवलम्बन लेकर पदों का सम्बन्ध कर लेना चाहिये । यथा—विरतके बाईस संक्रमस्थान होते हैं क्योंकि संयमसे युक्त गुणस्थानोंमें पच्चोस प्रकृतिक संक्रमस्थानके सिवा शेष सभी संक्रमस्थान पाये जाते हैं ।

१. आ०प्रतो—मगणामतोभाविद— इति पाठः ।

सन्वेसिमेव संभवोवलंभादो । एदं संजमसामण्णावेक्खाए भणिदं । संजमविसेसविवक्खाए पुण सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिमंजमेसु वावीसण्हं पि संकमद्वानाणं संभवो णाण्णत्थ । तं कथं ? परिहारसुद्धिसंजमम्मि २७, २३, २२, २१ एदाणि चत्तारि संकमद्वानाणि मोत्तण सेसाणि सव्वाणि त्रि सुण्णद्वानाणि । सुद्धम०-जहाक्खाद०संजमेसु वि संकमद्वान-मेक्कं चैव संभवइ, चउवीससंतकम्मियमस्सियुण तत्थ दोण्हं पयडीणं संकमोवलंभादो । भिस्सग्गहणमेत्थ संजमासंजमस्स संगहट्ठं । तदो तम्मि पंच संकमद्वानाणि होंति त्ति संबंधो । ताणि च एदाणि—२७, २६, २३, २२, २१^१ । असंजमोवलक्खिए गुणद्वाने इमाणि चैव पणुवीसव्वहियाणि संभवन्ति त्ति सुत्ते छक्कणिदेसो कओ । ताणि चेदाणि—२७, २६, २५, २३, २२, २१ ॥१७॥

§ ३०३. एवं समत्त-संजममगणासु संकमद्वानाणमित्तासंभवं णिद्वारिय लेस्सा-मगणाए तदियत्तामंभवावहारणट्ठमुत्तरमुत्तं भणइ—‘तेवीस मुक्कलेस्से०’ सुक्कलेस्सापरिणदे जीवे तेवीमं पि संकमद्वानाणि भवन्ति, तत्थ तस्संभवे विरोहाभावादो । तेउ-पम्मलेस्सासु पुण सत्तावीसादीणमिगिवीसपज्जंताणं संभवदंमणादो छक्कणियमो—२७, २६, २५, २३, २२, २१^१ । ‘पणगं पुण काऊए’ काउलेस्साए पंचैव संकमद्वानाणि होंति, अणंतर-

यह कथन सामान्य मंयमकी अपेक्षासे किया है । संयमविशेषोंकी अपेक्षासे तो सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयममें वाईस ही संक्रमस्थान सम्भव हैं किन्तु अन्य संयमोंमें ये वाईस संक्रमस्थान सम्भव नहीं हैं । जैसे परिहारसुद्धिसंयममें २७, २३, २२ और २१ इन चार संक्रमस्थानोंके सिवा शेष सब संक्रमस्थान नहीं होते । सूक्ष्मसम्परायसंयम और यथाख्यातसंयममें भी केवल एक संक्रमस्थान सम्भव है, क्योंकि चौबीस प्रकृतिक सत्कर्मवाले जीवकी अपेक्षा यहाँ दो प्रकृतियोंका संक्रम उपलब्ध होता है । सूत्रमें मिश्र पद संयमासंयमके संग्रह करनेके लिये ग्रहण किया है, इसलिये संयमासंयम गुणस्थानमें पाँच संक्रमस्थान होते हैं ऐसा सम्बन्ध करना चाहिये । वे पाँच संक्रमस्थान २७, २६, २३, २२ और २१ ये हैं । तथा असंयम सहित गुणस्थानोंमें पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके साथ ये पूर्वोक्त पाँच ही संक्रमस्थान होते हैं, इसलिए सूत्रमें ‘छह’ पदका निर्देश किया है । वे छह संक्रमस्थान २७, २६, २५, २३, २२ और २१ ये हैं ॥१७॥

विशेषार्थ—इस गाथा द्वारा मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि, विरत, विरताविरत और अविरत जीवोंमेंसे प्रत्येकके कितने संक्रमस्थान होते हैं इसका निर्देश किया है ।

§ ३०३. इस प्रकार सम्यक्त्व मार्गणा और संयम मार्गणामें संक्रमस्थानोंके परिमाणका निर्धारण करके अब लेश्यामार्गणामें संक्रमस्थानोंके परिमाणका निश्चय करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—‘तेवीस मुक्कलेस्से०’ शुक्कलेश्यावाले जीवोंमें तईस ही संक्रमस्थान होते हैं, क्योंकि वहाँ पर इनके होनेमें कोई विरोध नहीं आता । पीतलेश्या और पद्मलेश्यामें तो सत्ताईससे लेकर इक्कीस तक ही संक्रमस्थान देखे जानेसे छहका नियम किया है—२७, २६, २५, २३, २२ और २१ । ‘पणगं पुण काऊए’ कापोत लेश्यामें पाँच ही संक्रमस्थान होते हैं, क्योंकि पीछे जो छह संक्रमस्थान

१. आ० प्रती २७, २६, २५, २३, २२, २१ इति पाठः । २. ता० प्रती १२ इति पाठः ।

परुविदट्टाणेसु वावीमाए बहिन्भावदंमणादो । कुदो वुण तत्थ तव्वहिन्भावो ? ण,
सुहत्तिलेस्साविसयस्स तम्म तदण्णत्थ उत्तिविरोहादो । एवं णील्लेस्साए किण्हलेस्साए
च वत्तव्वं, विसेसाभावादो । एवं लेस्साभग्गणाए संकमट्टाणाणुगमो ममत्तो ॥१८॥

§ ३०४. 'अवगयवेद-णवुंसय०' एमा गाहा वेदमग्गणाए संकमट्टाणमियत्ता-
परुवणट्टमागया । एत्थ अट्टाग्मादीणमवगदवेदादीहि जहामंसमहिसंबंधो कायव्वो ।
कुदो एदं णव्वेदे ? 'आणुपुव्वीए' इदि मुत्तवयणादो । तत्थावगदवेदजीवम्मि अट्टारस-
संकमट्टाणाणि संभवन्ति, सत्तावीसादीणं पंचणहं एत्थ सुण्णट्टाणत्तोवएमादो—२७, २६,
२५, २३, २२ । तदो एदाणि मोत्तण सेसाणमवगदवेदमग्गणाए संभवो ति
तेसिमिमो णिहेसो कीरदे—चउवीसमंतकम्मिओवमामगो पुरिसवेदोदएण सेट्टिमारूढो
अणियट्टिट्टाणम्मि लोभस्सामंकमगो होऊण कमेण णउंस-इत्थिवेद-छण्णो कसायाणमुव-

वतला आये हैं उनमेंसे बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान कापोत लेश्यामें नहीं पाया जाता ।

शंका—बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान कापोत लेश्यामें क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं क्योंकि बाईसप्रकृतिक संक्रमस्थान तीन शुभ लेश्याओंके मद्भावमें ही होता है, इसलिये उसकी अन्य लेश्याओंके रहते हुए प्रवृत्ति माननेमें विरोध आता है ।

इसी प्रकार नीललेश्या और कृष्णलेश्यामें भी उक्त पाँच संक्रमस्थान हांते हैं ऐसा कथन करना चाहिये, क्योंकि कापोतलेश्यासे इन दोनों लेश्याओंमें एतद्विषयक कोई विशेषता नहीं है ।

विशेषार्थ—शकललेश्या प्रारम्भके ग्यारह गुणस्थानोंमें ही सम्भव है, इसलिये इसमें सब संक्रमस्थान बतलाये हैं । पद्मलेश्या और पीतलेश्या प्रारम्भके सात गुणस्थानों तक ही सम्भव हैं किन्तु इन सात गुणस्थानोंमें २७, २६, २५, २३, २२ और २१ ये छह संक्रमस्थान ही सम्भव हैं, इसलिये इन लेश्याओंमें ये छह संक्रमस्थान बतलाये हैं । अब वहीं तीन अशुभ लेश्याओं में एक तो वे प्रारम्भके चार गुणस्थानों तक ही पाई जाती हैं और दूसरे इनके सद्भावमें दर्शनमोहनीयकी चपण सम्भव नहीं है, इसलिये इन तीन लेश्याओंमें २२ प्रकृतिक संक्रमस्थानके सिवा २७, २६, २५, २३ और २१ ये पाँच संक्रमस्थान बतलाये हैं ।

इस प्रकार लेश्यामार्गणामे संक्रमस्थानोंका विचार समाप्त हुआ ॥१८॥

§ ३०५. 'अवगयवेद-णवुंसय' यह गाथा वेदमार्गणामें संक्रमस्थानोंके परिमाणका कथन करनेके लिये आई है । यहाँ पर अठारह आदि पदोंका अवगदवेद आदि पदोंके साथ क्रमसे सम्बन्ध करना चाहिये ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—सूत्रमें आये हुए 'आनुपूर्वी' इस वचनसे जाना जाता है । उनमेंसे अपगत-वेदी जीवके अठारह संक्रमस्थान सम्भव हैं, क्योंकि यहाँ मत्ताईस आदि पाँच स्थान नहीं हांते ऐसा आगमका उपदेश है । वे पाँच शून्यस्थान ये हैं—२७, २६, २५, २३ और २२ । यतः इन पाँच संक्रम-स्थानोंके सिवा शेष सब संक्रमस्थान अपगतवेदमार्गणामें सम्भव हैं अतः यहाँ उनका निर्देश करते हैं—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव पुरुषवेदके उदयसे श्रेणि पर चढ़ता है वह अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें पहुँचकर पहले लोभसंज्वलनके संक्रमका अभाव करता है फिर

सामणाए परिणदो अवगदवेदत्तमुवणमिय चोहसण्हं संकामगो होइ १ । पुणो पुरिसवेद-
णवकबंधमुवसामिय तेरमण्हं संकामयत्तमुवगओ २ दुविहकोहोवसामणाए एकारस-
संकामयत्तं पडिवण्णो ३ कोहमंजलणोवसामणवावारेण दसण्हं संकामयत्तमणुपालिय ४
दुविहमाणोवसामणाए परिणमिय अट्टण्हं संकामयभावमुवगओ ५ माणसंजलणोवसामणाए
सत्तण्हं संकामओ होऊण ६ दुविहमायमुवसामिय पंचण्हं संकमस्स सामिओ जादो ७ ।
पुणो मायासंजलणोवसामणाणंतरं चउण्हं संकामयत्तमुवणमिय ८ दुविहलोहोवसामणा-
वावदो दोण्हं संकामओ जायदे ९ । एवमेदाणि णवसंकमट्ठाणाणि पुरिसवेदोदइल्ल-
चउवीससंतकम्मियमम्मिसयूणावगयवेदट्ठाणम्मि लब्भंति ।

§ ३०५. मंपहि इगिवीमसंतकम्मिओवसामगस्स पुरिसवेदोदएण सेहिं चडिदस्स
आणुपुव्वीमंकमाणंतरमुवमामिदणवुंमय-इत्थिवेद-छण्णोकसायस्स बारसमंकमट्ठाणमवगद-
वेदपडिवद्धमुप्पज्जइ । पुणो दुविहकोह-दुविहमाण-दुविहमायापयडीणमुवसामणपजाएण
परिणदस्स जहाकमं णवण्हं छण्णं तिण्हं मंकमट्ठाणाणि ममुप्पज्जंति । एवमेदाणि
चत्तारि चैव मंकमट्ठाणाणि एत्थ लब्भंति, सेसाणं पुणरुत्तभावदंसणादो । एदाणि
पुव्विल्लेहि सह मेलाविदाणि तेरम मंकमट्ठाणाणि हांति । पुणो तस्सेव णउंसयवेदोदएण
सेहिं चडिदस्स आणुपुव्वीमंकमाणंतरमुवमामिद-णवुंमय-इत्थिवेदस्स वेदपरिणामविरहेणाव-

क्रमसे नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और छह नोकषायोंका उपशम करनेके बाद अपगतवेदी होकर चौदह
प्रकृतियोंका संक्रामक होता है १ । फिर पुरुषवेदके नवकवन्धका उपशम करके तेरह प्रकृतियोंका
संक्रामक होता है २ । फिर दो प्रकारके क्रोधका उपशम हो जाने पर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान-
को प्राप्त होता है ३ । फिर क्रोधमंज्वलनके उपशमन द्वारा दस प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त करके ४
दो प्रकारके मानका उपशम करके आठ प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त होता है ५ । फिर मान-
सञ्चलनका उपशम हो जाने पर सात प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त करके ६ अनन्तर दो प्रकारकी
मायाको उपशमा कर पाँच प्रकृतिक संक्रमस्थानका स्वामी होता है ७ । फिर माया संञ्चलनके
उपशमानेके बाद चार प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त करके ८ अनन्तर दो प्रकारके लाभका उपशम
हो जाने पर दो प्रकृतियोंका संक्रामक होता है ९ । इस प्रकार जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला
जीव पुरुषवेदके उदयसे उपशमश्रेणि पर चढ़ कर अपगतवेदी होता है उसके अपगतवेदस्थानमें
ये नौ संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं ।

§ ३०५. अब पुरुषवेदके उदयसे श्रेणिपर चढ़े हुए इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक
जीवके आनुपूर्वी संक्रमके बाद नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और छह नोकषायोंका उपशम हो जाने पर
अपगतवेदसे सम्बन्ध रखनेवाला बारह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । फिर दो प्रकारके
क्रोध, दो प्रकारके मान और दो प्रकारकी माया इन प्रकृतियोंके उपशमभावसे परिणत हुए जीवके
क्रमसे नौ, छह और तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार यहां ये चार ही संक्रम-
स्थान प्राप्त होते हैं, क्योंकि शेष संक्रमस्थान पुनरुक्त देखे जाते हैं । इन चारको पहलेके नौ संक्रम-
स्थानोंमें मिला देनेपर तेरह संक्रमस्थान होते हैं । फिर जब यही नपुंसकवेदके उदयसे श्रेणिपर
चढ़कर आनुपूर्वीसंक्रमके बाद नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम करके वेदपरिणामसे रहित होकर

गद्वेदभावमुवगयस्स संकमट्टारसपयडिपडिवद्धमेक्कं चेव पुणरुत्तभावविरहिदमुवल्लभइ, एत्तो उवरिमाणं पुणरुत्तभावदंसणादो । एदस्स चेव सेहीदो ओदरमाणयस्स वारसकसाय-सत्तणोकसायाणमोक्कड्डुणावावदस्स पयदमग्गणाविसयमेगूणवीससंकमट्टाणमपुणरुत्त-मुप्पज्जदे, तेणेदेसिं दोण्हं संकमट्टाणाणं पुच्चिल्लेहि सह मेलणे कदे पण्णारस संकम-ट्टाणाणि हांति । एवं चेव णवुंसयवेदोदयसहगदचउवीसमंतकम्मियस्स वि चट्ठणोव-यरणवावदस्स दोण्हमपुणरुत्तसंकमट्टाणाणमुप्पत्ती वत्तच्चा, तत्थ जहाकमं पुच्चुत्तपदेसु वीसेक्कवीसाणमवगद्वेदसंबंधेण समुप्पज्जंताणमुवलंभादो । एदाणं पुच्चिल्लसंकमट्टाणाण-मुवरि पक्खेवे कदे सत्तारससंकमट्टाणाणि पयदविसए लद्धाणि भवंति । खवगस्स वि पुरिस-णवुंसयवेदोदइल्लस्स चउक्कदसगप्पहुडीणि अवगदवेयसंकमट्टाणाणि पुणरुत्ताणि चेव समुप्पज्जंति । णवरि सच्चपच्छिममेक्किस्से संकमट्टाणमपुणरुत्तमुवल्लभदे । तदो एदेण सह अट्टारससंकमट्टाणाणि अवगद्वेदजीवपडिवद्धाणि भवंति ।

§ ३०६. मंपहि णवुंसयवेदमग्गणाए णव संकमट्टाणाणि हांति त्ति विदिओ सुत्तावयवो । तत्थ मत्तावीसादीणि इगिवीसपज्जंताणि छ संकमट्टाणाणि सेहीदो हेट्ठा चेव णिरुद्धवेदोदयम्मि लब्भंति । इगिवीसमंतकम्मियोवसामगस्स आणुपुच्चीसंकम-मस्सियूण वीससंकमट्टाणमेत्थोवल्लभदे । पुणो णवुंसयवेदोदाएण सेट्ठिमारूढस्स खवगस्स अट्टकमायक्खवणेण तेरससंकमट्टाणमुवल्लभइ । तस्सेवाणुपुच्चीमंकमपरिणदस्स

अपगतवेदभावको प्राप्त हो जाता है तब उसके मात्र अठारह प्रकृतिक संकमस्थान अपुनरुक्त उपलब्ध होता है क्योंकि इससे आगेके संकमस्थान पुनरुक्त देखे जाते हैं । तथा जब यही जीव श्रेणिसे उतरते समय बारह कपाय और सात नोकपायोंका अपकर्षण कर लेता है तब इसके प्रकृत मार्गणाका विषयभूत अपुनरुक्त उन्नीस प्रकृतिक संकमस्थान उत्पन्न होता है । अतः इन दो संकम-स्थानोंका पूर्वोक्त तरह संकमस्थानोंमें मिलाने पर पन्द्रह संकमस्थान होते हैं । तथा इसी प्रकार नपुंसकवेदके उदयके साथ चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके भी चढ़ते और उतरते समय दो अपुनरुक्त स्थानोंकी उत्पत्ति कहनी चाहिये, क्योंकि वहां पर क्रमसे पूर्वोक्त स्थानोंमें अपगतवेदके सम्बन्धसे बीस प्रकृतिक और इक्कीस प्रकृतिक ये दो स्थान उत्पन्न होते हुए उपलब्ध होते हैं । इन स्थानोंका पूर्वोक्त संकमस्थानोंमें मिला देने पर प्रकृत विषयमें सत्रह संकमस्थान लब्ध होते हैं । पुरुषवेद और नपुंसकवेदके उदयवाले क्षपक जीवके भी अपगतवेद सम्बन्धी क्रमसे चार आदि और दस आदि संकमस्थान पुनरुक्त ही उत्पन्न होते हैं । किन्तु इनकी विशेषता है कि सबके अन्तमें एक प्रकृतिक संकमस्थान अपुनरुक्त उपलब्ध होता है । इसलिये इसके साथ अपगतवेदी जीवसे सम्बन्ध रखनेवाले अठारह संकमस्थान होते हैं ।

§ ३०६. अब नपुंसकवेद मार्गणामें नौ संकमस्थान होते हैं इस आशयके सूत्रके दूसरे चरणका व्याख्यान करते हैं—उन नौमेंसे सत्ताईससे लेकर इक्कीस तकके छ संकमस्थान तो श्रेणि पर नहीं चढ़नेके पूर्व ही प्रकृत वेदके उदयमें प्राप्त होते हैं । तथा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके आनुपूर्वी संकमके आश्रयसे बीस प्रकृतिक संकमस्थान भी यहां पाया जाता है । फिर नपुंसकवेदके उदयसे श्रेणिपर चढ़े हुए क्षपक जीवके आठ कपायोंका क्षय हो जानेसे तेरह

वारससंकमट्टाणमुपपञ्जइ । एवं पयदमगगणाविसए णव णेव संकमट्टाणाणि होंति त्ति सिद्धं—२७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १३, १२ । सेसाणमेत्थ संभवो णत्थि ।

§ ३०७. इत्थिवेदम्मि एकारससंकमट्टाणाणि होंति त्ति तदियं^१ सुत्तावयव-मस्सियूण संकमट्टाणाणमेवं चेव परूवणा कायव्वा । णवरि णवुंसयवेदपडिबद्धणव-संकमट्टाणाणमुवरि एगुणवीसेकारससंकमट्टाणाणमहियाणमुवलंभो वत्तव्वो, इगिवीस-संतकम्मिओवसामग-खवगेसु णिरुद्धवेदोदएण णवुंसयवेदोवसामण-क्खवणपरिणदेसु जहाकमं तदुवलंभादो । पुरिसवेदोदयम्मि तेरससंकमट्टाणाण परूवयस्स चउत्थसुत्ता-वयवस्म वि परूवणाए एसो चेव कमो । णवरि दोण्हमपुञ्जसंकमट्टाणाणमुवलंभो एत्थ वत्तव्वो, इगिवीससंतकम्मियोवसामग-खवगेसु पयदवेदोदएणित्थिवेदोवसामण-खवण-वावदेसु जहाकममट्टारस-दमसंकमट्टाणाणं एत्थ संभवोवलंभादो ॥१०॥

§ ३०८. एवं वेदमगगणाए संकमट्टाणाणमणुगमं काऊण मंपहि कसायमगगणा-विसए तदणुगमं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—‘कोहादी उवजोगे०’ एत्थ कोहादी उवजोगे त्ति वयणेण कमायमगगणाए संकमट्टाणाणं परूवणं कस्सामो त्ति पइज्जा

प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है । तथा उसीके आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ हो जानेपर बारह प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है । इस प्रकार प्रकृत मार्गणामें नौ ही संक्रमस्थान होते हैं यह बात सिद्ध होती है— २७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १३ और १२ । शेष संक्रमस्थान यहाँपर संभव नहीं हैं ।

§ ३०७. स्त्रीवेदमें ग्यारह संक्रमस्थान होते हैं इस तीसरे सूत्र वचनके आश्रयसे संक्रम-स्थानोंका पूर्वाक्त प्रकारसे ही कथन करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदसे सम्बन्ध रखनेवाले नौ संक्रमस्थानोंके साथ स्त्रीवेदमें उन्नीस और ग्यारह प्रकृतिक ये दौ संक्रम-स्थान अधिक उपलब्ध होते हैं ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक और क्षपक जीवोंके नपुंसकवेदका उपशाम और क्षय हो जानेपर विवक्षित वेदके उदयके साथ क्रमसे उक्त दानों स्थान उपलब्ध होते हैं । पुरुषवेदके उदयमें तेरह संक्रमस्थानोंका कथन करनेवाले सूत्रके चौथे चरणकी प्ररूपणामें भी यही क्रम जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि दौ नये संक्रमस्थानोंका सद्भाव यहाँपर कहना चाहिये, क्योंकि इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशामक या क्षपक जीव प्रकृत वेदका उदय रहते हुए स्त्रीवेदकी उपशामना या क्षपणा करता है उसके यहाँ पर क्रमसे अठारह और दस प्रकृतिक ये दौ संक्रमस्थान उपलब्ध होते हैं ॥१६॥

विशेषार्थ—उस उन्नीसवीं गाथा द्वारा वेद मार्गणाकी अपेक्षा विचार करते हुए अपगतवेद, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें कहां कितने संक्रमस्थान होते हैं इसका स्पष्ट निर्देश किया है । विशेष खुलासा टीकामें आ चुका है, इसलिये इस विषयमें और अधिक नहीं लिखा जाता है ।

§ ३०८. इस प्रकार वेदमार्गणामें संक्रमस्थानोंका विचार करके अब कपाय मार्गणामें उनका विचार करते हुए आगेका सूत्र कहते हैं—‘कोहादी उवजोगे०’ यहाँ सूत्रमें आये हुए ‘कोहादी उवजोगे०’ वचन द्वारा कपायमार्गणामें संक्रमस्थानोंका कथन करेगे यह प्रतिज्ञा की गई है । इस

कया । एवं पइण्णं काऊण कोहादिमु चदुमु कमाएमु परिवाडीए संकमट्टाणगवेसणा कीग्दे । एत्थं जहामंखणाएणाहिमंबंधो कायच्चो त्ति जाणावणट्टमाणुपुव्वीए त्ति उत्तं । तं जहा—कोहकमायम्मि मोलस संकमट्टाणाणि होति, माणकमायोदयम्मि ऊणवीम संकमट्टाणाणि भवंति, सेसेमु दोमु वि कमाओवजोगेमु पादेक्कं तेवीमसंकमट्टाणाणि भवंति त्ति । तत्थ ताव कोहकसायम्मि मोलसण्हं संकमट्टाणाणं संभवो उच्चदे । तं जहा—सत्तावीसादीणि इगिवीसपज्जंताणि संकमट्टाणाणि सेठीदो हेट्टा चेव मिच्छाइट्टि-आदिगुणट्टाणेमु जहासंभवं लब्भंति । पुणो चउवीसमंतकम्मियोवसामगस्स कोहकसायोदएण उवममसेट्ठि चट्ठिदस्स तेवीस-वावीम-इगिवीमसंकमट्टाणाणि पुणरुत्ताणि होदण पुणो वीम-चोहस-तेरमसंकमट्टाणाणि लब्भंति णाण्णाणि, कोहकमायम्मि णिरुद्धे एत्तो उवरिमाणमसंभवादो । इगिवीसमंतकम्मियोवमामगमस्सिगुण पुण एगुण-वीमट्टाग्म-वारसेक्कारमसंकमट्टाणाणि लब्भंति, हेट्टिमाणं पुणरुत्ताणमसंगहादो । उवरिमाणं च णिरुद्धकसायोदयम्मि संभवाभावादो । खवगस्स वि णिरुद्धकसायोदइल्लस्स दस-चउक्क-तियसंकमट्टाणाणि अपुणरुत्ताणि लब्भंति, हेट्टिमोवरिमाणं पुव्वुत्तण्णाएण वहिंभावंदंमणादो । एवमेदाणि मोलस संकमट्टाणाणि कोहकमायम्मि लब्भंति त्ति सिद्धं—

प्रकारकी प्रतिज्ञा करके क्रोधदि चार कपायोंमें क्रमसे संक्रमस्थानोंका विचार करते हैं । यहां 'यथासंख्य, न्यायके अनुसार पदोंका सम्बन्ध करना चाहिये यह जतानेके लिये सूत्रमें 'आनुपूर्वी' पद कहा है । ग्लुलामा इस प्रकार हैं—क्रोध कपायमें सोलह संक्रमस्थान होते हैं, मान कपायके उदयमें उन्नीस संक्रमस्थान होते हैं तथा ओष दो कपायोंके मद्भावमें भी प्रत्येकमें तेईस संक्रमस्थान होते हैं । अब सर्वप्रथम क्रोध कपायमें सोलह संक्रमस्थानोंका सङ्काव बतलाते हैं । यथा—सत्ताईससे लेकर इक्कीस तक जितने भी संक्रमस्थान हैं वे श्रेणि चढ़नेके पूर्व ही मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें यथासंभव पाये जाते हैं । फिर जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव क्रोध कपायके उदयमें उपशामश्रेणि पर चढ़ा है उसके यद्यपि तेईस, बाईस और इक्कीस प्रकृतिक तीन संक्रमस्थान पुनरुक्त होते हैं तथापि बीस, चौदह और तेरह ये तीन संक्रमस्थान अपुनरुक्त प्राप्त होते हैं । इसके इनके अतिरिक्त अन्य संक्रमस्थान नहीं प्राप्त होते, क्योंकि क्रोध कपायके रहते हुए इनमें आगेके स्थानोंका पाया जाना संभव नहीं है । इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके आश्रयमें मात्र उन्नीस, अठारह, बारह और ग्यारह प्रकृतिक चार संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं, क्योंकि इनमें पूर्वके संक्रमस्थान पुनरुक्त होनेमें उनका यहाँपर संग्रह नहीं किया गया है । और ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानसे आगेके संक्रमस्थान विवक्षित कपायके उदयमें संभव नहीं हैं । इसी प्रकार क्षपकके भी विवक्षित कपायका उदय रहते हुए दस, चार और तीन प्रकृतिक अपुनरुक्त संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं, क्योंकि पूर्वोक्त न्यायके अनुसार नीचे और ऊपरके संक्रमस्थानोंका संग्रह न करके उन्हें अलग कर दिया है । अर्थात् दस प्रकृतिक संक्रमस्थानसे पूर्वके जितने संक्रमस्थान यहाँ संभव हैं वे तो पुनरुक्त समझ कर छोड़ दिये गये हैं और तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानसे आगेके संक्रमस्थानोंका यहाँ पाया जाना संभव न होनेसे उन्हें छोड़ दिया है । इस प्रकार क्रोधकपायमें

२७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ४, ३ ।

§ ३०९. माणकसायोदए वि एदाणि चैव णवट्टु-दोपयडिमंकमट्टाणम्भहियाणि एगूणवीससंखाविसेसियाणि होंति, इगिवीमसंतकम्मियोवमामगम्मि दुविह[कोह]-कोह मंजलणोवसामणपरिणदम्मि जहाकमं माणोदएण सह णवट्टुपयडिमंकमट्टाणोवलंभादो । खवगस्स च कोहसंजलणपरिक्खए दोण्हं पयडीणं संकंतिदंमणादो । एवं माणकसायो-दयम्मि एगूणवीससंकमट्टाणाणि होंति ण सेसाणि, तेमिमेत्थ सुण्णट्टाणत्तोवएमादो । सेसकसाएसु दोसु वि पादेक्कं तेवीस मंकमट्टाणाणि होंति, तेसिं तत्थ संभवे विगोहा-भावादो । एत्थाकसाईसु मंकमट्टाणमेक्कं चैव लब्भदे, चउवीससंतकम्मियोवसामगस्स उवसंतकमायगुणट्टाणम्मि दोण्हं पयडीणं संकमोवलंभादो ॥२०॥

§ ३१०. एवं कसायमग्गणं समाणिय णाणमग्गणागयविसेमपट्टुप्पायणट्टुमुत्तर-सुत्तमाह—‘णाणम्मि य तेवीसा०’ एत्थ तिविहणाणग्गहणेण मदि-सुदोहिणाणाणं मंगहो कायव्वो, तेवीसमंकमट्टाणाहागणमण्णेमिममंभवादो । कधमेत्थ पणुवीस-मंकमट्टाणमंभवो त्ति णामंक्रियव्वं, सम्मामिच्छाइड्डिमि तदुवलंभसंभवादो । कधं ये सोलह संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं यह सिद्ध होता है—२७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ४ और ३ ।

§ ३०९. मान कपायके उदयमे भी सोलह तो ये ही तथा नौ, आठ और दो प्रकृतिक तीन और उस प्रकार कुल उन्नीस संक्रमस्थान होते हैं, क्योंकि जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव दो प्रकारके क्रोध और क्रोधसंज्वलनका उपशम कर देता है उसके क्रमसे मान-कपायका उदय रहते हुए नौ प्रकृतिक और आठ प्रकृतिक ये दो संक्रमस्थान पाये जाते हैं । तथा क्षपकके क्रोधसंज्वलनका क्षय हो जानेपर दो प्रकृतिक संक्रमस्थान देखे जाते हैं । इस प्रकार मानकपायका उदय रहते हुए केवल उन्नीस संक्रमस्थान होते हैं शेष संक्रमस्थान नहीं होते, क्योंकि यहाँ उनका अभाव देखा जाता है ऐसा उपदेश है । शेष दो कपायके सद्भावमे भी प्रत्येकमे तेईस संक्रमस्थान होते हैं, क्योंकि उनके वहाँ होनेमे कोई विरोध नहीं आता है । यहाँ पर कपाय रहित जीवोंके संक्रमस्थान एक ही उपलब्ध होता है, क्योंकि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके उपशान्तकपाय गुणस्थानमें केवल दो प्रकृतियोंका संक्रम पाया जाता है ॥२०॥

§ ३१०. इस प्रकार कपायमार्गणाका कथन समाप्त करके अब ज्ञानमार्गणा सम्बन्धी विशेषताका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—‘णाणम्मि य तेवीसा०’ इस गाथा सूत्रमें तीन प्रकारके ज्ञानका ग्रहण करनेसे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान इन तीन ज्ञानोंका संग्रह करना चाहिये, क्योंकि तेईस संक्रमस्थानोंका आधार अन्य ज्ञान नहीं हो सकते ।

शंका—इन तीन ज्ञानोंमें पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान कैसे सम्भव है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि सम्यग्मिध्यादृष्टि गुणस्थानमें उसकी उपलब्धि होती है ।

मिस्सणाणस्स मण्णाणंतम्भावो ? ण, असुद्धंणयाहिप्पाएण तस्स तदंतम्भावविरोहा-
भावादो । कधमोहिणाणम्मि पढममम्मत्तग्गहणपढमसमयलद्धप्पसरूवस्स छ्वीस-
संकमट्टाणस्स संभवो ? ण एस दोसो, देव-णेग्गएसु तग्गहणपढमसमए चेव तण्णाणस्स
सरूवोवलंभमंभवादो । 'एक्कम्मि एक्कवीसा य' एक्कम्मि मणपज्जवणाणे एक्कवीससंखा-
वच्छिण्णाणि संकमट्टाणाणिं होंति, तत्थ पणुवीस-छ्वीसाणमसंभवादो । 'अण्णाणम्मि-
य तिविहे पंचेव य संकमट्टाणा ।' कुदो ? तत्थ सत्तावीसादीणमिगिगीसपज्जंतसंकमट्टाणाणं
वावीमव्वहिम्भावेण पंचसंखावहारियाणं समुवलंभादो । एत्थ चक्खु-अचक्खु-ओहि-
दंसणीसु पुघ परूवणा ण कया, तेसिमोघपरूवणादो भेदाभावादो मदि-सुदोहिणाण-
परूवणाहि चेव गयत्थत्तादो^१ वा । तदो तत्थ पादेक्कं तेवीससंकमट्टाणसंभवो
अणुगंतव्वो ॥२१॥

§ ३११. एवं णाणमग्गणं संगतोभाविददंसणाणुवादं परिसमाणिय संपहि
भवियाहारमग्गणासु संकमट्टाणगवेसणट्टमुत्तरं गाहासुत्तमोइण्णं—'आहारय-भविएसु य०'
आहारमग्गणाए भवियमग्गणाए च तेवीम संकमट्टाणाणि भवंति, सव्वेसिं तत्थ संभवे

शंका—मिश्रज्ञानका सम्यग्ज्ञानमें अन्तर्भाव कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अशुद्ध नयके अभिप्रायसे मिश्रज्ञानका सम्यग्ज्ञानमें अन्तर्भाव
करनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शंका—प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें प्राप्त होनेवाला छ्वीस प्रकृतिक
संकमस्थान अवधिज्ञानमें कैसे सम्भव है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि देव और नारकियोंमें प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण
करनेके प्रथम समयमें ही अवधिज्ञानकी स्वरूप प्राप्ति सम्भव है और इसीसे अवधिज्ञानमें छ्वीस
प्रकृतिक संकमस्थान बन जाता है ।

'एक्कम्मि एक्कवीसा य' एक मनःपर्ययज्ञानमें इक्कीस संकमस्थान होते हैं, क्योंकि इसमें
पच्चीस और छ्वीस प्रकृतिक संकमस्थान सम्भव नहीं है । तथा 'अण्णाणम्मि य तिविहे पंचेव
य संकमट्टाणा' तीन प्रकारके अज्ञानोंमें पांच ही संकमस्थान होते हैं, क्योंकि वहाँ बाईसके बिना
सत्ताईससे लेकर इक्कीस तक पांच ही संकमस्थान पाये जाते हैं । यहाँपर चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन
और अवधिदर्शनमें अलगसे प्ररूपणा नहीं की है, क्योंकि इनके कथनमें ओघ कथनसे कोई भेद
नहीं पाया जाता । अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानकी प्ररूपणा द्वारा ही इनमें कितने
संकमस्थान होते हैं इसका ज्ञान हा जाता है, अतएव इन तीन दर्शनोंमेंसे प्रत्येकमें तेईस
संकमस्थान सम्भव हैं यह जान लेना चाहिये ।

§ ३११. इसप्रकार ज्ञानमार्गणा और उसमें गर्भित दर्शनमार्गणाके कथनको समाप्त करके
अब भव्य और आहार मार्गणाओंमें संकमस्थानोंका विचार करनेके लिये आगेका गाथासूत्र कहते
हैं—'आहारय-भविएसु य०' आहारमार्गणा और भव्यमार्गणामें तेईस संकमस्थान हाते हैं,

१. ता०—आ०प्रत्योः शोसुद्ध- इति पाठः । २. आ०प्रतौ —संखा वड्ढिहाणिसंकमट्टाणाणि
इति पाठः । ३. ता०प्रतौ गयत्थादो इति पाठः ।

विरोहाभावादो । 'अणाहारणसु पंचेव मंक्रमट्टाणाणि होति, सत्तावीसादीणमिगिगीस-
पजंताणं' चेव वावीमवज्जाणं तत्थ संभवोवलंभादो । 'एयट्टाणं अभविणसु' । कुदो ?
पणुवीममंक्रमट्टाणस्सेकस्सेव तत्थ संभवदंसणादो ॥२२॥

§ ३१२. एवमेत्तिएण पंचेण मग्गणाट्टाणेषु संक्रमट्टाणाणं गवेसणं कादूण
संपहि तेसु चेव सुण्णट्टाणपरूवणं कुणमाणो सेममग्गणाणं देसामासयभावेण वेद-
कसायमग्गणासु तप्परूवणट्टपुवग्गिमं गाहासुत्तपंचमाह—'छव्वीस सत्तवीसा' २६, २७,
२५, २३, २२ एवमेदाणि पंच संक्रमट्टाणाणि अवगदवेदविमए ण संभवन्ति । तदो
एदाणि तत्थ सुण्णट्टाणाणि त्ति घेत्तव्वाणि, जत्थ जं मंक्रमट्टाणमसंभवइ तत्थ तस्स
सुण्णट्टाणपंचएमावलंबणादो ॥२३॥

§ ३१३. 'उणुवीमट्टाग्गमं' १०, १८, १४, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४,
३, २, १ एवमेदाणि चोदम मंक्रमट्टाणाणि णवुंसयवेदे सुण्णट्टाणाणि होति त्ति
सुत्तत्थमंगहो । सेमं सुग्गमं ॥२४॥

§ ३१४. 'अट्टाग्गम चोदमगं' १८, १४, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १
एवमेदाणि वाग्ग मंक्रमट्टाणाणि इत्थिवेदविमए सुण्णट्टाणाणं होति त्ति भणिदं होइ ।

क्योंकि इन मार्गणाओंमें सब संक्रमस्थानोंके पाये जानेमें कोई विरोध नहीं आता । अनाहारकम
पांच ही संक्रमस्थान होते हैं, क्योंकि यहाँपर वाईसके सिवा सत्ताईससे लेकर इकंम पर्यन्त पांच
संक्रमस्थान ही उपलब्ध होते हैं । तथा 'एगट्टाणं अभविणसु' अभव्याके एक संक्रमस्थान होता है,
क्योंकि इनमें एक पचीस प्रकृतिक संक्रमस्थान ही देखा जाता है ॥२२॥

§ ३१२. इसप्रकार इनके कथन द्वारा मार्गणास्थानोंमें संक्रमस्थानोंका विचार करके अब
उन्हीं मार्गणाओंमें अन्यस्थानोंका कथन करनेकी इच्छासे यतः वेद और वपाय मार्गणा शेष
मार्गणाओंके देशामपेक्षरूपसे ग्रहण की गई है अतः उन्हीं मार्गणाओंमें अन्य स्थानोंका कथन
करनेके लिये आगेका गाथसूत्र कहते हैं—'छव्वीस सत्तवीसा' अपगतवेदमें २६, २७, २५, २३
और २२ ये पांच संक्रमस्थान सम्भव नहीं हैं, इसलिये ये वहाँ अन्य स्थानरूप जानने चाहिये,
क्योंकि जहाँ जो संक्रमस्थान असम्भव होता है वहाँ उसे अन्यस्थान संज्ञा दी गई है । आशय यह
है कि ये पांच संक्रमस्थान वेदवाले जीवके ही पाये जाते हैं इसलिये अपगतवेदमें इनका अभाव
बतलाया है ॥२३॥

§ ३१३. उणुवीसट्टाग्गमं' १९, १८, १५, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २ और १ इस
प्रकार ये चौदह संक्रमस्थान नपुंसकवेदमें अन्यस्थान हैं यह इस सूत्रका तात्पर्य है । शेष कथन
सुग्गमं है । आशय यह है कि नपुंसकवेदमें २० प्रकृतिक संक्रमस्थान तकके सब और १३ तथा १२
प्रकृतिक ये दो इस प्रकार कुल नौ संक्रमस्थान ही पाये जाते हैं शेष नहीं, इसलिये शेषका यहाँ
निषेध किया है ॥२४॥

§ ३१४. 'अट्टाग्गम चोदमगं' १८, १४, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २ और १ इस प्रकारके
ये बारह संक्रमस्थान स्त्रीवेदमें अन्यस्थान होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । शेष कथन सुग्गम

१. ता०प्रतौ पजतायां इति पाठः । २. ता०प्रतौ संक्रमट्टाणाणि इति पाठो नास्ति ।

सुगममण्णं ॥२५॥

§ ३१५. 'चोहमग णवगमादी' १४, ०, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १ एवमेदाणि दस मंक्रमद्व्याणाणि उवमामग-खवगपडिवद्धाणि पुरिमवेदविमए सुण्णद्व्याणाणि होंति त्ति गाहासुत्तथमंगहो । सुगममन्यत् ॥२६॥

§ ३१६. 'णव अट्ट मत्त छक्कं' ०, ८, ७, ६, ५, २ १ एवमेदाणि सत्त संक्रमद्व्याणाणि कोहकमायोवजुत्तेसु सुण्णद्व्याणाणि होंति त्ति सुत्तथसमुच्चओ ॥२७॥

§ ३१७. 'मत्तय छक्कं पणगं च' ७, ६, ५, १ एवमेदाणि चत्तारि माण-कमायोवजुत्तेसु सुण्णद्व्याणाणि होंति त्ति भणिदं होइ । सेमदोकमाएसु णत्थि एमो विचारो, मच्चैसिमेव मंक्रमद्व्याणाणं तत्थामुण्णभावदंमणादो ॥२८॥

§ ३१८. एवमेदीण दिमाए सेममग्गणामु वि सुण्णद्व्याणगवेमणा कायच्चा त्ति पदुप्पायणट्टमुवरिमगाहामुत्तमाह—'दिट्ठे सुण्णामुण्णे' वेद-कमायमग्गणामु सुण्णा-मुण्णद्व्याणपविभागेषु पुच्चुत्तकमेण दिट्ठे मंते पुणो एदीण दिमाए गदिद्यादिमग्गणामु वि जत्थतत्थानुपुच्चीण मंक्रमद्व्याणाणं सुण्णामुण्णभावगवेमणा कायच्चा त्ति सुत्तथ-मंवंधो ॥२९॥

हैं। आशय यह है कि स्त्रीवेदमें उन्नीस प्रकृतियस्थान तकके सब तथा १३, १२ और ११ प्रकृतिक ये तीन इसप्रकार कुल ग्यारह संक्रमस्थान पाये जाते हैं शेष नहीं, इसलिये शेषका यहाँ निषेध किया है ॥२३॥

§ ३१५ 'चोहमग णवगमादी' १४, ०, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २ और १ इस प्रकार ये दस मंक्रमस्थान पुरुषवेदी उपशामक और क्षपकजीवोंके शून्यस्थान होते हैं यह इस गायामंत्रका समुच्चयार्थ है। शेष कथन सगम हैं। आशय यह है कि पुरुषवेदमें पन्द्रह प्रकृतिक स्थान तकके सब तथा १३, १२, ११ और १० प्रकृतिक ये चार इस प्रकार कुल १२ मंक्रमस्थान होते हैं शेष नहीं, इसलिये शेषका यहाँ निषेध किया है ॥२६॥

§ ३१६. 'णव अट्ट मत्त छक्कं' ०, ८, ७, ६, ५, २ और १ इस प्रकार ये सात संक्रमस्थान क्रोधकपायवाले जीवोंमें शून्यस्थान होते हैं यह इस सूत्रका समुच्चयार्थ है। आशय यह है कि क्रोध कपायमें १० प्रकृतिक संक्रमस्थान तकके सब तथा ४ और ३ प्रकृतिक ये दो इस प्रकार कुल १६ संक्रमस्थान होते हैं शेष नहीं, इसलिये शेषका यहाँ निषेध किया है ॥ २७ ॥

§ ३१७. 'सत्त य छक्कं पणगं च' ७, ६, ५ और १ इस प्रकार ये चार मंक्रमस्थान मान-कपायवाले जीवोंमें शून्यस्थान होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। आशय यह है कि मानकपायमें इन चारके सिवा शेष सब संक्रमस्थान होते हैं, इसलिये यहाँ चार स्थानोंका निषेध किया है। किन्तु शेष दो कपायोंमें यह विचार नहीं है, क्योंकि यहाँ पर सभी मंक्रमस्थान अशून्यभासमें देखे जाते हैं ॥२८॥

§ ३१८ इस प्रकार इसी पद्धतिमें शेष मार्गणाओंमें भी शून्यस्थानोंका विचार कर लेना चाहिये यह दिग्बलानेके लिये अब आगेका गायामंत्र कहते हैं—'दिट्ठे सुण्णामुण्णे' वेद और कपाय मार्गणामें शून्यस्थानों और अशून्यस्थानोंके विभागका पूर्वोक्त क्रममें विचारकर लेनेके बाद फिर इसी पद्धतिसे गति आदि मार्गणाओंमें भी यत्रतत्रानुपूर्वीके क्रमसे संक्रमस्थानोंके सङ्काव और असङ्कावका विचार कर लेना चाहिये यह इस सूत्रका अभिप्राय है ॥२९॥

§ ३१९. एवं गदिआदिमग्गणामु संकमट्टाणाणं संभवगवेसणमण्णय-वदिरेगेहिं काट्ठण संपहि वंध-संकम-संतकम्मट्टाणाणमेग-दुसंजोगकमेण णिरुंभणं काट्ठण सण्णियास-परूवणट्ठमुवरिमगाहासुत्तमाह—‘कम्मंसियट्टाणेषु य०’ एसा गाहा ट्टाणसमु-क्त्तिणाए ओघादेसेहि समुक्त्तिदाणं संकमट्टाणाणं पडिणियदपडिग्गहट्टाणपडिबट्टाणं वंध-संतट्टाणेषु मग्गणाविहिं परूवेदि । एदिस्से अत्थविवरणं कस्सामो । तं जहा—कम्मंसियट्टाणाणि णाम संतकम्मट्टाणाणि । ताणि च मोहणीए अट्टावीम-मत्तावीम-छव्वीम—चउव्वीम—तेव्वीम—वावीसेकवीस-तेरस—वारस—एकारम-पंच-चट्ठक-ति-दु-एकपयडि-पडिबट्टाणि । तेसिमेमा टवणा—२८, २७, २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २, १ । वंधट्टाणाणि च वावीम-इग्गिवीस-सत्तारस-तेग्ग-णव-पंच-चट्ठक-ति-दु-एकमण्णिदाणि २२, २१, १७, १३, ९, ५, ४, ३, २, १ एवमेदाणि परिवाडीए टविय पादेकमेदेसु मत्तावीमादिमंकमट्टाणाणं संभवगवेसणा कायव्वा त्ति गाहासुत्तपुव्वट्ठे समुच्चयत्थो । ‘एक्केक्केण समाणय’ एवं भणिदे वंध-संतट्टाणेषु एक्केक्केण मह ‘समाणय’ सम्यगानुपूर्व्यानयेत्यर्थः । वंध-संतट्टाणाणि पुध० आधार-भूदाणि ट्टविय तेसु संकमट्टाणाणि जेदव्वाणि त्ति भावत्थो ।

§ ३२०. तत्थ ताव संतकम्मट्टाणेषु संकमट्टाणाणं गवेसणा कीरदे । तं कथं ? मिच्छादिट्ठिम्म वा सम्मादिट्ठिम्म वा अट्टावीमसंतकम्मं होऊण मत्तावीमसंकमो होइ ? ।

३१९. इस प्रकार गति आदि मार्गणा प्रौढ कर्ता कितने संक्रमस्थान सम्भव है इसका अन्वय और व्यतिरेक द्वारा विचार करके अब बन्धस्थान, संक्रमस्थान और सत्क्रमस्थान इन्हें एकसंयोग और दोसंयोगके क्रमसे विवक्षित करके सन्निकटका कथन करनेके लिये आगेका गाथासूत्र कहे हैं—‘कम्मंसियट्टाणेषु य’ स्थानसमुत्कीर्तना अनुयोगद्वारामे जो संक्रमस्थान और और आदेशने कहे गये हैं तथा जो प्रतिनियत प्रतिप्रहस्थानोंमें सम्बन्ध रखते हैं वे बन्धस्थानों और सत्त्वस्थानोंमें कहाँ कितने होते हैं इस बातका कथन यह गाथा करती है । अब इस गाथाके अर्थका व्याख्यान करते हैं । यथा—कर्मशिकस्थान यह सत्क्रमस्थानका दूसरा नाम है । वे माहनीयकर्ममें अट्टाईम, सत्ताइस छव्वीस, चौबीस, तेईस, वाईस, इक्कीस, तेरह, वारह, ग्यारह, पांच चार, तीन, दो और एक इतनी प्रकृतियोंमें प्रति द्व द्व हैं । उनकी अंकाद्वारा यह स्थापना है—२८, २७, २६, २५, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २ और १ । और बन्धस्थान बाईस, इक्कीस, सत्रह, तेरह, नौ, पांच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक होते हैं २०, २१, १७, १३, ९, ५, ४, ३, २ और १ । इस प्रकार इन्हें क्रमसे स्थापित करके इनमेंसे प्रत्येकमें सत्ताइस प्रकृतिक आदि सम्भव संक्रमस्थानोंका विचार करना चाहिये यह इस गाथासूत्रके पूर्वार्थका समुच्चयार्थ है । तथा गाथाके उत्तरार्थमें ‘एक्केक्केण समाणय’ ऐसा कहने पर बन्धस्थानों और सत्त्वस्थानोंमेंसे एक एकके साथ ‘समाणय’ अर्थात् भले प्रकार इस आनुपूर्वीसे बन्धस्थानों और सत्त्वस्थानोंको आधाररूपमें अलग अलग स्थापित करके उनमें संक्रमस्थानोंको जानना चाहिये यह इसका भावार्थ है ।

§ ३२०. उनमेंसे सर्वप्रथम सत्क्रमस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका विचार करते हैं । यथा—मिच्छादिट्ठि या सम्यग्दृष्टि जीवके अट्टाईस प्रकृतियोंकी मत्ता होकर सत्ताइस प्रकृतियोंका संक्रम

मिच्छाइड्डिणा मम्मत्तुव्वेल्लणवावदेण सम्मत्तस्स समगुणावलियमेत्तगोवुच्छावसेसे कदे अट्टावीमसंतेण मह छ्वीससंकमो होइ २ । अहवा छ्वीससंतकम्मिण पढमसम्मत्ते उप्पाइदे अट्टावीससंतकम्माहारं^१ छ्वीससंकमट्टाणमुप्पज्जइ । अविमंजोइदाणंताणुबंधिणा उवसममम्माइड्डिणा मासणगुणे पडिवण्णे अट्टावीमसंतकम्मिण मम्मामिच्छते वा पडिवण्णे अट्टावीससंतकम्मसहगदं पणुवीससंकमट्टाणमुप्पज्जइ ३ । अणंताणुबंधी विमंजोइय संजुत्तमिच्छाइड्डिपढमावलियाए तेवीसपयडिसंकमट्टाणमट्टावीमसंकमट्टाण-पडिवद्वमुप्पज्जइ । अहवा अणंताणु० विसंजोयणाचरिमफालिं संकामियं समगुणावलिय-मेत्तगोवुच्छावसेसे वट्टमाणस्स तमेव संकमट्टाणं तेणेव संतकम्मट्टाणेणार्हिदुदमुप्पज्जइ ४ । अणंताणु० विमंजोयणापुरस्सरं सामणगुणं पडिवण्णस्स आवलियमेत्तकालमट्टावीम-संतकम्मेण मह इगिवीमसंकमट्टाणमुप्पज्जइ ५ । एवमेदाणि पंच संकमट्टाणाणि अट्टा-वीमसंतकम्मियस्स हांति ।

§ ३२१. संपहि सत्तावीमाए उच्चदे—अट्टावीमसंतकम्मियमिच्छाइड्डिणा सम्मत्ते उव्वेल्लिदे सत्तावीमसंतकम्मं घेत्तुणं छ्वीमसंकमो होइ १ । पुणो तेणेव मम्मामिच्छत्त-मुव्वेल्लंतेण समगुणावलियमेत्तगोवुच्छावसेसे काए सत्तावीमसंतकम्मेण भट्ट पणुवीस-

हांता है १ । जो मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वकी उद्वे लना कर रहा है उसके सम्यक्त्वकी गोपुच्छाके एक समयकम एक आवलिप्रमाण शेष रहने पर अट्ट ईग प्रकृतिक सत्त्वस्थानके साथ छ्वीस प्रकृतिक संकमस्थान होता है २ । अथवा जो छ्वीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव प्रथम सम्यक्त्व-को उत्पन्न करता है उसके प्रथम सम्यक्त्वके उत्पन्न करनेपर अट्टाईस प्रकृतिक सत्कर्मका आवार-भूत छ्वीम प्रकृतिक संकमस्थान उत्पन्न होता है । जिस उपशमसम्यग्दृष्टिने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं की है उसके सामादनगुणस्थानको प्राप्त होने पर या अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होने पर अट्टाईस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ पचचीस प्रकृतिक संकमस्थान उत्पन्न होता है ३ । जो सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके फिर मिथ्यात्वमे जाकर उससे संयुक्त होता है उसके प्रथम आवलिमे अट्टाईस प्रकृतिक सत्कर्मसे सम्बन्ध रखनेवाला तईस प्रकृतिक संकमस्थान उत्पन्न होता है । अथवा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाकी अन्तिम फालिका संकम करनेके बाद एक समयकम एक आवलिप्रमाण गोपुच्छाके शेष रहने पर उसी सत्कर्मके आधारसे वही संकमस्थान उत्पन्न होता है ४ । जो अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनापूर्वक सामादनगुणस्थानको प्राप्त होता है उसके एक आवलिप्रमाण कालतक अट्टाईस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ इक्कीस प्रकृतिक संकमस्थान उत्पन्न होता है ५ । इस प्रकार ये पांच संकमस्थान अट्टाईस प्रकृतिक सत्कर्मवाले जीवके हाते है ।

§ ३२१. अब सत्ताईस प्रकृतिक सत्कर्मवालेके कितने संकमस्थान होते हैं यह बतलाते हैं — अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्वकी उद्वे लना कर लेने पर सत्ताईस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ छ्वीस प्रकृतिक संकमस्थान उत्पन्न होता है १ । फिर सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वे लना करते हुए उसी जीवके एक समयकम एक आवलिप्रमाण गोपुच्छाके शेष रहने पर

१. आ०प्रती—हारट्टं इति पाठः । २. ता०प्रती संकामय इति पाठः । ३. ता०—आ०प्रत्योः मोत्सृण इति पाठः ।

संकमद्वानमुप्यज्ज २ । एवं सत्तावीससंतकम्मे णिरुद्धे दोण्णि चैव संकमद्वानाणि होति ।

§ ३२२. संपहि छव्वीसाए उच्चदे—अणादियमिच्छाइट्टिस्स सादिछव्वीसमंत-
कम्मियस्स वा छव्वीससंतकम्मं होऊण पणुवीसमंकमद्वानमेक्कं चैव लब्भदे, तत्थ
पयारंतरमंभवाभावादे ।

§ ३२३. संपहि चउवीससंतकम्मियस्स संकमद्वानगवेसणा कीरदे—अणंताणु-
बंधिविसंजोयणापरिणदसम्माइट्टिमि चउवीससंतकम्मं होऊण तेवीससंकमो होइ १ । पुणो
तेणेव उवममसेट्ठिसारूढेणंतरकरणाणंतरमाणुपुव्वीसंकमे कदे वावीससंकमो होइ २ ।
तेणेव णनुंमयवेदोवसमे कदे इगिवीससंकमो जायदे ३ । इत्थिवेदोवसमे वीमसंकमो
होइ ४ । तस्सेव छण्णोकसायाणमुवसामणमस्सियूण चौदससंकमो होइ ५ । पुरिस-
वेदोवसामणाए तेरससंकमद्वानमुप्यज्ज ६ । दुविहकोहोवसमेणकारमसंकमो होइ ७ ।
कोहमंजलणोवममस्सियूण दमण्हं संकमो जायदे ८ । दुविहमाणोवसमेण अट्टण्हं
संकमो होइ ९ । माणमंजलणोवमामणाए सत्तण्हं संकमो जायदे १० । दुविहमायोवसम-
मस्सियूण पंचसंकमो जायदे ११ । मायामंजलणोवसमे चउण्हं संकमो होइ १२ ।
दुविहलोहोवसामणाए मिच्छत्त-मम्मामिच्छत्तपयडीणं दोण्हं चैव संकमो जायदे १३ ।

सत्ताईस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ पच्चीस प्रकृतिक संकमस्थान उत्पन्न होता है २ । इस प्रकार
सत्ताईस प्रकृतिक सत्कर्मके रहते हुए दो ही संकमस्थान होते हैं ।

§ ३२२. अब छव्वीस प्रकृतिक सत्कर्मवालेके कितने संकमस्थान होते हैं यह बतलाते हैं—
अनादिमिथ्यादृष्टिके या छव्वीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले सादि मिथ्यादृष्टिके छव्वीस प्रकृतिक
सत्कर्मके साथ केवल एक पच्चीस प्रकृतिक संकमस्थान प्राप्त होता है, क्योंकि यहां पर और कोई
दूसरा प्रकार सम्भव नहीं है ।

§ ३२३. अब चौबीस प्रकृतिक सत्कर्मवाले जीवके संकमस्थानोंका विचार करते हैं—जिसने
अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी है ऐसे सम्यग्दृष्टि जीवके चौबीस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ
तेईस प्रकृतिक संकमस्थान होता है १ । फिर उसी जीवके उपशमश्रेणि पर चढ़कर अन्नकरणके बाद
आनुपूर्वी संकमका प्रारम्भ करने पर बाईस प्रकृतिक संकमस्थान होता है २ । फिर उन्नी जीवके
नपुंसकवेदका उपशम कर लेने पर इक्कीस प्रकृतिक संकमस्थान होता है ३ । स्त्रीवेदका उपशम
कर लेने पर बीस प्रकृतिक संकमस्थान होता है ४ । उसीके छह नोकपायोंके उपशमका आश्रय
लेकर चौदह प्रकृतिक संकमस्थान होता है ५ । पुरुषवेदका उपशम हो जानेपर तेरह प्रकृतिक संकम-
स्थान होता है ६ । दो प्रकारके क्रोधके उपशम हो जानेसे ग्यारह प्रकृतिक संकमस्थान होता है ७ ।
क्रोधसंज्वलनके उपशमका आश्रय लेकर दस प्रकृतिक संकमस्थान होता है ८ । दो प्रकारके मानका
उपशम हो जानेसे आठ प्रकृतिक संकमस्थान होता है ९ । मानसंज्वलनका उपशम हो जाने पर
सात प्रकृतिक संकमस्थान उत्पन्न होता है १० । दो प्रकारकी मायाके उपशमका आश्रय लेकर पांच
प्रकृतिक संकमस्थान उत्पन्न होता है ११ । मायासंज्वलनका उपशम होने पर चार प्रकृतिक संकम-
स्थान होता है १२ । और दो प्रकारके लोभका उपशम होने पर मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व

एवं चउवीमसंतकम्मम्मि णिरुद्धे तेरससंकमट्टाणाणि लब्धंति । णवरि ओदग्माणमस्मियूण लब्धमाणाणि ट्टाणाणि एत्थेव पुणरुत्तभावेण पविट्टाणि । चउवीमसंतकम्मियसम्मा-
मिच्छाड्डिस्म इगिवीमसंकमट्टाणं दंसणमोहक्खवगम्म मिच्छत्तचरिमफालिपदणाणंतरमुव-
लब्धमाणवावीसट्टाणं च पुणरुत्तमेवे त्ति ण पुध परूविदाणि ।

§ ३२४. संपहि चउवीमसंतकम्मिएण दंसणमोहक्खवणमब्धुट्टिय मिच्छत्ते
खविदे तेवीमसंतकम्मं होउण वावीमसंकमो होइ ? । तेणेव सम्मामिच्छत्तं खवेतेण
समयूणावलियमेत्तगोवुच्छावमेसे कए तेणेव संतकम्मिण महिदइगिवीमसंकमट्टाणमुप्पज्जइ २।
एवं तेवीमाए दोणिण चैव संकमट्टाणाणि भवंति ।

§ ३२५. तस्सेव णिस्सेमिदग्म्मामिच्छत्तम्म वावीससंतकम्ममहगयमिगिवीस-
संकमट्टाणमेक्कं चैव लब्धे, तत्थण्णमंभवाणुवलंभादो ।

§ ३२६. खड्यमम्माड्डिस्मि इगिवीमसंतकम्ममिगिवीससंकमट्टाणाणुविद्ध-
मुप्पज्जइ १ । पुणो इगिवीमसंतकम्मिएण उवमससेहिमारुहिय आणुपुच्चीसंकमे कदे
वीमसंकमट्टाणमेक्कीवीमसंतकम्माहारमुप्पज्जइ २ । उवरि जाणिउण णेदत्वं । एवं णीदे
एक्कीमाए चारमसंकमट्टाणाणि लब्धंति १२, णवुंस-इत्थिवेद-लण्णोक्कमाय-पुग्गिमेद-

इत दो प्रकृतियोंका हा संक्रम होता है १३ । इस प्रकार चौवीस प्रकृतिक सत्कर्मके सद्भावमे तेरह
संकमस्थान उपलब्ध होते है । यहां इतना विशेष और समझना चाहिए कि उपशमश्रेणिमे उतरनेवाले
जीवका आश्रय लेकर प्राप्त होनेवाले संक्रमस्थान पुनरुक्त होनेके कारण उनका इन्हींमे अन्तर्भाव हो
गया है । तथा चौवीस प्रकृतियोंकी सत्त्वाले सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवके प्राप्त हुआ इक्कीस प्रकृतिक
संकमस्थान और दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवाले जावके मिध्यात्त्रकी अन्तिम फालिक पतनके बाद
प्राप्त हुआ बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान पुनरुक्त ही है इस लिये वे अलगसे नहीं कहे हैं ।

§ ३२४. अब जो चौवीस प्रकृतियोंकी सत्त्वावाला जीव दर्शनमोहकी क्षपणा करनेके लिये
उद्यत होता है उसके मिध्यात्त्रका क्षय हो जाने पर तेईस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ बाईस प्रकृतिक
संकमस्थान प्राप्त होता है १ । सम्यग्मिध्यात्त्रका क्षय करते हुए उसी जीवके उसकी एक समय कम
एक आवलिप्रमाण गोपुच्छा कर देने पर उनी तेईस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ इक्कीस प्रकृतिक
संकमस्थान उत्पन्न होता है २ । इस प्रकार तेईस प्रकृतिक सत्कर्मके सद्भावमे दो ही संक्रमस्थान
होते हैं ।

§ ३२५. फिर वही जीव जब सम्यग्मिध्यात्त्रका क्षय कर देता है तब उसके बाईस प्रकृतिक
सत्कर्मके साथ केवल एक इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है, क्योंकि यहा पर अन्य
संक स्थान नहीं उपलब्ध होता है ।

§ ३२६. क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवके इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानमे सम्यग् रवनेवाला
इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान उत्पन्न होता है १ । फिर इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मवाले जीवके उपशम-
श्रेणिपर चढ़ कर आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ कर देने पर वीसप्रकृतिक संक्रमस्थानका आधारभूत
इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान उत्पन्न होता है २ । आगे जान कर कथन करता चाहिये । इस प्रकार
कथन करने पर इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके बारह संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं १२, क्योंकि

दुविहकोह-कोहमंजलण-दुविहमाण-(माण) मंजलण-दुविहमाय-मायसंजलणाणमुवममेण जहाकमेगूणवीसादिसंकमद्वाराणमिगिवीसमंतकम्माहाराणमुवलंभादो । पुणो खवगेण अट्टकसायखवणवावदेण समयूणावलयमेत्तगोवुच्छावसेसे कदे तेरससंकमद्वाराणमिगिवीस-संतकमसंबंधेण समुवल्लभइ । एवं सब्बसमासेण तेरससंकमद्वाराणि इगिवीससंतकम्म-पडिचद्धाणि भवन्ति १३ ।

§ ३२७, पुणो अट्टकसाएसु णिल्लेविदेसु तेरमसंतकम्मसंबद्धं तेरसपयडिसंकम-द्वाराणमुप्पज्जदि १ । तेणेव समाणिदंतरकरणेण आणुपुच्चीसंकमे कदे बारससंकमद्वाराणं तेरससंतकम्मसहगयमुप्पज्जदि २ । एवमेदाणि दोण्णि तेरससंतकम्मियस्म संकमद्वाराणि ।

§ ३२८, एदेणेव णवुंसयवेदे खविदे बारससंतकम्मं होऊणेक्कारससंकमद्वाराण-मुवल्लभदे । इत्थिवेदे खविदे एक्कारससंतकम्मं होऊण दससंकमो लब्भदे । छण्णो-कमायक्खवणाणंतरं पंचसंतकम्मं होऊण चदुण्हं संकमो जायदे । पुग्गिमेवेदे णवक्खंधे खविदे चत्तारि संकममाणि होऊण तिण्हं संकमो जायदे । कोहमंजलणे^१ खविदे तिण्णि संकममाणि दोण्हं संकमो माणमंजलणे खविदे दोण्णि संकममाणि एगपयडिसंकमो च जायदे । एवं संकमद्वाराणेषु संकमद्वाराणमणुगमो कटो ।

नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, छह नोरुपाय, पुरुषवेद, दो प्रकारका क्रोध, क्रोधसंज्वलन, दो प्रकारका मान मानसंज्वलन, दो प्रकारकी माया और मायासंज्वलन इन प्रकृतियोंका उपशम होनेसे क्रमसे इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके आधारमे उन्नीस प्रकृतिक अर्द्ध संकमस्थान उपलब्ध होते हैं । फिर आठ कपायोंकी क्षयणा करनेवाले चारके एक समये कम एक आधलिप्रमाण गोपुच्छाके शेष रहने पर इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके सम्बन्धसे तेरह प्रकृतिक संकमस्थान उत्पन्न होता है । इस प्रकार इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाले कुल तेरह संकम-स्थान होते हैं १३ ।

§ ३२७, पुनः आठ कपायोंका क्षय हो जाने पर तेरह प्रकृतिक गत्कर्मसे सम्बन्ध रखनेवाला तेरह प्रकृतिक संकमस्थान उत्पन्न होता है १ । फिर उसी जीवके अन्तरकरण करनेके बाद आनुपूर्वी संकमका प्रारम्भ कर देने पर तेरह प्रकृतिक सत्कर्मसे सम्बन्ध रखनेवाला बारह प्रकृतिक संकम-स्थान उत्पन्न होता है । २ । इस प्रकार तेरह प्रकृतिक सत्कर्मवालेके ये दो संकमस्थान होते हैं ।

§ ३२८, पुनः इसी जीवके द्वारा नपुंसकवेदका क्षय कर देने पर बारह प्रकृतिक सत्कर्मके साथ ग्यारह प्रकृतिक संकमस्थान उपलब्ध होता है । स्त्रीवेदका क्षय कर देने पर ग्यारह प्रकृतिक सत्कर्म होकर दस प्रकृतिक संकमस्थान प्राप्त होता है । छह नोरुपायोंका क्षय हो जाने पर पाँच प्रकृतिक सत्कर्म होकर चार प्रकृतिक संकमस्थान प्राप्त होता है । पुरुषवेदके नवक्खन्धका क्षय हो जाने पर चार प्रकृतिक सत्कर्म होकर तीन प्रकृतिक संकमस्थान प्राप्त होता है । क्रोधसंज्वलनका क्षय हो जाने पर तीन प्रकृतिक सत्कर्मके साथ दो प्रकृतिक संकमस्थान और मानसंज्वलनका क्षय हो जाने पर दो प्रकृतिक सत्कर्मके साथ एक प्रकृतिक संकमस्थान उत्पन्न होता है । इस प्रकार सत्कर्मस्थानोंमें संकमस्थानोंका विचार किया ।

१. ता० प्रती लोभमंजलणे इति पाठः ।

§ ३२९. संपहि बंधट्टाणेसु तदणुगमं वत्तइस्सामो । तं जहा—अट्टावीससंत-
कम्मियमिच्छाइट्टिमि वावीमबंधट्टाणं होऊण सत्तावीमसंकमो होइ १ । तेणेव सम्मत्ते
उव्वेल्लिदे छव्वीमसंकमो होइ, बंधट्टाणं पुण तं चेव २ । सम्मामिच्छत्ते उव्वेल्लिदे तेणेव
बंधट्टाणेण सह पणुवीमसंकमो होइ ३ । अणंताणुबंधी विमंजोएदूण मिच्छत्तं गदस्स
पढमावलियाए वावीमबंधेण सह तेवीससंकमो होइ ४ । एवं वावीसबंधट्टाणम्मि चत्तारि
संकमट्टाणाणि लट्टाणि ।

§ ३३०. मामणमम्माइट्टिमि इगिवीमबंधट्टाणं होदूण पणुवीससंकमट्टाण-
मुप्पज्जदि १ । अणंताणु०विमंजोयणापुग्गमं सामाणं गुणं पडिवण्णस्स पढमावलियाए
इगिवीमबंधट्टाणमिगिवीससंकमट्टाणाहिट्टियमुप्पज्जदि २ । एवमिगिवीसबंधट्टाणम्मि
दोण्णि चेत्रं संकमट्टाणाणि होति ।

§ ३३१. मम्मामिच्छाइट्टिमि सत्ताग्गबंधो होऊण अणंताणुबंधिविमंजोयणाविमं-
जोयणावसेण इगिवीम-पचवीमसंकमट्टाणाणि होति २ । अट्टावीमसंतकम्मियासंजदसम्मा-
इट्टिमि सत्ताग्गबंधेण सह सत्तावीमपयडिट्टाणसंकमो होइ ३ । उवसममम्मत्तग्गहणपढम
समयम्मि वट्टमाणस्स तस्सेव छव्वीससंकमट्टाणं होइ ४ । अणंताणु०विमंजोयणमस्सियूणं

५३२६. अब बन्धस्थानोंमें उनका अनुगम करके बतलाते हैं । यथा अट्टाईस प्रकृतिक
सत्कर्मव ले मिथ्य दृष्टिके चाईस प्रकृतिक बन्धस्थान होकर सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता
है १ । उसी जीवके द्वारा सम्यक्त्वकी उद्वे लना कर देने पर छव्वीसप्रकृतिक संक्रमस्थान होता है
किन्तु बन्धस्थान वहीं रहता है २ । सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वे लना कर देने पर उसी बन्धस्थानके साथ
पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३ । अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके मिथ्यात्वको प्राप्त
हुए जीवके प्रथम आवलिमें चाईस प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता
है ४ । इस प्रकार चाईस प्रकृतिक बन्धस्थानमें चार संक्रमस्थान प्राप्त हुए ।

§ ३३०. सामादनसम्यग्दृष्टि जीवके इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थान होकर पचवीस प्रकृतिक
संक्रमस्थान उत्पन्न होता है १ । तथा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनापूर्वक सामादनको प्राप्त हुए
जीवके प्रथम आवलिमें इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला इक्कीस प्रकृतिक
संक्रमस्थान उत्पन्न होता है २ । इस प्रकार इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थानमें दो ही संक्रमस्थान
होते हैं ।

§ ३३१. सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थान होकर इक्कीस प्रकृतिक
और पच्चीस प्रकृतिक ये दो संक्रमस्थान होते हैं । इनमेंमे जिनने पूर्वमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना
की है उसके इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है और जिनने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना
नहीं की है उसके पचवीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २ । अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले
असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें सत्रहप्रकृतिक बन्धस्थानके साथ सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थान
होता है ३ । उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें विद्यमान उसी जीवके छव्वीस
प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४ । अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका आश्रय करके तेईस प्रकृतिक

तेवीमसंकमो जायदे ५ । तेणेव इत्थिवेदे उवमामिदे^१ मिच्छत्तकखवणमस्सियूण वावीमसंकमो होदि ६ । तेणेव सम्मामिच्छत्ते खविदे इगिवीससंकमो जायदे । एवं सव्वसमुच्चएण सत्तारसबंधद्वारणम्मि छत्तेव संक्रमद्वारणाणि भवंति ।

§ ३३२. संजदामंजदम्मि तेरसबंधो होऊण सत्तावीससंकमो होइ १ । तस्सेव पढमसम्मत्तविसेसिदमंजमामंजमग्गहणपढमसमयम्मि वट्टमाणस्म छव्वीससंकमो होइ २ । विमंजोइदाणंताणु०चउक्कम्म तेवीमसंकमो जायदे ३ । तेणेव मिच्छत्ते खविदे वावीससंकमो होइ ४ । सम्मामिच्छत्ते खविदे इगिवीमसंकमो जायदे ५ । एवं तेरसबंधम्मि णिरुद्धे पंचसंकमद्वारणाणि भवंति ।

§ ३३३. पमत्तापमत्तमंजदेमु णवपयडिवंधद्वारणं होऊण सत्तावीससंकमो होइ १ । अप्पमत्तभावेणोवमममम्मत्तं मंजमं च जुगवं पडिवण्णस्म पढमसमए णवबंधद्वारणेण मह छव्वीमसंकमो होइ २ । अणंताणु०विमंजोयणापरिणदपमत्तापमत्तमंजदाणं तेणेव बंधद्वारणेणाणुविद्धं तेवीमसंकमद्वारणं होइ ३ । तत्थेव मिच्छत्तकखवणमस्सियूण वावीससंकमद्वारणावल्लो ४ । सम्मामिच्छत्तकखवणमवलंबिय इगिवीमसंकमद्वारणममुवलंबो ५ । एवं णवबंधद्वारणम्मि पंचेव संक्रमद्वारणाणि लव्भंति ।

संक्रमस्थान होता है ५ । मिथ्यात्वके क्षयका आश्रय करके वाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ६ । उमी जीवके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय कर देनेपर इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । इस प्रकार सब मिलकर सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थानमें छह ही संक्रमस्थान होते हैं ।

§ ३३२. संयतासंयत गुणस्थानमें तेरहप्रकृतिक बन्धस्थान हांकर सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १ । प्रथम सम्यक्त्वके साथ संयमासंयमको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें विद्यमान उम जीवके छव्वीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २ । अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके स्थित हुए उसी जीवके तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३ । उमी जीवके द्वारा मिथ्यात्वका क्षय कर देनेपर वाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४ । सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय कर देनेपर वाईसप्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ५ । सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय कर देनेपर इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ५ । इस प्रकार तेरह प्रकृतिक बन्धस्थानके रहते हुए पाँच संक्रमस्थान होते हैं ।

§ ३३३. प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें नौ प्रकृतिक बन्धस्थान हांकर सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १ । अप्रमत्तभावके साथ उपशमसम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त होनेवाले जीवके प्रथम समयमें नौ प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ छव्वीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २ । अनन्तानुबन्धीकी विसंयोनारूपसे परिणत हुए प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंके उमी बन्धस्थानसे अनुविद्ध तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३ । वहाँ पर मिथ्यात्वके क्षयका आश्रय कर वाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है ४ । तथा सम्यग्मिथ्यात्वके क्षयका अवलम्बन कर इक्कीसप्रकृतिक संक्रमस्थान उपलब्ध होता है । इस प्रकार नौप्रकृतिक बन्धस्थानमें पाँच ही संक्रमस्थान उपलब्ध होते हैं ।

१. ता०प्रती जायदे ५ । तेणेव इत्थिवेदे उवमामिदे इति पाठः ।

§ ३३४. चउवीमसंतकम्मियाणियट्टिगुणट्टाणम्मि पंचपयडिवंधट्टाणेण सह तेवीस-संकमो होइ १ । तत्थेवाणुपुव्वीमंकमवसेण वावीससंकमो होइ २ । णवुंसयवेदोव-सामणाए इगिवीमसंकमो ३ । इत्थिवेदोवमामणाए वीमसंकमो होइ ४ । पुणो इगिवीस-संतकम्मिओवमामगेणाणुपुव्वीमंकमं काऊण णवुंसयवेदे उवसामिदे एगूणवीमं संकमो होइ ५ । तेणेव इत्थिवेदे उवसामिदे अट्टाग्मसंकमो होइ ६ । खवगेण अट्टकसाएसु खविदेसु तेग्मसंकमो जायदे ७ । अंतरकरणं करिय आणुपुव्वीमंकमे कदे वारससंकमो होइ ८ । णवुंसयवेदे खविदे एक्कारमसंकमो जायदे ९ । इत्थिवेदकखवणाए दग्मसंकमो जायदे १० । एवं पंचपयडिवंधट्टाणम्मि दग्म संकमट्टाणाणि भवंति ।

§ ३३५. संपहि चउण्हं बंधट्टाणम्मि संकमट्टाणगवेगणा कीरदे—चउवीमसंत-कम्मियोवमामगेण छण्णोकमायाणमुवमामणाए कटाए णिरुद्धबंधट्टाणेण सह चौदह-संकमट्टाणमुपज्जइ १, तदवस्थाए पुग्गिमेदवंधुवग्मदग्मणाए । तत्थेव पुग्गिमेदे उवसामिदे तेग्मसंकमो जायदे २ । इगिवीमसंतकम्मियाण छण्णोकमाएसु उवसामिदेसु वारमसंकमो होइ ३ । पुग्गिमेदोवममे एक्कारमसंकमो होइ ४ । खवगेण छण्णोकमाएसु खविदेसु चउण्हं संकमो होइ ५ । पुग्गिमेदे खविदे निण्हं संकमो जायदे ६ । एवं चउव्विहबंधगम्मि छच्चेव संकमट्टाणाणि भवंति, पुग्गिमेदोए णिरुद्धे अण्णेमिमणुव-

§ ३३४. चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले अतिवृत्तिकरण गुणस्थानमें पाँच प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १ । वहीं पर आनुपूर्विकसंक्रमके कारण बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २ । नपुंसकवेदका उपसम हो जाने पर इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३ । स्त्रीवेदका उपसम हो जाने पर बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४ । फिर इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके द्वारा आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ करनेके बाद नपुंसकवेदका उपशाम कर लेने पर उन्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ५ । उर्गीके द्वारा स्त्रीवेदका उपशाम कर देने पर अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ६ । क्षपकके द्वारा आठ कपायोंका क्षय कर देने पर तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ७ । अन्तरकरण करनेके बाद आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ कर लेने पर बारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ८ । नपुंसकवेदका क्षय कर देनेपर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ९ । स्त्रीवेदका क्षय कर देनेपर दस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १० । इस प्रकार पाँच प्रकृतिक बन्धस्थानमें दस संक्रमस्थान होते हैं ।

§ ३३५. अब चार प्रकृतिक बन्धस्थानमें संक्रमस्थानोंका विचार करते हैं—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके द्वारा छह नोकपायोंका उपशाम कर लेने पर विवाचित्त बन्धस्थानके साथ चौदह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है १, क्योंकि इस अवस्थामें पुरुषवेदके बन्धका अभाव देखा जाता है । वहीं पर पुरुषवेदका उपशाम हो जाने पर तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है २ । इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके द्वारा छह नोकपायोंका उपसम कर देने पर बारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३ । पुरुषवेदका उपशाम हो जाने पर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४ । क्षपकके द्वारा छह नोकपायोंका क्षय कर देने पर चार प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ५ । पुरुषवेदका क्षय कर देने पर तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ६ । इस प्रकार चार प्रकृतिक बन्धस्थानमें छह ही संक्रमस्थान होते हैं, क्योंकि पुरुषवेदके उदयके सद्भावमें

लंभादौ । सेसवेदोदयविवक्षाए पुण त्तिपुरिमबंधेण वीसट्टारसादिमंकमट्टाणाणं संबवो अणुगंतव्वो ।

§ ३३६. मंपहि त्तिविहबंधट्टाणे संक्रमणट्टाणाणं परूवणा कीरदे—चउवीस-
मंतकम्मिण्ण कोहमंजलणबंधवोच्छेदे कदे सेममंजलणतियबंधाहिट्टियमेकारसमंकमट्टाणं
होइ १ । कोहमंजलणे उवमामिदे दसमंकमो जायदे २ । इगिवीसमंतकम्मिण्ण दुविह-
कोहोदममे कदे णवण्हं संकमो होइ ३ । कोहमंजलणे उवसामिदे अट्टण्हं संकमो
होइ ४ । खवगेण कोहमंजलणबंधवोच्छेदे कदे तिण्हं संकमो , कोहसंजलणणवक-
बंधमंकमयम्मि तदुवलंभादो ५ । तेणेव कोहमंजलणे णिमंतीकए दोण्हं संक्रमण-
मुप्पज्जदि ६ ।

३३७. मंपहि दुविहबंधयस्म उच्चदे—चउवीससंतकम्मियोवसामयेण दुविह-
माणोवममे कदे अट्टण्हं संक्रमणमुवजायदे १ । तेणेव माणमंजलणोवसमे कदे
मत्तण्हं संकमो जायदे २ । इगिवीसमंतकम्मियोवसामयेण दुविहमाणोवसमे कदे छण्हं
संकमो होइ ३ । माणमंजलणोवममे कदे पंचण्हं संकमो जायदे ४ । खवगेण माण-
मंजलणबंधवोच्छेदे कदे तण्णव कबंधमंकममम्मिण्ण दोण्हं संकमो होइ ५ । तम्मि चेव
णिम्मंतीकए एक्किमे संकमो जायदे ६ । एवमेत्थ वि छण्हं संक्रमणट्टाणाणं संबवो
दट्टव्वो ।

अन्य संक्रमस्थानोंका पाया जाना सम्भव नहीं है । किन्तु शेष वर्गोंके उदयकी विविक्षा हानपर तो
तान पुरुषोंके सम्बन्धमें योग, अट्टारह आदि संक्रमस्थान सम्भव हैं इनका विचार कर लेना चाहिए ।

§ ३३६. अब तीन प्रकृतिक बन्धस्थानमें संक्रमस्थानोंका कथन करते हैं—चौबीस
प्रकृतियोंकी मत्तावाले जीवके द्वारा क्रोधसंज्वलनकी बन्धव्युच्छिन्ति कर देने पर शेष संज्वलन-
सम्बन्धी तीन प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १ । क्रोधसंज्वलनका
उपशम कर देने पर दस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २ । इसकीन प्रकृतियोंकी मत्तावाले जावके
द्वारा दो प्रकारके क्रोधका उपशम कर देने पर ना प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३ । क्रोधसंज्वलनका
उपशम कर देने पर आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४ । क्षपक जावके द्वारा क्रोधसंज्वलनकी
बन्धव्युच्छिन्ति कर देने पर तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है, क्योंकि क्रोध संज्वलनके नवक
बन्धके संक्रम करने पर उम स्थानकी उपलब्धि होती है ५ । उमी जीवके द्वारा क्रोध संज्वलनके
निःसत्त्व कर देने पर दो प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ६ ।

३३७. अब दो प्रकृतिक बन्धस्थानवाले जीवके संक्रमस्थान बतलाते हैं—चौबीस
प्रकृतियोंकी मत्तावाले उपशामक जीवके द्वारा दो प्रकारके मानका उपशम कर देने पर आठ
प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है १ । उमी जीवके द्वारा मानसंज्वलनका उपशम कर देने पर
सात प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २ । इसकीन प्रकृतियोंकी मत्तावाले उपशामकके द्वारा दो
प्रकारके मानका उपशम कर देने पर छह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३ । मानसंज्वलनका उपशम
कर देने पर पाँच प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४ । क्षपके द्वारा मानसंज्वलनकी बन्धव्युच्छिन्ति
कर देने पर उमके नवकबन्धके संक्रमके आश्रयसे दो प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ५ ।
उसी नवकबन्धके निःसत्त्व कर देने पर एक प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ६ । इस प्रकार यहाँपर

३३८. एगपयडिबंधणिरुद्धे पंच संकमट्टाणाणि लब्धंति । तं जहा—चउवीस-
मंतकम्मियोवमामगस्म दुविहमायोवममे मायमंजलणणवगबंधेण मह पंचण्हं
संकमो १ । मायामंजलणोवममे चउण्हं संकमो २ । इगिवीममंतकम्मियस्म दुविह-
मायोवसमे मायामंजलणणवक्रबंधेण मह तिण्हं संकमो ३ । तस्मि उवमामिदे दोण्हं
संकमो ४ । खवगस्म लोभमंजलणवंधयस्म मायासंजलणसंकमो एको चैव लब्धदे ५ ।
एवं बंधट्टाणेमु संकमट्टाणाणं पस्वणा कया ।

§ ३३९. एवमेगमंजोगपस्वणं काऊण मंपहि 'बंधेण य संकमट्टाणे' इदि मुत्ताव-
यवमवलंबिय दुमंजोगपस्वणं वत्तइम्मामा । तन्थ ताव बंध-मंतट्टाणाणं दुमंजोगमाहार-
भूदं काऊण संकमट्टाणगवेमगा कोग्दे । तं जहा—अट्टावीसमतकम्मं वावीसबंधट्टाणं
च अण्णोणमहगयमाहारभूदं काट्टण एदाणि संकमट्टाणाणि भवंति २७, २६, २३ ।
पुणो अट्टावीसमंतकम्ममिगिवीमबंधट्टाणं च महभूदमाधारं काऊण पणुवीस-इगिवीम-
सण्णिदाणि दोण्णि संकमट्टाणाणि लब्धंति २५, २१ । तं चैव मंतट्टाणं सत्तागस-
बंधमहगदमस्मिऊण २७, २६, २५, २३ एदाणि चत्ताग्गि संकमट्टाणाणि मंभवति ।
तस्मि चैव कम्मभियट्टाणम्मि तेगम-णवविहबंधट्टागमहगयम्मि पादेक्कं सत्तावीस-

भो छह ही संकमस्थान सम्भव जानने चाहिये ।

§ ३३८. एक प्रकृतिक बन्धस्थानके सद्भावमें पाँच संकमस्थान प्राप्त होते हैं । यथा—
चौवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके दो प्रकारकी मायाका उपशम हो जाने पर
मायासंजलनके नयक बन्धके साथ पाँच प्रकृतिक संकमस्थान होता है १ । मायामंजलनके
उपशम हो जाने पर चार प्रकृतिक संकमस्थान होता है २ । इक्कीस प्रकृतियोंकी
सत्तावाने जीवके दो प्रकारकी मायाका उपशम हो जाने पर मायासंजलनके नयकबन्धके साथ
तीन प्रकृतिक संकमस्थान होता है ३ । नयकबन्धका उपशम कर देने पर दो प्रकृतिक संकमस्थान
होता है ४ । तथा क्षयक जीवके लोभमंजलनका बन्ध होते हुए मायासंजलनका संकमरूप एक ही
संकमस्थान प्राप्त होता है ५ । इस प्रकार बन्धस्थानोंमें संकमस्थानोंका कथन किया ।

§ ३३९. इस प्रकार एकसंयोगी भंगोंका कथन करके अब 'बंधेण य संकमट्टाणे' इस
सूत्र वचनका अर्थलम्बन लेकर दो संयोगी स्थानोंका कथन करते हैं । उसमें भी बन्धस्थान और
सत्कर्मस्थान इन दोनोंके संयोगको आधारभूत मानकर संकमस्थानोंका विचार करते हैं । यथा—
अट्टाईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और वाईस प्रकृतिक बन्धस्थान इन दोनोंके परस्पर संयोगको
आधारभूत करके २७, २६ और २३ प्रकृतिक ये तीन संकमस्थान होते हैं । पुनः अट्टाईस प्रकृतिक
सत्कर्मस्थान और इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थान इन दोनोंके संयोगको आधारभूत करके पच्चीस
और इक्कीस प्रकृतिक दो संकमस्थान प्राप्त होते हैं २५, २१ । उन्नीस सत्कर्मस्थानका सत्रहप्रकृतिक
बन्धस्थानके साथ प्राप्त करके २५, २६, २५ और २३ प्रकृतिक ये चार संकमस्थान सम्भव हैं ।
तेरह और नौ प्रकृतिक बन्धस्थानोंके साथ प्राप्त हुए उसी सत्कर्मस्थानके सद्भावमें प्रत्येकमे

१. ता०-आ० प्रत्याः ताव संकमट्टाणाण इति पाठः । २. आ०प्रती संकमट्टाण इति पाठः ।

छव्वीस-तेवीसगण्णिदाणि तिण्णि संकमद्वारणाणि लब्धंति २७, २६, २३ । उवरिम-
बंधद्वारेणु णिरुद्धसंतकम्मद्वारणसंभवो णत्थि । एवमेदेण कमेण एक्केकमंतकम्मद्वारणं
जहामंभवं मव्वबंधद्वारेणु संजोजिय तत्थ संकमद्वारणाणमियत्तासंभवो मग्गणिज्जा ।
अधवा बंधद्वारणं ध्रुवं कादृण जहामंभवमंतकम्मद्वारेणु संजोजिय तत्थ संभवंताणं
संकमद्वारणाणं गवेसणा कायत्वा । तं कथं ? अट्टावीसमंतकम्मं वावीसबंधद्वारणं च
होऊण २७, २६, २३' एदाणि तिण्णि संकमद्वारणाणि भवंति । तम्मि चैव बंधद्वारेणु
सत्तावीसमंतकम्ममहगए २६, २५ एदाणि दोणि संकमद्वारणाणि भवंति । छव्वीसमंतं
वावीसबंधो च होऊण पणुवीससंकमद्वारणमेक्कं चैव लब्धइ २५ । एवं वावीसबंध-
महगएणु मंतकम्मद्वारेणु संकमद्वारणपरूवणा कया ।

३४०. संपहि इगिवीसबंधद्वारणमट्टावीसमंतकम्मं च होऊण पणुवीस-इगिवीस-
गण्णिदाणि दोणि संकमद्वारणाणि भवंति २७, २१ । इगिवीसबंधद्वारेणु णिरुद्धे णत्थि
अण्णो मंतकम्मवियप्पो । अट्टावीसमंतं सत्तासबंधो च होऊण २७, २६, २५, २३
एदाणि संकमद्वारणाणि भवंति । चउवीसमंतं सत्तासबंधो च होऊण २३, २२, २१
एदाणि संकमद्वारणाणि भवंति । पुणो तम्मि चैव बंधद्वारेणु तेवीसमंतकम्मद्वारेणु मह
गदे वावीस-इगिवीससंकमद्वारणाणि लब्धंति २२, २१ । पुणो तम्मि चैव बंधद्वारेणु

सत्ताईस, छव्वीस और तेईस प्रकृतिक तीन संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं २७, २६, २३, । इसके
आगेके बन्धस्थानोंमें विवक्षित २० प्रकृतिक सत्कर्मस्थान सम्भव नहीं हैं । इस प्रकार इस क्रमसे
एक एक सत्कर्मस्थानका यथासम्भव सब बन्धस्थानोंके साथ संयोग करके वहाँ पर संक्रमस्थानोंके
परिमाणका विचार कर लेना चाहिये । अथवा बन्धस्थानका ध्रुव करके और उससे यथासम्भव
सत्कर्मस्थानोंका संयोग करके वहाँपर सम्भव संक्रमस्थानोंका विचार कर लेना चाहिये । यथा—
अट्टाईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और वाईस प्रकृतिक बन्धस्थान होकर २७, २६ और २३ प्रकृतिक
ये तीन संक्रमस्थान होते हैं । उन्नी बन्धस्थानके सत्ताईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके साथ प्राप्त होनेपर
२६ और २५ प्रकृतिक ये दो संक्रमस्थान होते हैं । छव्वास प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और वाईस
प्रकृतिक बन्धस्थान होकर एक पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है २५ । इस प्रकार वाईस
प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ प्राप्त हुए सत्कर्मस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका कथन किया ।

३४०. इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थान और अट्टाईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान होकर पच्चीस
और इक्कीस प्रकृतिक दो संक्रमस्थान होते हैं २५, २१ । इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थानके सद्भायसे अन्य
सत्कर्मस्थानका विकल्प नहीं होता । अट्टाईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और सत्तट प्रकृतिक बन्धस्थान
होकर २७, २६, २५ और २३ प्रकृतिक ये चार संक्रमस्थान होते हैं । चोवीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान
और सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थान होकर २३, २२ और २१ प्रकृतिक ये तीन संक्रमस्थान होते हैं । पुनः
तेईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके साथ उन्नी बन्धस्थानके प्राप्त होने पर वाईस प्रकृतिक और इक्कीस
प्रकृतिक संक्रमस्थान होते हैं २२, २१ । पुनः वाईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके साथ उन्नी बन्ध-

वावीसमंतकम्मेण मह गदे इगिवीसमंतकमट्टाणमेक्कं चेव होइ, तत्थ पयागंतरामंभवादो । पुणो इगिवीसमंतं सत्ताग्गबंधो च होऊण इगिवीसमंतकमट्टाणमेक्कं चेव लब्भइ, णात्थ अण्णो वियप्पो । एवमुवरिसबंधट्टाणेसु वि जहामंभवं मंतकम्मट्टाणविसेमिदेसु पादेक्कं मंतकमट्टाणमंभवो गवेमणिज्जो ।

३४१. संपहि अण्णो दुमंजोगपयागे उच्चदे । तं जहा—‘बंधेण य मंतकमट्टाणे’ बंधट्टाणेहि मह मंतकमट्टाणाणि समाणय ? कम्मि त्ति पुच्छिदे कम्ममियट्टाणेसु त्ति अहिमंभवो कायव्वो । मंतकम्मियट्टाणाणि आहारग्गट्टाणि ठविय तेसु बंध-मंतकमट्टाणाणं दुमंजोगो णेदव्वो त्ति उत्तं होइ । एदं च देसामामयं तेण बंधट्टाणेसु मंत-मंतकमट्टाणाणं दुमंजोगो समाणेषव्वो, मंतकमट्टाणेसु च बंध-मंतकमट्टाणाणं दुमंजोगो सम्ममाणुपुव्वीए णेदव्वो त्ति ।

३४२. एत्थ ताव मंतकम्मट्टाणेसु बंध-मंतकमट्टाणाणं दुमंजोगम्म समाणा विट्ठो उच्चदे । तं जहा—अट्टावीसमंतकम्ममाहारं काऊण २२, २१, १७, १३, ९ बंधट्टाणाणि २७, २६, २५, २३, २१ एदाणि च मंतकमट्टाणाणि लब्भन्ति । सत्तावीस-मंताहम्मि णिरुट्ठे २२ बंधो २६, २५ मंतकमो च लब्भइ । छव्वीसमंतकम्ममि वार्वीस-बंधो पणुवागमंतकमो च लब्भइ । एवमुवरिसमंतकम्मट्टाणेसु वि जहामंभवं बंध-संतकम-ट्टाणाणं दुमंजोगो अणुगतव्वो ।

स्थानके प्राप्त होने पर उक्तीस प्रकृतिक एक ही संक्रमस्थान होता है, क्योंकि यहाँ पर और कोई दूसरा प्रकार सम्भव नहीं है । पुनः इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थान होकर उक्तीस प्रकृतिक एक ही संक्रमस्थान प्राप्त होता है, क्योंकि यहाँ अन्य विकल्प सम्भव नहीं है । इसी प्रकार यथामुम्भव सत्कर्मस्थानोंमें युक्त आगोंके बन्धस्थानोंमें भी अलग अलग संक्रम-स्थानोंका विचार कर लेना चाहिये ।

३४१ अब अन्य प्रकारमें दो संयोगी प्रकारका कथन करते हैं । यथा—‘बंधेण य संक्रमट्टाणे’ बन्धस्थानोंके साथ संक्रमस्थानोंको ले आना चाहिये । कहाँ ले आना चाहिए ? सत्कर्मस्थानोंमें ऐसा यहाँ सम्भव कर लेना चाहिये । अर्थात् सत्कर्मस्थानोंको आधार रूपसे स्थापित कर उनमें बन्धस्थानों और संक्रमस्थानोंके दो संयोगको घटित कर लेना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यतः यह वचन देशामर्पक है अतः बन्धस्थानोंमें सत्कर्मस्थानों और संक्रमस्थानोंका दो संयोग घटित कर लेना चाहिये । तथा संक्रमस्थानोंमें बन्धस्थानों और सत्कर्मस्थानोंका दो संयोग भले प्रकार आनुपूर्वीक्रमसे घटित कर लेना चाहिये ।

३४२. यहाँ सर्व प्रथम सत्कर्मस्थानोंमें बन्धस्थानों और संक्रमस्थानोंके दो संयोगको घटित कर लेनेकी विधि कहने हैं । यथा—अट्टाईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानको आधार करके २२, २१, १७, १३ और ९ प्रकृतिक ये पाँच बन्धस्थान और २७, २६, २५, २३ और २१ प्रकृतिक ये पाँच संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं । सत्ताईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके रहते हुए २७ प्रकृतिक बन्धस्थान तथा २६ और २५ प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं । छव्वीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके रहते हुए बाईस प्रकृतिक बन्धस्थान और पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है । इसी प्रकार आगेके सत्कर्मस्थानोंमें भी यथामुम्भव बन्धस्थानों और संक्रमस्थानोंके दो संयोगको जान लेना चाहिये ।

§ ३४३. मंपहि बंधद्वारेणु सेसदुसंजोगो णिज्जदे । तं जहा—२२ बंधो होऊण २८, २७, २६ संतकम्मद्वाराणि २७, २६, २५, २३ संक्रमद्वाराणि च लब्धंति । इगिवीसबंधद्वाराणम्मि २८ संतकम्मं २५, २१ संक्रमद्वाराणि च भवंति । सत्तारमबंधद्वाराणम्मि २८, २४, २३, २२, २१ संतकम्मद्वाराणि २७, २६, २५, २३, २२, २१ संक्रमद्वाराणि च भवंति । एवमुवग्गिमबंधद्वारेणु वि एक्केक्कणिरुंभणं काऊण तत्थ सेसदुसंजोगो जहामंभवमणुमग्गणिज्जो जाव एक्किस्से बंधद्वाराणिदि ।

§ ३४४. मंपहि संक्रमद्वारेणु बंध-संतद्वाराणां दुमंजोगस्मानणयणकमो उच्चदे । तं जहा—सत्तावीसमंकमे णिरुद्धे अट्टावीसमंतं २२, १७, १३, ९ बंधद्वाराणि च भवंति । छव्वीससंक्रमद्वाराणम्मि २८, २७ संतकम्मद्वाराणि २२, १७, १३, ९ बंधद्वाराणि च भवंति । पणुवीससंक्रमद्वाराणम्मि २८, २७, २६ संतकम्मद्वाराणि २२, २१, १७ बंधद्वाराणि च भवंति । २३ संक्रमद्वारेणु २८, २४ संतद्वाराणि २२, १७, १३, ९, ५ बंधद्वाराणि च भवंति । एवमुवग्गिमसंक्रमद्वाराणां पि पादेक्कं णिरुंभणं काऊण तत्थ संतकम्मद्वाराणि बंधद्वाराणि च दुमंजोगनिमिद्वाराणि णेद्व्वाराणि जाव एगमंसंक्रमद्वारेणु ति । एवं णीदे दुमंजोगपरुवणा ममत्ता होइ । एगो च मव्वो अदीदगाहासुत्तपवंधो संक्रम-पडिग्गह-तदुभयद्वाराणममुक्कित्तणाए णामित्तगच्छिणीए^१ पडिबद्धो,

§ ३४३. अब बन्धस्थानोंमें शेष दो संयोगी स्थानोंका विचार करते हैं । यथा चाईस प्रकृतिक बन्धस्थान होवर २८, २७ और २६ प्रकृतिक तीन सत्कर्मस्थान और २७, २६, २५ और २३ प्रकृतिक चार संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं । इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थानमें २८ प्रकृतिक सत्कर्मस्थान तथा २५ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान होते हैं । सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थानमें २८, २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और २७, २६, २५, २३, २२ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान होते हैं । इसी प्रकार एक प्रकृतिक बन्धस्थानके प्राप्त होनेतक आगेके बन्धस्थानोंमेंसे भी एक एकको विवक्षित करके उसमें यथासम्भव शेष दो संयोगी स्थानोंका विचार कर लेना चाहिये ।

§ ३४४. अब संक्रमस्थानोंमें बन्धस्थानों और सत्कर्मस्थानोंके दो संयोगके लानेका क्रम कहते हैं । यथा—सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके सद्भावमें २८ प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और २२, १७, १३ और ९ प्रकृतिक बन्धस्थान होते हैं । छव्वीस प्रकृतिक संक्रमस्थानमें २८ और २७ प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और २२, १७, १३ और ९ प्रकृतिक बन्धस्थान होते हैं । पन्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानमें २८ और २६ प्रकृतिक सत्कर्मस्थान तथा २२, २१ और १७ प्रकृतिक बन्धस्थान होते हैं । २३ प्रकृतिक संक्रमस्थानमें २८ और २४ प्रकृतिक सत्कर्मस्थान तथा २२, १७, १३, ९ और ५ प्रकृतिक बन्धस्थान होते हैं । इस प्रकार एक प्रकृतिक संक्रमस्थानके प्राप्त होने तक आगेके सब संक्रमस्थानोंमेंसे भी प्रत्येकको विवक्षित करके उसमें सत्कर्मस्थानों और बन्धस्थानोंके दो संयोगी स्थानोंका विचार कर लेना चाहिये । इस प्रकार विचार करनेपर दो संयोगी रूपरणा समाप्त होती हैं । ३० यह सब अतीत गाथासूत्रोंका कथन स्मामित्यको सूचित करनेवाले संक्रमस्थानों,

१. ता०प्रती एवमुवग्गि संक्रमद्वाराण इति पाठः । २. आ०प्रती संक्रमद्वाराणि इति पाठः । ३. ता०प्रती -गवमग्गीए ? आ०प्रती -गवमग्गाए इति पाठः ।

ओघादेसेहि तत्पस्वणात् चैव णिवद्वाणमदीदम्बग्गाहाणमुवलंभादो ।

३४५. संपहि जन्थनन्वाणपुव्वीए सेमाणमणियोगद्वागणं णामणिहेसकण्ह-
मुग्गिमगाहासुत्ताणं दोण्हमवयारो—‘गादिय जहणण मंक्रम०’ एत्थ मादि-जहणण-
ग्गण्णेण मादि-अणादि-धुव-अद्धुव-मवर-णोमव्व-उक्कस्माणुक्कम्म-जहण्णाजहणणमंक्रम-
मण्णिदाणमणियोगद्वागणं संगहो कायव्वो, देवासामयभावेणेदस्मव्वद्वाणादो । मंक्रमग्गहण-
मेदेमिमणियोगद्वागणं पयडिद्वाणमंक्रमविमयत्तं सूचेदि । ‘कदिम्बुत्तो०’ एत्वं उत्ते
एक्केकमि मंक्रमद्वाणम्मि कदिगुणो जीवरागी होइ त्ति पुच्छिदं हवइ । एदेणप्पा-
वद्दुआणिओगद्वागं सूचिदं । ‘अविरहिद’ग्गहणेण एयजीवेण कालो, ‘सांतर’ग्गहणेण वि-
एयजीवेणंतरं सूचिदं, ‘केवचिरं’ गहणेण दोण्हं पि विसेयणादो । ‘कदिभाग परिमाणं’
इच्चेदेण भागाभागस्स संगहो कायव्वो, मव्वजीवरागिमम कइत्थओ भागो केमिं
मंक्रमद्वाणाणं मंक्रामयजीवरागिमपमाणं होइ त्ति पुच्छाए अवलंवणादो । ३१ ॥

३४६. ‘एवं दव्वे खेत्ते०’ अत्र ‘एवं’ इत्यनेन नानाजीवसंबंधिना भंगविचयस्य
प्रतिग्रहस्थानों और तदुभयस्थानोंके कथनसे सम्बन्ध रखना है, क्योंकि ओघ और आदेससे इसके
करण करनेमें ही अतीत सब गाथाओंका व्यापार देखा जाता है ।

§ ३४५. अत्र यत्रतत्रानुपूर्वीं क्रमसे जो अनुयागद्वारोंके नामका निर्देश करनेके लिये
ही अगेके दो गाथाएँ आये हैं—‘मादिय जहणण मंक्रम०’ इसमें जो ‘गादि जहणण’ पदका
ग्रहण किया है सो इसमें मादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, सर्व, नोसर्व, उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट, जघन्य
आर अजघन्यमंक्रम संज्ञावाले अनुयागद्वारोंका संग्रह करना चाहिये, क्योंकि देशमर्पकभावसे
यह पद अवस्थित है । ‘संक्रम’ पद, ये अनुयागद्वार प्रकृति संक्रमस्थानमें सम्बन्ध रखते हैं, यह
सूचित करता है । ‘कदिम्बुत्तो०’ ऐसा करनेपर एक एक संक्रमस्थानमें कितनीगुणी जीवराशि
होती है यह प्रच्छा की गई है । इसमें अश्वत्थुव अनुयागद्वार सूचित होता है । ‘अविरहिद’
पदके ग्रहण करनेमें एक जीवकी अपेक्षा काल और ‘सांतर’ पदके ग्रहण करनेसे भी एक जीवकी
अपेक्षा अन्तर ये अनुयागद्वार सूचित होते हैं, क्योंकि ‘केवचिरं’ पदके ग्रहण करनेसे यह
‘अविरहिद’ और ‘सांतर’ इन दोनोंका विशेषण है यह सिद्ध होता है । तथा ‘कदिभाग परिमाणं’
इसद्वारा भागाभागका संग्रह करना चाहिये, क्योंकि इस पदमें कितने संक्रमस्थानोंके संक्रामक
जीवराशिका प्रमाण सब जीवराशिका कितना भाग है इस प्रच्छाका अलम्बन लिया गया है ।

विशेषार्थ—अशय यह है कि इस ३१ वीं गाथामें संक्रमप्रकृतिस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाले
सादि मंक्रम, अनादि मंक्रम, ध्रुव मंक्रम अध्रुव मंक्रम, सर्वमंक्रम, नोसर्वमंक्रम, उत्कृष्टमंक्रम,
अनुत्कृष्टमंक्रम, जघन्यमंक्रम, अजघन्यमंक्रम, अश्वत्थुव, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक
जीवकी अपेक्षा अन्तर और भागाभाग इन अनुयागद्वारोंकी सूचना की गई है । अर्थात्
इतने अनुयागद्वारोंके द्वारा प्रकृतिमंक्रमस्थानका वर्णन करना चाहिये यह इसका अभिप्राय है ।

६ ३४६. ‘एवं दव्वे खेत्ते’ इस गाथामें आये हुए ‘एवं’ इस पद द्वारा नाना जीवोंसम्बन्धी

१. ता०प्रती—मुवयारो इति पाठः ।

मंग्रहः । 'दब्बे' इच्चेदेण सुत्तात्रयवेण दब्बपमाणाणुगमो । 'खेत्त'ग्गहणेण खेत्ताणुगमो च, पोसणाणुगमो च 'काल'ग्गहणेण वि कालंतराणं णाणाजीवविसयाणं संगहो कायव्वो । 'भाव'ग्गहणं भावाणिओगहारस्स संगहणफलं । एत्थाहियरणणिहेसो तच्चिसयपरूवणाए तदाहार-भावपदुप्पायणफलो त्ति दट्टव्वो । 'सण्णिवाद' ग्गहणं च सण्णियासाणियोगहारस्स सूचना-मेत्तफलं । 'च' सहो वि भुजगार-पदणिकखेव-वट्ठीणं सप्पभेदाणं संगहओ, तेहि विणा पयदपरूवणाए असंपुण्णभावावत्तीदो । एवमेदेहिं अणेयणयग्गहणणिलीणाणिओगहारेहिं 'संकमणयं' पयडिमकमगाहासुत्तार्णमहिप्पायं णयविट्ठू णयण्हू 'णेया' णयदु 'सुददेसिदं' मूलसुत्तसंदंभमंदरिमिदपरूवणोवायं 'उदारं' अत्थगंभीरं सुत्ताहिप्पायं णयदु । त्ति उच्चं होइ । अहवा 'संकमणयं' संक्रमनीतकविधानं णयविट्ठू नयज्ञः 'णेया' नयेत्प्रकाशये-दित्यर्थः । एवं णीदे संक्रमवित्तिगाहाणमत्थो परिसमत्तो होइ ।

§ ३४७. एत्तो गाहासुत्तसूचिदाणमणियोगहारणं विहासणट्टमुच्चारणाए मह चुण्णिसुत्ताणुगमं कम्सामो । तं जहा—ट्टाणसमुक्त्तिणाए दुविहो णिहेसो—ओघादेस-भेदेण । तत्थोघेण अत्थि २७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १ एदेसि संकामणा । एवं

भंगविचयका संग्रह किया गया है । 'दब्बे' इस सूत्रवचनद्वारा द्रव्यप्रमाणानुगमका 'खेत्त' पदके ग्रहण करनेसे क्षेत्रानुगम और स्पर्शनानुगमका तथा 'काल' पदके ग्रहण करनेसे भी नाना जीव सम्बन्धी काल और अन्तर अनुयोगद्वारोंका संग्रह करना चाहिये । सूत्रमें 'भाव' पदका ग्रहण भाव अनुयोगद्वारके संग्रह करनेके लिये किया है । इस गाथामें जो उक्त सब पदोंका निर्देश अधिकरण-रूपसे किया है सो उस उस विषयका कथन करते समय वह अनुयोगद्वार आधार हो जाता है यह दिखलानेके लिये किया है ऐसा यहाँ जानना चाहिये । 'सण्णिवाद' पदका ग्रहण सन्निकर्ष अनुयोगद्वारको सूचित करनेके लिये किया है । सूत्रमें 'च' शब्द भी अपने भेदोंसहित भुजगार, पदनिक्षेप और वृद्धि इन तीनोंका संग्रह करनेके लिये आया है, क्योंकि इनके विना प्रकृत प्ररूपणाके अधूरी रहनेकी आपत्ति आती है । इस प्रकार अनेक गहन नयोंके विषयभूत इन अनुयोगद्वारोंके द्वारा 'संकमणयं' अर्थात् प्रकृतिसंक्रमविषयक गाथा सूत्रोंके अभिप्रायको 'णयविट्ठू' अर्थात् नयके जानकार 'णेया' अर्थात् जानें । तात्पर्य यह है कि 'सुददेसिदं' अर्थात् मूल सूत्रके सन्दर्भमें दिखलाये गये प्ररूपणाके उपायको, जो उदारं अर्थात् अर्थगम्भीर है ऐसे सूत्रके अभिप्रायको जानें यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अथवा 'संकमणयं' अर्थात् संक्रमसे प्राप्त हुए विधानको 'णयविट्ठू' अर्थात् नयके जानकार पुरुष 'णेया' अर्थात् प्रकाशित करें यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस प्रकार ले जाने पर संक्रमविषयक वृत्तिगाथाओंका अर्थ समाप्त होता है ।

§ ३४७. अब इससे आगे गाथासूत्रोंके द्वारा सूचित होनेवाले अनुयोगद्वारोंका व्याख्यान करनेके लिये उच्चारणके साथ चूर्णिसूत्रोंका परिशीलन करते हैं । यथा—स्थान समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा २७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १६, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ६, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २ और १ इन स्थानोंके

१. ता०प्रतौ पयडिगाहासंकमसुत्ताण- इति पाठः । २. आ०प्रतौ णयविदो णयण्हो इति पाठः । ३. ता०प्रतौ णयविट्ठू नयज्ञः, आ०प्रतौ णयविदो नयज्ञः इति पाठः ।

मणुस्मति ए । णवग्नि मणुमिणीमु चोदसमंकमो णत्थि । अहवा ओयरमाणमस्सिऊण अत्थि ।

§ ३४८. आदेसेण णेग्इएमु अत्थि २७, २६, २५, २३, २१ मंकामया । एवं सच्चणेरया तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खतिय-देवा जाव णवगेवजा त्ति ।

° ३४९. पंचिं०तिरिक्खअपज्ज०-मणुमअपज्ज० अत्थि २७, २६, २५ मंकामया । अणुहिमादि जाव मच्चट्टे त्ति अत्थि २७, २३, २१ मंकामया । एवं जाव अणाहाग्नि त्ति ।

§ ३५०. मच्च-णोमच्च-उक्कस्माणुक्कस्म-जहण्णाजहण्णमंकमाणमेत्थ णत्थि संबवो,

संक्रामक जीव हैं। इसी प्रकार तीन प्रकारके मनुष्योंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें चौदह प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं होता है। अथवा उतरनेवाले मनुष्यनी जीवोंके होता है।

विशेषार्थ—आवसे तो उक्त सभी स्थानोंके संक्रामक जीव है। मनुष्यगतिमें सामान्य मनुष्य और मनुष्य पर्याप्त इनके उक्त सब संक्रमस्थान सम्भव हैं। केवल मनुष्यनियोंके उपशम-श्रेणि पर चढ़ते समय १४ प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं होता, क्योंकि जो २४ प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशम श्रेणि पर चढ़ता है उसीके ६ नोकपायोंका उपशम होने पर १४ प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है। किन्तु स्त्रोवेदके उद्यके साथ उपशमश्रेणि पर चढ़े हुए ऐसे जीवके छह नोकपाय और पुरुषवेदका एक साथ उपशम होता है इसलिये इसके १४ प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं पाया जाता। हों उपशमश्रेणिसे उतरते समय जब १४ प्रकृतियोंका संक्रम होने लगता है तब मनुष्यनीके १४ प्रकृतिक संक्रमस्थान अवश्य प्राप्त हो जाता है। इसीसे यहाँ मनुष्यनीके उपशमश्रेणि पर चढ़ते समय १४ प्रकृतिक संक्रमस्थानका निवेद किया है।

§ ३४८. आदेशसे नारकियोंमें २७, २६, २५, २३ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके संक्रामक जीव हैं। इसी प्रकार सब नारकी, तिर्यञ्च, पंचेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिक और सामान्य देवोंसे लेकर नौ प्रवेयक तकके देव इनके कथन करना चाहिये।

विशेषार्थ—इन मार्गणाओंमें ये ही संक्रमस्थान होते हैं, अतः यहाँ इनके संक्रामक जीव बतलाये हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि द्वितीयादि नरकोंमें, तिर्यञ्चनियोंमें और भवनत्रिकोंमें व सौधर्म ऐशान कल्पकी देवियोंमें २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान क्षपणाकी अपेक्षा घटित न करके अनन्तानुबन्धीके विसंयोजक जीवोंकी अपेक्षा सासादन गुणस्थानमें एक आवलिकाल तक जानना चाहिये, क्योंकि इन मार्गणाओंमें ज्ञायिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। इसलिये यहाँ दर्शनमोहनोद्यकी क्षपणाकी अपेक्षा २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं प्राप्त होता यह सिद्ध होता है।

§ ३४९. पंचेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तवर्गोंमें २७, २६ और २५ प्रकृतिक स्थानोंके संक्रामक जीव है। अनुदिशासे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें २७, २३, और २१ प्रकृतिक स्थानोंके संक्रामक जीव है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—अनुदिशादिकमें २८ प्रकृतियोंकी सत्तावालेके २७ प्रकृतिक, २४ प्रकृतियोंकी सत्तावालेके २३ प्रकृतिक और २१ प्रकृतियोंकी सत्तावालेके २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान होते हैं। शेष कथन सुगम है।

§ ३५०. यहाँ प्रकृतिसंक्रमस्थानमें सर्वसंक्रम, नौसर्वसंक्रम, उत्कृष्ट संक्रम, अनुत्कृष्ट संक्रम,

गिरुद्धेयसंकमट्टाणम्मि उक्कस्साणुक्कस्सादिपदभेदाणमसंभवादो ।

§ ३५१. सादि-अणादि-ध्रुव-अध्रुवाणुगमेण द्रुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण पणु० संकाम० किं सादि०४ ? सादि० अणादि० ध्रुवा अद्रुवा वा । सेमट्टाणमंकामया मव्वे सादि-अध्रुवा । आदेसेण णेगइय० मव्वसंकमट्टाणाणं संकामया सादि-अध्रुवा । एवं जाव अणाहारि त्ति ।

❀ एत्तो पदाणुमाणियं सामित्तं णेयव्वं ।

§ ३५२. एदस्म सामित्तपरूवणावीजपदभूदसुत्तस्म अत्थविवरणं कस्सामो ।

जयन्य संक्रम और अजघन्य संक्रम ये अनुयोगद्वार सम्भव नहीं हैं, क्योंकि विवक्षित एक संक्रम-स्थानमें उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट इत्यादि भेद सम्भव नहीं है ।

विशेषार्थ—जात्यर्थ यह है कि जिस संक्रमस्थानमें जितनी प्रकृतियाँ परिगणित की गई हैं उसमें उतनी ही प्रकृतियाँ हांती हैं, इसलिये प्रकृतिमंक्रमस्थानोंमें इन भेदोंका निषेध किया है ।

§ ३५१. सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आघ-निर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे पच्चीस प्रकृतिक स्थानके संक्रामक जीव क्या सादि होते हैं, क्या अनादि होते हैं, क्या ध्रुव होते हैं या क्या अध्रुव होते हैं ? सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव चारों प्रकारके होते हैं । शेष स्थानोंके संक्रामक सब जीव सादि और अध्रुव होते हैं । आदेशसे नारकियोंमें सब संक्रमस्थानोंके संक्रामक जीव सादि और अध्रुव होते हैं । इसी प्रकार अनाहारक भार्गवा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जात यह है कि पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान अनादि व सादि दोनों प्रकारके मिथ्यादृष्टियोंके व भव्य, और अभव्य इन दोनोंके सम्भव हैं, अतः यहाँ सादि आदि चारों विकल्प बन जाते हैं । किन्तु शेष स्थानोंकी यह बात नहीं है, क्योंकि वे सब स्थान कादाचित्क हैं, अतः उनमें सादि और अध्रुव ये ही दो विकल्प घटित होते हैं । इसी प्रकार सब मार्गणाओंमें उक्त प्रकारसे सादि आदि प्ररूपणा लगा लेना चाहिये । इनका सरलतासे ज्ञान हानेके लिये काष्ठक दे रहे हैं—

मार्गणा	२५ प्र०	शेष स्थान
मिथ्या०	सादि आदि ४	सादि व अध्रुव
अ-लु०	"	"
भव्य	ध्रुवके बिना ३	"
अभव्य०	अनादि व ध्रुव	×
शेष	सादि व अध्रुव	जहाँ जो सम्भव है वे सादि व अध्रुव

❀ अब आगे आनुपूर्वी आदि अर्थपदोंके द्वाग अनुमान किये गये स्वामित्वको जानना चाहिए ।

§ ३५२. अब स्वामित्व प्ररूपणाके वीजभूत इस सूत्रका व्याख्यान करते हैं । यथा—इससे

तं कथं ? एतौ उवगि सामित्तमवमरपत्तं णेदव्वं । कथं णेदव्वं इदि पुच्छिदे पदानुमाणियं पुव्वुत्ताणि अत्थपदाणि आणुपुव्वीमंकमादीणि णिवंधणं कादण णेदव्वमिदि उत्तं होइ । मंपहि एदेण ममप्पिदत्थविवग्गट्टमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—सामित्ताणुगमेण दुविहो णिहेमो—ओघेणादेसेण । ओघेण २७, २६, २३ संकमो कस्स ? अण्णदरस्स मम्माइड्डिस्स वा मिच्छाइड्डिस्स वा । २५ संकमो कस्स ? मिच्छा० सामण० मम्मामि० वा । २१ मंकमो कस्स ? सासण० सम्मामिच्छाइड्डिस्स मम्मादिड्डिस्स वा । वावीम-वीमप्पट्टुडि जाव एकस्से मंकमो कस्स ? अण्णदरस्स मम्माइड्डिस्स । एवं मणुमत्तिण । णवरि मणुसिणीसु १४ मंकमामित्तं णत्थि । अहवा ओयरमाणमस्मिणुण चउवीम-संतकम्मियोवगामयस्स सामित्तं वत्तव्वं ।

§ ३५३. आदेसेण णेग्गय० २७, २६, २३ कस्स ? अण्णद० मम्माइड्डि० मिच्छाइड्डि० । २५, २१ कस्स ? ओघं । एवं पढमपुढवि-तिग्गिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख २—देवगदिदेवा मोहम्मादि जाव णवणेवज्जा त्ति । एवं विदियादि जाव मत्तमि त्ति । णवरि इगिवीममंकमो मम्माइड्डिस्स णत्थि । एवं जोणिणी-भवण०-वाण-जोदिमिया त्ति । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुमअपज्ज०-अणुदिसादि मव्वट्टा त्ति अप्पणो

आग स्वामित्त्व अवमर प्राप्त है, इसलिए उसे जानना चाहिये । कैसे जानना चाहिए ऐसा पूछनेपर पदानुमानित अर्थात् आनुपूर्वी, संक्रम आदि अर्थपदोंको निमित्त करके जानना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब इससे प्राप्त हुए अर्थका विवरण करनेके लिए उच्चारणको बतलाते हैं । यथा—स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे २७, २६ और २३ प्रकृतिक संक्रमस्थान किसके होते हैं ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिके होते हैं । २५ प्रकृतिक संक्रमस्थान किसके होता है ? मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि के होता है । २४ प्रकृतिक संक्रमस्थान किसके होता है ? सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टिके होता है । २२ और २० प्रकृतिक संक्रमस्थानोंसे लेकर एक प्रकृतिक संक्रमस्थान तकके सब संक्रमस्थान किसके होते हैं ? अन्यतर सम्यग्दृष्टिके होते हैं । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमे जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें १४ प्रकृतिक संक्रमस्थानका स्वामित्व नहीं है । अथवा उरुशमश्रेणीसे उतरनेवाले जीवकी अपेक्षा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक स्त्रीवेदीके १४ प्रकृतिक संक्रमस्थानका स्वामित्व कहना चाहिए ।

३५३. आदेशसे नारकियोंमें २७, २६ और २३ प्रकृतिक संक्रमस्थान किसके होते हैं ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिके होते हैं । २४ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान किसके होते हैं ? इनका स्वामित्व ओघके समान है । इसी प्रकार प्रथम पृथिवीके नारकी, तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च पयाप्त, देवगतिमे सामान्य देव और सौधर्म कलरसे लेकर नौ त्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए । इसी प्रकार दूसरे नरकमे लेकर सातवें नरक तकके नारकियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इन नारकियोंमें सम्यग्दृष्टिके इक्कीस प्रकृतिक संक्रम-स्थान नहीं होता । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिपी देवोंमें जानना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अर्याप्त, मनुष्य अपयाप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अपने अपने तीन संक्रमस्थान किसके होते हैं ? अन्यतरके होते हैं । इसी प्रकार

तिण्णि ट्टाणाणि कस्स ? अण्णदग्गस्स । एवं जाव ।

§ ३५४. एवं सामित्तं समाणिय संपहि कालाणियोगद्धारपरुवणट्टमुत्तग्गुत्तात्र-
यारो कीरदे—

❀ एयजीवेण कालो ।

§ ३५५. सामित्तपरुवणाणंतरमेयजीवविसओ कालो परुवेयव्वो त्ति पइज्जागुत्तमेदं ।

❀ सत्तवीसाए संकामओ केवचिरं कालादो होइ ?

§ ३५६. पुच्छासुत्तमेदं सुगमं ।

❀ जहणणेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ३५७. एसो जहणकालो मिच्छाइट्ठिस्स पणुवीममं कामयस्स उवमममम्मत्तं
वेत्तूण विदियमयप्पहुडि सत्तावीममं कामयभावेण जहणमंतोमुहुत्तमेत्तकालमिच्छय
पुणो उवमममम्मत्तकालव्वभंतरे चेय अणंताणुवंधा विमंजोइय तेरा ममं कामयत्तेण
परिणयस्स समुवल्लभदे । अथवा सम्ममिच्छाइट्ठिस्स सम्मत्तं मिच्छत्तं वा गंतूण तत्थ
सव्वजहणमंतोमुहुत्तमिच्छय पुणो परिणामपच्चएण मम्मामिच्छत्तमुयगयस्स एमो
कालो गहियव्वो । मपहि तदुक्कम्मकालपरुवणट्टमुत्तग्गुत्तं भणइ—

❀ उक्कस्सेण वेद्धावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि तिपल्लिदोवमस्स

अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ३५४. इस प्रकार स्वामित्तको समाप्त करके अब कालानुयोगद्वाराका कथन करनेके लिए
आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

* एक जीवकी अपेक्षा कालका अधिकार है ।

§ ३५५. स्वामित्तविषयक प्ररूपणाके बाद एक जीवविषयक कालका कथन करना चाहिये
इस प्रकार यह प्रतिज्ञासूत्र है ।

* सत्ताईस प्रकृतिक संक्रामकका कितना काल है ?

§ ३५६. यह प्रच्छासूत्र सुगम है ।

* जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३५७. जो पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको
प्राप्त करके दूसरे समयसे लेकर सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रम करता हुआ जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालतक
वहाँ रहकर पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर ही अन्तर्मुहूर्तकालके अन्तर्मुहूर्त कालतक
प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त होजाता है उसके सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका यह जघन्य काल
प्राप्त होता है । अथवा जो सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्व या मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और वहाँ
सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालतक रहकर फिर परिणामवशा सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त होता
है उसकेयह जघन्य काल ग्रहण करना चाहिए । अब उम संक्रमस्थानके उन्कट्ट कालका कथन करनेके
लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

* उत्कट्ट काल पल्लके अमंग्यातवें भागसे अधिक दो छ्यामठ सागर-

१. आ०-त्रो०प्रत्योः पल्लिदोवमम्म, ना०प्रती [ति] पल्लिदोवमम्म इति पाठः ।

असंखेज्जदिभागेण ।

§ ३५८. तं जहा—एगो अणादियमिच्छाइट्टी उवममम्मत्तं पडिवज्जिय सत्तावीममंकायओ होऊण मिच्छत्तं गदो पलिदोवमामंखेज्जभागमेत्तकालमुव्वेल्लणावावारेणच्छिय अविणट्टुमंक्रमपाओग्गमम्मत्तमंतक्रम्मेण मम्मत्तं पडिवण्णो पढमछावट्ठिं परिभमिय तदवमाणे मिच्छत्तं गंतूण पुव्वं व पलिदोवमामंखेज्जभागमेत्तकालमम्मत्तुव्वेल्लणावावदो तदुव्वेल्लणचरिमफालीए मह सम्मत्तमुव्वगओ । विदियछावट्ठिं परिभमणं काऊण तण्णवमाणे मिच्छत्तं गओ । पुणो वि दीहुव्वेल्लणकालेण सम्मत्तमुव्वेल्लिय छव्वीममंकायओ जादो । एवं तीहि पलिदोवमामंखेज्जदिभागेहि मादिरेयवेछावट्ठिमागरोवममेत्तो मत्तावीममंक्रमुक्कस्सकालो लद्धो । मंयहि छव्वीममंकायजहण्णुकस्सकालपव्वणट्टुमुत्तग्मुत्तमोइण्णं—

❀ छव्वीससंकायओ केवचिरं कालादो होइ ?

§ ३५९. सुगमं ।

❀ जण्णेण एगसमओ ।

३६०. तं जहा—णिम्मंतकम्मियमिच्छाइट्टिम्म पढमम्मत्तग्गहणपढममयम्मि छव्वीममंकायभावमुव्वगयम्म पुणो विदियमए मम्माभिच्छत्तं संकायमाणम्म काल प्रमाणं है ।

३५८. तुलासा इस प्रकार है—कोई एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके और सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक हाकर मिथ्यात्वमें गया । फिर पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक उद्वेलनाक्रियामे लगा रहा और सम्यक्त्वसत्कर्मके संक्रमकी योग्यताका नाश होनेके पूर्व ही सम्यक्त्वकी प्राप्त होगया । फिर प्रथम छयासठ सागर कालतक परिभ्रमण करके अन्तमें मिथ्यात्वमे गया और पहलेके समान पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक सम्यक्त्वकी उद्वेलना करता रहा । किन्तु उसकी उद्वेलनाकी अन्तिम फालिके साथ ही सम्यक्त्वको प्राप्त होगया । फिर दूसरे छयासठ सागर कालतक परिभ्रमण करके उसके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । फिर सबसे बड़े उद्वेलनाकालके द्वारा सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके छव्वीस प्रकृतियोंका संक्रामक हांगया । इस प्रकार सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामकका उत्कृष्ट काल पत्यके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक दो छयासठ सागर प्राप्त हुआ । अब छव्वीस प्रकृतियोंके संक्रामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ छव्वीम प्रकृतिक संक्रामकका कितना काल है ?

§ ३५९. यह सूत्र सुगमं है ।

❀ जघन्य काल एक समय है ।

३६०. तुलासा इस प्रकार है—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तासे रहित जो मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण करके उसके प्रथम समयमें छव्वीस प्रकृतिक संक्रम-

सत्तावीमसंकमो होइ ति छव्वीमसंकमजहणकालो एयसमयमेत्तो लब्भदे । अहवा जो मिच्छत्तपढमट्टिदीए दुचरिममयम्मि सम्मत्तमुव्वेल्लिय एगसमयछव्वीससंकामओ होऊण से काले सम्मत्तं पडिवज्जिय सत्तावीमसंकामओ जादो तस्स छव्वीससंकमकालो जहणओ एयममयमेत्तो लब्भइ ति वत्तव्वं ।

❀ उक्कसेण पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

१३६१. तं कथं ? अट्टावीमसंतकम्मियमिच्छाइट्टिस्स सम्मत्तमुव्वेल्लियुण पुणो मम्मामिच्छत्तमुव्वेल्लेमाणस्स भव्वो चेव तदुव्वेल्लणकालो छव्वीमसंकामयस्स उक्कस्सकालो होइ । सो च पल्लिदोवमसंखेज्जदिभागमेत्तो । णवरि मम्मामिच्छत्तुव्वेल्लणकालो समयहिओ छव्वीमसंकामयस्स उक्कस्सकालो वत्तव्वो, तदुव्वेल्लणचरिमिफालि मिच्छत्तपढमट्टिदिचरिममए संकामिय मम्मत्तं पडिवण्णम्मि तदुवलंभादो । मंपहि पणुवीमसंकामयकालपरूवणट्टमुत्तरमुत्तं भणइ—

❀ पणुवीसाए संकामए तिण्णि भंगा ।

१३६२. तं जहा—अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ मपज्जवमिदो गादिओ मपज्जवमिदो चेदि पणुवीसाए संकामयस्स तिण्णि भंगा । तत्थाभव्वजीवस्स पढमो भंगो । भव्वजीवस्स मम्मत्तुप्पायणाए विदिओ भंगो । तस्सेव हेट्ठा परिदिदस्स तदिओ

स्थानको प्राप्त होगया । पुनः दूसरे समयमें सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रामक होकर सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त हुआ उसके छव्वीस प्रकृतिक संक्रमस्थानवा जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । अथवा जो जीव मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके उरान्त्य समयमें सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके एक समय तक छव्वीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका स्वामी होकर उसके बाद दूसरे समयमें सम्यक्त्वका प्राप्त होकर सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ उसके छव्वीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है ऐसा यहाँ कहना चाहिए ।

* उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

१३६१ खुलासा इस प्रकार है—अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके पुनः सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर रहा है उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें जितना काल लगता है वह सभी काल छव्वीस प्रकृतिक संक्रामकका उत्कृष्ट काल होता है जा कि पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वके उक्त उद्वेलना कालको एक समय अधिक करके छव्वीस प्रकृतिक संक्रामकका उत्कृष्टकाल कहना चाहिये, क्योंकि जो जीव मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके अन्तिम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना की अन्तिम फालिका संक्रम करके सम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके उक्त उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है । अब पचचीम प्रकृतियोंके संक्रामकके कालका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

* पचीस प्रकृतिक संक्रामकके तीन भङ्ग हैं ।

१३६२. यथा—अनादि-अनन्त, अनादि-साम्त और सादि-सान्त । इस प्रकार पचीस प्रकृतिक संक्रामक जीवकी अपेक्षा तीन भङ्ग हैं । उनमेंसे अभव्य जीवके पहला भङ्ग होता है । भव्य जीवके सम्यक्त्वके उत्पन्न करनेपर दूसरा भङ्ग होता है और उसी जीवके सम्यक्त्वसे च्युत होनेपर तीसरा भंग होता है । यहाँ तीसरे भंगमें जघन्य और उत्कृष्ट विकल्प सम्भव होनेसे उसका निर्णय करनेके

भंगो । एत्थ तदियभंगो जहण्णक्कम्मवियप्पमंभवादो तण्णिण्णयपरूपणट्टमुत्तमुत्तं—

❀ तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो जहण्णेण एगसमओ ।
उक्कस्सेण उवड्डुपोग्गलपरियट्टं ।

३६३. एत्थ ताव जहण्णकालपरूवणा कीग्दे—जो छव्वीससंक्रामयमिच्छाइड्डी सम्मामिच्छत्तमुव्वेत्तेणाणो उवसममम्मत्ताहिमुहो होऊण मिच्छत्तपट्टमट्टिदीए दुचरिम-समयम्मि मम्मामिच्छत्तचरिमफालि मिच्छत्तमरूवेण संक्रामिय पुणो चरिमसमयम्मि पणुवीससंक्रामगो होऊण से काले पुणो वि छव्वीससंक्रामओ जादो तस्स लद्धो पयद-जहण्णकालो । अहवा अट्टावीससंतकम्मियउवममसम्माइड्डी सत्तावीससंक्रामओ उवमममम्मत्तद्वाए एगममओ अथि त्ति सासणभावं पडिवण्णो पणुवीससंक्रामयभावेणेग-ममयमच्छिय पुणो विदियसमए मिच्छत्तमुवणमिय मत्तावीससंक्रामओ जादो . अथवा चउव्वीससंतकम्मिय उवममसम्माइड्डी सगद्वाए समयाहियावलियमेत्तसेसाए सासणभावं पडिवण्णो अणंताणुबंधीणं बंधावलियं बोलाविय एगसमयं पणुवीससंक्रामओ जादो तदणंतम्ममए मिच्छत्तं पडिवज्जिय सत्तावीससंक्रामओ जादो सद्धो मुत्तुत्तजहण्णकालो । उक्कस्सेणुवड्डुपोग्गलपरियट्टुपरूवणा कीग्दे । तं जहा—अट्टुपोग्गलपरियट्टादिममए मम्मत्तं पडिवज्जिय तत्थ जहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गंतूण मव्वलहुं सम्मत्त-लियं आगे ा सूत्र कहते है—

* उनमेंमे जो सादि-मान्त भंग हैं उमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।

३६३. यहाँ सूर्य प्रथम जघन्य कालका कथन करते हैं—छव्वीस प्रकृतियोंके संक्रामक जिस मिथ्यागृष्टि जीवने सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करते हुए उपशमसम्यक्त्वके अभिमुख होकर मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके द्विचरम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिका मिथ्यात्वरूपसे संक्रमण किया । पुनः अन्तिम समयमें पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रामक होकर तदनन्तर समयमें फिरसे छव्वीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । उसके प्रकृत जघन्य काल प्राप्त हुआ । अथवा अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशम सम्यग्गृष्टि जीव सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रमण करते हुए उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने पर सासादनभावको प्राप्त होकर एक समय तक पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रामक रहा । पुनः दूसरे समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया उसके पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त हुआ । अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशम सम्यग्गृष्टि जीव अपने कालमें एक समय अधिक एक आयुलि शेष रहने पर सासादनभावको प्राप्त हुआ । पुनः अनन्तानुबन्धियोंकी बन्धावलिको विनाकर एक समय तक पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया और तदनन्तर समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया उसके सूत्रोक्त जघन्य काल प्राप्त हुआ । अब पच्चीस प्रकृतिक संक्रामकके उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं । यथा—कोई एक जीव अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालके प्रथम समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और वहाँ सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर मिथ्यात्वमें गया । पुनः वहाँ सम्यक्त्व और

सम्माभिच्छत्ताणि उच्चेल्लिय पणुवीससंकामओ जादो । पुणो उवडुडुपोगलपरियडुं परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे सम्मतं पडिवण्णो तस्स ताथे पणुवीससंकामो णस्सदि त्ति पयदुक्कस्सकालो लद्धो । संपहि तेवीससंकमट्टाणस्स जहणुक्कस्सकालणिहालणडुमुत्तरं पबंघमाह—

❀ तेवीसाए संकामओ केवचिरं कालादो होइ ।

§ ३६४. सुगमं

❀ जहणुणेण अंतोमुहुत्तं, एयसमओ वा ।

§ ३६५. एत्थ ताव अंतोमुहुत्तपरूवणा कीरदे । तं जहा—उवसमसम्माइट्ठी अणंताणु० विमंजोइय तेवीससंकामओ जादो । तदो जहणमंतोमुहुत्तकालमच्छिय उवमसम्मत्तद्वाए छावाल्यावसेसाए सामणगुणं पडिवज्जिय इगिवीससंकामओ जादो तस्स लद्धो तेवीससंकमजहणकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो । संपहि एयसमयपरूवणा कीरदे । तं जहा—एगो चउवीससंतकम्मिओ उवमसम्माइट्ठी समयूणावलियमेत्तावसेसाए उवमसम्मत्तद्वाए सामणसम्मत्तं पडिवण्णो इगिवीससंकामओ जादो । क्रमेण मिच्छत्त-मुवगओ एगममयं तेवीससंकामओ होदुण तदणंतगसमयम्मि अणंताणुबंघिसंकमणावसेण मत्तावीससंकामओ जादो लद्धो एयसमयमेत्तो पयदजहणकालो ।

सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वलना करके पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । पुनः उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण काल तक परिभ्रमण करके जब संसारमें रहनेका काल अन्तर्मुहूर्त शेष रह गया तब सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ उसके उस समय पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान नष्ट हो जाता है, इसलिये उस जीवके प्रकृत उत्कृष्ट काल प्राप्त हुआ । अब तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका विचार करनेके लिये आगेकी सूत्ररचनाका निर्देश करते हैं—

* तेईस प्रकृतिक संक्रामकका कितना काल है ?

§ ३६४. यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय है ।

§ ३६५. यहाँ सर्व प्रथम अन्तर्मुहूर्तकालका कथन करते हैं । यथा—कोई एक उपशम-सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना करके तेईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । अनन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक वहाँ रहा और उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलि शेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया उसके तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हुआ । अब जघन्य काल एक समयका कथन करते हैं । यथा—कोई एक चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय कम एक आवलि शेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया पुनः क्रमसे मिथ्यात्वमें जाकर और एक समय तक तेईस प्रकृतियोंका संक्रामक होकर तदनन्तर समयमें अनन्तानुबन्धियोंका संक्रम होने लगनेके कारण सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया उसके प्रकृत जघन्य काल एक समय प्राप्त हुआ ।

❀ उक्कस्सेण छावट्टिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ३६६. तं जहा—एओ मिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तं पडिवज्जिय उवसमसम्मत्त-
कालव्भंतरे चेष अणंताणुवंधिचउक्कं विमंजोइय अंतोमुहुत्तकालं तेवीससंक्रमणुपालिय
वेदयमम्मत्तमुवणमिय छावट्टिसागरोवमाणि परिभमिय तदवसाणे दंसणमोहक्खवणाए
परिणमिदो मिच्छत्तं खविय वावीससंक्रामओ जादो । तदो पुव्विल्लेणुवसमसम्मत्तकाल-
व्भंतरभाविणा अंतोमुहुत्तेण मिच्छत्तचरिमफालिपदणादो उवर्गिमकदकरणिज्जचरिमममय-
पज्जत्तंतोमुहुत्तेण सादिरेयाणि छावट्टिसागरोवमाणि तेवाससंक्रामयस्म उक्कस्सकालो होइ ।

❀ वावीसाए वीसाए एगूणवीसाए अट्टारसएहं तेरसएहं बारसएहं
एक्कारसएहं दसएहं अट्टणहं सत्तएहं पंचएहं चउएहं तिएहं दोएहं पि कालो
जहणणेण एयसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ३६७. वावीसाए ताव उच्चदे—एओ चउवीससंक्रामिओ उवसमसेहिं चट्टिय
अंतरकरणणंतरमाणुपुव्वीमंक्रमेण परिणदो एयममयं वावीससंक्रामओ होइण विदिय-
समए कालं काऊण देवेसुववज्जिय तेवीससंक्रामओ जादो । एओ वावीसाए जहणणकालो ।

* उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है ।

§ ३६६. खुलासा इस प्रकार है— कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त
करके उपशम सम्यक्त्वके कालके भीतर ही अतन्तानुवन्धीचतुष्ककी विमंजोना करके अन्तर्मुहूर्त
काल तक तेईसप्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त हुआ । पुनः वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त होकर और
छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण करके उसके अन्तमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणके लिये उद्यत
हो मिथ्यात्वका क्षय करके बाईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार इस जीवके जो
पूर्वोक्त उपशम सम्यक्त्वके कालके भीतर तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हुआ
है उसमेंसे मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके पतन समयसे लेकर कृतकृत्यवेदकके अन्तिम समय
तकका जितना काल है उसे घटा देने पर जो शेष काल बचता है उससे अधिक छयासठ सागर
काल तेईस प्रकृतिक संक्रामकका उत्कृष्ट काल होता है ।

* बाईस, बीस, उन्नीस, अठारह, तेरह, बारह, ग्याह, दस, आठ, सात, पाँच,
चार, तीन और दो प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट
काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३६७. सर्व प्रथम बाईस प्रकृतियोंके संक्रामकके कालका कथन करते हैं—कोई एक
चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणि पर चढ़ा और अन्तरकरणके बाद आनुपूर्वी
संक्रममे परिणत होकर एक समय तक बाईस प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ । पुनः दूमरे समयमें
मरकर और देवोंमें उत्पन्न होकर तेईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार यह बाईस
प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल है । अब इस स्थानका अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जो उत्कृष्ट काल
है उसका दृष्टान्त देते हैं—कोई एक दर्शनमोहकी क्षपण करनेवाला जीव मिथ्यात्वका क्षय करके

१. ता०—आ०प्रत्यो चउवावीससंक्रामओ इति पाठः ।

२. ता०प्रतौ एयसमओ (ए) इति पाठः ।

उक्खसेणंतोमुहुत्तपरूवणाए णिदग्गिसणं—एगो दंसणमोहक्खवओ मिच्छंतं खविय सम्मामिच्छत्तखवणद्वाए वावीससंकामओ जादो जाव चग्गिफालिपदणसमओ त्ति एसो च कालो अंतोमुहुत्तमेत्तो ।

§ ३६८. मंपहि वीमाए उच्चदे । तं जहा—तत्थ जहण्णेणेगसमओ त्ति उत्ते एक्को इगिवीसमंकामओ उवममसेट्ठिं चट्ठिय लोभस्सामंकामगो होदुण एयममयं वीममंकमणुपालिय तदणंतरसमयम्मि कालं काऊण देवेसुववज्जिय इगिवीसमंकामओ जादो । लद्धो एयममओ । उक्खसेणंतोमुहुत्तमिदि उत्ते एक्को इगिवीसमंतकम्मिओ णवुंमयवेदोदएण उवममसेट्ठिं चट्ठिय अंतरकरणं कादुणाणुपुब्बीमंकमवसेण वीसाए मंकामओ जादो । तदो तम्म णवुंमयवेदोवममणकालो सव्वो चेय पयदुक्खस्सकालो होइ ।

§ ३६९. मंपहि एगूणवीममंकमट्टाणस्स जहण्णुकस्सकालणिण्णयं कस्सामो । तं जहा—इगिवीसमंतकम्मिओ उवममसेट्ठीमारूढो अंतरकरणं ममाणिय णउंमयवेद-मुवमामिऊण ऊणवोमार मंकामओ जादो । विट्ठियममए कालगओ देवेसुववण्णो इगिवीसमंकामओ जादो तम्म लद्धा एयममओ । तस्सेव णवुंमयवेदमुवमामिय इत्थि-वेदोवसामणावावदस्स तदुवमामणकालो सव्वो चेय पयदुक्खस्सकालो होइ त्ति वत्तव्वं ।

सम्यग्निमध्यात्वेवा ज्ञेयं हानेके कालमे अन्तिम फालिके पतनके समय तक वाइस प्रकृतिक संक्रम-स्थानका स्थाना र.। उसके यह काल अन्तर्मुहूर्त होता है । इसीसे वाइस प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

§ ३६८. अब वीम प्रकृतिक संक्रमस्थानके कालका विचार करते हैं । यथा—उसमें भी जो जवन्य काल एक समय काल उमका सुत्तासा करते हैं—कोई एक इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक जोव उपशमश्रेणि पर चढ़कर आर लोभका असंकामक होकर एक समय तक वीस प्रकृतियोंके संक्रमको प्राप्त हुआ । पुन. तदनन्तर समयमें मरा और देव होकर इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । उस प्रकार वास प्रकृतिक संक्रमस्थानका जवन्य काल एक समय प्राप्त हो गया । अब जो उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है उसका खुलासा करने है—कोई एक इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव नपुंसकवेदके उदयसे उपशमश्रेणि पर चढ़ा । पुन. अन्तरकरण करके आनुपूर्वी संक्रमके वशसे वह वीम प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । अनन्तर उसके नपुंसकवेदके उपशम करनेका जितना काल है उत सब प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल है ।

§ ३६९. अब उक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जवन्य और उत्कृष्ट कालका निर्णय करते हैं । यथा—कोई एक इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणि पर चढ़ा । फिर अन्तरकरण करके और नपुंसकवेदका उपशम करके उक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । तथा दूसरे समयमें मरकर देवमें उत्पन्न हुआ और इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार इसके उक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जवन्य काल एक समय प्राप्त हुआ । तथा वही जीव जब नपुंसकवेदका उपशम करके स्त्रीवेदका उपशम करने लगता है तब स्त्रीवेदके उपशम करनेमें जितना काल लगता है वह सब प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल होता है ऐसा यहाँ कहना चाहिये ।

§ ३७०. संपहि अट्टारसमंकमट्टाणस्म जहण्णुक्कस्सकालपरूवणा कीरदे । तं जहा—
इगिवीससंतकम्मिओवसामओ णवुंसय-इत्थिवेदमुवसामिय एयसमयमट्टारससंकामओ
होऊण तदणंतरसमए कालं कादण देवेमुववज्जिय इगिवीससंकामओ जादो लद्धो
पयदसंकमट्टाणजहण्णकालो । तस्सेव जाव छण्णोकसाया अणुवसंता ताव तदुवमामण-
कालो मच्चो चैय पयदुक्कस्सकालो होइ ।

§ ३७१. संपहि तेरसमंकमट्टाणस्म जहण्णुक्कस्सकालपरूवणा^१ कीरदे—चउवीस-
संतकम्मिओवसामओ जहाकमं णवणोकसाए उवसामिय एयसमयं तेरसमंकामओ जादो ।
तदणंतरसमए कालं काऊण तेवीससंकमओ जादो तस्स पयदजहण्णकालो होइ ।
खवगो अट्टकसाए खविय जाव आणुपुव्वीसंकमं णाढवेइ ताव पयदुक्कस्सकालो घेतव्वो ।

§ ३७२. संपहि बारसमंकमट्टाणजहण्णुक्कस्सकालपरूवणा कीरदे । तं जहा—
इगिवीससंतकम्मिओवसामगो जहाकममुवसामिदट्टणोकमाओ एयसमयवारससंकामओ
जादो । विदियममए कालं कादण देवेमुववण्णो इगिवीससंकामओ जादो । लद्धो
एगममओ । उक्कस्सेणंतोमुहुत्तमेत्तकालपरूवणोदाहरणं—एगो मंजदो चारिन्तमोहक्खवणाए
अब्भुट्ठिदो आणुपुव्वीसंकमे कादण तदो जाव णवुंसयवेदं ण खवेइ ताव विवक्खिय-
संकमट्टाणुक्कस्सकालो होइ ।

§ ३७०. अब अटारह प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं ।
यथा—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशाम
करके एक समयके लिये अटारह प्रकृतियोंका संक्रामक हो कर तदनन्तर समयमें मर कर और
देवोंमें उत्पन्न हो कर इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल
एक समय प्राप्त हुआ । तथा उमीके जबतक छह नोकपायोंका उपशाम नहीं हुआ तब तक उपशाममें
लगनेवाला जितना भी काल है वह प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल होता है ।

§ ३७१. अब तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं—
चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशामक जीव क्रमसे नौ नोकपायोंका उपशाम करके एक
समयके लिये तेरह प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ और तदनन्तर समयमें मरकर तेईस प्रकृतियोंका
संक्रामक हुआ उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल प्राप्त होता है । तथा जो चारक जीव आठ
कपायोंका क्षय करके जब तक आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ नहीं करता है तब तक प्रकृत स्थानका
उत्कृष्ट काल ग्रहण करना चाहिये ।

§ ३७२. अब बारह प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं ।
यथा—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव क्रमसे आठ कपायोंका उपशाम करके
एक समयके लिये बारह प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया और दूसरे समयमें मर कर तथा देव
होकर इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया उसके उक्त स्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त
हुआ । अब इस स्थानका उत्कृष्ट काल जो अन्तर्मुहूर्त कहा है उसका उदाहरण यह है—कोई एक
संयत जीव चारित्रमोहनीयकी क्षणोंके लिये उद्यत होकर और आनुपूर्वी संक्रमको करके अनन्तर
जब तक नपुंसकवेदका क्षय नहीं करता है तब तक विवक्षित संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल होता है ।

१. आ प्रतो—ट्टाणस्स कालपरूवणा इति पाठः ।

§ ३७३. संपहि एयारससंकामयजहण्णुकस्सकालपरूवणा कीरदे । तं जहा— इगिवीससंतकम्मिओ उवसामओ जहाकममुवसामिदणवणोकसाओ एयसमयमेकारससंकामओ होऊण तदणंतरसमए कालं कादण देवो जादो तस्स लद्धो एयसमयमेत्तो पयदसंकमट्टाणजहण्णकालो । खवगो णवुंसयवेदं खवेदूण जावित्थिवेदं ण खवेइ ताव पयदुकस्सकालो होइ ।

§ ३७४. संपहि दससंकमट्टाणपडिचद्धजहण्णुकस्सकालपरूवणा कीरदे । तं जहा—चउवीससंतकम्मिओवसामिओ तिविहकोहोवसामणाए परिणदो एयसमयं दससंकामओ जादो, विदियसमए देवेसुववज्जिय तेवीससंकामओ संजादो, लद्धो पयदसंकमट्टाणजहण्णकालो । उकस्सकालो पुण खवगस्स छण्णोकसायखवणद्धामेत्तो धेत्तव्वो ।

§ ३७५. अट्टसंकमट्टाणजहण्णुकस्सकालविहासणं कस्सामो । तं जहा—चउवीससंतकम्मिओवसामओ दुविहमाणमुवसामिय एयसमयमट्टमंकामओ होदण विदियसमए कालगदो देवेसुववणो लद्धो पयदजहण्णकालो । उकस्सकालपरूवणाणिदग्गिमणं— एगो इगिवीससंतकम्मिओवसामगो कमेण णवणोकसाए तिविहं च कोहमुवभामिय अट्टमंकामओ जादो । तत्थंतोमुहुत्तमच्छिऊण दुविहमाणोवसामणाए छण्हं मंकामओ जाओ, लद्धो णिरुद्धसंकमट्टाणुकस्सकालो दुविहमाणोवसामणद्धामेत्तो ।

§ ३७३. अब ग्यारह प्रकृतियोंके संक्रामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं । यथा—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव क्रमसे नौ नोकपायोंका उपशाम करके एक समयके लिये ग्यारह प्रकृतियोंका संक्रामक हो कर तदनन्तर समयमें मर कर देव हो जाता है उसके प्रकृत संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । तथा जो क्षपक जीव नपुंसक वेदका क्षय करके जब तक स्त्रीवेदका क्षय नहीं करता है तबतक प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल होता है ।

§ ३७४. अब दस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं । यथा—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव तीन प्रकारके क्रोधके उपशाम भावसे परिणत होकर एक समयके लिये दस प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ और दूसरे समयमें देवोंमें उत्पन्न होकर तेईस प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ उसके प्रकृत संक्रमस्थानका जघन्य काल प्राप्त होता है । तथा क्षपक जीवके छह नोकपायोंकी क्षपणामें जितना काल लगे उतना इस स्थानका उत्कृष्ट काल लेना चाहिये ।

§ ३७५. अब आठ प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका व्याख्यान करते हैं । यथा—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव दो प्रकारके मानका उपशाम करके एक समयके लिये आठ प्रकृतियोंका संक्रामक हो कर और दूसरे समयमें मर कर देवोंमें उत्पन्न हुआ उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । अब जो अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उत्कृष्ट काल कहा है उसका दृष्टान्त देते हैं—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव क्रमसे नौ नोकपाय और तीन प्रकारके क्रोधका उपशाम करके आठ प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया है । फिर वहाँ अन्तर्मुहूर्त काल तक रह कर जो दो प्रकारके मानका उपशाम हो जाने पर छह प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया है उसके दो प्रकारके मानके उपशाम करनेमें जितना काल लगता है तत्प्रमाण विवक्षित संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है ।

§ ३७६. मंघाहि मत्तमंक्रामयजहण्णुकस्सकालणिण्णयविहाणं वत्तइस्सामो—
जहण्णकालो ताव चउवीसमंतकम्मिओवसामयस्स तिविहमाणोवसामणाए परिणदस्स
विदियसमए चैव कालं कादृण देवेमुववण्णस्स लब्भदे । उक्कस्सकालो पुण तस्सेव
दुविहमायोवसामणाए वावदस्स जाव तदणुवसमो त्ति ताव अंतोमुहुत्तमेत्तो लब्भदे ।

§ ३७७. मंघाहि पंचमंक्रामयजहण्णुकस्सकालपरूवणा कीरदे । तं जहा—तेणेव
सत्तमंक्रामणं दुविहमायोवसामणाए कदाए एयसमयं पंचमंक्रामओ होदृण विदिय-
समए भवक्खण्ण देवो जादो तस्स पयदजहण्णकालो होइ । उक्कस्सकालो पुण
इगिवीसमंतकम्मियोवसामगस्स तिविहमायोवसमणपरिणदस्स जाव दुविहमायाणुसमो
ताव होइ ।

§ ३७८. चउण्हं मंक्रामयस्स जहण्णुकस्सकालणिरूवणा कीरदे । तत्थ ताव
जहण्णकालपरूवणोदाहरणं—चउवीसमंतकम्मियोवसामगो मायामंजलणमुवसामिय
चउण्हं मंक्रामओ जादो, तत्थेयममयमच्छिय विदियसमए जीविदद्वाक्खण्ण देवो जादो
तस्स पयदजहण्णकालो होइ । उक्कस्सकालो वि तस्सेव मणपरिणामविग्रहियस्स
मायामंजलणोवसमण्णुडि जाव दुविहलोहाणुवसमो त्ति ताव अंतोमुहुत्तमेत्तो होइ ।

§ ३७९. तिण्हं मंक्रामयस्स जहण्णुकस्सकालपरूवणा कीरदे । तं जहा—

§ ३७६ अत्र रात प्रकृतिक संक्रामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालके निणय करनेकी विधि
वतलाते हैं—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव तीन प्रकारके मानका उपशम करके
और दूसरे समयमें मर कर देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल प्राप्त होता
है । तथा इसी जीवके दो प्रकारकी मायाका उपशम करने हुए जब तक उनका उपशम नहीं होता
है तब तक उक्त स्थानका अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है ।

§ ३७७. अब पाँच प्रकृतिक संक्रामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं ।
यथा—वही सात प्रकृतियोंका संक्रामक जो दो प्रकारकी मायाका उपशम करके एक समयके लिए
पाँच प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । फिर दूसरे समयमें आयुका क्षय हो जानेमें देव हो गया ।
इस प्रकार इस जीवके प्रकृत स्थानका जघन्य काल प्राप्त होता है । तथा उसकीम प्रकृतियोंकी
सत्तावाला जो उपशामक जीव तीन प्रकारकी मायाका उपशम कर रहा है उसके जब तक दो
प्रकारकी मायाका उपशम नहीं हुआ है तब तक प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल होता है ।

§ ३७८. अब चार प्रकृतिक संक्रामक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं ।
उसमें भी सर्व प्रथम जघन्य कालका उदाहरण देते हैं—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उप-
शामक जीव माया संज्वलनका उपशम करके चार प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया और वहाँ एक
समय तक रहकर दूसरे समयमें आयुका क्षय हो जानेमें देव हो गया है उसके प्रकृत स्थानका
जघन्य काल प्राप्त होता है । तथा मरणके परिणाममें रहित इसी जीवके माया संज्वलनका उपशम
होकर जब तक दो प्रकारके लोभका उपशम नहीं होता तब तक उनके उपशम करनेमें जो अन्तर्मुहूर्त
काल लगता है वह प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल होता है ।

§ ३७९. अब तीन प्रकृतिक संक्रामक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं ।

इगिवीसमंतकम्मिओवमामिओ दुविहमायोवसामणाए परिणदो तिण्हं संकामओ जादो । विदियसमए देवेसुववण्णो तस्स लद्धो पयदजहण्णकालो । उक्कस्सकालो पुण चरित्त- मोहक्खवयस्स कोहसंजलणखवणकालो सच्चो चैय होइ ।

§ ३८०. संपहि दोण्हं संकामयस्स जहण्णुकस्सकालपरिक्खा कीरदे । तं जहा— चउवीससंतकम्मिओवसामओ आणुपुच्चीसंकमादिपरिवाडीए दुविहलोहमुवमामिय मिच्छत्त- सम्मामिच्छत्ताणमेयसमयं संकामओ होऊण विदियसमए भवक्खएण देवभावमुवणओ तस्स णिरुद्धजहण्णकालो होइ । तस्सेव दुविहलोहोवसमपपहुडि^१ जाव ओयरमाण- सुहुमसांपराइयचरिमसमओ त्ति ताव पयदुकस्सकालो होइ ।

§ ३८१. संपहि इगिवीससंकामयजहण्णुकस्सकालपदुप्पायणट्ठं सुत्तमाह—

❖ एक्कवीसाए संकामओ केवच्चिरं कालादो होइ ?

§ ३८२. सुगमं ।

❖ जहण्णेण्येयसमओ ।

§ ३८३. तं कथं ? चउवीससंतकम्मियउव^२मामयस्स णवुंसयवेदोवगामणावसेण लद्धप्पमरूवस्स पयदमंकमट्टाणस्स मरणवमेण विदियसमए विणासो जादो, लद्धो

यथा—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव दो प्रकारकी मायाके उपशम भावसे परिणत होकर तीन प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया है और दूसरे समयमें मरकर देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल प्राप्त होता है । तथा चारित्रमोहनीयकी क्षण करनेवाले जीवके क्रोधसंज्वलनकी क्षणवाला जितना काल है वह सब प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल होता है ।

§ ३८०. अब दो प्रकृतिक संक्रामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालका विचार करते हैं । यथा—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव आनुपूर्वी संक्रम आदि परिपाटीके अनु- सार दो प्रकारके लोभका उपशम करके मिश्रित और सम्यग्मिश्रितत्वाका एक समयके लिये संक्रामक होता है और दूसरे समयमें आयुका क्षय हो जानेके कारण देवभावका प्राप्त हो जाता है उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल होता है । तथा उसी जीवके दो प्रकारके लोभका उपशम होनेके समयसे लेकर उतरते समय सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानके अन्तिम समय तक जितना काल होता है वह सब प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल होता है ।

§ ३८१. अब इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❖ इक्कीस प्रकृतिक संक्रामकका कितना काल है ?

§ ३८२. यह सूत्र सुगम है ।

❖ जघन्य काल एक समय है ।

§ ३८३. खुलासा इस प्रकार है—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव नपुंसकवेदका उपशम हो जानेके कारण इस संक्रमस्थानको प्राप्त हुआ है और मर जानेके कारण

१. ता०—आ०प्रत्योः दुविहकोहोवसमपपहुडि इति पाठः ।

२. ता०प्रती -कम्मिओ (य) उव,- -आ०प्रती -कम्मिओ उव- इति पाठः ।

एगममओ । चउवीससंतकम्मियउवममसम्माइड्डिस्स वि एगसमयं सासणगुणपडिवत्तिवसेण पयदजहण्णकालसंभवो वत्तवो ।

✽ उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ३८४. तं जहा—देवणेइयाणमण्णदरपच्छायदस्स चउवीससंतकम्मियस्स गब्भादिअट्टवस्माणमंतोमुहुत्तब्भहियाणमुवरि सव्वलहुं दंसणमोहक्खवणाए परिणमिय इगिवीससंकमं पारभिय देसूणपुव्वकोडिं संजमभावेण विहरिय कालं काट्ठण विजयादिसु समऊणतेत्तीममागरोवममेत्तदेवायुगमणुपालिय तत्तो चइय पुव्वकोडाउगमणुस्सपज्जाएण परिणमिय मव्वजहण्णंतोमुहुत्तावसेसे सिज्झिदव्वए खवयसेठीमागेहणेणट्टकसायक्खवणाए तेग्गमं कामयभावमुवणयस्स दोअंतोमुहुत्तब्भहियट्टवस्मपरिहीणविपुव्वकोडीहि सादिरेय-तेत्तीममागरोवममेत्तुक्कस्सकालोवलद्धी जादा ।

✽ चोदसएहं णवएहं छुएहं पि कालो जहएणेणेषसमओ ।

§ ३८५. तत्थ चोदममं कामयस्स जहण्णकालपरूवणोदाहरणं—एको चउवीस-संतकम्मिओवसाभिओ अट्टणोकमाए उवमामिय एयममयचोदममं कामओ जादो । विदियममए भवक्खएण देवेसु उप्पण्णो, लट्ठो पयदजहण्णकालो । णवणहं मं कामयस्स

जिमके दूसरे समयमें प्रकृत संक्रमस्थानका विनाश हो गया है उसके इस संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । इसी प्रकार जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशमसम्यग्दृष्ट जीव एक समयके लिये सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है उसके भी प्रकृत स्थानका जघन्य काल एक समय कहना चाहिये ।

✽ उत्कृष्ट काल माधिक तेतीस सागर है ।

§ ३८४. खुलासा इस प्रकार है—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव देव या नरक पर्यायसे आकर तथा गर्भसे लेकर आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्तके बाद अतिशीघ्र दर्शनमोहकी क्षुण्णा करके इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया है । फिर कुछ कम पूर्वकोटि काल तक संयमके साथ विहार करके जो मरा और विजयादिकमें एक समय कम तेतीस सागर काल तक देव पर्यायके साथ रहा है । फिर वहाँसे च्युत होकर जिसने एक पूर्वकोटि आयुके साथ मनुष्य पर्यायको प्राप्त किया है । फिर वहाँ जब सिद्ध होनेके लिये सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहा तब जिसने क्षपक-श्रेणी पर चढ़कर और आठ कपायोंका क्षय करके तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त कर लिया है उसके प्रकृत संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल दो अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्ष कम तथा दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर प्राप्त होता है ।

✽ चौदह, नौ और छह प्रकृतियोंके संक्रामकका भी जघन्य काल एक समय है ।

§ ३८५. उसमेंसे चौदह प्रकृतिक संक्रामकके जघन्य कालका कथन करनेके लिये उदाहरण देते हैं—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव आठ नौ कपायोंका उपशम करके एक समयके लिये चौदह प्रकृतियोंका उपशामक हो गया है और दूसरे समयमें आयुका क्षय हो जानेसे देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । अब नौ प्रकृ-

१. ता०प्रतौ -हीणे वि, आ०प्रतौ -हीणे वि इति पाठः ।

जहण्णकालपरूवणाए णिदग्गिसणं—एगो इग्गिबीममंतकम्मिओवमामगो दुविहकोहोव-
मामणाए परिणदो एयममयं णवमंकामओ होऊण विदियसमए कालं कादृण देवो
जादो, लद्धा पयदजहण्णट्ठा^१ । छण्हं मंकामयस्स जहण्णकालपरूवणाए सो चेव
इग्गिबीममंतकम्मिओवमामिओ णवमंकमट्टाणादो कोहमंजलणाणवकबंधेण सह दुविह-
माणोवमामणाए परिणामिय एयसमयं छण्हं संकामगो जादो, विदियसमए कालं कादृण
देवो जादो तस्म लद्धो णिरुद्धजहण्णकालो ।

✽ उक्कस्सेण दो आवलियाओ समयूणाओ ।

§ ३८६. चौदहसंक्रामयस्स ताव उच्चदे । सो चेव जहण्णकालमामिओ पुरिस-
वेदणवकबंधवमुवमामेतो समयूणदोआवलियमेत्तकालं चौदहमंकामओ होइ । एगो चेव
कमो णवण्हं छण्हं पि उक्कस्सकालपरूवणाए । णवरि मगजहण्णकालमामिओ जहाकमं
कोह-माणमंजलणणवकबंधोवमामणापरिणदो पयदुक्कस्सकालसामिओ होइ त्ति वत्तन्वं ।
मेदणं परूविय एत्थेव पयारंतग्गमंभवपदुप्पायणट्ठमुवरिमसुत्तमोइण्णं—

✽ अथवा उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ओयरमाणस्स लब्भइ ।

नियोंके संक्रामकके जघन्य कालका कथन करनेके लिये उदाहरण देते हैं—जो इक्कीम प्रकृतियोंकी
सत्तावाला कोई एक उपशामक जीव दो प्रकारके क्रोधका उपशम करके एक समयके लिये नौ
प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया है उसके दूसरे समयमें मरकर देव हो जाने पर प्रकृत स्थानका जघन्य
काल एक समय प्राप्त होता है । अब छह प्रकृतियोंके संक्रामकके जघन्य कालका कथन करते हैं—
यही इक्कीम प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव नौ प्रकृतिक संक्रमस्थानमेंसे क्रोधसंज्वलनके
नवकबन्धके साथ दो प्रकारके मानका उपशम करके जब एक समयके लिए छह प्रकृतियोंका
संक्रामक हो जाता है और दूसरे समयमें मरकर देव हो जाता है तब उसके प्रकृत स्थानका जघन्य
काल प्राप्त होता है ।

✽ उत्कृष्ट काल एक समय कम दो आवलि प्रमाण है ।

§ ३८६ सर्व प्रथम चौदह प्रकृतिक संक्रामकके उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं—चौदह
प्रकृतिक संक्रामकके जघन्य कालका निर्देश करते समय जो स्वामी बतलाया है वही जीव यदि मरकर
देव नहीं होता किन्तु पुरुषवंदके नवकबन्धका उपशम करता है तो एक समय कम दो आवलि
काल तक चौदह प्रकृतियोंका संक्रामक होता है । तथा नौ प्रकृतियों और छह प्रकृतियोंके संक्रामकके
उत्कृष्ट कालका कथन करते समय भी यही क्रम जानना चाहिये । किन्तु अपने अपने जघन्य कालका
स्वामी जीव यदि दूसरे समयमें मर कर देव न होकर क्रमसे क्रोधसंज्वलन और मानसंज्वलनके
नवकबन्धका उपशम करता है तो क्रमसे प्रकृत स्थानोंके उत्कृष्ट कालका स्वामी होता है, इस प्रकार
यहां उतना विवेक कहना चाहिये । इस प्रकार इसका कथन करके अब यहीं पर जो प्रकारान्तर
सम्भव है उसका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

✽ अथवा उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है जो उपशमश्रेणिसे उतरनेवाले जीवके
प्राप्त होता है ।

१. आ०प्रती पयदजहण्णा इति पाठः ।

§ ३८७. तं जहा—चउवीससंतकम्मिओवसामयस्स सव्वोवसमं कादृण हेट्ठा ओयरमाणस्स बारमकसायाणमोकड्डणाए वावदस्स जाव सत्तणोकमायाणमणोकड्डणा ताव चोदममं कामयस्स उक्कस्सकालो होइ । एवं छण्हं णवण्हं पि वत्तव्वं । णवरि इगिवीसमंतकम्मिओवसामयस्स सव्वोवसामणादो पडिवदिदस्स जहाकमं तिविहमाय-माणामोकड्डणपरिणदावत्थाए परूवेयव्वं । संपहि एकस्से संकमट्टाणस्स जहण्णुकस्स-कालणिरूवणट्टमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ एकस्से संकामओ केवचिरं कालादो होइ ?

§ ३८८. सुगमं ।

❀ जहण्णुकस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ३८९. खवयस्म माणमंजलणकखवणाए एयमं कामयत्तमुवगयस्स मायासंजलण-कखवणकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो एकस्से संकामयकालो होइ । मो च कोहमाणोदण चट्ठिदस्स जहण्णो मायोदण चट्ठिदस्स उक्कस्सो होदि त्ति घेत्तव्वो ।

§ ३९०. एवमोघेण मव्वसंकमट्टाणाणं कालपरूवणं कादृण संपहि आदेम-परूवणट्टमुच्चारणं वत्तइम्मामो । तं जहा—आदेसेण णेरइय सत्तावीस-पंचवीसमं कामयाणं जह० एयसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीमं सागरोवमाणि । २६ ओघं । २३^१ जह० एगस०,

§ ३९७. म्बुलामा इम प्रकार है—सर्वोपशम करके श्रेणिसे नीचे उतरनेवाले चौबीस प्रकृतियों की सत्तावाले उपशामक जीवके बारह कपायोंके अपकर्षणमें व्याप्त रहते हुए जब तक सात नोकपायोंका अपकर्षण नहीं होता तब तक उमके चौदह प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल होता है । तथा इसी प्रकार छह और नौ प्रकृतिक संक्रामकके उत्कृष्ट कालका भी कथन करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव सर्वोपशामनासे च्युत हो रहा है उसके क्रमसे तीन प्रकारकी माया और तीन प्रकारके मानका अपकर्षण करने पर प्रकृत स्थानोंके उत्कृष्ट कालका कथन करना चाहिये । अब एक प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ एक प्रकृतिक संक्रामकका कितना काल है ?

§ ३९८. यह सूत्र सुगम है ।

❀ जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

३९८. जो क्षपक जीव मान संजलनका क्षय करनेके बाद एक प्रकृतिका संक्रामक हो गया है उसके माया संजलनके क्षण करनेमें जो अन्तर्मुहूर्त काल लगता है वह एक प्रकृतिके संक्रामकका काल है । किन्तु वह क्रोध और मानके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़े हुए जीवके जघन्यरूप होता है और मायाके उदयसे चढ़े हुए जीवके उत्कृष्टरूप होता है ऐसा यहाँ प्रहण करना चाहिये ।

३९०. इस प्रकार ओघसे सब संक्रमस्थानोंके कालका कथन करके अब आदेशका कथन करनेके लिये उच्चारणाको बतलाते हैं । यथा—आदेशसे नारकियोंमें सत्ताईस और पच्चीस प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । छब्वीस प्रकृतिक

१. ता०प्रती २७ इति पाठः ।

उक्क० तेत्तीसं सागरो० अंतोमुहुत्तूणाणि । २१ संका० जह० एयस०, उक्क० सागरो-
वमाणि देसूणाणि । एवं पट्टमाए । णवरि उक्क० सगट्टिदी । विदियादि जाव सत्तमा
त्ति एवं चेव । णवरि सगट्टिदी वत्तन्वा । २१ संका० जह० एयस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं ।

संक्रामकका काल ओघके समान है । तेईस प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तकम तेतीस सागर है । तथा इक्कीस प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक सागर है । इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें कहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक कालका कथन इसी प्रकार करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहां पर उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिये । तथा इन पृथिवियोंमें इक्कीस प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—अन्य गतिका जां जीव सम्यक्त्वकी उद्वेलनामें एक समय शेष रहने पर मर कर नरकमें उत्पन्न हुआ है उसके नरकमें २७ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । यह २७ प्रकृतिक संक्रमस्थानकी जघन्य काल विषयक ओघ प्ररूपणा प्रथमादि सातों नरकोंमें घटित हो जाती है । तथा जो सातवे नरकका नारकी जीव जीवनके प्रारम्भमें व अन्तमें २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि रहता है और मध्यमें पूरे काल तक अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना किये बिना वेदकसम्यग्दृष्टि हो जाता है उसके २७ प्रकृतियोंके संक्रामकका उत्कृष्ट काल ३३ सागर प्राप्त होता है । आशय यह है कि ऐसे जीवकी जीवन भर २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला बनाये रखनेके साथ सासादन और मिश्र गुणस्थानमें नहीं ले जाना चाहिये । तब जाकर २७ प्रकृतिक संक्रमस्थानका यह उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है । सातवें नरकमें यह उत्कृष्ट काल इसी प्रकार घटित करना चाहिये । किन्तु शेष नरकोंमें इस कालको अपनी अपनी आयु प्रमाण कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि छठे नरक तकके जीवोंको अन्तमें मिथ्यात्वमें ले जानेका कोई कारण नहीं है, क्योंकि वहां तकके नारकियोंका सम्यग्दर्शनके रहते हुए भी मरण होता है । २५ प्रकृतियोंके संक्रामकका जघन्य काल एक समय जिस प्रकार आघ प्ररूपणामें घटित कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिये । तथा सामान्यसे नारकीकी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर होती है अतः इस स्थानका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है । प्रथमादि नरकोंमें भी इस स्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका इसी प्रकार प्राप्त कर लेना चाहिये । केवल उत्कृष्ट काल अपनी अपनी आयु-प्रमाण कहना चाहिये । इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका जो क्रम आघसे बतलाया है वह क्रम यहाँ नरकमें भी सामान्यसे या प्रत्येक नरकमें बन जाता है, इसलिये यहाँ इस स्थानका काल आघके समान होता है यह निर्देश किया है । तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय जिस प्रकार आघसे घटित कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ नरकमें भी घटित कर लेना चाहिये । किन्तु उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि सामान्यसे नरकायु तेतीस सागरसे अधिक नहीं होती, अतः तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर और प्रत्येक नरककी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कम अपनी अपनी उत्कृष्ट आयुप्रमाण प्राप्त होता है । २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय सासादन गुणस्थानकी अपेक्षासे और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक सागर ज्ञायिकसम्यग्दर्शनकी अपेक्षासे प्राप्त होता है, अतः सामान्यसे नरकमें व प्रथम नरकमें यह कथन इसी प्रकारसे बन जाता है । किन्तु द्वितीयादि नरकोंमें ज्ञायिक सम्यग्दृष्टि नहीं पैदा होते, अतः वहाँ उत्कृष्ट काल मिश्र गुणस्थानकी अपेक्षासे घटित करना चाहिये । इसीसे द्वितीयादि नरकोंमें २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

§ ३०.१. तिग्गिक्खेमु २७ संका० जह० एयम०, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि पल्लिदोवमस्स अमंखेज्जदिभागेण^१ मादिरेयाणि । २६ संका० ओघमंगो । २५ संका० जह० एयम०, उक्क० अणंतकालममंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । २३ संका० जह० एयम०, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि देसूणाणि । २१ संका० जह० एयम०, उक्क० तिण्णि पल्लिदो० । एवं पंचिदियतिरिक्खत्तिय०३ । णवग्गि २७, २५ संका० जह० एयस०, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि पुव्वकोडिपुघत्तेणव्वमहियाणि । जोणिणीसु २१ संका० जह० एयस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुमअपज्ज० २७, २६, २५ संका० जह० एयम०, उक्क० अंतोमुहुत्तं ।

§ ३०.२. मणुमतिए २७, २५, २३ पंचिदियतिरिक्खभगो । २१ संका० जह०

§ ३६१ तिर्यञ्चोमे २७ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवै भागसे अधिक तीन पल्य है । २६ प्रकृतिक संक्रामकका काल आवक समान है । २५ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो कि असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । २४ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है । तथा २३ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन पल्य है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमे जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमे २७ और २५ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है । योनिनी तिर्यञ्चोमे २३ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपयात्र और मनुष्य अपयात्रकोमे २७, २६ और २५ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है ।

विशेषार्थ—यहां तिर्यचगतिमे और उसके अवान्तर भेदोंमे सम्भव संक्रमस्थानोंका काल बतलाया गया है सो यहां सम्भव स्थानोंके जघन्य कालका खुनामा जिस प्रकार नरकगतिमे कर आये है उसी प्रकार यहां पर भी कर लेना चाहिये । अब रही उत्कृष्ट कालकी बात सो उसका खुलासा करते हैं—कोई एक २८ प्रकृतियोंकी सत्तामाला मिथ्यादृष्टि तिर्यच है जिसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करते हुए पल्यका असंख्यातवै भाग काल हो गया है । फिर यह जीव तीन पल्यकी आयुवाले तिर्यञ्चोमे उत्पन्न हुआ और वहाँ इनकी उद्वेलनाको पूरा करनेके पूर्व ही वह सम्यग्दृष्टि हो गया और अन्त तक सम्यग्दृष्टि बना रहा तो इस प्रकार तिर्यञ्चोमे २७ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवै भाग अधिक तीन पल्य बन जाता है । सादिसान्त विकल्पकी अपेक्षा तिर्यञ्चगतिमे निरन्तर रहनेका काल अनन्त काल है । इसीमे पञ्चोस प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण बतलाया है । तिर्यञ्चोमे अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनासे युक्त वेदक सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य प्राप्त होता है । उसीसे यहाँ २३ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है । तथा तिर्यञ्चोमे चायिकसम्यग्दृष्टि भी पैदा होते हैं, इसलिये तिर्यञ्चगतिमे २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल तीन पल्य कहा है । शेष कथन सुगम है ।

१ ३६२. मनुष्यत्रिकमे २७, २५ और २३ प्रकृतिक संक्रामकका काल पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोके

१ ता०प्रता—पल्लिदोवमाणि असंखेज्जभागेण इति पाठः ।

एयममओ, उक्क० तिण्णिण पत्तिदोवमाणि पुव्वकोडितिभागेण मादिरैयाणि । मणुमिणीसु पुव्वकोडी देसूणा । सेसमोघं । णवरि मणुस्सिणी० १४ संका० णत्थि । १२ जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अथवा दोण्हं पि ओयरमाणस्स जह० एयममओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं ।

३०३. देवेषु २७, २३, २१ मंका० जह० एयसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । २६ संका० ओघभंगो । २५ जह० एयसमओ, उक्क० एककत्तीसं सागरोवमाणि । एवं भवणादि जाव णवगेवज्जा त्ति । णवरि सगद्धिदी । अण्णं च भवण०-वाण०-जोइसिं २१ जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । अणुदिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति २७, २३ जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० मगद्धिदी । २१ जह० जहण्णद्धिदी, उक्क० उक्कस्मद्धिदी । णवरि मव्वट्ठे जहण्णुक्कस्सभेदो णत्थि । एवं जाव० ।

समान ह । २१ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय ह आर उत्कृष्ट काल एक पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पत्य ह । किन्तु मनुष्यनियोमे २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण ह । शेष कथन ओघके समान ह । किन्तु इतनी विशेषता ह कि मनुष्यनियोमे १४ प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं ह और १२ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ह । अथवा उपशमश्रेणिसे उतरनेवाले मनुष्यनी जीवकी अपेक्षा दोनों ही स्थानोंका जघन्य काल एक समय ह और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ह ।

विशेषार्थ—एक पूर्वकोटिकी आयुवाले जिस मनुष्यने त्रिभागमे आयुका बन्ध करके क्षायिक सम्यग्दर्शन उपार्जित किया ह और फिर मरकर जो तीन पत्यकी आयुवाले मनुष्योमे उत्पन्न हुआ है उसके इतने काल तक मनुष्योमे २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान देखा जाता ह अतः मनुष्योमे २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल एक पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पत्य कहा है । किन्तु यह अवस्था मनुष्यनियोके नहीं बन सकती, क्योंकि स्त्रीवृद्धियोंमें सम्यग्दर्श जीव मरकर नहीं उत्पन्न होता है, इसलिए मनुष्यनियोमे २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा ह । मनुष्यनीके उपशमश्रेणिमे चढ़ते समय १२ प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं प्राप्त होता किन्तु क्षयश्रेणिमे ही प्राप्त होता है, इसलिए मनुष्यनीमे १२ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा ह । किन्तु इसके उपशमश्रेणिसे उतरते समय १२ और १४ प्रकृतिक दोनों संक्रमस्थान बन जाते हैं और इन स्थानोंका उपशमश्रेणिमे जघन्य काल एक समय तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहाँ भी उनका उक्त प्रमाण काल कहा ह । शेष कथन मुगम ह ।

३६३. देवोमे २७, २३ और २१ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय ह और उत्कृष्ट काल तेत्तीस सागर ह । २६ प्रकृतिक संक्रामकका भंग ओघके समान ह । २५ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल इकतीस सागर ह । इसी प्रकार भवन-वासियोंसे लेकर नौ प्रैवयक तकके देवोमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता ह कि अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । दूसरे भवनवासी, व्यन्तर और ज्यातिपी देवोमे २१ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय ह और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ह । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोमे २७ और २३ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त ह और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण ह । २१ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण ह और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । किन्तु इतनी विशेषता ह कि सर्वार्थसिद्धिमे अपनी स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट भेद नहीं ह । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

❀ एत्तो एयजीवेण अंतरं ।

§ ३०४. एत्तो उवरि जहावसरपत्तमेयजीवेणंतरं भणिस्सामो त्ति पइज्जामुत्तमेदं ।

❀ सत्तावीस-छब्बीस-तेईस-इगिवीससंकामगंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहएणेण एयसमओ, उक्कस्सेण उवडुपोगगलपरियट्टं ।

§ ३०५. तं जहा—सत्तावीसाए जह० एयसमओ त्ति एदस्म अत्थे भण्णमाणे एओ सत्तावीससंकामओ उवसममम्माइट्ठी सगद्वाए एयममओ अत्थि त्ति मामणगुणं पडिवज्जिय एयममयं पणुवीसं संक्रमेणंतरिय पुणो मिच्छाइट्ठिभावेण सत्तावीमसंकामओ जादो, लद्धं पयदजहणंतरं । अहवा सत्तावीमसंकामओ मिच्छाइट्ठी समत्तमुत्वेन्लेमाणो

विशेषार्थ—गुणस्थानका परिवर्तन नौवें प्रवेयक तक ही सम्भव है और यहीं तक मिथ्यादृष्टि जीव मरकर उत्पन्न होता है, इसलिये पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल ३१ सागर कहा है । भवनवासी आदि तीन प्रकारके देवोंमें त्थायिक सम्यग्दृष्टिका उत्पन्न होना सम्भव नहीं है, इसलिये इनमें मिश्र गुणस्थानकी अपेक्षा २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । जो २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला सम्यग्दृष्टि जीव अनुदिश आदिमें उत्पन्न हुआ है और अन्तर्मुहूर्तमें जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी है उसके २७ प्रकृतिक संक्रमस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । इसी प्रकार जिसने आयुमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है उसके तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । यहाँ यद्यपि भवनत्रिकमें भी २३ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण बतलाया है पर यह काल अन्तर्मुहूर्त कम जानना चाहिये, क्योंकि इन देवोंमें सम्यग्दृष्टिकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है । तथा अन्य प्रकारसे सतत २३ प्रकृतिक संक्रमस्थान यहाँ बन नहीं सकता है । शेष कथन सुगम है ।

❀ अब इगसे आगे एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अधिकार है ।

§ ३०४. अब इस कालानुयोगद्वाराके वाद अवसरप्राप्त एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका कथन करते हैं इस प्रकार यह प्रतिज्ञा सूत्र है । अर्थात् इस सूत्रद्वारा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरके कहनेकी प्रतिज्ञा की गई है ।

❀ सत्ताईस, छब्बीस, तेईस और इक्कीस प्रकृतिक संक्रामकका कितना अन्तर काल है ? जघन्य अन्तर काल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर काल उपार्धपुद्गल-परिवर्तनप्रमाण है ।

§ ३०५. खुलासा इस प्रकार है—सर्वप्रथम सत्ताईस प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य अन्तर काल एक समय है इसका अर्थ कहते हैं—किसी एक सत्ताईस प्रकृतिक संक्रामक उपशमसम्यग्दृष्टि जीवने उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर और एक समय तक पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रम करके एक समयके लिये सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर किया । फिर वह मिथ्यादृष्टि होकर सत्ताईस प्रकृतिक संक्रामक हो गया । इस प्रकार प्रकृत स्थानका जघन्य अन्तरकाल एक समय प्राप्त हो गया । अथवा किसी एक सत्ताईस प्रकृतिक संक्रामक मिथ्यादृष्टि जीवने सम्यक्त्वकी उद्वेजना करते हुए सम्यक्त्वके अभिमुख हो कर अन्तरकरण

सम्मत्ताहिमुहो होऊणंतरं करिय मिच्छत्तपटमट्टिदिदुचरिमसमए सत्तावीससंक्रामयभावेण सम्मत्तचरिमफालिं मिच्छत्तस्सुवरि संक्रामिय तदो चरिमसमयम्मि छव्वीससंक्रमेणंतरिय सम्मत्तं पडिवण्णपटमसमयम्मि पुणो वि सत्तावीससंक्रामयभावेण परिणदो तस्स लद्धमंतरं । उक्क० उवड्डुपोग्गलपरियट्टपरूवणां कीरदे । तं कथं ? एगो अणादियमिच्छाइट्ठी अट्टपोग्गलपरियट्टस्सादिसमये उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय सव्वलहुं मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णुव्वेल्लणकालेण सम्मत्तमुव्वेल्लिय सत्तावीसाए अंतरमुप्पाइय देसूणमट्टपोग्गलपरियट्टं परियट्टिय सव्वजहण्णंतोमुहुत्तावसेसे सिज्झिदव्वए त्ति उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो तस्स विदियसमए सत्तावीसं संक्रामेमाणस्स लद्धमंतरं होइ ।

§ ३०६. संपहि छव्वीसाए जहण्णेयममयमंतरपरूवणा कीरदे । तं जहा—उव्वेल्लिदमम्मत्तमंतकम्मो छव्वीससंक्रामओ उवमसम्मत्ताहिमुहो होदूण मिच्छत्तपटमट्टिदिदुचरिमसमए सम्मामिच्छत्तचरिमफालिं मिच्छत्तसरूवेण संक्रामिय तदणंतरसमए वि पणुवीमसंक्रमेणंतरिय उवसमसम्मत्तं पडिवण्णपटमसमयम्मि पुणो छव्वीससंक्रामओ जादो, लद्धमेगमयमेत्तं जहण्णंतरं । उक्कस्मंतरं पुण अट्टपोग्गलपरियट्टादिसमए

क्रिया की। अनन्तर मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके उपान्त्य समयमें सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रम करते हुए सम्यक्त्वकी अन्तिम फालिना मिथ्यात्वमें संक्रम क्रिया। फिर अन्तिम समयमें उसने छट्ठीम प्रकृतियोंके संक्रम द्वारा एक समयके लिये सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर किया। फिर सम्यक्त्वको प्राप्त करके उसके प्रथम समयमें वह फिरसे सत्ताईस प्रकृतिक संक्रामक हो गया। इस प्रकार उसके सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमका जघन्य अन्तर काल एक समय प्राप्त हुआ। अब उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरका कथन करते हैं। यथा—किसी एक अनादि मिथ्या-दृष्टि जीवने अर्धपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें ही उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त कर, अतिशीघ्र मिथ्यात्वमें जाकर, सबसे जघन्य उद्वेलन कालके द्वारा सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमका अन्तर उत्पन्न किया। फिर वह कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तन काल तक परिभ्रमण करता रहा और जब सिद्ध होनेके लिये सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहा तब वह उपशम-सम्यक्त्वको प्राप्त हो गया और उसके दूसरे समयमें वह सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रम करने लगा। इस प्रकार प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो गया।

§ ३६६. अब छव्वीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य अन्तर एक समयका कथन करते हैं। यथा—जिसने सम्यक्त्वकी उद्वेलना कर दी है ऐसे किसी एक छव्वीस प्रकृतियोंका संक्रमण बरनेवाले जीवने सम्यक्त्वके अभिमुख होकर मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके द्विचरम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिको मिथ्यास्वरूपसे संक्रमित किया। फिर तदनन्तर समयमें अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्तिम समयमें पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रमण द्वारा एक समयके लिये छव्वीस प्रकृतियोंके संक्रमणका अन्तर करके उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त किया और उसको प्राप्त करनेके प्रथम समयमें वह फिरसे छव्वीस प्रकृतियोंका संक्रमण करने लगा। इस प्रकार छव्वीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हो जाता है। अब उत्कृष्ट अन्तर कालका खुलासा करते हैं—किसी एक जीवने अर्धपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें ही उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त

उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय मव्वलहुं मिच्छत्तं गंतूण मव्वजहण्णुव्वेल्लणकालेण सम्मत्त-
मुव्वेल्लिय छव्वीसमंकामओ होदण सव्वलहुएण कालेण मम्मामिच्छत्तमुव्वेल्लिय
पणुवीसमंकमेणंतरिय पोग्गलपरियदुद्धं देखणं परिब्भमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संमारे
उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय छव्वीमं संकामेमाणस्स लद्धमंतरं होइ ।

§ ३९.७. तेवीमाए जहण्णेणेर्यसमयमेत्तंतरे भण्णमाणे चउवीममंतकम्मओवसम-
सम्माइट्ठी तेवीसमंकामओ तदद्दाए एयसमओ अत्थि त्ति सासणभावं गंतूण इगिवीस-
संकमेणंतरिय विदियसमए मिच्छत्तगमणेण तेवीससंकामओ जादो, लद्धमंतरं होइ ।
अहवा तेवीससंकामओ उवसमसेट्ठिमारुहिय अंतरकरणपरिसमत्तिममणंतरमेवाणुपुव्वी-
मंकममाटविय एयसमए वावीससंकमेणंतरिय विदियसमए देवेमुववण्णो तेवीममंकामओ
जादो, लद्धं जहण्णमंतरमेयसमयमेत्तं । उक्खसेणुव्वहुपोग्गलपरियदुद्धंतरपरुव्वणं कस्सामो ।
अद्वपोग्गलपरियदुद्धादिमए सम्मत्तं पडिवज्जिय उवसमसम्मत्तकालव्वमंतरे चय अणंताणु०-
चउक्कं विमंजोइय तेवीममंकमम्मादिं काऊण उवसमसम्मत्तद्दाए छावलियमेत्तावसेमाए
आमाणं पडिवण्णो इगिवीसमंकमेणंतरिय पुणो मिच्छत्तं गंतूण उवदुपोग्गलपरियदुद्धमेत्त-

किया । फिर अतिशीघ्र मिथ्यात्वमें जाकर और सबसे जघन्य उद्देलन कालके द्वारा सम्यक्त्व-
की उद्देलना करके वह छव्वीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । फिर अति स्वल्प कालके द्वारा
सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्देलना करके पच्छीस प्रकृतियोंके संक्रमण द्वारा छव्वीस प्रकृतियोंके संक्रमणका
अन्तर किया । फिर वह कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल तक परिभ्रमण करता रहा और जब
संसारमें रहनेका काल अन्तमुहूर्त शेष रहा तब वह उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त हांकर एक समयके लिये
छव्वीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो जाता है ।

§ ३९.७. अब तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य अन्तर एक समयका कथन करते हैं—
जो चौवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशम सम्यग्दृष्टि जीव तेईस प्रकृतियोंका संक्रम कर रहा है
उपने उपशम सम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर
इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रमणद्वारा एक समयके लिये तेईस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर किया ।
फिर दूमरे समयमें मिथ्यात्वमें चले जानेसे वह फिरसे तेईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस
प्रकार प्रकृत स्थानका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हो जाता है । अथवा कोई एक तेईस प्रकृतियोंका
संक्रमण करनेवाला जीव उपशमश्रेणि पर चढ़ा और अन्तरकरणकी समाप्तिके बाद ही आनुपूर्वी
संक्रमका प्रारम्भ करके एक समयके लिये उसने बाईस प्रकृतियोंके संक्रमण द्वारा तेईस प्रकृतियोंके
संक्रमका अन्तर किया । फिर दूमरे समयमें वह देवीमें उत्पन्न होकर तेईस प्रकृतियोंका संक्रामक
हो गया । इस प्रकार प्रकृत स्थानका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हो जाता है । अब इस स्थानके
उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरका कथन करते हैं—किसी एक जीवने अर्धपुद्गल-
परिवर्तन कालके प्रथम समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त करके और उपशम सम्यक्त्वके कालके भीतर ही
अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके तेईस प्रकृतियोंके संक्रमका प्रारम्भ किया । फिर उपशम
सम्यक्त्वके कालमें छह आवलि शेष रहने पर वह सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ और इक्कीस
प्रकृतियोंके संक्रम द्वारा तेईस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर करके वह मिथ्यात्वमें गया । फिर वहां

कालमाविद्धकुलालचक्रं व परिभमिय मव्वजहण्णंतोमुहुत्तावसेसे संसारे उवसममम्मत्तं घेतूण वेदग्भावं पडिवज्जिय खवगसेडिमारीहणद्धं अणंताणु० विमंजोइय तेवीससंकामओ जादो, लद्धमुक्कम्मंतरं होइ ।

§ ३०८. इगिवीमाए जहण्णेयसमओ उच्चदे—एगो इगिवीसमंतकम्मिओ उवसमसेडिं चट्टिय अंतग्करणपरिसमत्तीए लोहासंकमवसेणेयसमयं वीसमंकमेणंतरिय कालगदो देवो होऊणिगिगीसमंकामओ जादो, लद्धं पयदजहण्णंतरं । संपहि उक्कम्मंतरं उच्चदे । एगो अणादियमिच्छाइद्धी अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए पढममम्मत्तं पडिवज्जिय तक्कालभंतरे चेष अणंताणु० चउकं विमंजोइय उवसमसम्मत्तद्वाए छावलियमेत्तावसेसाए मासादनभावमामादिय इगिवीसमंकामयभावेणावलियमेत्तकालं गालिय तदणंतरसमए पणुवीसमंकमेणंतरिय तदो मिच्छत्तेणद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तकालं परियट्टिय मव्वजहण्णंतो-मुहुत्तमेत्तावसेसे मिज्झिदव्वए दंमणमोहं खविय इगिवीसमंकामओ जादो, लद्धमिगिवीस-मंकामयस्य देसूणद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तमुक्कम्मंतरं । एवमेदमिं चउण्हं मंकमट्टाणाणं जहण्णुक्कम्मंतरविमयणिण्णयं काउण संपहि पणुवीसमंकमट्टाणस्म तदुभयणिरूवणद्ध-मुवरिसमुत्तं भणइ—

पुमाये गये कुम्हारके चक्रकेके सपात कुट्ट कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाणे काल तक परिभ्रमण करता रहा और जब संसारसे रहने का समय जवन्म अन्तर्मुहूर्त काल गेग बना तब वह उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके क्रमसे श्रवणश्रेणि पर चढ़नेके लिये अनन्तानुवन्धीकी विसंयाजना करके तेईम प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार तेईम प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो जाता है ।

§ ३१८. अब इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जवन्म अन्तर एक समयका कथन करते हैं—एक इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणि पर चढ़ा और उसने अन्तरकरणकी समाप्ति होनेपर लोभना संक्रम न होनेसे एक समयके लिये बीस प्रकृतियोंके संक्रमणद्वारा इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर किया । फिर वह मरा और देव होकर इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार प्रकृत स्थानका जवन्म अन्तर एक समय प्राप्त हो जाता है । अब उ कृष्ट अन्तरका कथन करते हैं—एक अनादि मिथ्यादृष्ट जीवने अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाणे कालके प्रथम समयमें उपशमसम्यक्त्व प्राप्त करके उसी कालके भीतर अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी विसंयाजना की । फिर उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलि शेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर एक आवलि काल तक इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रमण करता रहा । फिर तदनन्तर समयमें पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रमद्वारा इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर किया । फिर मिथ्यात्वके साथ कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल तक परिभ्रमण किया और जब सिद्ध होनेके लिये सवमे जवन्म अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहा तब दर्शनमोहनीयका क्षय करके इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रामकका कुछकम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाणे उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त होजाता है । इस प्रकार इन चार संक्रमस्थानोंके जवन्म और उत्कृष्ट अन्तर कालका निर्णय करके अब पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके उक्त दोनों अन्तर कालोंका निर्णय करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

१. ता०प्रतौ —करणं परिसमत्तीए इति पाठः । २. आ०प्रतौ —मेत्तमिस्संतर इति पाठः ।

❀ पणुवीससंक्रामयंतरं केवचिरं कालादो होइ ?

§ ३९९. सुगमं ।

❀ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण वेत्थावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ४००. एत्थ ताव जहण्णंतरं वुच्चदे । तं जहा—एओ सम्मामिच्छाइट्ठी पणुवीससंक्रामयभावेणावट्ठिदो परिणामपच्चण मम्मत्तं मिच्छत्तं वा परिणमिय तत्थ सव्वजहण्णंतोमुहुत्तमेत्तकालं सत्तावीमसंक्रमेणंतगिय पुणो सम्मामिच्छत्तमुवणमिय पणुवीससंक्रामओ जादो, लद्धमंतरं । मंपट्ठि उक्कस्मंतरपरुवणं कस्सामो—अण्णदगे मिच्छाइट्ठी पणुवीससंक्रामओ उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय अविवक्खियमंक्रमट्ठाणेणंतरिय पुणो मिच्छत्तं गंतूण मच्चुक्कस्सेणुव्वेत्थणकालेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तमुव्वेत्थमाणो उवममसम्मत्ताहिमुहो होदण अंतरकरणं करिय मिच्छत्तपटमट्ठिदिचरिममए सम्मामिच्छत्तचरिमफालिं संक्रामिय तदणंतरममए सम्मत्तं पडिवज्जिय पटमट्ठावट्ठिं परिभमिय तदवमाणे मिच्छत्तं गंतूण पलिदोवमासंवेत्थभागमेत्तकालं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण-मुव्वेत्थणवावारेणच्छिय तदो पयदाविरोहेण सम्मत्तं घेतूण विदियत्थावट्ठिमणुपालिय तदवमाणे पुणो वि मिच्छत्तं गंतूण दीहुव्वेत्थणकालेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि

* पचीम प्रकृतिक संक्रामकका कितना अन्तरकाल है ?

§ ३९९. यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल माधिक दो छयासठ मास है ।

§ ४००. अब यहां सर्व प्रथम जघन्य अन्तरकालका कथन करते हैं । यथा—पचीस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाला कोई एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव परिणामवशा सम्यक्त्वको या मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और वहाँ उसने सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालतक सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रम द्वारा पचीस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर किया । फिर वह सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर पचीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार पचीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर प्राप्त हो जाता है । अब उत्कृष्ट अन्तरकालका कथन करते हैं—किसी एक पचीस प्रकृतियोंके संक्रामक मिथ्यादृष्टि जीवने उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके अविश्रित संक्रमस्थानके द्वारा प्रकृत संक्रमस्थानका अन्तर किया । फिर वह मिथ्यात्वमें जाकर सबसे उत्कृष्ट उद्वेलना कालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करता हुआ उपशम सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ । फिर अन्तरकरणको करके मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके चरम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिका संक्रमण करके तदनन्तर समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । फिर प्रथम छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण करके उसके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । फिर पत्थके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करते हुए जिमसे प्रकृतमें विरोध न पड़े इस ढंगसे सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । फिर दूसरे छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वका पालन करके उसके अन्तमें फिरसे मिथ्यात्वमें गया और वहाँ सबसे दीर्घ उद्वेलनकालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके

१. आ०प्रतौ एओ पणुवीस— इति पाठः ।

उन्वेल्लिऊण पणुवीसमंकामओ जादो, लद्धं तीहि पलिदोवमासंखेज्जभागेहि सादिरेय-
वेछावट्टिसागरोवममेत्तं पणुवीसमंकामयस्स उक्कस्मंतरं । संपहि वावीमादिमंकमट्टाणाण-
मंतरपरूवणट्टमुत्तरमुत्तं भणइ—

❀ वावीस-वीस-चोदस-तेरस-एक्कारस-दस-अट्ट-सत्त-पंच-चदु-दोणिण-
संकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

§ ४०१. सुगमं ।

❀ जहणणेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण उवडुपोग्गलपरियट्टं ।

§ ४०२. वावीमाए ताव जहण्णंतरपरूवणा कीरदे—एको चउवीससंतकम्मिओव-
मामओ लोभासंकमवसेण वावीमाए मंकामओ होदूण पुणो णवुंमयवेदमुवसामिय
अंतरिदो उवरिं चट्टिय पुणो हेट्टा ओदरिय इत्थिवेदोक्कडुणाणंतरं वावीमसंकामओ
जादो, लद्धमंतरं जहण्णेणंतोमुहुत्तमेत्तं । एवं वीसाए । णवरि इगिवीममंतकम्मियस्स
वत्तव्वं । चोदममंकामयस्स वि एवं चेव । णवरि चउवीममंतकम्मियस्स छण्णोकमायोव-
मामणाए चोदममंकमस्सादिं कादूण पुरिमवेदोवसामणाए अंतरिदस्स पुणो हेट्टा ओदरिय
तिविहकोहोक्कडुणाणंतरं लद्धमंतरं कायव्वं । एवं तेरसमंकामयस्स । णवरि पुरिमवेदोव-

पञ्चीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । उस प्रकार पञ्चीस प्रकृतियोंके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तर
पत्त्यके तीन अमंख्यातवे भागोंसे अधिक दो छयासठ भाग प्राप्त होता है । अब वाईस आदि
संक्रमस्थानोंके अन्तरका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* वाईस, बीस, चौदह, तेरह, ग्यारह, दस, आठ, सात, पांच, चार और दो
प्रकृतिक संक्रामकका कितना अन्तरकाल है ?

§ ४०१. यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपाधंपुद्गलपरिवर्तन
प्रमाण है ।

§ ४०२. अब सर्वप्रथम वाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य अन्तरका कथन करते हैं—
एक चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव लोभका संक्रम न होनेके कारण वाईस
प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । फिर जिसने नपुंसकवेदका उपशाम करके वाईस प्रकृतियोंके संक्रमका
अन्तर किया । फिर ऊपर चढ़कर और उतरकर स्त्रीवेदके अपकर्षणके बाद जो वाईस प्रकृतियोंका
संक्रामक हो गया उसके वाईस प्रकृतियोंके संक्रामकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है ।
बीस प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य अन्तर भी उसी प्रकार प्राप्त होता है । किन्तु यह अन्तर इक्कीस
प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके कहना चाहिये । चौदह प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य अन्तर भी इसी
प्रकार प्राप्त होता है । किन्तु जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव छह नोकपायोंके उपशाम द्वारा
चौदह प्रकृतियोंके संक्रमका प्रारम्भ करके फिर पुरुषवेदके उपशाम द्वारा उसका अन्तर करता है
उसके उपशामश्रेणिसे नीचे उतरने पर तीन प्रकारके क्रोधका अपकर्षण होनेके बाद यह अन्तर प्राप्त
करना चाहिये । इसी प्रकार तेरह प्रकृतिक संक्रामकका भी जघन्य अन्तर प्राप्त होता है । किन्तु

१. आ० प्रती -मुहुत्तं इति पाठः ।

सामणाए लद्धप्पमरूवस्म पयदसंकमड्ढाणस्म दुविहकोहोवसामणाए अंतरपारंभो वत्तव्वो । तदो हेड्ढा ओदग्गिय पुणो वि मच्चलहुं चट्टिय पुग्गिमवेदे उवमामिदे लद्धमंतरं कायव्वं । एमो चैव कम्मो एक्काग्गमंक्रमस्य वि । णवरि दुविहकोहोवसामणाए लद्धप्पमरूवस्सेदस्स कोहमंजलणोवसामणाणंतरमंतरिदस्म पुणो ओदग्गमाणावत्थाए तिविहमाणोकड्डणेण लद्धमंतरं कायव्वं । एवं दममंक्रामयस्म वि । णवरि कोहमंजलणोवसामणाए लद्धप्पलाहस्सेदस्स दुविहमाणोवसामणेणंतरं कादणुवरिं चट्टिय पुणो हेड्ढा ओदग्गिय पुणो वि मच्चलहुमुवरिं चट्टिदस्म कोहमंजलणोवसामणाणंतरं लद्धमंतरं कायव्वं । एवमड्डणं मंक्रामयस्स । णवरि दुविहमाणोवसामणाए समुवलद्धमंक्रमस्सेदस्स माणमंजलणोवसामणेणंतरस्सादि कादण पुणो ओदग्गमाणस्स तिविहमायोक्कड्डणाए अंतरपग्गिमत्ती कायव्वा । एवं मत्तमंक्रामयस्म वि वत्तव्वं । णवरि माणमंजलणोवसामणाणंतरमुवलद्धमरूवस्सेदस्स दुविहमायोवसामणाए अंतरपारंभं कादणुवरिं चट्टिय हेड्ढा ओदग्गिय पुणो वि मच्चलहु-मुवरिं चट्टिदस्स समुद्वेसे लद्धमंतरं कायव्वं । एवं चैव पंचमंक्रामयज्जहणणंतरग्गपस्वणा वि । णवरि दुविहमायोवसामणाणंतरमुवजादमरूवस्सेदस्स मायामंजलणोवसामणाणंतर-मंतरिदस्स ममयाविग्गेहेण लद्धमंतरं कायव्वं । एवं चैव चउएहं मंक्रामयस्म वि वत्तव्वं ।

पुरुषवेदका उपशम हो जाने पर जिसने तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त कर लिया है उसके दो प्रकारके क्रोधका उपशम हो जाने पर प्रकृत संक्रमस्थानके अन्तरके प्रारम्भ होनेका कथन करना चाहिये । फिर इस जीवको नीचे उतारकर और अतिशीघ्र फिरसे चढ़ाकर पुरुषवेदका उपशम कर लेनेपर प्रकृत स्थानका अन्तर प्राप्त करना चाहिये । ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानके अन्तरका भी इसी क्रमसे कथन करना चाहिये । किन्तु दो प्रकारके क्रोधका उपशम होने पर इस स्थानको प्राप्त करके फिर क्रोध संज्वलनका उपशम होनेके बाद इस स्थानका अन्तर प्राप्त करे । फिर उपशमश्रणिसे उतरते समय तीन प्रकारके मानका अपकर्षण करके इस स्थानका अन्तर प्राप्त करना चाहिये । इस प्रकृतिक संक्रमस्थानका अन्तर भी इसी प्रकार होता है । किन्तु क्रोध संज्वलनका उपशम होने पर इस स्थानको प्राप्त करके फिर दो प्रकारके मानका उपशम होनेके बाद इस स्थानका अन्तर प्राप्त करे । फिर ऊपर चढ़कर और नीचे उतरकर फिरसे अतिशीघ्र ऊपर चढ़े और क्रोधसंज्वलनका उपशम करके अन्तर प्राप्त करे । इसी प्रकार आठ प्रकृतियोंके संक्रामकका भी अन्तर प्राप्त होता है । किन्तु दो प्रकारके मानका उपशम हो जाने पर इस स्थानको प्राप्त करके मानसंज्वलनका उपशम करनेके बाद अन्तरका प्रारम्भ किया । फिर उतरते समय तीन प्रकारकी मायाका अपकर्षण करके अन्तरकी समाप्ति की । इसी प्रकार सात प्रकृतियोंके संक्रामकके अन्तरका कथन करना चाहिये । किन्तु मानसंज्वलनका उपशम हो जाने पर इस स्थानको प्राप्त करके फिर दो प्रकारकी मायाका उपशम हो जाने पर अन्तरका प्रारम्भ किया । फिर ऊपर चढ़कर और नीचे उतरकर फिरसे अतिशीघ्र ऊपर चढ़े और अपने स्थानमें पहुँचकर अन्तर प्राप्त करे । पाँच प्रकृतियोंके संक्रामकके उच्च अन्तरका कथन भी इसी प्रकार करना चाहिये । किन्तु दो प्रकारकी मायाका उपशम होनेके बाद इस स्थानको प्राप्त करके फिर माया संज्वलनका उपशम होनेके बाद इस स्थानका अन्तर करे और यथाविधि विवक्षित स्थान पर आकर अन्तरको प्राप्त करे । इसी प्रकार चार प्रकृतियोंके संक्रामकका भी अन्तर कहना चाहिये । किन्तु माया संज्वलनका उपशम हो जाने

णवरि मायामंजलणोवमामणाणंतरमासादिदमरूवस्सेदस्स दुविहलोहोवसामणाए अंतरस्सादिं कादूण पुणो ओदरमाणावन्थाए अणियट्टिपढममए लद्धमंतरं कायव्वं । एवं दोणहं मंकायस्स । णवरि इगिवीममंतकम्मियमवंधेण सव्वजहण्णंतोमुहुत्तमेत्तमंतरमणुगतव्वं । एवं जहण्णंतरपरूवणा कदा ।

§ ४०३. संपहि उक्कस्मंतरे भण्णमाणे तत्थ ताव वावीसाए उच्चदे । तं जहा— एको अणादियमिच्छाइट्ठी अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए पढमसम्मत्तमुष्पाइय वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय अणंताणुबंधिविसंजोयणापुरस्सरं दंसणतियमुवमामिय सव्वलहुमुवममसेट्ठि-मारूढो । पुणो ओदरमाणो इत्थिवेदोकड्डणाणंतरं वावीसमंकमट्टाणस्सादिं कादूण अंतरिदो देसुणद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तकालं परिभमिऊण तदो अंतोमुहुत्तावसेसे सिज्झिदव्वए त्ति सम्मत्तुष्पायणपुरस्सरं दंसणमोहक्खवणं पट्टविय मिच्छत्तचरिमफालीपदणाणंतरं वावीसमंकामओ जादो, लद्धमंतरं होइ । एवं वीसादिसेससंकमट्टाणाणं पि उक्कस्मंतरं परूवेयव्वं । णवरि मव्वेमिमुवममसेट्ठीए चढमाणोदरमाणावन्थासु जहामंभवमादिं कादूणंतरिदस्स पुणो उवममसेट्ठिमारेहणेण लद्धमंतरं कायव्वं । तेरसेक्कारम-दम-चदु-दोण्णिमंकमट्टाणाणं च खवगसेट्ठीए लद्धमंतरं कायव्वमिदि । संपहि एक्किस्से मंकमट्टाणस्स अंतगभावपदुष्पायणट्टमुत्तरमुत्तमाह—

पर इम स्थानका प्राप्त करके फिर दो प्रकारके लाभका उपशम हा जाने पर अन्तरका प्रारम्भ करे और फिर उपशमश्रेणिते उतरते समय अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें अन्तरको प्राप्त करना चाहिये । दो प्रकार दो प्रकृतियोंके संक्रामकका अन्तर प्राप्त होता है । किन्तु इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके सम्बन्धसे इसका अन्तर सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जानना चाहिये । इस प्रकार जघन्य अन्तरका कथन समाप्त हुआ ।

§ ४०३. अब उत्कृष्ट अन्तरका कथन करते हैं । उसमें भी सर्वप्रथम बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका अन्तर कहते हैं । यथा—एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने अर्थपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त करके वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त किया । फिर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनापूर्वक तीन दर्शनमोहनीयका उपशम करके अतिशीघ्र उपशमश्रेणि पर चढ़ा । फिर वहाँसे उतरते समय स्त्रीवेदका अपकर्षण करके बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका प्रारम्भ किया और उसका अन्तर करके कुछ कम अर्थपुद्गलपरिवर्तन कालतक परिभ्रमण करता रहा । फिर सिद्ध होनेमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर सम्यक्त्वकी उत्पत्तिपूर्वक दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करके मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिक पतनके बाद बाईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो जाता है । इसी प्रकार बीस प्रकृतिक आदि शेष संक्रमस्थानोंके उत्कृष्ट अन्तरका भी कथन करना चाहिये । किन्तु उपशमश्रेणि पर चढ़ने या उतरनेकी अवस्थामें सभी स्थानोंको यथासम्भव प्राप्त करके अन्तरका प्रारम्भ करे और फिर अन्तमें उपशमश्रेणि पर आरोहण करके अन्तर ले आवे । तथा तेरह, ग्यारह, दस, चार और दो प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका क्षपकश्रेणिमें उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त करना चाहिये । अब एक प्रकृतिक संक्रमस्थानके अन्तरका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

१. आ०प्रता अतरमाव— इति पाठः ।

❊ एक्कस्से संकामयस्स एत्थि अंतरं ।

§ ४०४. कुदो ? खवयसेट्ठिम्मि लद्धप्पसरूवत्तादो । संपहि उत्तसेमसंकमट्टाणाण-
मंतरपरूवणं कुणमाणो मुत्तमुत्तरं भणइ—

❊ सेसाणं संकामयाणमंतरं केवचिरं कालादो होइ ?

§ ४०५. सुगमं ।

❊ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ४०६. एत्थ सेसग्गहणेण्णवीमट्टारस-वारस-णव-छ-तिगसण्णिदाणमिगिवीस-
संतकम्मियसंबंधिमंकमट्टाणाणं गहणं कायच्चं । एदेसिं च जहण्णुक्कस्संतरपरूवणमेदेण
मुत्तेण कीरदे । तं जहा—इगिवीमसंतकम्मियोवसामगो उवसमसेटीए अंतरकरणममत्ति-
समणंतरमेवाणुपुच्चिसंकममाटविय तदो णवुंसयवेदोवसामणाए एगुणवीसमंकामओ
होदण इत्थिवेदोवसामणाकरणेणंतरस्मादिं कादण पुणो तस्थेव लद्धप्पसरूवस्म अट्टारम-
संकमस्म छण्णोकमायोवसामणाए अंतरमुप्पादिय तम्मि चेव वारसमंकममाटविय पुणो
पुरिमवेदोवममेणंतराविय तदो दुविहकोहोवसामणाणंतरं लद्धप्पसरूवस्म णवण्हं संकम-
ट्टाणस्म कोहमंजलणोवसामणाणंतरमंतरं पारभिय पुणो तत्थ दुविहमाणोवसामणाए

* एक प्रकृतिक संकामकका अन्तरकाल नहीं है ।

§ ४०४. क्योंकि इस स्थानकी प्राप्ति क्षपकश्रेणिमे हांती है । अब पहले जिन संक्रमस्थानों-
का अन्तर कह आये है उनके सिवा वचे हुए संक्रमस्थानोंके अन्तरका कथन करते हुए आगेका
सूत्र कहते हैं—

* शेष स्थानोंके संकामकोंका कितना अन्तरकाल है ?

§ ४०५. यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल माघिक तेतीस
सागर है ।

§ ४०६. इस सूत्रमें जो 'शेष' पद ग्रहण किया है सो उससे इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मसे
सम्बन्ध रखनेवाले उन्नीस, अठारह, बारह, नौ, छह और तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका ग्रहण करना
चाहिये । इस सूत्र द्वारा इन स्थानोंके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरका कथन किया गया है । मुतासा
इस प्रकार है—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव उपशामश्रेणिमे अन्तरकरणकी
समाप्तिके बाद ही आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ करता है । फिर नपुंसकवेदका उपशाम कर लेनेपर
उन्नीस प्रकृतियोंका संक्रमक हो जाता है और स्त्रीवेदका उपशाम करके प्रकृत स्थानके अन्तरका प्रारम्भ
करता है । फिर वहीं पर अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त करके छह नोकपायोंकी उपशामना
द्वारा इस स्थानके अन्तरका प्रारम्भ करता है । फिर वहींपर बारह प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त
करके पुरुषवेदकी उपशामनाद्वारा इस स्थानका अन्तर करता है । फिर दो प्रकारके क्रोवका उपशाम
करनेके बाद नौप्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त करके मंज्वलन क्रोधके उपशामद्वारा इस स्थानके
अन्तरका प्रारम्भ करता है । फिर वहींपर दो प्रकारके मानका उपशाम हो जाने पर छहप्रकृतिक

लद्धप्पलाहस्स छण्हं संकमस्स माणसंजलणोवसामणविहाणेणंतरमाढविय तत्तो दुविह-
मायोवसामणाए तिण्हं संकममाढविय मायासंजलणोवसामणाए तदंतरस्सादिं कादूण
उवरिं चढिय पुणो हेट्ठा ओयरमाणो तिविहमाय-तिविहमाण-तिविहकोह-सत्तणोकसायो-
कड्डुणाणंतरं जहाकमं छण्हं णवण्हं बारसण्हं एगूणवीसाए च संकमट्टाणाणमंतरं
समाणेइ । सेसाणं पुण हेट्ठा ओयरिय पुणो वि सव्वलहुमुवरिं चढिऊण सगसगविसए
अंतरं समाणेइ । एदं जहण्णंतरं ।

§ ४०७. उक्कस्संतरपरूवणमिदाणिं कस्सामो—देव-णेरइयाणमण्णदरो चउवीस-
संतकम्मिओ वेदगसम्माइट्ठी पुव्वकोडाउअमणुस्सेसुप्पज्जिय गब्भादिअट्टवस्साणमुवरि
सव्वलहुं विसुद्धो होऊण संजमं पडिवज्जिय दंसणमोहणीयं खविय उवसमसेट्ठिमारूढो
तिण्हमट्टारसण्हं चढमाणो चेव अंतरमुप्पाइय छण्हं णवण्हं बारसण्हमेगूणवीसाए च
ओयरमाणो अंतरमुप्पाइय समोइण्णो देसूणपुव्वकोडिमत्तकालं संजममणुपालिय कालं
कादूण तेत्तीसंसागरोवमाउएसु देवेसुववण्णो । कमेण तत्तो चुदो संतो पुव्वकोडाउअ-
मणुस्सेसुप्पण्णो अंतोमुहुत्तावसेसे उवममसेट्ठिमारुहिय जहाकमं सव्वेसिमंतरं समाणेदि ।
णवणि वारसण्हं तिण्ह च संकमट्टाणस्म खवगसेटीए लद्धमंतरं कायव्वं ।

एवमोघेण सव्वमंकमट्टाणाणमंतरपरूवणा कया ।

संकमस्थानको प्राप्त करके मानसंज्वलनके उपशमद्वारा इस स्थानके अन्तरका प्रारम्भ करता है ।
फिर दो प्रकारकी मायाका उपशम हो जाने पर तीन संक्रमस्थानको प्राप्त करता है । फिर ऊपर चढ़
कर और नीचे उतरकर तीन प्रकारकी माया, तीन प्रकारका मान, तीन प्रकारका क्रोध और सात
नोकपाय इनका अपकर्षण करने पर क्रमसे ब्रह्म, नौ बारह और उन्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके
अन्तरको प्राप्त कर लेता है । तथा नीचे उतर कर और फिरसे अतिशीघ्र उपशमश्रेणि पर चढ़कर
शेष स्थानोंका भी अपने अपने स्थानमें अन्तर प्राप्त कर लेता है । यह जघन्य अन्तर है ।

§ ४०७. अब इस समय उत्कृष्ट अन्तरका कथन करते हैं—देव और नारकियोंसे कोई
एक चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला वेदक सम्यग्दृष्टि जीव पूर्व कोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें
उत्पन्न हुआ । फिर गर्भसे लेकर आठ वर्ष हो जाने पर अतिशीघ्र विशुद्ध होकर संयमको प्राप्त हुआ ।
फिर दर्शनमोहनीयका क्षय करके उपशमश्रेणि पर चढ़ा । इस प्रकार उपशमश्रेणि पर चढ़ते हुए
तीन और अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका अन्तर उत्पन्न करके तथा ब्रह्म, नौ, बारह और उन्नीस
प्रकृतिक संक्रमस्थानका उतरते समय अन्तर उत्पन्न करके क्रमसे यह जीव अप्रमत्त व प्रमत्तसंयत
हो गया । फिर कुछ कम पूर्व कोटि काल तक संयमका पालन करके मरा और तेतीस सागरकी
आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हो गया । फिर क्रमसे वहाँसे च्युत होकर पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें
उत्पन्न हुआ । फिर अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर उपशमश्रेणिपर चढ़कर क्रमसे सब स्थानोंका अन्तर
प्राप्त करता है । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह और तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानका अन्तर
क्षपकश्रेणिमें प्राप्त करना चाहिये ।

इस प्रकार ओघसे सब संक्रमस्थानोंके अन्तरका कथन किया ।

§ ४०८. एण्हमादेमपरुवणहुमुच्चारणं वत्तइम्मामो । तं जहा—आदेसेण
णिरयगइए णेरएमु २७, २६, २३ मंका० अंतरं केव० ? जह० एगममओ, उक्क०
तेत्तीमं मागरोवमाणि देसूणाणि । एवं २५, २१ । णवरि जह० अंतोमुहुत्तं । एवं
मच्चणेरइय० । णवरि मगाट्टिदी देसूणा ।

§ ४०९. तिग्गिखेमु २७, २६, २३ मंकायंतरमोघं । एवं २१ । णवरि जह०
अंतोमु० । २५ जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि मादिरेयाणि । एवं पंचिदि०-
तिरिक्खतिय० ३ । णवरि मगाट्टिदी । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुमअपज्ज०-अणुदिसादि
जाव सच्चट्टे त्ति तिण्हं ट्ठाणाणं पत्थि अंतरं ।

§ ४०८. अब आदेशका कथन करनेके लिये उच्चारणाको बतलाते हैं । यथा—आदेशसे नरकगतिमें नारकियोंमें २७, २६ और २३ प्रकृतिक स्थानोंके संक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तृतीय मास है । इसी प्रकार २५ और २१ प्रकृतियोंके संक्रामकोंका अन्तरकाल जानना चाहिये । किन्तु इन स्थानोंके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि कुछ कम अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिये ।

विशेषार्थ—यहाँ सर्वत्र २७ प्रकृतिक आदि संक्रमस्थानोंका जघन्य अन्तर एक समय ओघके समान घटित कर लेना चाहिये । किन्तु २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य अन्तरमें ओघसे कुछ विशेषता है । बात यह है कि नरकगतिमें उपशमश्रेणिका प्राप्त होना सम्भव नहीं है इसलिये यहाँ २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर एक समय नहीं प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है जो अन्तर्मुहूर्तके भीतर दो बार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनापूर्वक मिश्र गुणस्थान प्राप्त करानेसे घटित होता है । शेष कथन मगम है ।

§ ४०९. तिर्यञ्चोमे २७, २६ और २३ प्रकृतियोंके संक्रामकका अन्तरकाल ओघके समान है । इसी प्रकार २१ प्रकृतियोंके संक्रामकका अन्तरकाल जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इस स्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा २५ प्रकृतियोंके संक्रामकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर माधिक तीन पल्य है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें जानना चाहिये । किन्तु अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें तीन स्थानोंका अन्तर नहीं है ।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोमें २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर नरकगतिके समान प्राप्त होता है, इसलिये इसका ओघके समान निर्देश न करके अलगसे विधान किया है, क्योंकि तिर्यञ्चगतिके भी उपशमश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव न होनेसे यहाँ २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर एक समय घटित नहीं हो सकता है । जो २६ प्रकृतियोंकी सत्तावाला तिर्यञ्च जीव २५ प्रकृतियोंका संक्रमण कर रहा है उसने उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके २८ प्रकृतियोंकी सत्ता प्राप्ति की । फिर वह सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होनेके पूर्व ही तीन पल्यकी आयुवाले तिर्यञ्चोमें उत्पन्न हुआ और वहाँ यथासम्भव अतिशीघ्र सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रमके अन्तिम समयमें उपशम सम्यक्त्वपूर्वक वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । फिर पल्यका असंख्यातवर्षों भागप्रमाण काल रहने पर वह मिथ्यात्वमें गया और अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर वह

§ ४१०. मणुसतियस्म ओघो । णवरि जम्मि अद्धपोग्गलपरियट्टं तम्मि पुव्वकोडिपुधत्तं । जम्मि तेत्तीमं सागरोवमाणि तम्मि पुव्वकोडी देसूणा^१ । णवरि सत्तावीस-छव्वीस-पणुवीस-तेवीस-इगिवीससंका० पंचिन्दियतिरिक्खभंगो ।

§ ४११. देवाणं णारयभंगो । णवरि एकत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । एवं

पुनः उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । फिर जीवनके अन्तिम समयमें वह सासादनमें जाकर पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार पच्चीस प्रकृतिक संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तीन पल्य प्राप्त होता है । यहाँ साधिकसे कितना काल लिया गया है इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता, इसलिये यहाँ हमने उसका निर्देश नहीं किया है । तथापि वह पल्यके असंख्यातवें भाग-प्रमाण होना चाहिये । पंचेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त आदिमें विवक्षित संक्रमस्थानकी प्राप्ति दो बार सम्भव नहीं है, इसलिये यहाँ सम्भव संक्रमस्थानोंके अन्तरका निषेध किया है । शेष कथन मुगम है ।

§ ४१०. मनुष्यत्रिकमें अन्तर ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि जहाँ अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालप्रमाण अन्तरकाल कहा है वहाँ पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण अन्तरकाल कहना चाहिये । और जहाँ तेनीम सागरप्रमाण अन्तरकाल कहा है वहाँ पर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण अन्तरकाल कहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सत्ताईस, छव्वीस, पच्चीस, तेईस और इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रामकोंका अन्तर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान है ।

विशेषार्थ—मनुष्य गतिमें सभी संक्रमस्थान सम्भव है । उनमेंसे यहाँ २२, २०, १४, १३, ११, १०, ८, ७, ५ और २ प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका जघन्य अन्तर तो ओघके समान बन जाता है । किन्तु उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण नहीं प्राप्त होता, क्योंकि मनुष्यकी कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है । इसलिये मनुष्योंमें इन स्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि उक्त संक्रमस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपशमश्रेणिकी अपेक्षासे ही घटित किया जा सकता है । इसलिए ऐसे जीवको उत्तम भोगभूमिके मनुष्योंमें उत्पन्न कराना ठीक नहीं है । इसीसे मूलमें यह कहा है कि जिन स्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है उनका वह अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण कहना चाहिये । इसी प्रकार यद्यपि मनुष्योंमें १६, १८, १२, ६, ६ और ३ इन संक्रमस्थानोंका जघन्य अन्तर भी ओघके समान बन जाता है । तथापि उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि उक्त संक्रमस्थान या तो चायिकसम्यग्दृष्टिके उपशमश्रेणिके पाये जाते हैं या इनमेंसे कुछ स्थान क्षपकश्रेणिके भी पाये जाते हैं । इसलिये एक पर्यायमें ही दो बार श्रेणिक चढ़ाकर इन स्थानोंका यथाविधि अन्तर प्राप्त करना चाहिये । विधिका निर्देश पहले ही किया जा चुका है । इसीसे मूलमें यह कहा है कि जिन स्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेनीम सागर कहा है उनका वह अन्तर कुछ कम पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण कहना चाहिये । अब रहे २७, २६, २५, २३ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान सो इनका अन्तर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान मनुष्योंमें भी बन जाता है, अतः मनुष्योंमें इनके इन स्थानोंके अन्तरकालको पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान जाननेकी सूचना की है । शेष कथन मुगम है ।

§ ४११. देवोंका भंग नारकियोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि नारकियोंमें जहाँ कुछ कम तेनीस सागर उत्कृष्ट अन्तर कहा है वहाँ इनमें कुछ कम इक्कीस सागर उत्कृष्ट

१. आ०प्रती पुव्वकोडिदेसूणाणि इति पाठः ।

भवणादि जाव उवरिमगेवजा त्ति । णवरि सगट्टिदी देसूणा । एवं जाव० ।

❀ णाणाजीवेहि भंगविचओ ।

§ ४१२. अहियारसंभालणसुत्तमेदं सुगमं । एत्थेव अट्टपरूवणट्टमुत्तरसुत्त-
मोइण्णं—

❀ जेसिं पयडीओ अत्थि तेसु पयदं ।

§ ४१३. कुदो ? अकम्मेहि अब्बवहारादो ।

❀ सव्वजीवा सत्तावीसाए छुब्बीसाए पणुबीसाए तेवीसाए एककीसाए
एदेसु पंचसु संकमट्टाणेसु णियमा संकामगा ।

§ ४१४. एत्थ सव्वजीवग्गहणमेदिस्से परूवणाए णाणाजीवविसयत्तपट्टुप्पायणफलं ।
सत्तावीसादिग्गहणामियरमंकमट्टाणवुदासट्टं । णियमग्गहणमणियमवुदासमुहेण पयदट्टाण-
संकामयाणं सव्वकालमत्थित्तजाणावणफलं । तदो एदेसिं पंचण्हं संकमट्टाणाणं संकामया
जीवा सव्वकालमत्थि त्ति भणिदं होइ ।

अन्तर कहना चाहिये । इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर उपरिम भ्रैवेयक तकके देवोंमें जानना
चाहिये । किन्तु सर्वत्र कुछ कम अपनी स्थिति कहनी चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक
जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—देवोंमें नौ अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अन्तर काल नहीं
पाया जाता है, क्योंकि यहाँ पर जां भी संक्रमस्थान पाये जाते हैं उनका एक पर्यायमें दो बार पाया
जाना सम्भव नहीं है । इसीसे सामान्य देवोंमें उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम इकतीस सागरप्रमाण
बतलाया है, क्योंकि यह अन्तरकाल नौ भ्रैवेयकतक ही पाया जाता है और उनकी उत्कृष्ट स्थिति
इकतीस सागर ही है । शेष कथन सुगम है ।

* अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयका अधिकार है ।

§ ४१२. अधिकारका निर्देश करनेवाला यह सूत्र सुगम है । अब इसी विषयमें अर्थपदका
कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

* जिनके प्रकृतियोंका सत्त्व है उनका यहाँ अधिकार है ।

§ ४१३. क्योंकि कर्मरहित जीवोंसे प्रयोजन नहीं है ।

* सब जीव सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस, तेईस और इक्कीस इन पाँच संक्रम-
स्थानोंमें नियमसे संक्रामक हैं ।

§ ४१४. यह प्ररूपणा नाना जीवविषयक है यह दिखलानेके लिये इस सूत्रमें 'सव्व जीव'
पदका ग्रहण किया है । इतर संक्रमस्थानोंका निषेध करनेके लिये 'सत्तावीस' आदि पदोंका ग्रहण
किया है । अनियमका निषेध करके प्रकृत संक्रमस्थानोंका सर्वकाल अस्तित्व रहता है इस बातका
ज्ञान करानेके लिये 'नियम' पदका ग्रहण किया है । इसलिये इन पाँच संक्रमस्थानोंके संक्रामक
जीव सर्वदा पाये जाते हैं यह इस सूत्रका भाव है ।

❀ सेसेसु अटारससु संकमट्टाणेसु भजियन्वा ।

§ ४१५. कुदो ? तेसिमद्ववभावित्तदंसणादो । एत्थ भंगपमाणमेदं—३८७४-२०४८९ । एवमोघो समत्तो ।

* शेष अटारह संक्रमस्थानोंमें जीव भजनीय हैं ।

§ ४१५. क्योंकि इन स्थानोंका अधुवपना देखा जाता है । यहाँ पर भंगोंका प्रमाण ३८७४२०४८९ है ।

विशेषार्थ—मोहनीय कर्मके २७ प्रकृतिक आदि जो तेईस संक्रमस्थान हैं उनमेंसे २७, २६, २५, २३ और २१ संक्रमस्थानवाले बहुतसे जीव संसारमें सर्वदा पाये जाते हैं, अतः ये पांचों ध्रुवस्थान हैं । तथा शेष स्थानोंकी अपेक्षा यदि हुए तो कभी एक और कभी अनेक जीव होते हैं, इसलिये वे अध्रुवस्थान हैं । अब इन सब स्थानोंके ध्रुव भंगके साथ एक संयोगी आदि कुल भंगोंके प्राप्त करने पर वे सब ३८७४२०४८९ होते हैं । यथा—

१ ध्रुव भंग जो २७, २६, २५, २३ और २१ संक्रमस्थानोंकी अपेक्षासे प्राप्त होता है

२ बाईस संक्रमस्थानके भंग

३ ध्रुवभंग सहित २२ संक्रमस्थानके भंग

३ × २ = ६ बीस संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी भंग

३ × ३ = ९ ध्रुवभंग सहित २२ व २० संक्रमस्थानके सब भंग

६ × २ = १२ उन्नीस संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

६ × ३ = १८ ध्रुवभंग सहित २३, २० व १८ संक्रमस्थानके सब भंग

२७ × २ = ५४ अटारह संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

२७ × ३ = ८१ ध्रुवभंग सहित २२, २०, १६ व १८ संक्रमस्थानके सब भंग

८१ × २ = १६२ चौदह संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

८१ × ३ = २४३ ध्रुवभंग सहित २२ से १४ तकके पूर्वोक्त संक्रमस्थानोंके सब भंग

२४३ × २ = ४८६ तेरह संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

२४३ × ३ = ७२९ ध्रुवभंग सहित २२ से १३ तकके पूर्वोक्त संक्रमस्थानोंके सब भंग

७२९ × ३ = १४५८ बारह संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी भंग

७२९ × ३ = २१८७ ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से १२ संक्रमस्थान तकके सब भंग

२१८७ × २ = ४३७४ ग्यारह संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

२१८७ × ३ = ६५६१ ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से ११ संक्रमस्थान तकके सब भंग

६५६१ × २ = १३१२२ दस संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

६५६१ × ३ = १९६८३ ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से १० संक्रमस्थान तकके सब भंग

§ ४१६. मंहि आदेमपरूवणडुमुचारणं वत्तइस्सामो । आदेसेण णेरइयएसु पंचण्हं
डाणाणं संका० णियमा अत्थि । एवं पढमपुढवि-तिरिक्खइ-देवा सोहम्मादि जाव

१६६८३ × २ = ३६३६६ नौसंक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

१६६८३ × ३ = ५००४९ ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से ९ संक्रमस्थान तकके
सब भंग

५६०४९ × २ = ११२०९८ आठ संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

५६०४९ × ३ = १६८१४७ ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से ८ संक्रमस्थान तकके
सब भंग

१७७१४७ × २ = ३५४२९४ सात संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

१७७१४७ × ३ = ५३१४४१ ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से ७ संक्रमस्थान तकके
सब भंग

५३१४४१ × २ = १०६२८८२ छह संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

५३१४४१ × ३ = १५९४३२३ ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से ६ संक्रमस्थान तकके
सब भंग

१५९४३२३ × २ = ३१८८६४६ पाँच संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

१५९४३२३ × ३ = ४७८२९६९ ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से ५ संक्रमस्थान तकके
सब भंग

४७८२९६९ × २ = ९५६५९३८ चार संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

४७८२९६९ × ३ = १४३४८८०७ ध्रुव भंगसहित पूर्वोक्त २२से ४ संक्रमस्थान तककेसब भंग

१४३४८८०७ × २ = २८६९७६१ तीन संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

१४३४८८०७ × ३ = ४३०४६४२१ ध्रुव भंगसहित पूर्वोक्त २२ से ३ संक्रमस्थान तकके
सब भंग

४३०४६४२१ × २ = ८६०९२८४२ दो संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

४३०४६४२१ × ३ = १२९१४३०६३ ध्रुव भंगसहित पूर्वोक्त २२ से २ संक्रमस्थान तकके
सब भंग

१२९१४३०६३ × २ = २५८२८६१२ एक संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

१२९१४३०६३ × ३ = ३८७४२०४८९ ध्रुव भंगसहित पूर्वोक्त २२से १ संक्रमस्थान तकके सब भंग

सूचना—२२ संक्रमस्थानका प्रथम मानकर ये उत्तरोत्तर भंग लाये गये हैं । अतः आगे
जा २० आदि एक एक संक्रमस्थानके भंग बतलाये गये हैं उनमें उस उस स्थानके प्रत्येक भंग और
उस स्थान तकके सब स्थानोंके द्विसंयोगी आदि भंग सम्मिलित हैं । ये भंग विवक्षित स्थानसे
पीछेके सब स्थानोंके भंगोंको दोसे गुणा करने पर उत्पन्न होते हैं । तथा इन भंगोंमें पीछे पीछेके
स्थानोंके भंग मिला देने पर वहाँ तकके सब भंग होते हैं । ये भंग विवक्षित स्थानसे पीछेके सब
स्थानोंके भंगोंको तीनसे गुणा करने पर उत्पन्न होते हैं । परचादानुपूर्वी या पत्रतत्रानुपूर्वीके क्रमसे
भी ये भंग लाये जा सकते हैं ।

इस प्रकार ओघ परूपणा समाप्त हुई ।

§ ४१६. अब आदेशका कथन करनेके लिए उच्चारणाको बतलाते हैं । आदेशसे
नारकियोंमें पाँच संक्रमस्थानोंके संक्रामक जीव नियमने हैं । इसी प्रकार प्रथम पृथिवी, तिर्यचत्रिक,
देव और सौधर्म कल्पसे लेकर नौ अत्रेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए । दूसरी पृथिवीसे लेकर

णवमेवजा त्ति । विदियादि जाव सत्तमा त्ति एवं चेव । णवरि इगिवीससंक्रामया भयणिजा । भंगा ३ । एवं जोणिणि०-भवण०-वाण०-जोदिसिएसु । पंचिदियतिरिक्ख-अपज्ज० तिणिणं ट्टाणाणि णियमा अत्थि । मणुसतिये ओधभंगो । मणुसअपज्ज० सव्वपद-संक्रामया भयणिजा । तत्थ भंगा २६ । अणुदिसादि जाव सव्वट्टा त्ति २७, २३, २१ संक्रामया णियमा अत्थि । एवं जाव ।

§ ४१७. एत्थ ताव भागाभाग-परिमाण-खेत्त-फोसणाणं देसामासयसुत्तेणेदेण सूचिदानमुच्चारणाणुगमं कस्सामो । तं जहा—भागाभाग० दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण यं । ओघेण पणुवीससंक्रामया सव्वजीवाणमणंता भागा । सेससव्वपदसंक्रामया अणंतिमभागो । एवं तिरिक्खेसु । आदेसेण शेरइय० २५ संका० अमखेजा भागा । सेसमसंखे०भागो । एवं सव्वणेगइय-सव्वपचिदियतिरिक्ख-मणुम-मणुमअपज्ज०-देवा जाव सहस्सार त्ति । मणुमपज्ज०-मणुमिणी० २६ पय० संका० सखेजा भागा । सेस०

सातवीं पृथिवी तक भी इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु यहाँ इक्कीस प्रकृतियोंके जीव भजनीय है, अतः ध्रुव भंगके साथ तीन भंग होते हैं । इसी प्रकार यानिनीतिर्यच, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यच अर्थात्प्रक्रमे तन स्थानवाले जीव नियमसे हैं । मनुष्यत्रिकमें आंवके समान भंग है । मनुष्य अर्थात्प्रक्रमे सब सम्भव पदोंके संक्रामक जीव भजनीय हैं । यहाँ भंग २६ होते हैं । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें २७, २३ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान होते जाव नियमसे हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकी, यानिनी तिर्यच, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानके एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा दो भंग होते हैं तथा इनमें शेष स्थानोंकी अपेक्षा एक ध्रुव भंग मिला देनेपर तीन भंग हो जाते हैं । लक्ष्यप्राप्त मनुष्योंमें २७, २६ और २५ ये तीन संक्रमस्थान होते हैं जो कि भजनीय हैं, अतः इनके २६ भंग प्राप्त होते हैं । शेष कथन सुगम है । तीन स्थानोंके ध्रुवभंगकी छोड़कर शेष २६ भंग किस प्रकार आते हैं इसका ज्ञान पूर्वमें कही गई संज्ञासे ही हो जाता है ।

§ ४१७. यतः 'शाणाजीवहि भंगविचओ' यह सूत्र देशामर्पक है, अतः इससे सूचित होनेवाले भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र और दर्शन इन अनुयोगद्वारोंकी उच्चारणाका अनुगम करते हैं । यथा—भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आवनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं और शेष सब पदोंके संक्रामक जीव अनन्तर्वं भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार तिर्यचोमे भागाभाग जानना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यात बहु-भागप्रमाण है । तथा शेष पदोंके संक्रामक जीव असंख्यातर्वं भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यच, मनुष्य, मनुष्य अर्थात्, देव और सहस्वार स्वर्ग तकके देवोंमें भागाभाग जानना चाहिये । मनुष्य पयाप और मनुष्यनियामें २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । तथा शेष पदोंके संक्रामक जीव संख्यातर्वं भागप्रमाण हैं । आनत

१. ता०प्रतौ ओघादेसभेदेण इति पाठः । अत्रेऽपि बाहुल्येन ता०प्रतौ एवमेव पाठः ।

२. आ०प्रतौ तिरिक्खमणुसअपज्ज० इति पाठः ।

संखे०भागो । आणदादि जाव णवगेवजा त्ति २६ संका० असंखे०भागो । २७ संखेजा भागा । सेसं संखे०भागो । अणुहिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति २७ संखेजा भागा । सेसं संखे०भागो । एवं जाव० ।

§ ४१८. परिमाणानु० दु० णिद्देशो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण २७, २६, २३, २१ संका० केत्तिया ? असंखेजा । २५ संका० के० ? अणंता । सेस० संका० संखेजा । आदेसेण णेरइय० सव्वपदसंका० असंखेजा । एवं सव्वणेरइय०-सव्वपंचिंदिय-तिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देवा जाव अवरइद् त्ति । एवं तिरिक्खा० । णवरि २५ संका० अणंता । मणुसेसु २७, २६, २५ संका० असंखेजा । सेससंका० संखेजा । मणुसपज्ज०-मणुमिणीसु सव्वपदसंका० संखेजा । एवं सव्वट्ठे । एवं जाव० ।

§ ४१९. खेत्तानु० दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य । ओघेण पणुवीसंका० केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे । सेससंका० लोग० असंखे०भागे । एवं तिरिक्खा० । सेसमग्गणासु सव्वपदसंका० लोग० असंखे०भागे । एवं जाव० ।

कल्पसे लेकर नौ ग्रैव्यक तकके देवोंमें २६ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण है । २७ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । तथा शेष स्थानोंके संक्रामक जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें २७ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । तथा शेष स्थानोंके संक्रामक जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ४१८. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा २७, २६ २३ और २१ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव कितने हैं ? असंख्यात है । २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव कितने हैं ? अनन्त है । शेष संक्रमस्थानोंके संक्रामक जीव कितने हैं ? संक्रामक हैं । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सब पदोंके संक्रामक जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यच, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव तथा अपराजित कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिये । इसी प्रकार तिर्यचोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव अनन्त हैं । मनुष्योंमें २७, २६ और २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यात हैं । तथा शेष पदोंके संक्रामक जीव संख्यात हैं । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें सब पदोंके संक्रामक जीव संख्यात हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

§ ४१९. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा पञ्चवीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं । सब लोकमें रहते हैं । तथा शेष पदोंके संक्रामक जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार तिर्यचोंमें जानना चाहिये । शेष मार्गणाओंमें सब पदोंके संक्रामक जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

१. ता०प्रती पदसंका०, आ०प्रती सव्वपदा संका० इति पाठः ।

§ ४२०. पोसणाणु० दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण २७, २५ संका० केव० फोसिदं ? लोग० असंखे०भागो अट्टचोदस० सव्वलोगो वा । २५ संका० सव्वलोगो । २३, २१ लोग० असंखे०भागो अट्टचोदस० । सेसं खेत्तभंगो ।

§ ४२१. आदेसेण णेरइय० २७, २६, २५ संका० लोग० असंखे०भागो छचोदस० देसूणा । २३, २१ संका० खेत्तं । विदियादि जाव सत्तमा त्ति एवं चेय । णवरि सगपोसणं । पढमाए खेत्तभंगो ।

§ ४२२. तिरिक्खेसु २७, २६ संका० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । २५ संका० खेत्तं । २३ लोग० असंखे०भागो छचोदस० । २१ लोग० असंखे०भागो पंचचोदस०भागो वा देसूणा । पंच्चिदियतिरिक्खतिय० २७, २६, २५ संका० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । सेसं तिरिक्खोघं । पंचि०तिरि०अपज्ज०-मणुस०अपज्ज०

विशेषार्थ—यद्यपि ऐसी कई मार्गणार्ण हैं जिनमें २५ प्रकृतियोंके संक्रामकोंका क्षेत्र सब लोक प्राप्त होता है । तथापि यहां केवल तिर्यञ्चोंका ही निर्देश किया है सो इसका कारण यह है कि यहाँ सर्वत्र मुख्यतया चार गतियोंकी अपेक्षासे ही अनुयोगद्वारोंका वर्णन किया जा रहा है । और चार गतियोंमें तिर्यञ्चगतिके जीव ही ऐसे हैं जिनका क्षेत्र सब लोक है । इसीसे यहाँ तिर्यञ्चों-में ही ओघके समान पचचीस प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंका क्षेत्र वतलाया है । शेष कथन सुगम है ।

§ ४२०. स्पर्शानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा २७ और २६ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका, त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । २५ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने सब लोकका स्पर्शन किया है । २३ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका व त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा शेष पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

§ ४२१. आदेशकी अपेक्षा तारकियोंमें २७, २६ और २५ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है तथा २३ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिये । पहिली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

§ ४२२. तिर्यञ्चोंमें २७ और २६ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । २५ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । २३ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छहभागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम पाँच भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें २७, २६ और २५ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । शेष स्थानोंका स्पर्शन सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । पंचेन्द्रिय

तिष्णिपदेहि लोग० अमंखे०भागो सव्वलोगो वा । मणुसतिए २७, २६, २५ संका० पंचिदियतिरिक्खभंगो । सेमं खेतं ।

§ ४२३. देवेषु २७, २६, २५ मंका० लोग० अमंखे०भागो अट्टुणवचोदस० देखुणा । २३, २१ संका० लोग० अमंखे०भागो अट्टुचोदस० देखुणा । एवं सोहम्मसाणे । एवं भवण०-वा०-जोदिमि० । णवरि सगफोरणं कायव्वं । सणकुमारादि जाव सहस्मार ति सव्वपदमंका० लोग० अमंखे०भागो अट्टुचोदम० देखुणा । आणदादि जाव अचुदा ति सव्वपदेहि लोग० अमंखे०भागो छुचोदम० देखुणा । उवरि खेतभंगो । एवं जाव० ।

§ ४२४. मंपहि णाणाजीवमंवांधिकालपरुवणट्टुमुवरिमं चृष्णिमुत्तमाह—

❀ णाणाजीवेहि कालो ।

§ ४२५. अहियाग्गंभालणमुत्तमेदं सुग्गं ।

❀ पंचण्हं टाणाणं संकामया सव्वद्धा ।

§ ४२६. एत्थ पंचण्हं टाणाणमिदि वयणेण मत्तावीम-छब्बीम-पणुवीम-

तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोम तीन पदवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । मनुष्यत्रिकमें २७, २६ और २५ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंका स्पर्शन पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोके समान है । तथा शेष पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

§ ४२३ देवोंमें २७, २६ और २५ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ व कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । २३ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सौधर्म व पेशान कल्पमें जानना चाहिये । तथा इसी प्रकार भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें कहना चाहिये । किन्तु सर्वत्र अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिये । सनत्कुमार कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तक सब पदोंके संक्रामक देवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आनतसे लेकर अच्युत तक सब पदोंके संक्रामक देवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इससे आगेके देवोंमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

§ ४२४. अब नाना जीवसम्बन्धी कालका कथन करनेके लिये आगेका चृष्णिसूत्र कहते हैं—

❀ अब नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका अधिकार है ।

§ ४२५. अधिकारकी संभाल करनेवाला यह सूत्र सुग्गं है ।

❀ पांच संक्रमस्थानोंके जीव सदा पाये जाते हैं ।

§ ४२६. इस सूत्रमें जो 'पंचण्हं टाणाण' वचन दिया है सो इससे सत्ताईस, छब्बीस, पचीस,

तेवीम-इगिवीमसंकमट्टाणाणं गहणं कायव्वं । तेमिं संकामया सव्वकालं होंति त्ति भणिदं होइ । मंपहि सेमपदाणं कालणिट्ठाण्णट्टमुत्तरसुत्तावयागे—

❀ **सेसाणं ट्ठाणाणं संकामया जहणणेण एगसमओ,^१ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।**

§ ४२७. एत्थ सेमग्गहणेण वावीसादीणं संकमट्टाणाणं गहणं कायव्वं । तेमिं^२ जहणकालो एयममयमेत्तो, उवममसेट्ठिमि विवक्खियमंकमट्टाणसंकामयत्तेणेय-समयं परिणदाणं केत्तियाणं पि जीवाणं विदियसमए मरणपरिणामेण तदुवलंभादो । उक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तं, तेमिं चैव विवक्खियमंकमट्टाणसंकामयोवसामयाणमुवरि^३ चटंताणमण्णेहि चट्टणोवयरणवावदेहि अणुमंधिदमंताणाणमविच्छेदकालस्स ममालंघणादो । णवरि तेग्ग-वाग्ग-एक्कारम-दम-चट्ट-तिण्णिण-दोण्णिणसंकामयाणं खवगोवसामगे अस्मिऊण उक्कम्मकालपरूवणा कायव्वा । एत्थतणसेमग्गहणेण एक्कस्से वि संकमट्टाणस्स गहणाइप्पमंगे तण्णिणायरणदुवारेण तत्थतणविसेमपदुप्पायणट्टमुवरिमसुत्तमोइण्णं—

❀ **णवरि एक्कस्से संकामया जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तं ।**

तेईस और इक्कीस संक्रमस्थानोंका ग्रहण करना चाहिए । उनके संक्रामक जीव सर्वदा होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब शेष पदोंके कालका निर्धारण करनेके लिए आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

* शेष स्थानोंके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ४२७. यहाँ पर शेष पदके ग्रहण करनेसे बाईस आदि संक्रमस्थानोंका ग्रहण करना चाहिए । उनका जघन्य काल एक समयमात्र है, क्योंकि उपशमश्रेणियोंमें विवक्षित संक्रमस्थानके संक्रमरूपसे एक समय तक परिणत हुए कितने ही जीवोंका दृग्गरे समयमें मरण हो जानेसे उक्त काल उपलब्ध होता है । उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है, क्योंकि विवक्षित संक्रमस्थानोंके संक्रामकभावसे उपशमश्रेणियोंपर चढ़नेवाले उन्हीं जीवोंका उपशमश्रेणियोंपर चढ़नेवाले अन्य जीवोंके साथ प्राप्त हुई परम्पराका विच्छेद नहीं होनेका कालका अवलम्बन लिया गया है । किन्तु इतनी विशेषता है कि तेरह, बारह, ग्यारह, दस, चार, तीन और दो स्थानोंके संक्रामकोंका क्षपक और उपशामक जीवोंके आश्रयमें उत्कृष्ट कालका कथन करना चाहिए । यहाँ पर सूत्रमें 'शेष' पदके ग्रहण करनेसे एक प्रकृतिक संक्रमस्थानका भी ग्रहण प्राप्त होने पर उसके निराकरण द्वारा उक्त स्थानसम्बन्धी विशेषताका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र अवतरित हुआ है—

* किन्तु इतनी विशेषता है कि एक प्रकृतिक स्थानके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

१. ता०प्रतो एगसमयं इति पाठः । २. आ०प्रतो तेमिं च इति पाठः । ३. ता०प्रतो—सामयाण-मुवरि इति पाठः ।

§ ४२८. एत्थ एक्किस्से संकामयाणं जहण्णकालो कोह-माणाणमण्णदरोदएण चट्ठिदाणं मायासंकामयाणमण्णसंधिदसंताणाणमंतोमुहुत्तमेत्तो होइ । उक्कस्सकालो पुण मायासंकामयाणमण्णसंधिदपवाहाणं होइ त्ति वत्तव्वं । एवमोघो समत्तो ।

§ ४२९. आदेशेण गोरइय० सव्वपदसंका० सव्वद्धा । एवं पढमपुढवि-तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खदुग-पंचि०तिरि०अपज्ज०-देवगदिदेवा सोहम्मादि जाव सव्वद्धसिद्धि त्ति । विदियादि जाव सत्तमा त्ति एवं चेव । णवरि २१ संका० जह० एयममओ, उक्क० पल्लिदो० अमंखे०भागो । एवं जोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिमिया त्ति । मणुमतिए ओघभंगो । मणुमअपज्ज० सव्वपदाणं जह० एयममओ, उक्क० पल्लिदो० अमंखे०भागो । एवं जाव० ।

❀ णाणाजीवेहि अंतरं ।

४३०. सुगमं ।

❀ बावीसाए तेरसएहं बारसएहं एक्कारसएहं दसएहं चदुएहं तिएहं दोएहमेक्किस्से एदेसिं णवएहं टाणाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

§ ४३१. सुगमं ।

❀ जहण्णेण एयसमओ, उक्कस्सेण छम्मासा ।

§ ४२८. यहाँ पर एक प्रकृतिक संक्रामकों का जघन्य काल क्रोध और मानमें से अन्यतर प्रकृतिके उदयसे चढ़े हुए तथा माया प्रकृतिका संक्रम करनेवाले जीवोंके प्राप्त हुए प्रवाहकी अपेक्षा किये बिना अन्नमुहूर्त होता है । परन्तु उत्कृष्ट काल अधिन्द्रिय प्रवाहकी विवक्षासे माया प्रकृतिका संक्रम करनेवाले जीवोंके बहना चाहिये । इस प्रकार ओघ प्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ४२९. आदेशसे नारकियोंमें सब पदोंके संक्रामक जीवोंका काल सर्वदा है । इसी प्रकार पहिली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चद्विक, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, देवगतिमें सामान्य देव और सौधर्म कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जानना चाहिए । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि २१ प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार योनिनी तिर्यञ्च, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए । मनुष्यत्रिकमें ओघके समाप्त भङ्ग है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब पदोंके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

❀ अब नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकालका अधिकार है ।

§ ४३०. यह सूत्र सुगम है ।

❀ बावीस, तेरह, बारह, ग्यारह, दस, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक इन नौ स्थानोंके संक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ?

§ ४३१. यह सूत्र सुगम है ।

❀ जघन्य अंतर एक समय है और उत्कृष्ट अंतर छः महीना है ।

§ ४३२. वावीसाए ताव जहण्णेणेषसमओ, उक्क० छम्मासमेत्तमंतरं होइ, दंमणमोहक्खवणपट्टवणाए णाणाजीवावेक्खजहण्णुकस्संतराणं तेत्तियमेत्तपरिमाणणमुव-लंभादो । एवं तेरमादीणं पि वत्तव्वं, खवयसेटीए लद्धसरूवाणमेदेसिं णाणाजीवावेक्खाए जहण्णुकस्संतराणं तप्पमाणाणमुवलद्धीदो । एत्थ चोदओ भणइ—णेदं घडदे, एक्कारसण्हं चउण्हं च सादिरेयवस्समेत्तुकस्संतग्दंसणादो । तं जहा—एक्कारसण्हं ताव पुरिसवेदोदएण खवयसेट्टिमारूढस्स आणुपुव्वीमंकराणंतं णवुंमयवेदक्खवणाए परिणदस्स णाणाजीव-समूहस्स एक्कारसमंकरमो होइ । पुणो इत्थिवेदक्खवणाए अंतरिय छम्मासमंतरमणुपालिय तदवमाणे णवुंमयवेदोदए सेट्टिमारूढस्स णवुंमय-इत्थिवेदा अकमेण खीयंति त्ति एक्कारम-मंकराणुप्पत्तीए दमण्हं मंकरमो समुप्पज्जइ । तदो एत्थ वि छम्माममंतरं लब्भइ । पुणो इत्थिवेदोदएण चट्टिदस्स णवुंमयवेदे खीणे पच्छा अंतोमुहुत्तेणित्थिवेदो खीयदि त्ति तन्थेक्कारममंकरमस्स लद्धमंतरं होइ । तदो एक्कारममंकरामयस्स वासं मादिरेयमुक्कस्संतरं लब्भइ । पुरिमवेदोदएण खवगसेट्टिं चट्टिदस्स छण्णोकमायक्खवणाणंतं चउण्हं मंकरामयस्सादिं कादण तदो पुरिमवेदं खविय छम्माममंतरिय इत्थिवेदोदएण चट्टिदस्स मत्तणोकमाया जुगवं परिक्खीयंति चदुण्णमणुप्पत्तीए पुणो वि छम्माममेत्तमंतरं

§ ४३२. वईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छः महीना है, क्योंकि इशानमोहनोयकी क्षपणाकी प्रस्थापनामे नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण पाया जाता है । इसी प्रकार तेरह प्रकृतिक आदि संक्रमस्थानोंका भी अन्तरकाल कटना चाहिए, क्योंकि क्षपकश्रेणिमे प्राप्त हुए इन स्थानोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर तत्प्रमाण उल्लंघ्य होता है ।

शंका—यहाँ पर शंकाकार कहता है कि यह कथन नहीं बनता, क्योंकि ग्यारह और चार प्रकृतिक स्थानोंका साधिक एक वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर देखा जाता है । यथा—पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए तथा आनुपूर्वी संक्रमके बाद नपुंसकवेदकी क्षपणा करनेवाले नाना जीवसमूहके ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । पुनः स्त्रीवेदकी क्षपणाका अन्तर देकर और छः माह तक अन्तरका पालनकर उसके अन्तमें नपुंसकवेदके उदयसे श्रेणिपर चढ़े हुए जीवके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका युगपत् क्षय होता है, इसलिए ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानकी उत्पत्ति न होकर दस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । इसलिये यहाँ पर भी छह माहप्रमाण अन्तर पाया जाता है । फिर स्त्रीवेदके उदयमे क्षपकश्रेणि पर चढ़े हुए नाना जीवोंके नपुंसकवेदका क्षय हो जानेपर अन्तर्मुहूर्तके बाद स्त्रीवेदका क्षय होता है, इसलिये यहाँ पर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका अन्तर प्राप्त हो जाता है । अतः ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष प्राप्त होता है । तथा जो नाना जीव पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़े हैं उनके छह नोकषायोंका क्षय होने पर चार प्रकृतिक संक्रमस्थानका प्रारम्भ होता है । फिर पुरुषवेदका क्षय करके और छह माहका अन्तर प्राप्त करके स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़ने पर सात नोकषायोंका एक साथ क्षय होता है । यहाँ पर चार प्रकृतिक संक्रमस्थानकी उत्पत्ति नहीं होनेसे फिर भी छह माहप्रमाण अन्तर

होइ । एवं णवुंसयवेदोदण चढिदस्स वि णाणाजीवसमूहस्स छम्मासंतरममुप्पत्ती वत्तच्चा । पुणो पुरिसवेदोदण चढाविदे लद्धमंतरं होइ ति चउण्हं पि वासं सादिरेयं उक्कस्संतरभावेण लब्भइ । तदो एदेसिं छम्मासमेत्तरपरुवयं मुत्तमिदं ण जुत्तमिदि ? ण, पुरिसवेदोदयक्खवयस्स मुत्ते विवक्खियत्तादो । णवुंसय-इत्थिवेदोदयक्खवयाणं किमड्डमविवक्खा कया ? ण, वहुलमप्पसत्थवेदोदण खवयसेहिसमारोहणमंभवाभावपदुप्पायण्हं मुत्ते तदविवक्खाकरणदो ।

§ ४३३. संपहि उत्तसेमाणमद्धुवभाविसंकमट्टाणाणमंतरगवेमणड्डपुवरिमसुत्तावयागे-

❀ सेसाणं णवण्हं संकमट्टाणाणमंतरं केवच्चिरं कालादो होइ ?

§ ४३४. सुगमं ।

❀ जहएणेण एयसओ , उक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्साणि ।

§ ४३५. एत्थ सेसग्गहणेण २०, १०, १८, १४, ९, ८, ७, ६, ५, एदेमिं संकमट्टाणाणं संगहो कायव्वो । णवग्गहणेण वि उवरिमसुत्ते भणिम्ममाणध्रुवभावित्तसंकमट्टाणवुदासो दट्ठव्वो । एदेमिं च उवममसेहिसंबंधीणं जह० एयममओ, उक्क०

प्राप्त हो जाता है । इसी प्रकार जो नाना जीव नपुंसकवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़ते हैं उनकी अपेक्षा भी छह माहप्रमाण अन्तरकी उत्पत्ति कहनी चाहिये । फिर पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़ाने पर अन्तर प्राप्त होता है । इस प्रकार चार प्रकृतिक संक्रमस्थानका भी उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष प्राप्त होता है, इसलिए इन दोनों स्थानोंके छह माहप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरका कथन करनेवाला यह सूत्र युक्त नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सूत्रमें पुरुषवेदकी क्षपणा करनेवाले नाना जीव विप्रक्षित हैं, इसलिए इस अपेक्षासे उक्त स्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर छह माहप्रमाण ही प्राप्त होता है ।

शंका—यहां पर नपुंसकवेद और स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़े हुए जीवोंकी अत्रिवत्ता क्यों की गई है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अधिकतर अप्रशस्त वेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ना सम्भव नहीं है इस बातका कथन करनेके लिये सूत्रमें उक्त जीवोंकी अत्रिवत्ता की गई है ।

§ ४३३. अब उक्त संक्रमस्थानोंसे जो शेष अध्रुव संक्रमस्थान बचे हैं उनके अन्तरकालका विचार करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ शेष नो संक्रमस्थानोंका अन्तरकाल कितना है ?

४३४. यह सूत्र सुगम है ।

❀ जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल संख्यात वर्ष है ।

§ ४३५. इस सूत्रमें 'शेष' पदके ग्रहण करनेमें २०, १६, १८, १४, ९, ८, ७, ६, और ५ इन संक्रमस्थानोंका संग्रह करना चाहिये । तथा 'णव' पदके ग्रहण करनेसे अगले सूत्रमें जो ध्रुव भावको प्राप्त हुए संक्रमस्थान कहे जानेवाले हैं उनका निराकरण हो जाता है ऐसा यहाँ जानना चाहिये । उपशमश्रेणिसम्बन्धी इन स्थानोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर-

वासपुधत्तमेत्तमंतरं होइ, तदारोहणविरहकालस्स तेत्तियमेत्तस्स णिव्वाहमुवल्लदीदो । सुत्ते संखेज्वस्सग्गहणेण वासपुधत्तमेत्तकालविसेसपडिवत्ती । कुदो ? अविरुद्धाइरियवक्खाणादो ।

❀ जेस्सिमविरह्दिदकालो तेस्सि णत्थि अंतरं ।

§ ४३६. सुगममेदं सुत्तं ।

एवमोघो समत्तो ।

§ ४३७. आदेसेण णेरइयसञ्चपदाणं णत्थि अंतरं, णिरंतं। एवं पढमपुढवि-तिरिक्ख-पंचिंदियतिग्गिक्ख २-पंचिं०तिरि०अपज्ज०-देवगदिदेवा मोहम्मादि जाव सञ्चट्ठा त्ति । विदियादि सत्तमा त्ति एवं चेव । णवरि २१ जह० एयसमओ, उक्क० पल्लिदो० अंसंखे०-भागो । एवं जोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसि० । मणुमतिएओधं । णवरि मणुसिणी० वासपुधत्तं । मणुमअपज्ज० सञ्चपदसंका० जह० एयसमओ, उक्क० पल्लिदो० अंसंखे०-भागो । एवं जाव० ।

❀ सण्णियासो णत्थि ।

§ ४३८. कुदो ? एकस्मि संकमट्टाणे णिरुद्धे सेमसंकमट्टाणाणं तत्थामंभवादो ।

§ ४३९. भावो मञ्चत्थ ओदइओ भावो ।

काल वर्षपृथक्त्व है, क्योंकि उपशमश्रेणिका विरहकाल निराधरतिमे इतना ही पाया जाता है । अर्थात् अधिकसे अधिक इतने कालतक जीव उपशमश्रेणिपर नहीं चढ़ते हैं । सूत्रमें जो 'संखेज्वस्स' पदका ग्रहण किया है सा इससे वर्षपृथक्त्वप्रमाण कालविशेषका ज्ञान होता है, क्योंकि अन्य आचार्योंने उपशमश्रेणिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व ही बतलाया है, अतः यह व्याख्यान उसके अतिरुद्ध है ।

* जिनका विरहकाल नहीं पाया जाता उन स्थानोंका अन्तर नहीं है ।

§ ४३६. यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार ओघप्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ४३७. आदेशकी अर्थात् नारकियोंमें सब पदोंका अन्तर नहीं है, वे वहाँ निरन्तर पाये जाते हैं । इसी प्रकार प्रथम पृथिवीके नास्की, तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चद्विक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त, देवगतिमें देव और सौधर्म कलासे लेकर स्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक भी इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ पर २१ प्रकृतिक संकमस्थानका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार यांनिनी तिर्यञ्च, भयनवामी, व्यन्तर और ज्यांतिपी देवोंमें जानना चाहिये । मनुष्यत्रिकमें अन्तर आघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनीके वर्षपृथक्त्व अन्तर कहना चाहिये । मनुष्य अपर्याप्तियोंमें सब पदोंके संकमस्थानोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

संकमस्थानोंका सन्निकर्ष नहीं है ।

§ ४३८. क्योंकि एक संकमस्थानके रहते हुए वहाँ पर शेष संकमस्थानोंका पाया जाना सम्भव नहीं है ।

§ ४३९. भाग सर्वत्र औद्दयिक है ।

❀ अर्पाबहुअं ।

§ ४४०. एतो पत्तावमग्मर्पाबहुअं परूवइस्सामो त्ति पइज्जासुत्तमेदं ।

❀ सञ्चत्थोवा एवण्हं संकामया ।

§ ४४१. कुदो एदेमिं थोवत्तं णव्वदे ? थोवकालमंचिदत्तादो । तं कथं ? इगित्रीसमंतकम्मिओ उवसमसेट्ठिं चट्ठियं दुविहं कोहं कोहमंजलणचिराणसंतेण सह उवमामिय तण्णवक्कबंधमुवसामेतो समऊणदोआवलियमेत्तकालं णवण्हं संकामओ होइ । तदो थोवकालमंचिदत्तादो थोवयरत्तमेदेसिं सिद्धं ।

❀ छुएहं संकामया तत्तिया चेव ।

§ ४४२. कुदो ? माणमंजलणणवक्कबंधोवमामणापग्णिदाणमिगित्रीसमंतकम्मिओवमामयाणं समऊणदोआवलियमेत्तकालमंचिदाणमिहावलंबणादो । एदेमिं च दोण्हं गसीणं सरिमत्तं चट्ठमाणगामिं पहाणं कादूण भणिदं, ओयरमाणरासिस्म विवक्कवाभावादो । तस्मिं विवक्खिय छसंकामएहिंतो णवसंकामयाणमद्वाविसेसेण विसेमाहियत्तदंमणादो ।

❀ चोइसएहं संकामया संखेज्जगुणा ।

§ ४४३. जइ वि एदे वि ममऊणदोआवलियमेत्तकालमंचिदा तो वि संखेज्जगुणत्त-

* अब अल्पबहुत्वका अधिकार है ।

§ ४४०. अब इससे आगे अबसर प्राप्त अल्पबहुत्वका बतलाते हैं । इस प्रकार यह प्रतिज्ञामूत्र है ।

* नौ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं ।

§ ४४१. शंका—उनकी अल्पता कैसे जानी जाती है ?

समाधान—क्योंकि इनका अल्पकालमें संचय होता है । यथा—इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणिपर चढ़ कर क्रोध संउत्पन्नके प्राचीन सत्तामें स्थित सत्कर्मके साथ दो प्रकारके क्रोधका उपशम करके उसके नवकबन्धका उपशम करता हुआ एक समयकम दो आवलि कालतक नौ प्रकृतियोंका संक्रामक होता है, इसलिये थोड़े कालमें संचय होनेसे ये जीव थोड़े होते हैं यह बात सिद्ध हुई ।

* उनसे छह प्रकृतियोंके संक्रामक जीव उतने ही हैं ।

§ ४४२. क्योंकि जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशमक जीव मान संउत्पन्नके नवकबन्धका उपशम कर रहे हैं जो कि एक समय कम दो आवलि कालके भीतर संचित होते हैं उनका यहाँ अवलम्बन लिया गया है । किन्तु इन बानों राशियोंकी समानता उपशमश्रेणिपर चढ़नेवाली राशिकी प्रधानतासे कही गई है, क्योंकि यहाँ उपशमश्रेणिसे उतरनेवाली राशिकी विवक्षा नहीं है । यदि उतनेवाले जीवोंकी प्रधानतासे विचार किया जाता है तो छह प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे नौ प्रकृतियोंके संक्रामकोंका अधिक काल होनेके कारण वे विशेष अधिक देखे जाते हैं ।

* उनसे चौदह प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ४४३. यद्यपि ये भी एक समय कम दो आवलिप्रमाण कालके भीतर संचित होते हैं

मेदेसिं ण विरुज्झदे, इगिवीससंतकम्मिओवसामएहितो चउवीससंतकम्मिओवसामयाणं संखेज्जगुणत्तदंसणादो ।

❀ पंचएहं संकामया संखेज्जगुणा ।

§ ४४४. कुदो ? इगिवीस-चउवीससंतकम्मिओवसामयाणमंतोमुहुत्तसमयूण-दोआवलियसंचिदानमिहोवलंभादो ।

❀ अट्टएहं संकामया विसेसाहिया ।

§ ४४५. किं कारणं ? इगिवीससंतकम्मियोवसामयस्स दुविहमायोवसामण-कालादो दुविहमाणोवसामणद्वाए विसेसाहियत्तदंसणादो चउवीससंतकम्मिओवसामग-समऊणदोआवलिसंचयस्स उहयत्त समाणत्तदंसणादो च ।

❀ अट्टारसएहं संकामया विसेसाहिया ।

§ ४४६. एत्थ वि कारणं माणोवसामणद्वादो विसेसाहियकोहोवसामणद्वादो वि छण्णोकमाओवसामणकालस्स विसेसाहियत्तं दट्टुवं ।

❀ एग्गवीसाए संकामया विसेसाहिया ।

§ ४४७. एत्थ वि कारणमित्थिवेदोवसामणाकालस्स छण्णोकमाओवसामणद्वादो विसेसाहियत्तमणुगंतवं ।

तो भी ये संख्यातगुण होते हैं यह बात विरोधको नहीं प्राप्त होती, क्योंकि प्रकृतमें इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवोंसे चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीव संख्यातगुणे देखे जाते हैं ।

* उनसे पाँच प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ४४४. क्योंकि, अन्तर्मुहूर्त कालमें संचित हुए इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवोंका और एक समयकम दो आवलि कालमें संचित हुए चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवोंका यहाँपर ग्रहण किया है ।

* उनसे आठ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४४५. क्योंकि इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवोंके दो प्रकारकी मायाके उपशामन कालसे दो प्रकारके मानका उपशामन काल विशेष अधिक देखा जाता है । तथा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकोंके एक समय कम दो आवलि कालके भीतर होनेवाला संचय उभयत्र समान देखा जाता है ।

* उनसे अठारह प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४४६. यहाँ विशेष अधिकका कारण यह है कि मानके उपशामन कालसे विशेष अधिक जो क्रोधका उपशामन काल है उससे भी छह नोकषायोंका उपशामन काल विशेष अधिक देखा जाता है ।

* उनसे उन्नीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४४७. यहाँ भी छह नोकषायोंके उपशामन कालसे खीवेदका उपशामन काल विशेष अधिक होता है यह कारण जानना चाहिये ।

१. ता०प्रतौ -सामणायं इति पाठः ।

❀ चउएहं संकामया संखेज्जगुणा ।

§ ४४८. कुदो ? संगतोभाविदचदुमंकामयखवयदुविहलोहमंकामयचउवीससंत-
कम्मिओवमामयरासिस्म पहाणत्तोवलंभादो । तदो जइ वि पुव्विल्लमंचयकालादो
एत्थतणसंचयकालो विसेसहीणो तो वि चउवीममंतकम्मियरासिमाहप्पादो संखेज्जगुणो
त्ति सिद्धं ।

❀ सत्तणहं संकामया विसेसाहिया ।

§ ४४९. चउवीममंतकम्मिओवमामयदुविहलोहोवमामणकालादो विसेसाहिय-
दुविहमायोवसामणकालमंचिदत्तादो ।

❀ वीसाए संकामया विसेसाहिया ।

§ ४५०. जइ वि दोण्हमेदेमिं चउवीसमंतकम्मिया मंकामया तो वि सत्तसंकामय-
कालादो वीसमंकामयकालस्म छण्णोकमायोवसामणद्वपडिबद्धस्म विसेसाहियत्तं-
मस्मिऊण तत्तो एदेमिं विमेगाहियत्तमविरुद्धं ।

❀ एकस्से संकामया संखेज्जगुणा ।

§ ४५१. कुदो ? मायामंकामयखवयरासिस्म अंतोमुहुत्तकालमंचिदस्म
विवक्खियत्तादो ।

* उनसे चार प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ४४८. क्योंकि यहाँ पर चार प्रकृतियोंके संक्रामक चार जीवोंके साथ दो प्रकारके लोभका
संक्रम करनेवाले चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जोरोंकी प्रधानता स्वीकार की गई है ।
इसलिए यद्यपि पूर्वोक्त स्थानके संवयकालसे इस स्थानका संचय काल विशेष हीन होता है तो भी
चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाली राशिकी प्रधानतासे पूर्वोक्त राशिसे यह राशि संख्यातगुणी है यह
बात सिद्ध है ।

* उनमें मात्र प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४४९. क्योंकि जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीव दो प्रकारके लोभका
उपशाम कर रहे हैं उनके दो प्रकारके लोभके उपशम कालसे विशेष अधिक जो दो प्रकारकी मायाका
उपशम काल है उसमें संचित हुए जीव यहाँ पर लिये गये हैं ।

* उनसे बीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४५०. यद्यपि ७ और २० इन दोनों स्थानोंके संक्रामक जीव चौबीस प्रकृतियोंकी
सत्तावाले होते हैं तो भी सात प्रकृतियोंके संक्रामकके कालसे बीस प्रकृतियोंके संक्रामकका काल
छह नोकपायोंके उपशामनाकालसे सम्बन्ध रखनेवाला होनेके कारण विशेष अधिक होता है इसलिये
सात प्रकृतियोंके संक्रामक जीवोंसे बीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक होते हैं यह बात
अविरुद्ध है ।

* उनसे एक प्रकृतिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ४५१. क्योंकि मायाकी संक्रामक जो क्षरकराशि अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर संचित होती
है वह यहाँ विवक्षित है ।

१. आ०प्रती -सामण्डा पाडिबद्धा मविसेसाहियत्त इति पाठः ।

❀ दोण्हं संकामया विसेसाहिया ।

§ ४५२. एकिससे संकमणकालादो दोण्हं संकामयकालस्स विसेसाहियत्तोव-
लद्धीदो ।

❀ दसएहं संकामया विसेसाहिया ।

§ ४५३. माणसंजलणखवणद्धादो विसेसाहियछण्णोकसायकखवणद्धाए लद्ध-
मंचयत्तादो ।

❀ एक्कारसएहं संकामया विसेसाहिया ।

§ ४५४. छण्णोकसायकखवणद्धादो सादिरेयइत्थिवेदकखवणद्धामंचयस्स संगहादो ।

❀ बारसएहं संकामया विसेसाहिया ।

§ ४५५. तत्तो विसेसाहियणुंसयवेदकखवणद्धाए संकलिदमरूवत्तादो^१ ।

❀ तिण्हं संकामया संखेज्जगुणा ।

§ ४५६. अस्मकण्णकरणकिट्ठीकरण-कोहकिट्ठीवेदगकालपडिबद्धाए तिण्हं संका-
मणद्धाए णुंसयवेदकखवणकालादो^२ किंचणतिगुणमेत्ताए संकलिदमरूवत्तादो ।

❀ तेरसएहं संकामया संखेज्जगुणा ।

* उनसे दो प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४५२. क्योंकि एक प्रकृतिके संक्रमकालसे दो प्रकृतियोंका संक्रमवाल विशेष अधिक
उपलब्ध होता है ।

* उनसे दम प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४५३. क्योंकि मानसंज्वलनके क्षणकालसे जो विशेष अधिक छह नोकपायोंका क्षण-
काल है । उसमें इनका मंचय प्राप्त होता है ।

* उनसे ग्यारह प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४५४. क्योंकि छह नोकपायोंके क्षणकालसे साधिक स्त्रीवेदके क्षणकालमें संचित हुए
जीवोंका यहाँ संग्रह किया गया है ।

* उनसे बारह प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४५५. क्योंकि स्त्रीवेदके क्षणकालसे विशेष अधिक नपुंसकवेदके क्षणकालमें इनका
संचय होता है ।

* उनसे तीन प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ४५६. क्योंकि जो तीन प्रकृतियोंका संक्रमकाल है वह अश्वकर्णकरणकाल, कृष्टीकरण
काल और क्रोधकृष्टिवेदककाल इन तीनोंसे सम्बद्ध है जो कि नपुंसकवेदके क्षणकालसे कुछ कम
तिगुना है, अतः इसमें संचित हुए जीव संख्यातगुणे होते हैं ।

* उनसे तेरह प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

१. ता०-आ०प्रत्योः संगलिदसरूवत्तादो इति पाठः । २. आ०प्रतौ -वेदे क्ववणकालादो
इति पाठः ।

§ ४५७. अटुकसाएसु खविदेसु जावाणुपुञ्जीमंकमो णाढविज्जइ ताव पुच्चिल्ल-
कालादो संखेज्जगुणकालम्मि संचिदत्तादो ।

❀ वावीससंकामया संखेज्जगुणा ।

§ ४५८. दंमणमोहक्खवगो मिच्छत्तं खविय जाव सम्मामिच्छत्तं ण खवेइ ताव
पुच्चिल्लद्वादो संखेज्जगुणभूदम्मि कालेण एदेमिं संचिदसरूवाणमुवलंभादो ।

❀ छुब्बीसाए संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ४५९. कुदो ? सम्मत्तमुच्चेल्लिय सम्मामिच्छत्तमुच्चेल्लेमाणस्स कालो पलिदोव-
मासंखेज्जभागमेत्तो । तत्थ संचिदजीवरासिस्म^१ पलिदो० अमंखे०भागमेत्तस्स पढम-
सम्मत्तग्गहणपढममयवट्टमाणजीवेहि सह गहणादो ।

❀ एकवीसाए संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ४६०. कुदो ? वेमागरोवमकालमंचिदस्वइयमम्माइट्टिगसिस्म पहाणभावेण
इह गणादो । को गुणगरो ? आवलि० अमंखे०भागो ।

❀ तेवीसाए संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ४६१. कुदो ? छावट्टिमागरोवमकालवभंतरमंचिदत्तादो । जइ एवं संखेज्जगुणत्तं

§ ४५७. क्योंकि आठ कपायोंका क्षय होने पर जब तक आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ नहीं
किया जाता है तब तक पूर्वोक्त स्थानके कालसे यह काल संख्यातगुणा हो जाता है, इसलिये इस
कालमें संचित हण जीव भी संख्यातगुण होते हैं ।

* उनसे चार्डम प्रकृतियोंके संक्रामक जीव अमंख्यातगुणे हैं ।

§ ४५८. क्योंकि जो दर्शनमोहनीयका क्षयक जीव मिथ्यात्वका क्षय करके जब तक
सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय नहीं करता है तब तक पूर्वोक्त स्थानके कालसे इस स्थानका काल संख्यात-
गुणा होता है, इसलिये इस काल द्वारा जो इन जीवोंका संचय होता है वह संख्यातगुणा उपलब्ध
होता है ।

* उनसे छुब्बीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ४५९. क्योंकि सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाले जीवका
काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिये उस कालके भीतर पल्यकी असंख्यातवें भागप्रमाण
जीवराशिका संचय पाया जाता है उसका यहाँ पर प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण करके उसके प्रथम
समयमें विद्यमान जीवराशिके साथ ग्रहण किया है ।

* उनसे इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव अमंख्यातगुणे हैं ।

§ ४६०. क्योंकि यहाँ पर दो सागर कालके भीतर संचित हुई क्षायिकसम्यग्दृष्टि राशिका
प्रधानरूपसे ग्रहण किया है । गुणकार क्या है ? गुणकार आवलिका असंख्यातवें भाग है ।

* उनसे तेईस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव अमंख्यातगुणे हैं ।

§ ४६१. क्योंकि इनका छयासठ सागर कालके भीतर संचय होता है ।

१. आ०प्रतौ संचिदा जीवरासिस्स इति पाठः ।

पसज्जदे, कालगुणयारस्स तद्वाभावोवलंभादो त्ति ? ण एस दोसो, उवक्कममाणजीव-
पाहम्मणेण असंखेज्जगुणत्तसिद्धीदो । तं जहा—खइयसम्माइट्ठीणमेयसमयसंचओ संखेज्ज-
जीवमेत्तो । चउवीससंतकम्मिया पुण उक्कस्सेण पलिदो० असंखे०भागमेत्ता एयसमए
उवक्कमंता लब्भंति । तम्हा तेहिंतो एदेसिमसंखे०गुणत्तमविरुद्धमिदि । एत्थ वि
गुणयारो पलिदो० असंखे०भागमेत्तो ।

❀ सत्तावीसाए संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ४६२. एत्थ वि गुणगारपमाणमावलि० असंखे०भागमेत्तं । कुदो ? अट्ठावीस-
संतकम्मियसम्माइट्ठि-मिच्छाइट्ठीणमिह ग्गहणादो ।

❀ पणुवीससंकामया अणंतगुणा ।

§ ४६३. किंचूणसव्वजीवराभिस्स पणुवीससंकामयत्तेण विवक्खियत्तादो ।

एवमोधानुगमो ममत्तो ।

§ ४६४. एत्तो आदेसपरूवणं देसामासियसुत्तस्सचिदं वत्तइस्सामो । तं जहा—
आदेसेण णेरइय० मव्वत्थोवा २६ संका० । २१ संका० अमंखे०गुणा । २३ संका०

शंका—यदि ऐसा है तो पूर्वोक्त राशिसे यह राशि संख्यातगुणी प्राप्त होती है, क्योंकि
कालगुणकार उतना उपलब्ध होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उपक्रममाण जीवोंकी प्रधानतासे पूर्वोक्त राशिसे
यह राशि असंख्यातगुणी सिद्ध होती है । खुलासा इस प्रकार है—एक समयमें चायिकसम्यग्दृष्टियों-
का संचय संख्यात ही होता है किन्तु चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीव तां एक समयमें पत्यके
असंख्यातत्वे भागप्रमाण होते हुए पाये जाते हैं, इसलिए उनसे ये जीव असंख्यातगुणे होते हैं इस
बातमें कोई विरोध नहीं आता है । यहाँ पर गुणकारका प्रमाण भी पत्यके असंख्यातत्वे भाग-
प्रमाण है ।

❀ उनसे सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव अमंख्यातगुणे हैं ।

§ ४६२. यहाँ पर भी गुणकारका प्रमाण आवलिके असंख्यातत्वे भागप्रमाण है, क्योंकि
अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका यहाँ पर ग्रहण किया है ।

❀ उनसे पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं ।

§ ४६३. क्योंकि कुछ कम सब जीवराशि पच्चीस प्रकृतियोंकी संक्रामकरूपसे विवक्षित है ।

इस प्रकार आधानुगम समाप्त हुआ ।

§ ४६४. अब आगे देशामर्षक सूत्रसे सूचित होनेवाले आदेशका कथन करते हैं । यथा—
आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें २६ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे २१ प्रकृतियोंके
संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे २३ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे

अमखेजगुणा । २७ मकाम० अमखे०गुणा । २५ मंका० अमखेगुणा० । एवं पदमाए पंचिदियतिगिखदुगं [देवा] सोहम्मादि जाव महस्मार त्ति । विदियादि जाव मत्तमा त्ति मच्चत्थोवा २१ संका० । २६ संका० अमखे०गुणा । उवरि णिरओघो । एवं जोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसिया त्ति ।

§ ४६५. तिगिक्खाणं णारग्यभंगो । णवरि २५ संका० अणंतगुणा । पंचि०-तिगिक्खअपजत्त-मणुमअपज० मच्चत्थोवा २६ संका० । २७ मंका० अमखे०गुणा । २५ संका० अमखे०गुणा ।

§ ४६६. मणुस्साणमोघो । णवरि २२ मंका मयाणमुवरि २१ मंका म० संखे०-गुणा । २३ मंका० संखे०गुणा । २६ मंका० अमखे०गुणा । २७ मंका० अमखे०गुणा । २५ संका० अमखे०गुणा । एवं पजत्तएमु । णवरि मच्चत्थ मंखेज०गुणं कायव्वं । एवं मणुमिणीमु । णवरि १४ मंका० णत्थि, ओयरमाणविक्खलाभावादो ।

§ ४६७. आणदादि जाव णवगेवजा त्ति मच्चत्थोवा २६ मंका० । २५ मंका० असंखे०गुणा । २१ मंका० संखे०गुणा । २३ मंका० संखे०गुणा । २७ मंका० संखे०-

२७ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार प्रथम पृथिवीके नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चद्विक, सामान्य देव और सौधर्म कल्पसे लेकर महस्मार कल्पतकके देवोंमें जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोमे २१ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे २६ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । इससे आगेका अल्पबहुत्व सामान्य नारकियोंके समान है । इसी प्रकार तिर्यञ्च योनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिये ।

§ ४६५. तिर्यचोमें अल्पबहुत्व नारकियोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपयोपक और मनुष्य अपर्याप्तकोमे २६ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे २७ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ४६६. मनुष्योंमें अल्पबहुत्व ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें २२ प्रकृतियोंके संक्रामकोंके आगे २१ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे २३ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे २६ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे २७ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । इसीप्रकार पर्याप्तक मनुष्योंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सर्वत्र संख्यातगुणा करना चाहिये । इसी प्रकार मनुष्यनियोंमें अल्पबहुत्व जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें १४ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव नहीं हैं, क्योंकि यहाँ पर उपशमश्रेणिसे उतरनेवाली मनुष्यनियोंकी विवक्षा नहीं की है ।

§ ४६७. आनत कल्पसे लेकर नौ प्रैवेयक तकके देवोंमें २६ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे २१ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे २३ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे २७

पुणा । अणुहिमादि जाव सव्वट्ठा त्ति सव्वत्थोवा २१ मंका० । २३ मंकायया संखे०-
गुणा । २७ मंका० संखेज्जगुणा । एवं जाव० ।

एवमप्पाबहुअं समत्तं ।

§ ४६८. एत्थ भुजगार-पदणिकखेव-वट्ठिसंक्रमा च कायव्वा, सुत्तसूचिदत्तादो ।
तं जहा—भुजगारे तत्थ इमाणि तेरम अणियोगहागणि—समुक्त्तिणादि जाव अप्पा-
बहुए त्ति । समुक्त्तिणाए दुविहो णिदेमो—ओघेणादेसेण य । ओघेण अत्थि भुज०-
अप्प०-अवट्ठि०-अवत्तमंकायया । एवं मणुम०३ । आदेसेण गेरइय० एवं चेव । णवग्गि
अवत्तव्वपदं णत्थि । एवं सव्वणिरय०-सव्वतिरिक्ख-सव्वदेवा त्ति । णवग्गि पंचि०-
तिरिक्खअपज्ज०-मणुमअपज्ज०-अणुहिमादि जाव सव्वट्ठा त्ति अत्थि अप्प०-अव्वट्ठि०-
मंकायया । एवं जाव० ।

§ ४६९. साम्मित्ताणु० दुविहो णिदेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण भुज०-
अप्पदग्ग०-अवट्ठि०-मंकायो कम्म ? अण्णदग्गम्म मम्मदिट्ठि० सिच्छादिट्ठिम्म वा ।
अवत्त० कम्म ? अमंकायओ होउण पग्गिदमाणयम्म इग्गिगीमसंतकम्मिओवसंतकमायस्स
पढमममयदेवम्म वा । एवं मणुमत्तिए । णवग्गि पढमममयदेवस्से त्ति ण वत्तव्वं ।

प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणें हैं । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें २१
प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सबवे थोड़े हैं । उनसे २३ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणें हैं । उनसे
२७ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणें हैं । इसीप्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

४६८. यहाँ पर भुजगार, पदनिक्षेप और वृद्धिसंक्रम इनका कथन करना चाहिए, क्योंकि
उनकी सूत्रमें सूचना की गई है । यथा—उनमेंसे भुजगार अनुयोगद्वारमें समुत्कीर्तनासे लेकर अल्प-
बहुत्व तक तेरह अनुयोगद्वार होते हैं । उनमेंसे समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—
ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य
संक्रमस्थानोंके संक्रामक जीव है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा
ना क्रियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अवक्तव्यपद नहीं
होता । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च और सब देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी
विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशमें लेकर सर्वार्थसिद्धि
तकके देवोंमें अल्पतर और अवस्थित संक्रमस्थानोंके संक्रामक जीव हैं । इसी प्रकार अनाहारक
मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ४६९. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश
निर्देश । ओघसे भुजगार, अल्पतर और अवस्थितसंक्रम क्रिसके होता है ? किसी सम्यग्दृष्टि
या मिथ्यादृष्टिके होता है । अवक्तव्यसंक्रम क्रिसके होता है ? इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला
जो असंक्रामक उपशान्तकराय जीव उपशमश्रणिसे न्युत हो रहा है उसके होता है । या इक्कीस
प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो असंक्रामक उपशान्तकराय जीव मरकर देवोंमें उत्पन्न होता है, प्रथम
समयवर्ती उस देवके होता है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता

आदेसेण णेरइय० भुज०-अप्पद०-अवट्टि० ओघभंगो । एवं सव्वणेरइय०-सव्वतिरिक्ख-सव्वदेवा त्ति । णवरि पंचि०तिग्गि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुहिस्सादि जाव सव्वट्ठे त्ति अप्पद०-अवट्टि० कस्म ? अण्णद० । एवं जाव० ।

§ ४७०. कालाणुगमेण दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण भुज०-संका० केवचिरं ? जह० एगसमओ, उक्क० वेसमया । अप्पदर०-अवत्त० जहण्णुक्क० एगसमओ । अवट्टि०संका० तिण्णि भंगा । तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवमिदो तरम जह० एगममओ, उक्क० उवड्ढुपोग्गलपरियट्ठा । आदेसेण णेरइय० भुज०-अप्पद० ओघं । अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीमं सागरोवमाणि । एवं मव्वणेरइय०-सव्वतिरिक्ख०-सव्वदेवे त्ति । णवरि अवट्टिदस्म सगट्टिदी वत्तवा । पंचि०तिरिक्ख-अपज्ज०-मणुमअपज्ज० अप्पद० जह० उक्क० एगममओ । अवट्टि० जह० एगममओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । अणुहिमादि जाव सव्वट्ठा त्ति अप्पद० ओघभंगो । अवट्टि० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० मगट्टिदी । मणुस०३ पंचिदियतिरिक्खभंगो । णवरि अवत्त० जह० उक्क० एगममओ । एवं जाव० ।

है कि यहाँ पर प्रथम समयवर्ती देवके नहीं कहना चाहिये । आदेशसे नारकियोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थितरूप संक्रमका भंग ओघके समान है । इसीप्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च और सब देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्त मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतर और अवस्थितसंक्रम किसके होता है ? अन्यतरके होता है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ४७०. कालानुगमनी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे भुजगार पदके संक्रामकका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अल्पतर और अवस्थितपदोंके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थित संक्रमस्थानोंके संक्रामकके तीन भंग है । उनमेंसे जो सादि-सान्त भंग है उसका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार और अल्पतर पदोंका भंग ओघके समान है । अवस्थित पदके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च और सब देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र अवस्थित संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिये । पंचेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अल्पतर पदके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थित पदके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतर पदका भंग ओघके समान है । अवस्थितपदके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है । मनुष्यत्रिकमें पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अवस्थितपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

§ ४७१. अंतराण० दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण भुज० जह० एगसमओ, अप्प० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० दोण्हं पि उवड्ढुपोग्गलपरियट्ठं । अवट्ठिद० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । अवत्त० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो-वमाणि देसूणदोपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि । आदेसेण णेरइय० भुज०-अप्पद० जह० एयममओ अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया, पढमट्ठिदिदुचग्गिममए मम्मामि०चरिमफालिं मंकाभिय सम्मत्तं पडिवण्णम्मि तदुवलंभादो । एवं सव्वणेरइय० । णवरि सगट्ठिदी० । तिग्गिखाण० णारयभंगो । णवरि उक्क० उवड्ढुपोग्गलपरियट्ठं । पंचिंदियतिरिक्खवतिय ३ णारग-भंगो । णवरि उक्क० सगट्ठिदी । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुहिसादि जाव सव्वट्ठा ति अप्पद० णत्थि अंतं । अवट्ठि० जह० उक्क० एयसमओ । मणुस-तिण्ण ३ भुज०-अप्पद० पंचिं०तिरिक्खभंगो । अवट्ठि० ओघो । अवत्त० जह० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा । देवाणं णारयभंगो । णवरि उक्क० एकत्तीसं सागरो० देसूणाणि । भवणादि जाव णवगेवज्जा ति एवं चेव । णवरि सगट्ठिदी देसूणा ।

§ ४७१. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे भुजगार पदके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है । अल्पतर पदके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा इन दोनोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । अवस्थित पदके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । अवक्तव्य पदके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम दो पूर्वकोटि आधक तेतीस सागर है । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार और अल्पतर पदके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर है । अवस्थित पदके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय है, क्योंकि जो जीव प्रथम स्थितिके द्विचरम समयमें सम्यग्गिभ्यात्वकी अन्तिस फालिहा संक्रम करके सम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके अवस्थितपदका यह उत्कृष्ट अन्तर काल पाया जाता है । इसी प्रकार सब नारकी जीवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिये । तिर्यञ्चोंमें अन्तरका कथन नारकियोंके समान करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें अन्तरका कथन नारकियोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है । पंचेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सवार्थासिद्धि तकके देवोंमें अल्पतरपदके संक्रामकका अन्तरकाल नहीं है । अवस्थितपदके संक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय है । मनुष्यत्रिकमें भुजगार और अल्पतरपदका अन्तर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है । अवस्थितपदका अन्तर ओघके समान है । अवक्तव्यपदके संक्रामकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण है । देवोंमें अन्तरका कथन नारकियोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । भवनवासियोंसे लेकर नौ श्रेण्यक तकके देवोंमें इसी प्रकार है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र कुछ कम अपनी स्थिति कहनी चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा

एवं जाव० ।

६ ४७२. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण अवट्ठि० मंका० णियमा अत्थि । सेमपदसंका० भयणिज्जा । भंगा २७ । एवं चदुगदीसु । णवरि मणुसगदीदो अप्पत्थ णव भंगा वत्तव्वा । णवरि पंचि०-तिरि०अपज्ज०-अणुहिमादि जाव सव्वट्ठा त्ति अवट्ठि० णियमा अत्थि । मिया एदे च अप्पदरगो च १ । मिया एदे च अप्पदरगा च २ । धुवसहिदा ३भंगा तिण्णि । मणुम-अपज्ज० अप्पदर-अवट्ठिदाणमट्ठ भंगा । एवं जाव० ।

६ ४७३. भागाभागाणु० दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण भुज०-अप्प०-अवत्त०मंका० सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । अवट्ठि० सव्वजीव० अणंत भागा । एवं तिग्गिखेमु । णवरि अवत्त० णत्थि । आदेसेण णेरइय० अवट्ठि०मंका० अमंवेज्जा भागा । सेममंखे०भागो । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचि०तिग्गिख-मणुम-मणुमअपज्ज०-देवा जाव अवगाज्जिदा त्ति । मणुमपज्ज०-मणुमिणीमु सव्वट्ठेमु अवट्ठि० मंखेज्जा भागा । सेमं मंखेज्जिदिभागो । एवं जाव० ।

तक जानना चाहिये ।

७ ४७२. नाना जीवसम्बन्धी भंगविचयानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ-निर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा अवस्थित पदके संक्रामक जीव नियमसे हैं । शेष पदोंके संक्रामक जीव भङ्गनीय हैं । भंग २७ होते हैं । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिके सिवा अन्य गतियोंमें ६ भंग कहने चाहिये । किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अवस्थित पदवाले जीव नियमसे हैं । कदाचिन् अवस्थित पदवाले अनेक जीव हैं और अल्पतर पदवाला एक जीव है १ । कदाचिन् अवस्थित पदवाले अनेक जीव हैं और अल्पतर पदवाले अनेक जीव हैं-२ । इस प्रकार ध्रुव भंगके साथ तीन भंग हैं । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अल्पतर और अवस्थित पदके आठ भंग होते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

७ ४७३. भागाभागाणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्य पदके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भाग-प्रमाण हैं ? अनन्तर्वे भागप्रमाण हैं । अवस्थित पदके संक्रामक जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभाग-प्रमाण हैं । इसी प्रकार तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चोंमें अवक्तव्यपद नहीं है । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अवस्थितपदके संक्रामक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । शेष पदोंके संक्रामक जीव असंख्यातर्वे भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और अपराजित तकके देवोंमें जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी और सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें अवस्थित पदवाले जीव संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । शेष पदवाले जीव संख्यातर्वे भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

१. आ०प्रतौ त्ति । मणुसअपज्ज० मणुसअपज्ज०मणुसिणीसु इति पाठः ।

§ ४७४. परिमाणानु० द्रुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण भुज०-अप०मंका० अमंखेज्जा । अवट्ठि० अणंता । अवत्त० संखेज्जा । एवं तिरिक्खा० । णवरि अवत्त० णत्थि । आदेसेण णेरइय० सव्वपदमंका० अमंखेज्जा । एवं सव्वणेरइय-मव्वपंचि०-तिरिक्ख-मणुमअपज्ज०-देवा जाव अवरजिदा त्ति । मणुसेसु भुज०-अवत्त० संखेज्जा । सेमा अमंखेज्जा । मणुमपज्ज०-मणुसिणी-सव्वट्ठेसु सव्वपदमंका० संखेज्जा । एवं जाव० ।

§ ४७५. खेत्ताणु० द्रुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण अवट्ठि०-मंका० मव्वलोगे । सेसमंका० लोगस्स अमंखे०भागे । एवं तिरिक्खा० । सेममव्व-मगणासु सव्वपदमंका० लोग० असंखे०भागे । एवं जाव ।

§ ४७६. पोसणाणु० द्रुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण भुज०मंका० केव० पोमिदं ? लोग० अमंखे०भागो अट्ठ-चारहचोदम० देसूणा । अप्पद० अट्ठचोद० देसूणा मव्वलोगो वा । अवट्ठि० मव्वलोगो । अवत्त० लोग० अमंखे०भागो । आदेसेण णेरइय० भुज० लोग० अमंखे०भागो पंचचोदम० देसूणा । अप्पद०-अवट्ठि० लोग०

§ ४७४. परिणामानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा भुजगार और अल्पतर पदके संक्रामक जीव असंख्यात हैं । अवस्थित पदके संक्रामक जीव अनन्त हैं । अवक्तव्य पदके संक्रामक जीव संख्यात हैं । इसी प्रकार तिर्यञ्चोमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि उनमें अवक्तव्य पद नहीं है । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सब पदोंके संक्रामक जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और अपराजित विमान तकके देवोंमें जानना चाहिये । मनुष्योंमें भुजगार और अवक्तव्य पदके संक्रामक जीव संख्यात हैं । शेष पदोंके संक्रामक जीव असंख्यात हैं । मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और सर्वार्थमिद्धिके देवोंमें सब पदोंके संक्रामक जीव संख्यात हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ४७५. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा अवस्थितपदके संक्रामक जीव सब लोकमें रहते हैं और शेष पदोंके संक्रामक जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिये । शेष सब मार्गणाओंमें सब पदोंके संक्रामक जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

§ ४७६. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा भुजगार पदके संक्रामक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम चारह भाग-प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अल्पतर पदके संक्रामक जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवस्थितपदके संक्रामक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्य पदके संक्रामक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार पदके संक्रामक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम पाँच भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अल्पतर और अवस्थित पदके संक्रामक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागों-

अमंखे०भागो छचोहम० देखूणा । पढमाए खेतं । विदियादि जाव सत्तमा त्ति एवं चेव । णवरि सगपोसणं कायव्वं । सत्तमीए भुज० खेतं । तिरिक्खेसु भुज० लोग० अमंखे०-भागो सत्तचोहस० देखूणा । अप्पद० लोगस्म असंखे०भागो सव्वलोगो वा । अवट्ठि० खेतं । पंचिदियतिरिक्खतिय३ भुज० तिरिक्खोघो । अप्पद०-अवट्ठि० लोग० असंखे०-भागो सव्वलोगो वा । एवं मणुसतिए३ । णवरि अवत्त० ओघभंगो । पंचि०तिरि०-अपज्ज०-मणुसअपज्ज० अप्पद०-अवट्ठि० पंचिदियतिरिक्खभंगो । सव्वपदपरिणददेवेहि अट्ठ-णवचोहम० । एवं भवणादि जाव अचुदा त्ति । णवरि सगपोमणं । उवरि खेतं । एवं जाव० ।

। ४७७. कालाणु० दृविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण भुज०-अप्पद० जह० एग०, उक्क० आवलि० अमंखे०भागो । अवट्ठि० सव्वद्वा । अवत्त० जह० एयसमओ, उक्क० मंखेज्जा समया । एवं सव्वणेरइय०-मव्वतिरिक्ख-मव्वदेवा त्ति । णवरि अवत्त० अत्थि । पंचि०तिरि०अपज्ज० अणुहिसादि जाव अवगजिदा त्ति भुज० णत्थि । मणुसेसु भुज० जह० एगसमओ, उक्क० मंखेज्जा ममया । सेममोव-

मेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । पहिली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक स्पर्शन इसी प्रकार है । किन्तु सर्वत्र अपने अपने स्पर्शनका कथन करना चाहिये । सातवीं पृथिवीमें भुजगारपदका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तिर्यञ्चोंमें भुजगार पदवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और व्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम सात भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अल्पतर पदवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवस्थित पदका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें भुजगार पदका स्पर्शन सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । अल्पतर और अवस्थित पदवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार मनुष्य-त्रिकमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य पदका स्पर्शन ओघके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अल्पतर और अवस्थित पदका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है । सब पदोंसे परिणत हुए देवोंने व्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर अच्युत कल्पतकके देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपना-अपना स्पर्शन कहना चाहिये । इससे आगेके देवोंमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ४७७. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अवस्थित पदका काल सर्वदा है । अवक्तव्य पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च और सब देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अवक्तव्य पद नहीं है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें और अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें भुजगार पद नहीं है । मनुष्योंमें भुजगार पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । शेष पदोंका काल

भंगो । एवं मणुमपज्ज०—मणुसिणीसु । णवरि अप्पद० उक्क० संखेज्जा समया । मणुस-
अपज्ज० अप्पद० ओघं । अवट्ठि० जह० एयममओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो ।
सव्वट्ठे अप्पद० जह० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । अवट्ठि० ओघभंगो ।
एवं जाव० ।

§ ४७८. अंतराणु० दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण भुज०-
अप्पद० जह० एगस०, उक्क० चउवीसमहोरत्ता सादिरेया । अवट्ठि० णत्थि अंतरं ।
अवत्त० जह० एयममओ, उक्क० वामपुधत्तं । एवं मणुमतिए ३ । एवं सव्वणेग्इय०-
मव्वतिग्इख०-सव्वदेवा त्ति । णवरि अवत्त० णत्थि । पंचि०तिरिक्खअपज्ज० भुज०
णत्थि । मणुसअपज्ज० अप्पद०-अवट्ठि० जह० एयस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो ।
अणुट्ठिमादि जाव सव्वट्ठा त्ति अप्पद० जह० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं पलिदो०
असंखे०भागो । अवट्ठि० णत्थि अंतरं । एवं जाव० ।

§ ४७९. भावो सव्वत्थ ओदइओ भावो ।

§ ४८०. अप्पावहुआणु० दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण

ओघके समान हैं । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यान्वयमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अल्पतर पदका उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । मनुष्य अप्याप्तकोमें अल्पतर पदका काल ओघके समान है । अवस्थित पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सर्वार्थसिद्धिमें अल्पतर पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अवस्थित पदका काल ओघके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

§ ४७८. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है । अवस्थितपदका अन्तरकाल नहीं है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यच और सब देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अवक्तव्यपद नहीं है । पंचेन्द्रिय तिर्यच अप्याप्तकोमें भुजगारपद नहीं है । मनुष्य अप्याप्तकोमें अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अनुदिशमे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनुदिशसे अराजितक वर्षपृथक्त्व और सर्वार्थसिद्धिमें पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अवस्थितपदका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ४७९. भाव सर्वत्र औदयिक है ।

§ ४८०. अल्पवहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-
निर्देश । ओघकी अपेक्षा अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे अल्पतरपदके

सव्वत्थोवा अवत्त०मंका० । अप्प०संका० असंखे०गुणा । भुज०संका० विसेसा० । अवट्ठि० अणंतगुणा । आदेसेण णेरइय० सव्वत्थोवा अप्पद०मंका० । भुज० विसे० । अवट्ठि० अमंखे०गुणा । एवं मव्वणेरइय-पंचि०तिरिक्खितियं३-देवा जाव णवगोवज्जा त्ति । एवं तिरिक्खिमेमु । णवरि अवट्ठि० अणंतगुणा । पंचिंदियतिरिक्खवअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुहिमादि जाव अवगजिदा त्ति अप्पदरमंका० थोवा । अवट्ठि० अमंखे०गुणा । एवं मव्वट्ठे । णवरि मंखेज्जगुणं कायव्वं । मणुसेसु मव्वत्थोवा अवत्त० । भुज० मंखे०गुणा । अप्पद० अमंखे०गुणा । अवट्ठि० अमंखे०गुणा । एवं मणुमपज्ज०-मणुसिणीसु । णवरि मंखेज्जगुणं कायव्वं । एवं जाव० ।

एवं भुजगारो समत्तो ।

§ ४८१. पदणिक्वेवे त्ति तिण्णि अणियोगद्दाराणि—ममुक्कित्तणा सामित्तमप्पा-बहुं गं ति । ममुक्कित्तणा दुविहा—जहण्णा उक्कस्मा च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण अन्थि उक्क० वट्ठी हाणी अवट्ठाणं च । एवं चदुगदीसु । णवरि पंचि०तिरि०अपज्ज०-मणुमअपज्ज०-अणुहिमादि जाव सव्वट्ठा त्ति उक्क० वट्ठी

संक्रामक जीव असंख्यातगुणं हैं । उनसे भुजगारपदके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं । उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव अनन्तगुणं हैं । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अल्पतरपदके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे भुजगारपदके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं । उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणं हैं । इसी प्रकार सब नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिक, देव और नौ प्रवेयक तत्त्वके देवोंमें जानना चाहिये । इसी प्रकार तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अवस्थितपदवाले जीव अनन्तगुणं हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर अपराजित तत्त्वके देवोंमें अल्पतरपदके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणं हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिये । किन्तु इतना विशेषता है कि उनमें संख्यातगुणा करना चाहिये । मनुष्योंमें अत्रकव्य पदके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे भुजगारपदके संक्रामक जीव संख्यातगुणं हैं । उनसे अल्पतरपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणं हैं । उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणं हैं । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सर्वत्र असंख्यातगुणके स्थानमें संख्यातगुणा करना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

इस प्रकार भुजकार अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ४८१. पदनिक्षेपमें तीन अनुयोगद्वार हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व । समुत्कीर्तना दो प्रकारकी है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अत्रस्थान है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तक, मनुष्य अपर्याप्तक और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितत्त्वके देवोंमें उत्कृष्ट वृद्धि नहीं है । इसी प्रकार

णत्थि । एवं जाव० । एवं जहण्णं पि णेदव्वं ।

§ ४८२. मामित्तं दुविहं जहण्णकस्सभेदेण । उक्क० पयदं । दुविहो णिहेमो—
ओघेण आदेसेण य । ओघेण उक्क० वड्डी कस्म ? अण्णदरस्स जो उवसामगो मिच्छत्त-
सम्मामिच्छत्ताणि संकामेमाणओ देवो जादो तस्म तेवीमं पयडीओ संकामेमाणस्स
उक्क० वड्डी । तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं । उक्क० हाणी कस्म ? जो खवओ अट्ट-
कसाए खवेदि तस्स उक्क० हाणी । आदेसेण णेगइय० उक्क० वड्डी कस्स ? अण्णदरस्स
जो इगिवीमं संकामेमाणो मत्तावीमं संकामगो जादो तस्म उक्क० वड्डी । तस्सेव से
काले उक्कस्समवट्ठाणं । उक्क० हाणी कस्स ? जो सत्तावीमं संकामेमाणो अणंताणु०-
चउक्कं विमंजोएदि तस्म उक्क० हाणी । एवं सच्चणेरइय-सच्चतिरिक्ख-देवा जाव
णवगेवज्जा त्ति । णवरि पंचि०तिरिक्खअपज्ज० उक्क० हाणी कस्म ? जो मत्तावीस-
संकामगो छव्वीससंकामगो जादो तस्म उक्कस्सिमया हाणी । तस्सेव से काले उक्कस्स-
मवट्ठाणं । एवं मणुमअपज्ज० । मणुमतिए उक्क० वड्डी कस्स ? जो चउवीममंतकम्मओ
उवसमसेदीदो ओयरमाणो चोदमसंकामणादो इगिवीमसंकामगो जादो तस्म उक्क०
वड्डी । हाणी ओघभंगो । एत्थेव उक्कस्समवट्ठाणं । अणुहिमादि जाव सच्चट्ठे त्ति उक्क०
हाणी कस्म ? जेण मत्तावीमं संकामेमाणेण अणंताणुवंधिचउक्कं विमंजोइदं तस्स उक्क०

अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये । इसी प्रकार जघन्यका भी कथन करना चाहिये ।

§ ४८२ स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी
अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट वृद्धि
किसके होती है ? जो उपशामक जीव मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम करता हुआ देव हो
गया है उसके तेईस प्रकृतियोंका संक्रम करते हुए उत्कृष्ट वृद्धि होती है । तथा उसीके तदनन्तर
समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो क्षणिक आठ कर्पायोंका क्षय
करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ?
जो इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाला जीव सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रमक हो गया है उसके
उत्कृष्ट वृद्धि होती है । तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । उत्कृष्ट हानि किसके
होती है ? सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक जो जीव अनन्तानुबन्धीचतुष्कधी विसंयोजना करता है
उसके उत्कृष्ट हानि होती है । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, देव और नो प्रवेयक तकके
देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकामे उत्कृष्ट हानि
किसके होती है ? जो सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक जीव छव्वीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो जाता
है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इसी
प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिये । मनुष्यत्रिकामे उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जो
चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशामश्रेणिसे उतरते समय चौदह प्रकृतियोंके संक्रमके बाद
इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो जाता है उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है । हानिका कथन ओघके
समान है । तथा यहीं पर उत्कृष्ट अवस्थान होता है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें
उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जिस जीवने अनन्तानुबन्धी

हाणी । तस्सेव से काले उक्कस्ममवट्टाणं । एवं जाव० ।

§ ४८३. जह० पयदं । दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण जह० वट्टी कस्स ? जो छव्वीममंकांमओ सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स जहणिया वट्टी । जह० हाणी कस्स ? अण्णदरस्म जेण सत्तावीसमंकांमगेण मम्मत्तमुव्वेल्लिदं तस्म जह० हाणी । अण्णदरत्थावट्टाणं । एवं चदुमु वि गदीसु । णवरि पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुस-अपज्जत्त-अणुदिमादि जाव सव्वट्टे त्ति जह० हाणी अवट्टाणं च उक्कस्सभंगो । एवं जाव० ।

§ ४८४. अप्पाबहुअं दुविहं—जह० उक्क० । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मव्वत्थोवा उक्क० हाणी ८ । वट्टी अवट्टाणं च दो वि मरिसाणि मंखेज्जगुणाणि २१ । आदेसेण णेरइय० सव्वत्थोवा उक्क० हाणी ४ । वट्टी अवट्टाणं च दो वि मरिसाणि त्रिसेमाहियाणि ६ । एवं मव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-सव्वदेवा त्ति । णवरि पंचि०तिरिक्खअपज्ज०-अणुदिसादि जाव सव्वट्टा त्ति उक्क० हाणी अवट्टाणं च दो वि मरिसाणि । मणुमतिण्णु मव्वत्थोवा उक्क० वट्टी ७ । उक्क० हाणी अवट्टाणं च दो वि मरिसाणि त्रिसेमाहियाणि ८ । एवं जाव० ।

चतुष्ककी विमंयोजन किया है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । तथा उमीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ४८३. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा जघन्य वृद्धि किम्बकी होती है ? जो छव्वीस प्रकृतियोंका संक्रामक जीव सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है उसके जघन्य वृद्धि होती है । जघन्य हानि किपके होती है ? सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामक जिस जीवने सम्यक्त्वकी उद्वेलना की है उसके जघन्य हानि होती है । तथा किसी एकके अवस्थान होता है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य हानि और अवस्थानका भंग अपने उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ४८४. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट हानि सबसे थोड़ी है ८ । उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थान ये दोनों समान होते हुए संख्यातगुणे है २१ । आदेशकी अपेक्षा नारिकेलोंमें उत्कृष्ट हानि सबसे थोड़ी है ४ । वृद्धि और अवस्थान ये दोनों समान होते हुए विशेष अधिक है ६ । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च और सब देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तोंमें और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें उत्कृष्ट हानि और अवस्थान ये दोनों समान हैं । मनुष्यत्रिकमें उत्कृष्ट वृद्धि सबसे थोड़ी है ७ । उत्कृष्ट हानि और अवस्थान ये दोनों समान होते हुए विशेष अधिक है ८ । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ४८५. जहणए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थोघेण जह० वङ्गी हाणी अवट्टाणं च तिण्णि वि सरिसाणि १ । एवं चदुसु गदीसु । णवरि पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुहिसादि जाव सच्चट्टे ति उक्क०भंगो । एवं० जाव० ।

एवं पदणिकखेवो समत्तो ।

§ ४८६. वड्डिमंकमे तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि—समुक्तित्तणा जाव अप्पावहुए ति । तत्थ समुक्तित्तणाणु० दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण अत्थि मंखेज्जभागवङ्गी हाणी मंखे०गुणवङ्गी हाणी अवट्टा० अवत्तत्वं च । एवं मणुमतिए । सेमं भुजगारभंगो ।

§ ४८७. सप्पित्तं भुजगारभंगो । णवरि संखेज्जगुणवङ्गी हाणी कम्म ? अणणदरस्म मग्गमाइड्डिम्म । एवं मणुमतिए ३ । सेमं भुजगारभंगो ।

४८८. कालो भुजगारभंगो । णवरि मंखेज्जगुणवङ्गी जह० एयममओ, उक्क० वे ममया । मंखेज्जगुणहाणी जह० उक्क० एयममओ । मणुम्म०३ मंखे०गु णवङ्गी हाणी जह० उक्क० एयममओ । सेमं भुजगारभंगो ।

§ ४८५. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान ये तीनों ही समान हैं १ । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थमिद्वि तकके देवोंमें उत्कृष्टके समान भङ्ग है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

इस प्रकार पदनिक्षेप समाप्त हुआ ।

§ ४८६. अब वृद्धिसंक्रमका अधिकार है । उसमें समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक ये तेरह अनुयोगद्वार होते हैं । उनसे समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ-निर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणवृद्धि, संख्यातगुणहानि, अवस्थान और अवक्तव्य ये पद हैं । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । शेष कथन भुजगारके समान है ।

§ ४८७. स्वामित्वका भंग भुजगारके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यात-गुणवृद्धि और संख्यातगुणहानि किसके होती है ? किसी सम्यग्दृष्टिके होती है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । शेष भंग भुजगारके समान है ।

§ ४८८. कालका भंग भुजगारके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यात-गुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । संख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । मनुष्यत्रिकमें संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । शेष भंग भुजगारके समान है ।

§ ४८०. अंतगणु० दृविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मंखे०-
गुणवृद्धि-हाणिअंतरं जह० एयम० अंतोमु०, उक्क० उवड्डुपोगलपरियट्टं । ससं भुज०-
भंगो । णवरि मणुम०३ मंखे०गुणवृद्धि-हाणीणं जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्व-
कोडिपुधत्तं ।

§ ४९०. णाणाजी० भंगविचओ भागाभागो परिमाणं खेत्तं पोमणं च भुज०-
भंगो । णवरि मंखे०गुणवृद्धि-हाणिगयविसेमो मव्वत्थ जाणियव्वो ।

§ ४९१. कालो भुज०भंगो । णवरि गुणवट्ठी हाणी जह० एयममओ, उक्क०
मंखेज्जा ममया ।

§ ४९२. अंतरं भुज०भंगो । णवरि मंखे०गुणवट्ठी जह० एगममओ, उक्क०
वामपुधत्तं । मंखे०गुणहाणी जह० एयममओ, उक्क० छम्मासं । एवं मणुमतिण् ।
णवरि मणुमिणी० मंखे०गुणहाणी उक्क० वामपुधत्तं ।

§ ४९३. भावो मव्वन्थ ओदइओ० ।

§ ४९४. अप्पावहुआणु० दृविहो णि०—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मव्वत्थोवा
अवच०मंका । मंखे०गुणवृद्धिमंका० मंखे०गुणा । मंखे०गुणहाणिमंका० मंखे०गुणा ।

§ ४९६. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी
अपेक्षा संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और संख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर
अन्तर्मुहृतं है । तथा दोनों का उत्कृष्ट अन्तर उपाधपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । शेष भङ्ग भुजगारके
समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकमें संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिका
जघन्य अन्तर अन्तर्मुहृतं है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है ।

§ ४९०. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, परिमाण, क्षेत्र और स्पर्शन इनका कथन
भुजगारके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिगत
विशेषताको सर्वत्र जान लेना चाहिये ।

§ ४९१ कालका भंग भुजगारके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि गुणवृद्धि और
गुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ।

§ ४९२. अन्तरका भंग भुजगारके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यात-
गुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है । संख्यातगुण-
हानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें
जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकमें संख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तर
वर्षपृथक्त्व है ।

§ ४९३. भाव सर्वत्र औदयिक है ।

§ ४९४ अल्पवहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी
अपेक्षा अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव
संख्यातगुणे है । उनसे संख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यात-

संखे० भागहाणि० असंखे० गुणा । संखे० भागवद्धि० विसे० । अत्रवद्धि० अणंतगुणा । मणुस्सेसु
 सव्वत्थोवा अवत्त० । संखे० गुणवद्धि० संखे० गुणा । संखे० गुणहाणि० संखे० गुणा ।
 संखे० भागवद्धि० संखे० गुणा । संखे० ज्ञभागहाणि० असंखे० गुणा । अवद्धि० असंखे० गुणा ।
 एवं मणुसपज्ज०-मणुसिणी० । णवरि संखे० ज्ञगुणं कायव्वं । सेससव्वमग्गणासु
 भुजगारभंगो ।

एवं वृद्धी समत्ता । तदो पयडिट्ठाणमंकमो समत्तो ।

एवं पयडिसंकमो समत्तो ।

भागहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं । उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं । मनुष्योंमें अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यात-गुणहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यातभागहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणेके स्थानमें संख्यातगुणा करना चाहिये । शेष सब मार्गणाओंमें भुजगारके समान भंग है ।

इसप्रकार वृद्धिके समाप्त होनेपर प्रकृतिसंक्रमस्थान समाप्त हुआ ।

इसप्रकार प्रकृतिसंक्रम समाप्त हुआ ।

द्विदिसंकमो अथाहियारो

तस्स णिवेदिय परिसुद्धभावकुसुमंजलिं जिणिदस्स ।

ठिदिसंकमाहियारं जहाड्ढिदं वण्णइस्सामो ॥ १ ॥

❁ द्विदिसंकमो दुबिहो—मूलपयडिद्विदिसंकमो उत्तरपयडिद्विदिसंकमो च ।

§ ४०५. एत्तो द्विदिसंकमो पयडिसंकमाणंतगपरूवणाजोग्गो पत्तावसगे । मो च दुबिहो मूलुत्तरपयडिद्विदिसंकमभेदेण । तत्थ मूलपयडीए मोहणीयसण्णिदाए जा द्विदी तिस्से मंकमो मूलपयडिद्विदिसंकमो उच्चइ । एवमुत्तरपयडिद्विदिसंकमो च वत्तच्चो । एवं दुविहत्तमावण्णस्स द्विदिसंकमस्स परूवणद्वमुत्तरपदं भणइ—

❁ तत्थ अट्टपदं—जा द्विदी ओकड्डुज्जदि वा उक्कड्डुज्जदि वा अरणपयडिं संकामिज्जइ वा सो द्विदिसंकमो । सेसो द्विदिअसंकमो ।

§ ४०६. एत्थ मूलपयडिद्विदीए ओकड्डुक्कड्डुणवसेण संकमो । उत्तरपयडिद्विदीए पुण ओकड्डुक्कड्डुण-परपयडिसंकमोतिहि मंकमो दट्टच्चो । एदेणोक्कड्डुणादओ जिस्से द्विदीए

स्थितिसंकम अर्थाधिकार

उस जिनेन्द्रको अतिनिर्मल भावरूपी कुसुमोंकी अंजलि अर्पण करके यथास्थित स्थितिसंकम अधिकारका वर्णन करूँगा ॥ १ ॥

❁ स्थितिसंकम दो प्रकारका है—मूलप्रकृतिस्थितिसंकम और उत्तरप्रकृतिस्थितिसंकम ।

§ ४६५. अब इस प्रकृतिसंकम अनुयोगद्वारके बाद स्थितिसंकमका कथन अवसर प्राप्त है । मूलप्रकृतिस्थितिसंकम और उत्तरप्रकृतिस्थितिसंकमके भेदसे वह दो प्रकारका है । उनमेंसे मोहनीय नामक मूल प्रकृतिकी जो स्थिति है उसके संक्रमको मूलप्रकृतिस्थितिसंकम कहते हैं । इसी प्रकार उत्तरप्रकृतिस्थितिसंकम कहना चाहिये । इस प्रकार दो तरहके स्थितिसंकमका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

❁ स्थितिसंकमके विषयमें यह अर्थपद है—जो स्थिति अपकर्षित, उत्कर्षित और अन्य प्रकृतिरूपसे संक्रमित होती है वह स्थितिसंकम है और शेष स्थिति-असंकम है ।

§ ४६६. यहाँ पर मूलप्रकृतिकी स्थितिका अपकर्षण और उत्कर्षणके कारण संक्रम होता है । किन्तु उत्तरप्रकृतिस्थितिका अपकर्षण, उत्कर्षण और परप्रकृतिसंकमके कारण संक्रम जानना

णत्थि सा ट्टिदी ट्टिदिअमंकमो ति भण्णदे । एत्थ ताव ओकड्डणासंकमस्स सरूव-
णिरूवणट्टमुवरिमं पबंधमाह—

❀ ओकड्डित्ता कथं णिक्खिबदि ट्टिदिं ।

§ ४०७. ट्टिदिमोकड्डिऊण हेट्टा णिक्खिबमाणो कथं णिक्खिबदि ति पुच्छिदं
होइ ? एवं पुच्छिदे उदयावलियवाहिग्गट्टिदिमादिं कादूण मच्चासिं ट्टिदीणमोकड्डणविहाणं
परूवेमाणो उदयावलियवाहिग्गणंतरट्टिदीए ओकड्डणा केरिसी होइ ति सिस्साहिप्पाय-
मामंक्रिय पुच्छावक्कमाह—

❀ उदयावलियचरिमसमयअपविट्टा जा ट्टिदी सा कथमोकड्डिज्जइ ?

४०८. एदिस्से ट्टिदीए अइच्छावणा णिक्खेवो वा किपमाणो होइ ति पुच्छा
कदा भवदि । एवं पुच्छिदत्थविमए णिण्णयजणणट्टमुवरिममुत्तमाह ।

❀ तिस्से उदयादि जाव आवलियतिभागो ताव णिक्खेवो,
आवलियाए वे-ति-भागा अइच्छावणा ।

४०९. तं जहा—तमोकड्डिय उदयादि जाव आवलियतिभागो ताव णिक्खेवदि ।
आवलियवे-तिभागमेत्तमुवरिमभागे अइच्छावेइ । तदो आवलियतिभागो तिस्से णिक्खेव-
चाहिये । इससे यह अभिप्राय भी प्रकट हो जाता है कि जिस स्थिति के अपकर्षण आदिक नहीं
होते वह स्थिति स्थिति-असंक्रम कहलाती है । अब यहाँ पर अपकर्षणासंकमके स्वरूपका निरूपण
करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* स्थितिका अपकर्षण करके उसका निक्षेप किम प्रकार किया जाता है ?

§ ४१७. स्थितिका अपकर्षण करके न चेकी स्थितिमें निक्षेप करते समय उसका निक्षेप
कैसे किया जाता है यह इम सूत्रद्वारा पृच्छा की गई है । इस प्रकारकी पृच्छा करने पर उदयावलिके
बाहरकी स्थितिसे लेकर सब स्थितियोंके अपकर्षणकी विधिका निरूपण करते हुए सर्व प्रथम उदया-
वलिके बाहर अनन्तर समयमें स्थित स्थितिका अपकर्षण किस प्रकार होता है इस प्रकार शिष्यके
अभिप्रायको आशंकारूपसे ग्रहण करके आगेका पृच्छासूत्र कहते हैं—

* जो स्थिति उदयावलिके अन्तिम समयमें प्रविष्ट नहीं हुई है उसका अपकर्षण
किस प्रकार होता है ?

§ ४१८. इस स्थितिकी अतिस्थापनाका और निक्षेपका क्या प्रमाण है यह इस सूत्रद्वारा
पृच्छा की गई है । इस प्रकार पूछे गये अर्थका निर्णय करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

* उदय समयसे लेकर आवलिके तीसरे भागतक उस स्थितिका निक्षेप होता
है और आवलिका शेष दो बटे तीन भाग अतिस्थापनारूप रहता है ।

§. ४१९ खुलासा इस प्रकार है—उस स्थितिका अपकर्षण करके उदय समयसे लेकर
आवलिके तीसरे भाग तक उसका निक्षेप करता है और आवलिके दो बटे तीन भागप्रमाण ऊपर
के हिस्सेको अतिस्थापनारूपसे स्थापित करता है । इसलिए आवलिका तीसरा भाग उस अपकर्षित

विसत्रो । आवलियवे-तिभागा च अइच्छावणा त्ति भण्णइ । कथमावलियाए कदजुम्म-संखाए तिभागो घेतुं मक्किज्जेदे ? ण, रूवणं काऊण तिहागीकरणादो । तम्हा समयूणा-वलियवे-तिभागा अइच्छावणा । समयूणावलियतिभागो रूवाहिओ णिक्खेवो त्ति णिच्छओ कायव्वो ।

§ ५००. मंपहि एदम्मि विमए पदेमणिसेगकमजाणावणडुमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

❖ उदए बहुअं पदेसग्गं दिज्जइ । तेण परं विसेसहीणं जाव आवलियतिभागो त्ति ।

§ ५०१. सुगममेदं सुत्तं । एवमुदयावलियवाहिराणंतरट्टिदीए ओकडुणाविहिं परूविय पुणो तदणंतगेवरिमट्टिदिओकडुणाए णाणत्तमंभवं पदुप्पाएदुमुत्तरसुत्तं भणइ—

❖ तदो जा विदिया^१ ट्टिदी तिस्से वि तत्तिगो चेव णिक्खेवो । अइच्छावणा समयुत्तरा ।

§ ५०२. तदो पुव्वणिरुद्धट्टिदीदो अणंतरा जा ट्टिदी उदयावलियवाहिरविदियट्टिदि त्ति उत्तं होइ । तिस्से वि तत्तिओ चेव णिक्खेवो होइ, तत्थ णाणत्ताभावादो । अइच्छावणा

स्थितिका निक्षेपका विषय हैं और आवलिका दो बटे तीन भाग अतिस्थापना हैं ऐसा यहाँ कहा गया है ।

शंका—आवलिकी परिगणना कृतयुगमसंख्यामें की गई है इसलिए उसका तीसरा भाग कैसे ग्रहण किया जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि आवलिमेसे एक समय कम करके उसका तीसरा भाग किया है । इसलिए एक समय कम आवलिके दो बटे तीन भागप्रमाण अतिस्थापना है और एक समय कम आवलिका तीसरा भाग एक अधिक करने पर निक्षेप है ऐसा यहाँ निश्चय करना चाहिये ।

§ ५००. अब इस विषयमें प्रदेशोंके निक्षेपके क्रमका ज्ञान करानेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

* उदयमें ब्रह्मसे प्रदेश दिये जाते हैं । उससे आगे आवलिका तीसरा भाग प्राप्त होने तक विशेषहीन विशेषहीन प्रदेश दिये जाते हैं ।

§ ५०१. यह सूत्र सुगम है । इस प्रकार उदयावलिके बाहर अनन्तर समीपवर्ती स्थितिकी अपकर्षणविधिका कथन करके अब इस स्थितिसे अनन्तर उपरिम समयवर्ती स्थितिके अपकर्षणमें जो नानात्व सम्भव है उसका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

* इस स्थितिके बाद जो दूसरी स्थिति है उसका भी उतना ही निक्षेप होता है । किन्तु अतिस्थापना एक समय अधिक होती है ।

§ ५०२. उस पूर्व विवक्षित स्थितिसे जो अनन्तर समयवर्ती स्थिति है अर्थात् उदयावलिके बाहर जो द्वितीय समयवर्ती स्थिति है उसका भी उतना ही निक्षेप होता है, क्योंकि उसमें कोई भेद

१. ता०प्रतौ जावदिया इति पाठः ।

पुण समयुत्तरा होइ । उदयावलयिवाहिरट्टिदीए वि एदिस्से अइच्छावणाभावेण पवेसदंसणादो ।

❧ एवमइच्छावणा समुत्तरा । णिकखेवो तत्तिगो चैव उदयावलयि वाहिरादो आवलयितिभागंतिमट्टिदि ति ।

§ ५०३. एवमवट्टिदेण णिकखेवेण समयुत्तराए च अवट्टिदाइच्छावणाए ताव पेदव्वं जाव उदयावलयिवाहिरादो जहण्णणिकखेवमेत्तट्टिदीओ अइच्छावणाभावेण पइट्टाओ ति । तइत्थीए ट्टिदीए आइच्छावणा संपुण्णिया आवलिया णिकखेवो जहण्णओ चैव । कइत्थओ वुण सो ट्टिदिविसेसो ? उदयावलयिवाहिरादो आवलयितिभागंतिमो । एत्था-वलयितिभागगहणेण समयूणावलयितिभागो समयुत्तरो घेत्तव्वो । तदंतिमगहणेण च तदणंतरुवरिभट्टिदिविसेसो गहेयव्वो । तम्हा उदयावलयिवाहिरादो जहण्णणिकखेवमेत्तीओ ट्टिदीओ उल्लंघिय ट्टिदाए ट्टिदीए संपुण्णावलयिमेत्ती अइच्छावणा होइ ति सुत्तस्स भावत्थो । संपहि एत्तो उवरि अवट्टिदाए अइच्छावणाए णिकखेवो चैव वट्टिदि ति परूवेदुत्तरसुत्तमाह—

नहीं है । किन्तु अतिस्थापना एक समय अधिक होती है, क्योंकि उदयावलिके बाहरकी स्थितिमें भी इसका अतिस्थापनारूपसे प्रवेश देया जाता है ।

* इम प्रकार अतिस्थापना एक एक समय अधिक होती जाती है और निक्षेप उदयावलिके बाहर आवलिके तीसरे भागकी अन्तिम स्थिति तककी स्थितियोंके प्राप्त होने तक उतना ही रहता है ।

§ ५०३. इस प्रकार अतिस्थापनामें उदयावलिके बाहरसे जघन्य निक्षेपप्रमाण स्थितियोंके प्रविष्ट होने तक निक्षेपको अवस्थितरूपसे ले जाना चाहिये और अतिस्थापनाका उत्तरोत्तर एक एक समय अधिकके क्रमसे अनवस्थितरूपसे ले जाना चाहिये । फिर वहाँ जो स्थिति प्राप्त होती है उसकी अतिस्थापना पूरी एक आवलिप्रमाण होती है और निक्षेप जघन्य ही रहता है ।

शंका—जिस स्थिति विशेषके प्राप्त होनेपर अतिस्थापना पूरी एक आवलिप्रमाण होती है वह स्थिति विशेष किस स्थानमें प्राप्त होता है ।

समाधान—उदयावलिके बाहर आवलिके तीसरे भागका जो अन्तिम समय है वहाँ वह स्थिति विशेष प्राप्त होता है ।

यहाँ सूत्रमें जो 'आवलयितिभाग' पदका ग्रहण किया है सो इमसे एक समय कम आवलि-का एक समय अधिक त्रिभाग लेना चाहिये । और सूत्रमें जो 'तदंतिम' पदका ग्रहण किया है सो इससे तदनन्तर उपरिम स्थिति विशेषका ग्रहण करना चाहिए । अतः उदयावलिके बाहर जघन्य निक्षेपप्रमाण स्थितियोंको उल्लंघन करके जो स्थिति स्थित है उसके प्राप्त होने तक पूरी एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना होती है यह इस सूत्रका भावार्थ है । अब इससे आगे अतिस्थापना तो अवस्थित रहती है किन्तु निक्षेप ही बढ़ता है इम बातका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

१. ता०—आ०प्रत्याः पदेमदंमणादो इति पाठः ।

❀ तेण परं णिकखेवो वडुइ । अइच्छावणा आवलिया चेव ।

१५०४. ततो परं णिकखेवो वडुइ, जहणणिकखेवादो समयुत्तरादिकमेण जावुकस्सणिकखेवो ताव वडुइए विगेहाभावादो । अइच्छावणा आवलिया चेव, णिवाघाद-परूवणाए संतपयडिस्स पज्जत्तादो । मंपहि जहणणिकखेवो समयुत्तरक्रमेण वडुंतओ केत्तियमुवरिं चट्टिऊणावलियमेत्तो होइ ति पुच्छिंद उच्चदे—उदयसमयप्पहृडि समयाहियदोआवलियमेत्तमुवरिं घेत्तण तदिन्थममयावट्टिदट्टिदीए अइच्छावणा णिकखेवो च आवलियमेत्तो होइ । तप्पजंतणं च सव्वासिमुदयावलियवाहिरट्टिदीणमुदयावलिय-वमंतरे चेव पदेमणिकखेवो ति तदोकड्डुणा अमंखेज्जलोगपडिभागीया । तं कथं ? विवक्खिखदट्टिदिपदेमग्गमोकड्डुकड्डुणभागहारगुणिदामंखेज्जलोगभागहारेण खंडिय तन्थेय-खंडं घेत्तण एत्थोवट्टिदि । तदां विसेसहीणं जा उदयावलियचरिमममओ ति । एम कपो जामिमुदयावलियगम्भे चेव पदेमणिकखेवो तामिं ट्टिदीणं परूविदो । एत्तो उवगि णाणत्तं वत्तइस्सामो । तं जहा—तदणंतरोवगिमिट्टिदिं दिवडुगुणहाणिगुणिदोकड्डुकड्डुण-भागहारेण खंडिय तन्थेयखंडमेत्तमेत्थोकड्डुणदव्वं होइ । पुणो एदममंखेज्जलोगेहि भागं घेत्तणेयभागमुदयावलियवमंतरे देतो उदए वहुअं^१ देदि । ततो विसेमहीणं । एवं ताव जाव

❀ उससे आगे निक्षेप बढ़ता है और अतिस्थापना एक आवलिप्रमाण ही रहती है ।

§ ५०५. फिर उससे आगे निक्षेप बढ़ता है, क्योंकि उत्कृष्ट निक्षेपके प्राप्त होने तक जयन्त्य निक्षेपसे आगे एक एक समय अधिकके क्रमसे निक्षेपकी वृद्धि होनेमें कोई विरोध नहीं आता है । किन्तु अतिस्थापना एक आवलि ही रहती है, क्योंकि निक्षेपावत प्ररूपणमें सत्प्रकृति पर्याप्त है । जयन्त्य निक्षेप एक एक समय बढ़ते दृश्य कितने समय आगे जाकर वह एक आवलिप्रमाण होता है जेम्मा पूञ्जने पर कहते हैं—उदय समयसे लेकर एक समय अधिक दूरी आवलिप्रमाण स्थान आगे जाकर वहाँ अन्तिम समयमें जो स्थिति अवस्थित है उसके प्राप्त होनेपर अतिस्थापना और निक्षेप ये दोनों ही एक आवलिप्रमाण होते हैं । वहाँ तक उदयावलिके बाहर जितनी भी स्थितियाँ हैं उन सब स्थितियोंके प्रदेशोंका उदयावलिके भीतर ही निक्षेप होता है । तथा इन स्थितियोंका अपकर्षण असंख्यातलोकप्रमाण प्रतिभागके क्रमसे होता है । वह कैसे—विवक्षित स्थितिके कर्म परमाणुओंमें अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारमें गुणित असंख्यात लोकप्रमाण भागहारका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उसका यहाँ अपवर्तन होता है । उसमें भी उदय समयमें जो द्रव्य प्राप्त होता है उससे उदयावलिके अन्तिम समय तक विशेष हीन विशेष हीन द्रव्य प्राप्त होता है । किन्तु यह क्रम जिन स्थितियोंका द्रव्य उदयावलिके भीतर ही निक्षिप्त होता है उन्हीं स्थितियोंके सम्बन्धमें कहा है । अब इससे आगे नानात्वको वतलाते हैं । यथा—तदनन्तर आगेकी स्थितिमें डेढ़ गुणहानिसे गुणित अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारका भाग देने पर जो एक भागप्रमाण द्रव्य लब्ध आता है उतना यहाँ अपकर्षणको प्राप्त हुआ द्रव्य होता है । पुनः इसमें असंख्यात लोकका भाग देने पर जो एक भागप्रमाण द्रव्य प्राप्त होवे उसे उदयावलिके भीतर निक्षिप्त करता हुआ उदय समयमें बहुत देता है । उससे आगे

१. ता०—आ०प्रत्योः तेण पदणिकखेवो इति पाठः । २. आ०—ता०प्रत्योः त्योवं इति पाठः ।

उदयावलयचरिमसमओ ति । पुणो तदणंतरोवरिमाण एक्किस्से उदयावलयवाहिरद्विदीए पुव्वोकड्डिददव्वस्सासंखेजे भागे णिक्खिवादि, तत्तो उवरि अइच्छावणाविसए णिक्खेव-संभवाभावादो । एसा परूवणा उदयादो समयाहियदोआवलयमेत्तमुल्लंघिय परदोवद्विदाए द्विदीए कदा । संपहि उदयादो पडुडि दुसमयाहियदोआवलयमेत्तमुल्लंघिय परदो अवद्विदाए वि द्विदीए एसो चेव कसो । णवरि तिस्से द्विदीए ओकड्डणादव्वस्स असंखेज-लोगपडिभागियव्भागमुदयावलयव्भंतरे पुव्वं व णिक्खिविय सेमासंखेजे भागे घेत्तणुदयावलयवाहिराणंतगद्विदीए बहुअं णिक्खिवादि तदणंतरोवरिमद्विदीए तत्तो विसेसहीणं सव्वमेव णिक्खिवादि । सव्वत्थ विसेसहाणिभागहारो पलिदोवमासंखेज-भागमेत्तो । एवमेगुत्तरकमेण णिक्खेवं वड्ढाविय उवरिमद्विदीणं पि परूवणा एवं चेव अणुगंतव्वा । सव्वत्थ वि ओकड्डिदद्विदिं मोत्तण तदणंतगहेद्विमद्विदिप्पडुडि आवलयमेत्ता अइच्छावणा घेत्तव्वा । भागहारविसेसो च सव्वत्थ णायव्वो, सव्वामिं द्विदीणमोक्कड्डण-भागहारस्स सरिसत्ताणुवलंभादो । एवं ताव णेदव्वं जाव उक्कस्सओ णिक्खेवो ति । तस्म पमाणणुगममुवरि कस्सामो । एवं णिव्वाघादेणोक्कड्डणाए अत्थपदपरूवणा कया । को णिव्वाघादो णाम ? द्विदिगंडयघादम्माभावो ।

५०५. संपहि वाघादविसयाइच्छावणाए परूवणद्विमदमाह—

उदयावलिके अन्तिम समयके प्राप्त होने तक विशेषहीन विशेषहीन द्रव्य देता है । फिर इससे आगेकी उदयावलिके बाहरकी एक स्थितिमें पूर्वमें अपकर्षित हुए द्रव्यके अग्रसंख्यात बहुभागका निक्षेप करता है, क्योंकि इससे आगेकी स्थितियों अतिस्थापनासम्बन्धी हैं अतः उनमें निक्षेप नहीं हो सकता । यह परूवणा उदय समयसे लेकर एक समय अधिक दो आवलयियोंको उल्लंघन करके आगे जो स्थिति अवस्थित है उसकी अपेक्षासे की है । अब उदय समयसे लेकर दो समय अधिक दो आवलिप्रमाण स्थितियोंको उल्लंघन करके इससे आगे जो स्थिति स्थित है उसकी अपेक्षासे भी यही क्रम जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि उस स्थितिका जो अपकर्षण द्रव्य है उसमें असंख्यात लोकका भाग देकर जो एक भाग आवे उसे उदयावलिके भीतर पहलेके समान निक्षिप्त करके शेष असंख्यात बहुभागप्रमाण द्रव्यको ग्रहण करके उससे उदयावलिके बाहर प्रथम स्थितिमें बहुत द्रव्यको निक्षिप्त करता है और उससे अनन्तरवर्ती आगेकी स्थितिमें विशेषहीन सब द्रव्यका निक्षेप करता है । यहाँ सर्वत्र विशेषहानिका भागहार पत्यका असंख्यातवां भागप्रमाण जानना चाहिये । इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक निक्षेपको बढ़ाकर आगेकी स्थितियोंका कथन भी इसी प्रकार जानना चाहिये । मात्र सर्वत्र अपकर्षित स्थितिको छोड़कर उससे नीचे अनन्तरवर्ती स्थितिसे लेकर एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना ग्रहण करनी चाहिये । तथा भागहार-विशेषको भी सर्वत्र जान लेना चाहिये, क्योंकि सब स्थितियोंका अपकर्षण भागहार एक समान नहीं पाया जाता । इस प्रकार उत्कृष्ट निक्षेपके प्राप्त होने तक कथन करना चाहिये । उत्कृष्ट निक्षेपके प्रमाणका विचार आगे करेंगे । इस प्रकार निर्व्याघातरूपसे अपकर्षणके अर्थपदका कथन किया ।

शंका—निर्व्याघात किसे कहते हैं ?

समाधान—स्थितिकाण्डकघातका अभाव निर्व्याघात कहलाता है ।

§ ५०५. अब व्याघातविषयक अतिस्थापनाका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ वाघादेण अइच्छावणा एका, जेणावलिया अदिरित्ता होइ ।

§ ५०६. वाघादविसया एका अइच्छावणा मंभवइ, जेणावलिया अदिरित्ता लब्धइ । तिस्से पमाणणिण्णयमिदाणिं कस्सामो त्ति पइण्णावक्कमेदं ।

❀ तं जहा ।

§ ५०७. सुगममेदं पुच्छावकं ।

❀ द्विदिघादं करेतेण खंडयमागाइदं ।

§ ५०८. जेण द्विदिघादं करेतेण द्विदिखंडयमागाइदं । तस्म वाघादेणुकस्सिया अइच्छावणा आवलियादिरित्ता होइ त्ति सुत्तथमबंधो । जइ वि सव्वत्थेव द्विदिखंडए आवलियादिरित्ता अइच्छावणा लब्धइ तो वि उक्कस्मद्विदिखंडयस्सेव गहणमिह कायव्वं, एसा उक्कस्सिया अइच्छावणा वाघादे त्ति उवसंहाग्वक्कदंसणादो । तं पुण उक्कस्सयं द्विदिखंडयं केवडियं ? जावदिया उक्कस्सिया कम्मद्विदी अंतोकोडाकोडीए उणिया तत्तियमेत्तमुक्कस्सयं द्विदिखंडयं । किमेदम्मि द्विदिखंडए आगाइदे पढमसमयप्पहुडि सव्वत्थेव उक्कस्सिया अइच्छावणा होइ आहो अत्थि को विसेमो त्ति आमंकिय विसेम-संभवपदुप्पायणट्टमुवरिमो सुत्तोवण्णासो—

* व्याघातकी अपेक्षा एक अतिस्थापना होती है, कारण कि वह एक आवलिसे अतिरिक्त होती है ।

§ ५०६ व्याघात विषयक एक अतिस्थापना सम्भव है, कारण कि वह एक आवलिसे अतिरिक्त प्राप्त होती है । अब उसके प्रमाणका निर्णय करते हैं इस प्रकार यह प्रतिज्ञावाक्य है ।

* यथा—

§ ५०७. यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

* स्थितिका घात कर्ते हुए जिमने स्थितिकाण्डकको ग्रहण किया है ।

§ ५०८. जिसने स्थितिका घात करते हुए स्थितिकाण्डकको ग्रहण किया है उसके व्याघातकी अपेक्षा उत्कृष्ट अतिस्थापना एक आवलिसे अधिक होती है यह इस सूत्रका तात्पर्य है । यद्यपि सर्वत्र ही स्थितिका घात होते समय एक आवलिसे अधिक अतिस्थापना प्राप्त होती है तो भी यहाँ पर उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका ही ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि यह उत्कृष्ट अतिस्थापना व्याघातके समय होती है इस प्रकार यह उपसंहार वाक्य देखा जाता है ।

शंका—वह उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक कितना है ?

समाधान—जितनी उत्कृष्ट कर्मस्थिति है उसमेंमे अन्तःकोडाकोडीके कम कर देने पर जो स्थिति शेष रहे उतना उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक होता है ।

क्या इस स्थितिकाण्डकके ग्रहण करने पर प्रथम समयसे लेकर सर्वत्र ही उत्कृष्ट अतिस्थापना होती है या इसमें कोई विशेषता है इस प्रकारकी आशंका करके इसमें जो विशेष सम्भव है उसका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रका उपन्यास करते हैं—

❀ तत्थ जं पढमसमए उक्कीरदि पदेसग्गं तस्स पदेसग्गस्स आवलियाए अइच्छावणा ।

§ ५००. तत्थ तम्मि द्विदिखंडए पारद्वे अंतोमुहुत्तमेत्ती उक्कीरणद्वा होइ तत्तिय-
मेत्ताओ च द्विदिखंडयफालीओ पडिसमयघादणपडिबद्धाओ । तत्थ पढमसमए जं
पदेसग्गमुक्कीरिज्जइ तस्स अइच्छावणा आवलियाए परिच्छिण्णपमाणा भवदि । अज्ज वि
सच्चासिं खंडयभावेण गहिदाणं द्विदीणं सुण्णत्ताभावेण वाघादाभावादो । तदो
णिच्चाघादविसया चैव परूवणा एत्थ वि कायव्वा ।

❀ एवं जाव दुचरिमसमयअणुक्किणखंडगं ति ।

§ ५१०. एवं ताव णेदव्वं जाव दुचरिमसमयाणुक्किणयं द्विदिखंडयं ति उत्तं
होइ । चरिमसमए पुण णाणत्तमत्थि ति पदुप्पायिदुमुवरिमो सुत्तविण्णासो—

❀ चरिमसमए जा खंडयस्स अग्गद्विदी तिस्से अइच्छावणा खंडयं
समयूणं ।

§ ५११. उक्कस्मद्विदिखंडयघादचरिमसमए जा मा खंडयस्स अग्गद्विदी तिस्से
अइच्छावणा समयूणखंडयमेत्ती होइ । कुदो ? तम्मि समए द्विदिखंडयंतच्चाविणीणं
सच्चासिमेव द्विदीणं वाघादेण हेट्ठा घादणदंमणादो । तम्हा एदिस्से द्विदीए समयूणकस्स-
खंडयमेत्ती अइच्छावणा होइ ति सिद्धं । कुदो समयूणत्तं ? अग्गद्विदीए ओकड्डिज्ज-

* वहाँ जो प्रदेशाग्र प्रथम समयमें उत्कीर्ण होता है उस प्रदेशाग्रकी अतिस्थापना
एक आवलिप्रमाण होती है ।

§ ५०६. वहाँ उस स्थितिकाण्डकका प्रारम्भ करने पर उत्कीरण काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण
होता है और प्रति समय होनेवाले घातसे सम्बन्ध रखनेवाली स्थितिकाण्डककी फालियाँ भी उतनी
ही होती हैं । उसमेंसे प्रथम समयमें जो प्रदेशाग्र उत्कीर्ण होता है उसकी अतिस्थापना एक आवलि-
प्रमाण होती है, क्योंकि काण्डकरूपसे ग्रहण की गई इन सब स्थितियोंका अभी अभाव नहीं होनेसे
इनका व्याघात नहीं होता, इसलिए यहाँ पर भी निर्व्याघातविषयक प्ररूपणा करनी चाहिये ।

* इस प्रकार अनुत्कीर्ण स्थितिकाण्डकके द्विचरम समयके प्राप्त होने तक जानना
चाहिए ।

§ ५१०. इस प्रकार द्विचरम समयवर्ती अनुत्कीर्ण स्थितिकाण्डकके प्राप्त होने तक जानना
चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है । किन्तु अन्तिम समयमें कुछ भेद है इसलिये उसका कथन
करनेके लिये आगेके सूत्रका निक्षेप करते हैं—

* अन्तिम समयमें काण्डककी जो अग्रस्थिति है उसकी अतिस्थापना एक समय
कम काण्डकप्रमाण होती है ।

§ ५११. उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकघातके अन्तिम समयमें जो काण्डककी अग्रस्थिति होती है
उसकी अतिस्थापना एक समयकम काण्डकप्रमाण होती है, क्योंकि उस अन्तिम समयमें स्थिति-
काण्डकके भीतर आई हुई सभी स्थितियोंका व्याघातके कारण घात देखा जाता है, इसलिये इस

माणीए अइच्छावणावहिम्भावदंसणादो ।

❀ एसा उक्कस्सिया अइच्छावणा वाघादे ।

§ ५१२. एमा अणंतरपरूविदा समयणुक्कस्सिद्धिखंडयमेत्ती उक्कस्साइच्छावणा वाघादे द्विदिखंडयविसए चेव होइ, णाण्णत्थे त्ति उच्चं होइ ।

स्थितिकी एक समयकम उत्कृष्ट काण्डकप्रमाण अतिस्थापना होती है यह सिद्ध हुआ ।

शंका—उम अतिस्थापनाको एक समय कम क्यों कहा ?

समाधान—क्योंकि अपकर्षणको प्राप्त होनेवाली अप्रस्थिति अतिस्थापनासे बहिर्भूत देखी जाती है ।

* यह उत्कृष्ट अतिस्थापना व्याघातके होनेपर होती है ।

५१२. यह जो पहले एक समयकम उत्कृष्ट स्थितिकाण्डप्रमाण उत्कृष्ट अतिस्थापना वही है वह स्थितिकाण्डकविषयक व्याघातके होनेपर ही होती है, अन्यत्र नहीं होती यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—यहाँ स्थितिसंक्रमके विषयमें विचार करते हुए सर्व प्रथम स्थितिअपकर्षणके स्वरूपका निर्देश किया गया है । स्थितिके घटनेको स्थितिअपकर्षण कहने हैं । यह स्थिति अपकर्षण अव्याघात और व्याघातके भेदसे दो प्रकारका है । स्थितिकाण्डक घातके बिना जो स्थिति घटती है वह अव्याघातविषयक स्थितिअपकर्षण है और स्थितिकाण्डकघातके द्वारा इसके अन्तिम समयमें जो स्थिति घटती है वह व्याघातविषयक स्थितिअपकर्षण है । स्थिति उत्कीरणवाला यद्यपि अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है तथापि यह व्याघातविषयक स्थितिअपकर्षण उमके अन्तिम समयमें ही प्राप्त होता है, क्योंकि स्थितिकाण्डकसम्बन्धी सम्पूर्ण स्थितिका पात अन्तिम समयमें ही देखा जाता है । अतएव स्थितिकाण्डकके उत्कीरणकालके अन्तिम समयके सिवा शेष सब समयोंमें जो अपकर्षण होता है उसे अव्याघातविषयक स्थितिअपकर्षण जानना चाहिये । अब इन दोनों अवस्थाओंमें होनेवाले स्थितिअपकर्षणमें निक्षेप और अतिस्थापनाका प्रमाण बतलाते हैं । उत्कर्षित या अपकर्षित द्रव्यकी प्रहण करनेके योग्य जिन स्थितियोंमें उत्कर्षित या अपकर्षित द्रव्यका पतन होता है उनकी निक्षेप संज्ञा है । तथा उत्कर्षण और अपकर्षणको प्राप्त होनेवाली स्थितियों और निक्षेपके मध्यमें स्थित जिन स्थितियोंमें उत्कर्षित या अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप नहीं होता है उन स्थितियोंकी अतिस्थापना संज्ञा है । अव्याघात विषयक अपकर्षणके समय जघन्य निक्षेप एक समय कम आवलिका एक समय अधिक त्रिभाग प्रमाण है । यह निक्षेप उदयावलिसे उपरितन प्रथम समयवर्ती स्थितिका अपकर्षण होने पर प्राप्त होता है । उत्कृष्ट निक्षेप एक समय अधिक दो आवलिसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके बन्धावलिके बाद अप्रस्थितिका अपकर्षण होने पर उक्तप्रमाण उत्कृष्ट निक्षेप पाया जाता है । इसी प्रकार प्रकृतमें जघन्य अतिस्थापना एक समय कम आवलिके दो बटे तीन भागप्रमाण है, क्योंकि उदयावलिके उपरितन प्रथम समयवर्ती स्थितिका अपकर्षण होने पर उक्त प्रमाण अतिस्थापना देखी जाती है । तथा अव्याघातविषयक उत्कृष्ट अतिस्थापना एक आवलिप्रमाण है, क्योंकि उदयावलिके ऊपर एक समय कम आवलिके त्रिभागसे लेकर आगे जितनी भी स्थितियोंका अव्याघातविषयक अपकर्षण होता है वहाँ सर्वत्र एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना देखी जाती है । मात्र स्थितिकाण्डकघातके समय जघन्य अतिस्थापना सर्वत्र एक आवलिप्रमाण होती है, क्योंकि स्थितिकाण्डकघातके समय जितनी स्थितियोंका अपकर्षण

§ ५१३. एवमेदं परूविय संपहि जहण्णकस्सणिकखेवाइच्छावणादिपदाणमप्पा-
वहुअणिण्णयं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

❀ तदो सञ्चत्थोवो जहण्णओ णिकखेवो ।

§ ५१४. आवलियतिभागपमाणत्तादो ।

❀ जहण्णिया अइच्छावणा दुसमयूणा दुगुणा ।

§ ५१५. जहण्णाइच्छावणा णाम आवलियवे-तिभागा । तदो तत्तिभागादो
वे-तिभागाणं दुगुणत्तं होउ णाम, विरोहाभावादो । कथं पुण दुसमयूणत्तं ? उच्चदे—
आवलिया णाम कदजुम्मसंखा । तदो तिभागं सुद्धं ण एदि ति रूवमवणिय तिभागो
घेत्तव्वो, तत्थावणिदरूवेण सह तिभागो जहण्णणिकखेवो वे-तिभागा अइच्छावणा ।
एदेण कारणेण ममयाहियतिभागे दुगुणिदे जहण्णाइच्छावणादो दुरूवाहियमुप्पज्जइ ।
तम्हा दुसमयूणा दुगुणा ति सुत्ते वुत्तं ।

होता है, उन सम्बन्धी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कीरण कालके उपान्त्य समय तक अपकर्षित होनेवाले
द्रव्यका निक्षेप अपने नीचेकी एक आवलिप्रमाण स्थितियोंको अतिस्थापित कर शेष सब स्थितियोंमें
होता है । तथा उत्कृष्ट अतिस्थापना एक समय कम काण्डकप्रमाण होती है जो कि स्थितिकाण्डककी
अप्र स्थितिकी जाननी चाहिये, क्योंकि जिस समय स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिका पतन होता
है उस समय काण्डकके अन्तर्गत स्थित ग्थितियोंमें अपकर्षित होनेवाले द्रव्यका निक्षेप होना सम्भव
नहीं है । कारण कि उस समय उनका अभाव हो जाता है । इस प्रकार निर्व्याघात और व्याघात-
विषयक निक्षेप और अतिस्थापना कहाँ कितनी प्राप्त होती है इसका संक्षेपमें विचार किया ।

§ ५१३. इस प्रकार अपकर्षणका कथन करके अब जघन्य और उत्कृष्ट निक्षेप तथा जघन्य
और उत्कृष्ट अतिस्थापना आदि पदोंके अल्पबहुत्वका निर्णय करते हुए आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ जघन्य निक्षेप सबसे स्तोक है ।

§ ५१४. क्योंकि वह आवलिके तीसरे भागप्रमाण है ।

❀ उससे जघन्य अतिस्थापना दो समय कम दूनी है ।

§ ५१५. शंका—जघन्य अतिस्थापना एक आवलिके दो बटे तीन भागप्रमाण होती है,
इसलिये एक आवलिके तीसरे भागसे दो बटे तीन भाग दूना भले ही रहा आवे, क्योंकि इसमें
कोई विरोध नहीं है । किन्तु वह दूनेसे दो समय कम कैसे हो सकती है ?

समाधान—आवलिकी परिगणना कृतयुग्म संख्यामें की गई है, इसलिये उसका शुद्ध
तीसरा भाग नहीं आता है, अतः आवलिपैसे एक कम करके उसका तीसरा भाग ग्रहण करना
चाहिये । अब यहाँ आवलिमेंसे जो एक कम किया गया है उसको त्रिभागमें मिला देने पर जघन्य
निक्षेप होता है और एक कम आवलिका दो बटे तीन भागप्रमाण अतिस्थापना होती है । इस
कारणसे एक समय अधिक त्रिभागको दूना करने पर जघन्य अतिस्थापनासे यह संख्या दो अधिक
पाई जाती है । इसी कारण सूत्रमें निक्षेपकी अपेक्षा अतिस्थापनाको दो समय कम दूनी कहा है ।

उदाहरण—आवलि १६;

१५ - १ = १४; १४ ÷ ३ = ४; ५ + १ = ६ जघन्य निक्षेप ।

१६ - ६ = १० जघन्य अतिस्थापना; या ६ + २ = १२ - २ = १० जघन्य अतिस्थापना ।

❖ षिन्वाघादेण उक्कस्सिया अइच्छावणा विसेसाहिया ।

§ ५१६. केत्तियमेत्तेण ? समयाहियदुभागमेत्तेण ।

❖ वाघादेण उक्कस्सिया अइच्छावणा असंखेज्जगुणा ।

§ ५१७. कुदो ? अंतोकोडाकोडीपरिहीणकम्मट्टिदिपमाणत्तादो ।

❖ उक्कस्सयं ट्टिदिखंडयं विसेसाहियं ।

§ ५१८. अग्गट्टिदीए वि एत्थ पवेसदंसणादो ।

❖ उक्कस्सओ णिक्खेवो विसेसाहिओ ।

§ ५१९. कुदो ? उक्कस्सट्टिदिं बंधिय बंधावलियं बोलाविय अग्गट्टिदिमोकट्टिऊणा-
वलियमेत्तमइच्छाविय उदयपज्जंतं णिक्खवमाणस्स समयाहियदोआवलियुणकम्म-
ट्टिदिमेत्तुक्कस्सणिक्खेवसंभवोवलंभादो ।

❖ उक्कस्सओ ट्टिदिबंधो विसेसाहिओ ।

इस उदाहरणसे स्पष्ट हो जाता है कि जघन्य निक्षेपको दूना करने पर जो १२ प्राप्त हुआ है उसमेंसे २ कम करने पर जघन्य अतिस्थापना होती है ।

* उससे निर्व्याघातसे प्राप्त हुई उत्कृष्ट अतिस्थापना विशेष अधिक है ।

§ ५१६. कितनी अधिक है ? जघन्य अतिस्थापनाके द्वितीय भाग अर्थात् आधेमें एक समयके जोड़ देने पर जितना प्रमाण हो उतनी अधिक है ।

उदाहरण—जघन्य अतिस्थापना १०; उसका आधा ५;

$५ + १ = ६$; $१० + ६ = १६$ उत्कृष्ट अतिस्थापना ।

* उससे व्याघातविषयक उत्कृष्ट अतिस्थापना असंख्यातगुणी है ।

§ ५१७. क्योंकि इसका प्रमाण अन्तःकोडाकोडीकम कर्मस्थितिप्रमाण है ।

उदाहरण—असंख्यात २५६;

$१६ \times २५६ = ४०९६$ व्याघातसे प्राप्त हुई उत्कृष्ट अतिस्थापना ।

* उससे उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक विशेष अधिक है ।

§ ५१८. क्योंकि इसमें अग्रस्थितिका भी अन्तर्भाव देखा जाता है ।

उदाहरण— $४०९६ + १$ अग्रस्थिति = ४०९७ उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक ।

* उससे उत्कृष्ट निक्षेप विशेष अधिक है ।

§ ५१९. क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर और बन्धावलिको विताकर फिर अग्रस्थितिका अपकर्षण करके अतिस्थापनाकी एक आवलिको छोड़कर उदय पर्यन्त उस अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप करनेवाले जीवके उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण एक समय अधिक दो आवलिसे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण उपलब्ध होता है ।

उदाहरण—कर्मस्थिति ४८००; एक समय अधिक दो आवलि ३३;

$४८०० - ३३ = ४७६७$ उत्कृष्ट निक्षेप ।

* उससे उत्कृष्ट स्थितिवन्ध विशेष अधिक है ।

§ ५२०. समयाहियदोआवलियमेत्तद्विदीणमेत्थ पवेसदंसणादो ।

§ ५२१. एवमोक्कडुणासंकमस्स अडुपदपरूवणा समत्ता । संपहि उक्कडुणासंकमस्स अडुपदपरूवणदुमुत्तरसु तावयारो—

❀ जाओ बज्झंति द्विदीओ तासिं द्विदीणं पुव्वणिबद्धद्विदिमहिकिच्च णिच्चाघादेण उक्कडुणाए अइच्छावणा आवलिया ।

§ ५२२. एदस्स सुत्तस्स अत्थो परूविज्जे । तं जहा—उक्कडुणा णाम कम्मपदेसाणं पुव्विन्लद्विदीदो अहिणवबंधमबंधेण द्विदिवड्ढावणं । सा पुण दुविहा—णिच्चाघादविसया वाघादविसया चेदि । जत्थावलियमेत्ताइच्छावणाए आवलियअसंखेज्जदिभागादिणिक्खेवपडिबद्धाए पडिघादो णत्थि तम्मि णिच्चाघादभावो णाम भवदि, आवलियमेत्ताइच्छावणाए तारिसणिक्खेवसहगदाए पडिघादस्स वाघादत्तेणेह विवक्खियत्तादो । कम्मि विसए एवंविहो विघादो णत्थि ? उच्चदे—जत्थ संतकम्मादो उवरि समउत्तरादिकमेण द्विदिवंधो वड्ढमाणो आवलियासंखेज्जभागसहिदावलियमेत्तो वड्ढिओ होइ तत्तो पहुडि उवरि सव्वत्थेव णिच्चाघादविसओ जाव उक्कस्सद्विदिवंधो ति । एवंविहणिच्चाघादपरूवणापडिबद्धमेदं सुत्तं । तत्थ जाओ बज्झंति द्विदीओ तासिमुवरि पुव्वणिबद्धद्विदी उक्कडुज्जदि । तिस्से

§ ५२०. क्यों कि उत्कृष्ट निक्षेपके प्रमाणसे एक समय अधिक दो आवलिप्रमाण स्थितियोंकी इसमें वृद्धि देखी जाती है ।

उदाहरण—उत्कृष्ट निक्षेप ४७६७; एक समय अधिक दो आवलि ३३; ४७६७ ÷ ३३ = ४८०० उत्कृष्ट स्थितिबन्ध ।

§ ५२१. इस प्रकार अर्पण संक्रमके अर्थपदका कथन समाप्त हुआ । अब उत्कर्षण संक्रमके अर्थपदका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* जो स्थितियां बंधती हैं उन स्थितियोंकी, पूर्वमें बंधी हुई स्थितियोंका निर्व्याघातविषयक उत्कर्षण होने पर, अतिस्थापना एक आवलिप्रमाण होती है ।

§ ५२२. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । यथा—तवीन बन्धके सम्बन्धसे पूर्वकी स्थितिमेंसे कर्मपरमाणुओंकी स्थितिका बढ़ाना उत्कर्षण है । उसके दो भेद हैं—निर्व्याघातविषयक और व्याघातविषयक । जहाँ आवलिके असंख्यातवें भाग आदि निक्षेपसे सम्बन्ध रखनेवाली एक आवलिप्रमाण अतिस्थापनाका प्रतिघात नहीं होता वहाँ निर्व्याघातविषयक अतिस्थापना होती है, क्योंकि उस प्रकारके निक्षेपके साथ प्राप्त हुई एक आवलिप्रमाण अतिस्थापनाका प्रतिघात ही यहाँ व्याघातरूपसे विवक्षित है ।

शंका—इस प्रकारका व्याघात कहाँ नहीं होता ?

समाधान—जहाँ सत्कर्मसे ऊपर एक समय अधिक आदिके क्रमसे स्थितिबन्ध वृद्धिको प्राप्त होता हुआ एक आवलिके असंख्यातवें भागसे युक्त एक आवलि बढ़ जाता है वहाँसे लेकर उत्कृष्ट स्थितिबन्धके प्राप्त होने तक सर्वत्र ही निर्व्याघातविषयक उत्कर्षण होता है । इस प्रकारकी निर्व्याघातविषयक प्ररूपणासे सम्बन्ध रखनेवाला यह सूत्र है ।

उक्तद्विज्रमाणाए आवलियमेत्ती अइच्छावणा होइ । संपहि एदस्सेवत्थस्स णिण्णयकरणदु-
मुदाहरणं वत्तइस्सामो । तत्थ ताव पुच्चणिरुद्धट्टिदी णाम सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीणं
बंधपाओग्गा अंतोकोडाकोडीमेत्तदाहट्टिदी घेत्तव्वा । तिस्से उवग्गि समयुत्तर-दुसमयुत्तरादि-
कमेण बंधमाणस्स जाव आवलिया अण्णेगो च आवलियाए असंखे० भागो ण गदो ताव
तिस्से ट्टिदीए चरिमणिसेयस्स पयदुक्कड्डणा ण संभवइ, वाघादविमए णिच्चाघादपरूवणाए
अणवपारादो । तम्हा आवलियाइच्छावणाए तदसंखेज्रभागमेत्तजहण्णणिकखेवे च
पडिणुण्णे मंते णिच्चाघादेणुक्कड्डणा पारभइ । एत्तो उवग्गि अवट्टिदाइच्छावणाए णिरंतरं
णिकखेववुद्धी वत्तव्वा जावप्पणो उक्कस्सणिकखेवो त्ति । एवं कदे दाहट्टिदीए णिच्चाघाद-
जहण्णाइच्छावणममगूणजहण्णणिकखेवेहि य ऊणमत्तग्गिसागरोवमकोडाकोडिमेत्ताणि
णिकखेवट्टाणाणि^१ दाहट्टिदिचरिमणिसेयस्स लद्धाणि भवंति । एवमेवदाहट्टिदि^२दुचरिम-
णिसेयस्स वि वत्तव्वं । णवग्गि अणंतगदीदणिकखेवट्टाणेहितो एत्थतणणिकखेवट्टाणाणि
समयुत्तराणि हांति । एवं सेमासेमहेट्टिमट्टिदीणं पादेकं णिरुंभणं काऊण समयाहियकमेण
णिकखेवट्टाणाणमुप्पत्तो वत्तव्वा जाव मच्चमंतोकोडाकोडिमोयग्गिय आवाहाच्चमंतरे
सगयाहियावलियमेत्तामादग्गिदुणं ट्टिदट्टिदि^३ त्ति । एदिप्पे ट्टिदीए णिच्चाघादजहण्णा-

उक्त सूत्रका यह भाव है कि जो स्थितियों बचती है उनमें वेंची हुई स्थितियोंका उत्कर्षण
होना है और उत्कर्षणको प्राप्त हुई उन स्थितिकी एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना हंती है । अब
इसी अर्थका निर्णय करनेके लिये उदाहरण बतलाते हैं—प्रकृतमें पूर्वमें वेंची हुई स्थितिसे सत्तर
कोडाकोडी सागरके बन्ध योग्य अन्तःकोडाकोडी प्रमाण दाहस्थिति लेनी चाहिए । इस स्थितिके
ऊपर बन्ध करनेवाले जीवके एक समय अधिक और दो समय अधिक आदिके क्रमसे जब तक
एक आवलि और एक आवलिका असंखवों भाग नहीं बँच लेता है तब तक उस स्थितिके
अन्तिम निपेकका प्रकृत उत्कर्षण सम्भव नहीं है, क्योंकि व्याघातविषयक प्ररूपणामें निर्व्याघात
विषयक प्ररूपणा नहीं हो सकती । इसलिये एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना और उसके
असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य निक्षेपके परिपूर्ण हो जाने पर ही निर्व्याघातविषयक उत्कर्षणका
प्रारम्भ होता है । इससे आगे अतिस्थापनाके अर्वास्थित रहते हुए अपने उत्कृष्ट निक्षेपकी प्राप्ति
होने तक निरन्तर क्रमसे निक्षेपकी वृद्धिका कथन करना चाहिये । ऐसा करने पर दाहस्थितिके
अन्तिम निपेकके; दाहस्थिति, निर्व्याघातविषयक जघन्य अतिस्थापना और एक समय कम जघन्य
निक्षेप इन तीन राशियोंमें न्यून सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण निक्षेपस्थ न प्राप्त होते हैं । इसी
प्रकार दाहस्थितिके द्विचरम निपेकका भी कथन करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि
समनन्तरपूर्व कहे गये निक्षेपस्थानोंसे इस स्थानके निक्षेपस्थान एक समय अधिक होते हैं । इसी
प्रकार बाकीकी नीचेकी सब स्थितियोंकी प्रत्येक स्थितिको विवक्षित करके अन्तःकोडाकोडीप्रमाण
स्थान नीचे जाकर आवाधाके भीतर एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण स्थिति नीचे जाकर जो
स्थिति स्थित है उसके प्राप्त होने तक एक समय अधिकके क्रमसे निक्षेपस्थानोंकी उत्पत्ति कहनी

१. आ०प्रतो—मेत्ता णिकखेवट्टाणाणि इति पाठः । २. ता०—आप्रत्योः एवमेवेच्छाहट्टिदी-
इति पाठः । ३. ता०प्रतो—मेत्ता (त्त) मोदरिदूण इति पाठः ।

इच्छावणा सह सञ्चुक्कस्मओ णिकखेवो होइ । तस्स पमाणणिण्णयमुवरि कस्सामो । एत्तो हेट्ठिमाणं पि ट्ठिदीणमेसो चेव णिकखेवो । णवरि अइच्छावणा समयुत्तरादिकमेण वड्ढदि जाव उदयावलयिवाहिरिट्ठिदि त्ति । संपहि णिच्चाघादविसयणिकखेवट्ठाणाणं परूवणट्ठमुवरिमसुत्तमोइण्णं—

❀ एदिस्से अइच्छावणाए आवलियाए असंखेज्जदिभागमादिं काट्टण जाव उक्कस्सओ णिकखेवो त्ति णिरंतरं णिकखेवट्ठाणाणि ।

§ ५२३. एदिस्से अइच्छावणाए इच्चेदेणाणंतगपरूविदावलयिमेत्ताइच्छावणाए परामरसो कदो । तदो एदिस्से अइच्छावणाए जहण्णणिकखेवो आवलियाए असंखे०भागो होदि त्ति संबंधो कायव्वो । पुच्चणिरुद्धंतोकोडाकोडीमेत्तट्ठिदीदो उवरि समयुत्तरादिकमेण बंधवुट्ठीए आवलयिमेत्ताइच्छावणं तदमंखेज्जभागमेत्तणिकखेवं च वट्ठाविय बंधमाणस्स णिच्चाघादेण जहण्णाइच्छावणा-णिकखेवा भवंति, ण हेट्ठदो त्ति उत्तं होइ । एदं जहण्णयं णिकखेवट्ठाणं । एवमादिं काउण समयुत्तरकमेण णिरंतरं णिकखेवट्ठाणवुट्ठी वत्तच्चा जाव उक्कस्मओ णिकखेवो त्ति । एत्थ णिरंतरं णिकखेवट्ठाणाणि त्ति वयणेण मांतगत्तपडिसेहो कओ, णिच्चाघादे मांतगत्तस्म कारणणुवलट्ठीदो । एवमेदं परूविय संपहि उक्कस्म-

चाहिये । इम स्थितिका निर्व्याघातविषयक जघन्य अतिस्थापनाके साथ सबसे उत्कृष्ट निक्षेप होता है । उमके प्रमाणका निर्णय आगे करेंगे । इससे नीचेकी स्थितियोंका भी यही निक्षेप होता है । किन्तु इतनी विशेषता है कि उदयावलिके बाहरकी स्थितिके प्राप्त होने तक इन स्थितियोंकी अतिस्थापना एक एक समय बढ़ती जाती है । अब निर्व्याघातविषयक निक्षेपस्थानोंका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

* इम आवलिप्रमाण अतिस्थापनाके एक आवलिके अमंख्यातवें भागसे लेकर उत्कृष्ट निक्षेपके प्राप्त होने तक निरन्तर क्रमसे निक्षेपस्थान होने हैं ।

§ ५२३. सूत्रमें जो 'एदिस्से अइच्छावणाए' पद आया है सो उससे जो पूर्वमें एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना कह आये है उमका परामर्श किया गया है । इसलिये इस अतिस्थापनाका जघन्य निक्षेप एक आवलिका असंख्यातवें भागप्रमाण होता है ऐसा यहाँ पदसम्बन्ध कर लेना चाहिये । पहले जो अन्तःकोडाकोडीप्रमाण स्थिति विवक्षित कर आये है उमके ऊपर एक समय अधिक आदिके क्रमसे बन्धकी वृद्धि होने पर एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना और उसके असंख्यातवें भागप्रमाण निक्षेपको बढ़ाकर बन्ध करनेवाले जीवके निर्व्याघातविषयक जघन्य अतिस्थापना और जघन्य निक्षेप होते हैं । इससे और कम स्थितिको बढ़ा कर बन्ध करनेवाले जीवके ये निर्व्याघातविषयक जघन्य अतिस्थापना और जघन्य निक्षेप नहीं होते यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यह जघन्य निक्षेपस्थान है । इससे लेकर उत्कृष्ट निक्षेपस्थानके प्राप्त होने तक एक एक समय बढ़ते हुए निरन्तर क्रमसे निक्षेपस्थानोंकी वृद्धि कहनी चाहिये । यहाँ सूत्रमें जो 'णिरंतरं णिकखेवट्ठाणाणि' वचन आया है सो उससे निक्षेपस्थानोंके सान्तरपनेका निषेध किया है, क्योंकि निर्व्याघातविषयक उत्कर्षणमें सान्तरपनेका कोई कारण नहीं पाया जाता

णिकखेवपमाणविमयणिद्वाराणद्वं पुच्छामुत्तमाह—

✽ उक्कस्सओ पुण णिकखेवो केत्तिओ ?

§ ५२४. सुगममेदं पुच्छावकं ।

✽ जात्तिया उक्कस्सिया कम्मट्ठिदी उक्कस्सियाए आवाहाए समयुत्तरावलियाए च ऊणा तत्तिओ उक्कस्सओ णिकखेवो ।

§ ५२५. समयाहियबंधावलियं गालिय उदयावलियवाहिरट्ठिदट्ठिदीए उक्कट्ठिज्ज-
माणए एसो उक्कस्मणिकखेवो परुविदो परिप्फुडमेव, तिस्से समयाहियावलियाए
उक्कसावाहाए च परिहीणुक्कस्सकम्मट्ठिदिमेत्तुक्कस्सणिकखेवदंसणादो । तं जहा—
उक्कस्मट्ठिदिं बंधिय बंधावलियं गालिय तदणंतरसमए आवाहावाहिरट्ठिदिदट्ठिदपदेसग्ग-
मोकड्डिय उदयावलियवाहिरे णिसिंचदि । एत्थ विदियट्ठिदीए ओकड्डिय णिकिखत्तदव्व-
महिकरं, पढमसमयणिसित्तस्म तदणंतरसमए उदयावलियव्वंतरपवेमदंसणादो । तदो
विदियसमए उक्कस्समंकिलेमवसेण उक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणो विवकिखयपदेसग्गमुक्कड्डंतो
आवाहावाहिरपढमणिसेयप्पहुडि ताव णिकिखवदि जाव समयाहियावलियमेत्तेण
अग्गट्ठिदिमपत्तो त्ति । कुदो एवं ? तत्तो उवरि तस्स विवकिखयकम्मपदेसस्स सत्तिट्ठिदीए

हे । इस प्रकार इसका कथन करके अब उत्कृष्ट निक्षेपक प्रमाणका निश्चय करनेके लिये आगेका पृच्छासूत्र कहते हैं—

✽ उत्कृष्ट निक्षेप कितना है ।

§ ५२४. यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

✽ उत्कृष्ट आवाधा और एक समय अधिक एक आवलि इनसे न्यून जितनी उत्कृष्ट कर्मस्थिति है उतना उत्कृष्ट निक्षेप है ।

§ ५२५. एक समय अधिक बन्धावलिको गलाकर उदयावलिके बाहर स्थित स्थितिका उत्कर्षण होने पर यह उत्कृष्ट निक्षेप कहा है यह बात स्पष्ट है, क्योंकि उस स्थितिना एक समय अधिक एक आवलि और उत्कृष्ट आवाधासे न्यून उत्कृष्ट कर्मस्थितिप्रमाण उत्कृष्ट निक्षेप देखा जाता है । खुलासा इस प्रकार है—उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर और बन्धावलिको गलाकर तदनन्तर समयमें आवाधाके बाहरकी स्थितिमें स्थित कर्मपरमाणुओका अपकर्षण करके उदयावलिके बाहर निक्षेप करना है । यहाँ पर अपकर्षण करके उदयावलिके बाहर दूसरी स्थितिमें निक्षेप हुआ द्रव्य विवक्षित है, क्योंकि उदयावलिके बाहर प्रथम समयमें जो द्रव्य निक्षेपित होता है उसका तदनन्तर समयमें उदयावलिके भीतर प्रवेश देखा जाता है । फिर दूसरे समयमें उत्कृष्ट संकलेशके कारण उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला कोई एक जीव विवक्षित प्रदेशाप्रका उत्कर्षण करके उन्हे आवाधाके बाहर प्रथम निषेधसे लेकर अप्रस्थितिसे एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण स्थान नीचे उतर कर जो स्थान प्राप्त हो वहाँ तक निक्षेप करता है ।

शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि इससे ऊपर उस विवक्षित प्रदेशाप्रकी शक्ति नहीं पाई जाती है ।

१. ता० -आ०प्रत्योः -पदेसदसणादो इति पाठः ।

अमंभवादो । तम्हा उक्त्स्मावाहाण ममयुत्तगवलियाए च ऊणिया कम्मद्विदी कम्म-
णिकखेवो त्ति सिद्धं । किमेदिस्से चैव एक्किस्से उदयावलियवाहिरद्विदीए उक्त्स्सणिकखेवो,
आहो अण्णासिं पि द्विदीणमत्थि त्ति एत्थ णिण्णयं कस्सामो । एत्तो उवरिमाणं पि
आवाहाव्भंतरब्भुवगमाणं द्विदीणं सच्चाभिमेव पयदुकस्सणिकखेवो होइ । णवरि
आवाहावाहियपढमणिसेयद्विदीए हेइदो आवलियमेत्ताणमावाहव्भंतरद्विदीणमुक्त्स्सओ
णिकखेवो ण मंभवइ, तत्थ जहाकममावाहावाहिरणिसेयद्विदीणमइच्छावणावलियाणुप्पवे-
सेणुक्त्स्सणिकखेवस्स हाणिदमणादो ।

∴ ५२६. एवमेत्तिण पबंधेण णिच्चाघादविमयजहण्णुक्त्स्सणिकखेवमइच्छावणं
च परुविय मंपहि वाघादविमए तदुभयं परुवेमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

❀ वाघादेण कथं ?

§ ५२७. सुगममेदं पुच्छावकं ।

❀ जइ संतकम्मादो बंधो समयुत्तरो तिस्से द्विदीए एत्थि उक्कड्डणा ।

§ ५२८. संतकम्मादो जइ बंधो ममयुत्तरो तिस्से द्विदीए उवरि मंतकम्म-
अग्गद्विदीए णत्थि उक्कड्डणा । कुदो ? जहण्णाइच्छावणा-णिकखेवाणं तत्थामंभवादो ।

इसलिये उत्कृष्ट आवाधा और एक समय अधिक एक आवलितसे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण
कर्मनिक्षेप होता है यह बात सिद्ध हुई ।

शंका—क्या उदयावलिके बाहरकी इमी एक स्थितिका उत्कृष्ट निक्षेप होता है या अन्य
स्थितियोंका भी उत्कृष्ट निक्षेप होता है ?

समाधान—अब इस प्रश्नका निर्णय करते हैं—इस स्थितिसे ऊपर आवाधाके भीतर
जितनी भी स्थितियाँ स्वीकार की गई हैं उन सभीका प्रकृत उत्कृष्ट निक्षेप होता है । किन्तु इतनी
विशेषता है कि आवाधाके बाहर प्रथम निषेककी स्थितिसे नीचेकी एक आवलिप्रमाण आवाधाके
भीतरकी स्थितियोंका उत्कृष्ट निक्षेप सम्भव नहीं है, क्योंकि वहाँ क्रमसे आवाधाके बाहरकी निषेक
स्थितियोंका अतिस्थापनावर्जित प्रवेश हो जानेके कारण उत्कृष्ट निक्षेपकी हानि देखी जाती है ।

§ ५२६. इस प्रकार इतने कथन द्वारा निर्व्याघातविषयक जघन्य व उत्कृष्ट निक्षेप और
अतिस्थापनावा कथन करके अब व्याघातविषयक इन दोनोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र
कहते हैं—

❀ व्याघातकी अपेक्षा उत्कर्षण किस प्रकार होता है ?

§ ५२७. यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

❀ यदि सत्कर्मसे बन्ध एक समय अधिक हो तो उम स्थितिमें उत्कर्षण नहीं
होता है ।

§ ५२८. यदि सत्कर्मसे बन्ध एक समय अधिक हो तो उस बंधनेवाली स्थितिमें सत्कर्मकी
अप्रस्थितिका उत्कर्षण नहीं होता है, क्योंकि वहाँ पर जघन्य अतिस्थापना और निक्षेप इन

१. ता०प्रतौ त्ति (तप्पटि) बद्धणिएण्यं, आ०प्रतौ त्ति बद्धणिएण्य इति पाठः । २. ता०प्रतौ
—वाहिय (र) पढम इति पाठः ।

⊗ जइ संतकम्मादो बंधो दुसमयुत्तरो तिस्से वि संतकम्मअग्गट्टिदीए णत्थि उक्कड्डुणा ।

§ ५२९. जइ संतकम्मादो दुसमयुत्तरो बंधो होइ तिस्से वि बंधट्टिदीए सरूवेण संतकम्मअग्गट्टिदीए पुव्वणिरुद्धाए उक्कड्डुणा णत्थि । कारणं पुव्वं व वत्तव्वं ।

⊗ एत्थ आवलियाए असंखेज्जदिभागो जहणिया अइच्छावणा ।

§ ५३०. एवं तिसमयुत्तरादिकमेण बंधउट्ठीए संतीए वि णत्थि चेषुक्कड्डुणा जाव आवलि० असंखे०भागमेत्तो ण वड्ढिदो त्ति वुत्तं होइ । कुदो एवं ? एत्थ जहण्णा-इच्छावणाए आवलि० असंखे०भागमेत्तीए तामिं ट्टिदीणमंतंभावदंसणादो ।

⊗ जदि जत्तिया जहणिया अइच्छावणा तत्तिएण अब्भहिओ संतकम्मादो बंधो तिस्से वि संतकम्मअग्गट्टिदीए णत्थि उक्कड्डुणा ।

§ ५३१. कुदो ? एत्थ जहण्णाइच्छावणाए संतीए वि तप्पडिबद्धजहण्णणिकखेवस्स अज्ज वि संभवाणुवल्भादो । ण च णिकखेवविमएण विणा उक्कड्डुणासंभवो अत्थि, विप्पडिसेहादो । सो पुण जहण्णणिकखेवो केत्तियो इदि आसंकाए उत्तरमाह—

⊗ अण्णो आवलियाए असंखेज्जदिभागो जहण्णाओ णिकखेवो ।

दानोंका अभाव है ।

* यदि सत्कर्मसे बन्ध दो समय अधिक हो तो उस स्थितिमें भी सत्कर्मकी स्थितिका उत्कर्षण नहीं होता है ।

§ ५२६. यदि सत्कर्मसे दो समय अधिक स्थितिका बन्ध होता है तो उस बन्ध स्थितिमें भी पूर्वमें विवक्षित सत्कर्मकी अग्रस्थितिका स्वभावसे उत्कर्षण नहीं होता । कारणका कथन पहलेके समान करना चाहिये ।

* यहाँ पर आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य अतिस्थापना होती है ।

§ ५३०. इस प्रकार तीन समय अधिक आदिसे लेकर आवलिके असंख्यातवें भाग तक बन्धकी वृद्धि होने पर भी उत्कर्षण नहीं होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि यहाँ पर आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य अतिस्थापनामें उन बन्ध स्थितियोंका अन्तर्भाव देखा जाता है ।

* जितनी जघन्य अतिस्थापना है यदि सत्कर्मसे उतना अधिक बन्ध होवे तो भी उस बँधी हुई स्थितिमें सत्कर्मकी अग्रस्थितिका उत्कर्षण नहीं होता है ।

§ ५३१. क्योंकि यहाँ पर जघन्य अतिस्थापनाके होते हुए भी उससे सम्बन्ध रखनेवाला जघन्य निक्षेप अभी भी नहीं पाया जाता है । और निक्षेपविषयक बन्धस्थितिके विना उत्कर्षण ही नहीं सकता है, क्योंकि इसके विना उत्कर्षणका होना निषिद्ध है । परन्तु वह जघन्य निक्षेप कितना है ऐसी आशंकाके होनेपर उत्तरस्वरूप आगेका सूत्र कहते हैं—

* एक अन्य आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य निक्षेप होता है ।

§ ५३२. जहण्णाइच्छावणाए उवरि पुणो वि आवलि० असंखे०भागमेत्तबंध-
वुड्डीए जहण्णणिकखेवसंभवो होइ ति भणिदं होइ । मंपहि एत्तो प्पहुडि उक्कड्डणासंभवो
त्ति पदुप्पाएदुमुत्तरसुत्तावयागे—

✽ जह जहएियायाए अइच्छावणाए जहएणएण च णिकखेवेण एत्तिय-
मेत्तेण संतकम्मादो अदिरित्तो बंधो सा संतकम्मअग्गट्टिदी उक्कड्डिज्जदि ।

§ ५३३. कुदो ? एत्थ जहण्णाइच्छावणा-णिकखेवाणमविकलसरूवेणोवलंभादो ।
एत्तो उवरि समयुत्तरगदिकमेण जा बंधवुड्डी सा किमइच्छावणाए अंतो णिवदइ आहो
णिकखेवस्से ति पुच्छाए उत्तरसुत्तामाह—

✽ तदो समयुत्तरे बंधे णिकखेवो तत्तिओ चेव, अइच्छावणा वड्ढदि ।

§ ५३४. कुदो एवं ? मच्चत्थ णिकखेववुड्डीए अइच्छावणावड्ढिपुरस्सरत्तदंसणादो ।
सा वुण अइच्छावणावुड्डी उक्कस्मिया केत्तिया ति आसंकाए तण्णणयकरणदुमुत्तरसुत्तं—

✽ एवं ताव अइच्छावणा वड्ढइ जाव अइच्छावणा आवलिया जादा ति ।

§ ५३५. सा जहण्णाइच्छावणा समयुत्तरकमेण बंधवुड्डीए वड्ढमाणिया ताव
वड्ढइ जाव उक्कस्मियाइच्छावणा आवलिया संपुण्णा जादा ति मुत्तत्थमंवंधो । एत्तो

§ ५३२. जघन्य अतिस्थापनाके ऊपर फिर भी आवलिक असंख्यातवं भागप्रमाण बन्धकी
वृद्धि होने पर जघन्य निक्षेपका होना सम्भव है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब इससे आगे
उत्कर्षण सम्भव है ऐसा कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

✽ यदि सन्कर्मसे जघन्य अतिस्थापना और जघन्य निक्षेपप्रमाण स्थितिबन्ध
अधिक हो तो सन्कर्मकी उम अग्रस्थितिका उत्कर्षण होना है ।

§ ५३३. क्योंकि यहाँ पर जघन्य अतिस्थापना और जघन्य निक्षेप अविकलरूपसे पाये
जाते हैं । अब इससे आगे जो एक एक समय अधिकके क्रमसे बन्धकी वृद्धि होती है सो उसका
अन्तर्भाव अतिस्थापनामें होता है या निक्षेपमें ऐसी वृद्धाके होने पर उत्तरस्वरूप आगेका सूत्र
कहते हैं—

✽ तदनन्तर एक समय अधिक स्थितिबन्धके होनेपर निक्षेप उतना ही रहता है ।
किन्तु अतिस्थापना वृद्धिकी प्राप्त होती है ।

§ ५३४. शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि सर्वत्र अतिस्थापनाकी वृद्धिपूर्वक ही निक्षेपकी वृद्धि देखी जाती है ।

किन्तु वह अतिस्थापनाकी उत्कृष्ट वृद्धि कितनी होती है ऐसी आशंका होने पर उसका
निर्णय करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

✽ इस प्रकार अतिस्थापनाके एक आवलिप्रमाण होने तक उसकी वृद्धि
होती रहती है ।

§ ५३५. स्थितिबन्धकी वृद्धिके साथ वह जघन्य अतिस्थापना एक एक समय अधिकके
क्रमसे बढ़ती हुई पूरी एक आवलिप्रमाण उत्कृष्ट अतिस्थापनाके प्राप्त होने तक बढ़ती जाती है यह

उवरि वि अइच्छावणा किण्ण वड्ढाविज्जदे ? ण, पत्तपयरिसपज्जंताए पुण बुद्धिविरोहादो । एत्तो उवरि आवलियमेत्ताइच्छावणं धुवं काउण समयुत्तरादिकमेण णिक्खेवो वड्ढावेद्वोत्ति परूवेदुमुत्तरसुत्तमाह—

❀ तेण परं णिक्खेवो वड्ढइ जाव उक्कस्सओ णिक्खेवो त्ति ।

§ ५३६. एत्थ ताव पुच्चगिरुद्धसंतकम्मअग्गट्ठिदीए उक्कस्मणिक्खेववुड्ढी समयुत्तरकमेण अइच्छावणावलियाहियहेट्ठिमअंतोकोडाकोडीपरिणीणकम्मट्ठिदिमेत्ता होइ । णवरि बंधावलियाए सह अंतोकोडाकोडी ऊणियत्त्वा । एमा च आदेसुक्कस्सिया । एत्तो हेट्ठिमाणं संतकम्मदुचरिमादिट्ठिदीणं ममयाहियकमेण पच्छाणुपुच्चवीए णिक्खेववुड्ढी वत्तत्त्वा जाव ओघुक्कस्मणिक्खेवं पत्ता त्ति । सो वुण ओघुक्कम्मओ णिक्खेवो केत्तियमेत्तो होइ त्ति णिण्णयविहाणट्ठं ताव पुच्छासुत्तमाह—

❀ उक्कस्सओ णिक्खेवो को होइ ?

§ ५३७. सुगममेदं पुच्छामुत्तं ।

❀ जो उक्कस्सियं टिदिं बंधियूणावलियमदिकंतो तमुक्कस्सयट्ठिदिमोकड्डियूण उदयावलियबाहिराए विदियाए टिदीए णिक्खिखवदि । वुण से

इस सूत्रका अभिप्राय है ।

शंका—इससे आगे भी अतिस्थापना क्यों नहीं बढ़ाई जाती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि परम प्रकर्षको प्राप्त हो जाने पर फिर उसकी वृद्धि होनेमें विरोध आता है ।

इससे आगे आवलिप्रमाण अतिस्थापनाको ध्रुव करके एक एक समय अधिकके क्रमसे निक्षेपकी वृद्धि करनी चाहिये ऐसा कथन करनेके लिए आगेका सूत्र बहते हैं—

* उससे आगे उत्कृष्ट निक्षेपके प्राप्त होनेतक निक्षेपकी वृद्धि होती है ।

§ ५३६. यहाँ पर पूर्वमें विवर्तित सत्कर्मकी अग्रस्थितिके उत्कृष्ट निक्षेपकी वृद्धि एक एक समय अधिकके क्रमसे होती हुई अतिस्थापनावलिसे अधिक जो अधस्तन अन्तःकोड़ाकोड़ी उससे हीन कर्मस्थितिप्रमाण होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि बन्धावलिके साथ अन्तःकोड़ाकोड़ीका कम करना चाहिये । यह आदेशसे उत्कृष्ट वृद्धि है । फिर इससे नीचेकी सत्कर्मकी द्विचरम आदि स्थितियोंकी एक एक समय अधिकके क्रमसे पश्चादानुपूर्वकी अपेक्षा निक्षेपवृद्धि तब तक कहनी चाहिए जब तक वह आंधसे उत्कृष्ट निक्षेपको न प्राप्त हो जाय । किन्तु आंधकी अपेक्षा वह उत्कृष्ट निक्षेप कितना होता है एमा निणय करनेके लिए आगेका पृच्छासूत्र कहते हैं—

* उत्कृष्ट निक्षेप कितना है ।

§ ५३७. यह पृच्छामूत्र सुगम है ।

* जो उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेके बाद एक आवलिको बिताकर उस उत्कृष्ट स्थितिका अपकर्षण करके उदयावलिके बाहर दूसरी स्थितिमें निक्षेप करता है । फिर

काले उदयावलियबाहिरे अणंतरठिदिं पावेहिदि त्ति तं पदेसग्गमुक्कड्डियूण समयाहियाए आवलियाए ऊणियाए अग्गड्डिदीए णिक्खिखवदि । एस उत्कस्सओ णिक्खेवो ।

§ ५३८. जो सण्णपंचिदियपज्जत्तो सागार-जागारमव्वमंकिलेसेहि उत्कस्सदाहं गदो उत्कस्मड्डिदिं सत्तग्गिमागगेवमकोडाकोडिपमाणावच्छिण्णं वंधियूण बंधावलियमदिकंतो तमुक्कस्सियं ड्डिदिमोकाड्डियूणदयावलियबाहिरपढमड्डिदिणिसेयादो विसेसहीणं विदियड्डिदीए णिसिंचिय तदणंतरममए अणंतरवदिकंतसमयपढमड्डिदिमुदयावलियव्वभंतरं पवेसिय विदियड्डिदिं च पढमड्डिदित्तेण परिट्टुविय से काले तं च णिरुद्धड्डिदिं उदयावलियगव्वमं पावेहिदि त्ति ड्डिदो तम्मि चैव समए तदणंतरसमयोकाड्डिदपदेसग्गमुक्कड्डिणावसेण तक्कालिय-णवकवंधपड्डिवद्धुक्कस्मड्डिदीए णिक्खिवमाणो पच्चग्गवंधपरमाणुणमभावेणुक्कसावाहमेत्त-मइच्छाविय तमावाहावाहिरपढमणिसेयड्डिदिमादिं कादूण ताव णिक्खिखवदि जाव समयाहियावलिया परिहीणा अग्गड्डिदी । तम्म तहा णिक्खिवमाणस्स उत्कस्सओ णिक्खेओ होइ । तस्म य पमाणं ममयाहियावलियव्वभहियावाहापरिहीणउत्कस्सकम्मड्डिदिमेत्तं जायदि त्ति एमो मुत्तत्थममामो ।

तदनन्तर समयमें उदयावलिके बाहर अनन्तरवर्ती स्थितिको प्राप्त होगा कि इस स्थितिके कर्मद्रव्यका उत्कर्षण करके उमका एक समय अधिक एक आवलिसे कम अग्रस्थितिमें निक्षेप करता है । यह उत्कृष्ट निक्षेप है ।

§ ५३८. जिस सञ्जी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवने साकार उपयोगसे उपयुक्त होकर जागृत अवस्थाके रहते हुए सर्वोत्कृष्ट संकलेशके कारण उत्कृष्ट दाहको प्राप्त होकर सत्तर कोड़ोंकी सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया । फिर बन्धावलिके व्यतीत हो जानेपर उस उत्कृष्ट स्थितिका अपकर्षण करके उसे उदयावलिके वाहरकी प्रथम स्थितिके निषेकसे विशेष हीन दूसरी स्थितिमें निक्षिप्त किया । फिर तदनन्तर समयमें अनन्तर पूर्व समयवर्ती स्थितिका उदयावलिके भीतर प्रवेश कराके और उस दूसरी स्थितिको प्रथम स्थितिरूपसे स्थापित करके तदनन्तर समयमें विवक्षित स्थितिको उदयावलिके भीतर प्राप्त कराता, इस प्रकार स्थित होकर उसी समयमें इससे पूर्व समयमें अपकर्षणको प्राप्त हुए प्रदेशात्मका उत्कर्षणके वशसे उसी समय हुए नवीन बन्धसे सम्बन्ध रखनेवाली उत्कृष्ट स्थितिमें निक्षेप किया । यहाँ इस निक्षेपको, आवाधामें नवीन बन्धके परमाणुओंका अभाव होनेसे उत्कृष्ट आवाधाका अतिस्थापनारूपसे स्थापित करके आवाध के बाहर प्रथम निषेककी स्थितिसे लेकर एक समय अधिक एक आवलिसे न्यून अप्रस्थितिके प्राप्त होने तक करता है । इस तरह जो जीव इस प्रकारका निक्षेप करता है उसके उत्कृष्ट निक्षेप होता है । इस निक्षेपका प्रमाण समयाधिक आवलि और आवाधासे हीन उत्कृष्ट कर्मस्थितिप्रमाण उत्पन्न होता है । इस प्रकार यह सूत्रका तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—स्थितिसंक्रम तीन प्रकारसे होता है । उनमें दूसरा प्रकार स्थितिउत्कर्षण है । सत्कर्मकी स्थितिके बढ़ानेको स्थिति उत्कर्षण कहते हैं । यह भी व्याघात और अव्याघातके भेदमे दो प्रकारका है । जहाँ सत्कर्मसे नवीन स्थितिवन्ध एक आवलि और एक आवलिके असंख्यातवें

❀ एवमोकड्डुकड्डुणाणमदपदं समत्तं ।

§ ५३०. सुगमं । एत्थावाहापरिहीणुकस्ससंकमे अद्वपदपरूवणा किण्ण कया ? ण, तत्थोकड्डुकड्डुणासु व जहण्णुकस्साइच्छावणा-णिक्खेवादिविसेसाणमसंभवेण सुगमत्तवुद्धीए तदपरूवणादो । संपहि एवं परूविदमद्वपदमवलंबणं कऊण द्विदिमंकमं परूवेदुकामो सुत्तमुत्तरमाह—

एत्तो अद्वाछेदो । जहा उक्कस्सियाए द्विदीए उदीरणा तहा उक्कस्सओ द्विदिसंकमो ।

§ ५४०. अप्पणामुत्तमेदं, उक्कस्सद्विदिउदीरणापसिद्धस्म धम्मस्स मूलुत्तरपयडि-भेयभिण्णद्विदिसंकमुक्कस्सद्वाच्छेदे समप्पणादो । संपहि उत्तरपयडिविसयमेदमप्पणामुत्तमेवं चैव थप्पं काऊण ताव सुत्तेणेदेण सूचिदं मूलपयडिद्विदिसंकमविसयं किंचि परूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा—मूलपयडिद्विदिसंकमे तत्थ इमाणि तेवीसमणियोगद्वाराणि

भाग अधिकके भीतर होनेके कारण अतिस्थापना एक आवलिसे कम पाई जाती है वहाँ व्याघात विषयक उत्कर्षण होता है और जहाँ एक आवलिप्रमाण अतिस्थापनाके साथ निक्षेप कमसे कम आवलिके असंख्यातवें भागके होनेमें किसी प्रकारका व्याघात नहीं पाया जाता है वहाँ अव्याघात-विषयक अतिस्थापना होती है । अव्याघातविषयक उत्कर्षणमें अतिस्थापना कमसे कम एक आवलिप्रमाण और अधिकसे अधिक उत्कृष्ट आबाधाप्रमाण होती है । तथा निक्षेप कमसे कम आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण और अधिकसे अधिक उत्कृष्ट आबाधा और एक समय अधिक एक आवलिसे न्यून उत्कृष्ट कर्मस्थितिप्रमाण होता है । व्याघातविषयक जघन्य अतिस्थापना कमसे कम आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण और अधिकसे अधिक एक समय कम एक आवलिप्रमाण होती है । तथा निक्षेप मात्र आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है ।

❀ इम प्रकार अपकर्षण और उत्कर्षणका अर्थपद समाप्त हुआ ।

§ ५३६ यह सूत्र सुगम है ।

शंका—यहाँ पर आबाधासे हीन उत्कृष्ट संक्रमके विषयमें अर्थपदका कथन क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँ पर अपकर्षण और उत्कर्षणके समान जघन्य और उत्कृष्ट अतिस्थापना व निक्षेप आदि विशेषोंका पाया जाना सम्भव न होनेसे सुगम समझकर उत्कृष्ट संक्रमके विषयमें अर्थपदका कथन नहीं किया ।

अब इस प्रकार कहे गये अर्थपदका अवलम्बन लेकर स्थितिसंक्रमके कथन करनेकी इच्छासे आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ अब इससे आगे अद्वाछेदका प्रकरण है—जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिकी उदीरणा होती है उसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम जानना चाहिये ।

§ ५४०. यह अर्पणसूत्र है; क्योंकि इस द्वारा उत्कृष्ट स्थितिकी उदीरणामें प्रसिद्ध हुए धर्मका मूल और उत्तर प्रकृतियोंके भेदसे अनेक प्रकारके स्थितिसंक्रमके उत्कृष्ट अद्वाछेदमें समर्पण किया गया है । अब उत्तरप्रकृतिविषयक इसी प्रकारके इस अर्पणसूत्रको स्थगित करके सर्व प्रथम इस सूत्रके द्वारा सूचित होनेवाले मूलप्रकृतिविषयक स्थितिसंक्रमका कुछ कथन करते हैं । यथा—मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रमके विषयमें अद्वाछेदसे लेकर अल्पबहुत्व तक ये तईस अनुयोद्वार

अद्वाच्छेदो जाव अप्पावहुगे त्ति । तदो भुजगार-पदणिक्खेव-वड्ढि-ट्टाणाणि च कायच्चाणि ।

§ ५४१, तत्थ दुविहो अद्वाच्छेदो जहण्णुक्कस्सभेदेण । उक्क० पयदं । दुविहो णिहेसो ओघादेसभेदेण । तत्थोघेण मोह० उक्क० द्विदिसंकमद्वाच्छेदो सत्तरिसागरोवम-कोडाकोडीओ दोहि आवलियाहि ऊणियाओ । एवं चदुसु वि गदीसु । णवरि पंच्चिदिय-तिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० उक्क० द्विदिसंकम० सत्तरिसा०कोडाकोडीओ अंतो-मुहुत्तूणाओ । आणदादि जाव सव्वट्टा त्ति मोह० उक्क० द्विदिसं० अंतोकोडाकोडीए । एवं जाव० ।

§ ५४२, जहण्णए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० जह० द्विदिसंक०अद्वाच्छेदो एया ट्टिदी । सा पुण समयाहियावलियाए उवरिमा होइ । एवं मणुमतिए । आदेसेण णेरइय० मोह० जह० द्विदिसं०अद्वा० सागरोवम-होते हैं । फिर भुजगार, पदनिक्षेप, वृद्धि और स्थान इनका कथन करना चाहिये ।

§ ५४१. प्रकृतमें जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे अद्वाच्छेद दो प्रकारका है । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिसंकम अद्वाच्छेद दो आवलिकम सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण है । इसी प्रकार चारों ही गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रयतिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिसंकम अद्वाच्छेद अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण है । तथा आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिसंकम अद्वाच्छेद अन्तःकोडाकोडीप्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—तत्काल बँधे हुए कर्मका बन्धावलिके बाद संक्रम होता है । उसमें भी जो कर्म उदयावलिके भीतर अवस्थित है उसका संक्रम नहीं होना, किन्तु उदयावलिके बाहर अवस्थित कर्मका ही संक्रम होता है । इसीसे प्रकृतमें मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिसंकम अद्वाच्छेद दो आवलिकम सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण बतलाया है । यतः मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध चारों गतियोंमें होता है, अतः चारों गतियोंमें यह उत्कृष्ट अद्वाच्छेद प्राप्त हो जाता है । ऐसा नियम है कि अपर्याप्त अवस्थामें उत्कृष्ट स्थितिवन्ध नहीं होता । किन्तु जो जीव उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करके और अन्तर्मुहूर्तके भीतर मर कर अपर्याप्त अवस्था प्राप्त कर लेता है उसके अपर्याप्त अवस्थामें अन्तर्मुहूर्तकम उत्कृष्ट स्थिति अद्वाच्छेद पाया जाता है । इसीसे प्रकृतमें पंचेन्द्रयतिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिसंकम अद्वाच्छेद अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोडाकोडी सागर प्रमाण बतलाया है । तथा आनतादिमें उत्कृष्ट स्थिति किसी भी हालतमें अन्तःकोडाकोडीसे अधिक नहीं होती । इसीसे वहाँ उत्कृष्ट स्थितिसंकम अद्वाच्छेद अन्तःकोडाकोडीप्रमाण बतलाया है । इसी प्रकार आगेकी मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिका विचार करके उत्कृष्ट स्थितिसंकम अद्वाच्छेद ले आना चाहिये ।

§ ५४२. अब जघन्यका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मोहनीयका जघन्य स्थितिसंकम अद्वाच्छेद एक स्थितिप्रमाण है । किन्तु वह स्थिति एक समय अधिक एक आवलिसे ऊपरकी होती है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसंकम अद्वाच्छेद एक

महस्मस्म मत्त-मत्तभागा पलिदो० मंखे० भागूणा । एवं पढमपुहवि देव० भवण० वाणवेंतग
त्ति । विदियादि जाव मत्तमा त्ति मांह० जह० द्विदिमंक० अद्धा० अंतोकोडा० । एवं
जोदिसियपहुडि जाव मव्वद्धा त्ति । सव्वतिरिक्ख-मणुमअपज्ज० मोह० जह० द्विदि०-
अद्धा० मागरोवम पलिदो० असंखे० भागूणयं । एवं जाव० ।

§ ५४३. सव्व-णोसव्व-उक्कसाणुक्कस्स-जहणणाजहणणद्विदिमंकमाणमोघादेसपरू-
वणाए द्विदिविहत्तिभंगो ।

§ ५४४. मादिअणादि-धुवअद्धुवाणुगमेण द्दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण
य । ओघेण मोह० उक्क०-अणुक्क०-जह० द्विदिमंकमाए किं सादिया ४ ? सादि-अद्धुवा ।
अजहणणद्विदिमं० किं मादि० ४ ? सादी अणादी धुवो अद्धुवो वा । आदेसेण सव्व-
मग्गणासु उक्क०-अणुक्क०-जह०-अजहणणसंका० किं सादि० ४ ? सादि-अद्धुवा ।

हजार सागरके सात भागोंमें पल्यका संख्यातवा भागकम सात भागप्रमाण है । इसी प्रकार प्रथम पृथिवीके नारकी, मामान्य देव, भवनवामी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद अन्तःकोडा-कांडीप्रमाण है । इसी प्रकार ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जानना चाहिये । सब तिर्यञ्च और मनुष्य अपथाप्रकोमे मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद पल्यका अमंख्यातवा भाग कम एक सागर प्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—आगे जघन्य स्वामित्वका निर्देश किया है । उसे ध्यानमें रखकर यह अद्धाच्छेद घटित कर लेना चाहिये । विशेष वक्तव्य न होनेसे यहाँ पर उमका अलगसे स्पष्टीकरण नहीं किया है ।

§ ५४३. सर्व, नासर्व, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य इन सब स्थितिसंक्रमोंका ओघ और आदेशकी अपेक्षासे कथन जैसा स्थितिभिक्तिके समय कर आये हैं उमी प्रकार यहाँ भी करना चाहिये ।

§ ५४४. सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयका उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थितिसंक्रम क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है । अजघन्य स्थितिसंक्रम क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव है । आदेशकी अपेक्षा सब मार्गणाओंमें उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रम क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है ।

विशेषार्थ—ओघसे उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद कदाचिन् होते हैं यह स्पष्ट ही है, इसलिए इन्हे सादि और अध्रुव कहा है । किन्तु क्षपकश्रेणिमें जघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद होनेके पूर्व अजघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद अनादि कालसे होता आ रहा है, इसलिए तो इसे अनादि कहा है तथा क्षायिकमभ्यगृष्टि उपशामकके उपशामश्रेणिमें जघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद होनेके बाद उतरते समय अजघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद सादि होता है, इसलिए इसे सादि कहा है । और भव्योंके यह अध्रुव तथा अभव्योंके ध्रुव होता है, इसलिए इसे ध्रुव और अध्रुव कहा है । इस प्रकार अजघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद चारों प्रकारका बन जाता है यह स्पष्ट ही है । शेष कथन सुगम है ।

§ ५४५. सामित्तं दुविहं—जह० उक्क० । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिहेसो—
ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० उक्क० द्विदिसं० कस्स ? अण्णद० मिच्छा०
उक्क० द्विदिं बंधिदूणावलिायादीदं संकामेमाणस्स । एवं चउगदीसु । णवरि पंचिं०तिरिक्ख-
अपज्ज०-मणुमअपज्ज०-आणदादि जाव सव्वट्ठा त्ति द्विदिविहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

§ ५४६. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह०
जह० द्विदिमं० कस्स ? खवयस्स ममयाहियावलिाचरिममयसंकामयस्स । एवं
मणुसतिए० । आदेसेण णेरइय० मोह० जह० द्विदिसं० कस्स ? अण्णदरस्स असण्णि-
पच्छायददुसमयाहियावलिातत्त्वभवत्थस्स । एवं पढमाए देव-भवण०-वाणवेंतरा त्ति ।
विदियादि जाव सत्तमा त्ति द्विदिविहत्तिभंगो । णवरि सत्तमाए ममद्विदिं बंधिदूणावलि-
यादीदस्स सामित्तं वत्तव्वं । तिरिक्खेसु विहत्तिभंगो । णवरि समद्विदिं बंधिदूणावलि-
यादीदस्स सामित्तं दादव्वं । सव्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुमअपज्ज० मोह० जह० द्विदिमं०
कस्स ? अण्णदरस्स हदममुत्पत्तियं कादूणागदवादरेइंदियपच्छायदस्स आवलिा-
उववण्णलयस्स । जोदिमियप्पहुडि जाव मव्वट्ठे त्ति द्विदिविहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

§ ५४५. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जो मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके एक आवलिके बाद उसका संक्रम करता है उसके होता है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमके स्वामित्वका कथन स्थितिबिभक्तिके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ५४६. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जो क्षणिक एक समय अधिक एक आवलिके शेष रहते हुए उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका संक्रम कर रहा है उसके जघन्य स्थितिसंक्रम होता है । इसीप्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिए । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जिस असंज्ञी पंचेन्द्रियको मर कर नारकियोंमें उत्पन्न हुए दो समय अधिक एक आवलि हुआ है उसके होता है । इसी प्रकार प्रथम पृथिवीके नारकी, देव, भवनवासी देव और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिए । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें स्वामित्वका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें सत्त्वके समान स्थितिबन्ध करनेके बाद जिसे एक आवलि काल व्यतीत हुआ है उसके मोहनीयके स्थितिसंक्रमका जघन्य स्वामित्व कहना चाहिये । तिर्यञ्चोंमें स्वामित्वका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि जिसे सत्त्वके समान स्थिति बंधनेके बाद एक आवलि काल व्यतीत हुआ है उसे मोहनीयके स्थितिसंक्रमका जघन्य स्वामित्व देना चाहिये । सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जिस बादर एकेन्द्रियको हतसमुत्पत्ति करनेके बाद मर कर उक्त जीवोंमें उत्पन्न हुए एक आवलि काल हुआ है उसके होता है । ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य स्वामित्वका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम दो आवलिकम सन्तर कोडाकोडीसागरप्रमाण होता है जो बन्धावलिके बाद अनन्तर समयमें उस जीवके प्राप्त होता है जिसने मोहनीयका उत्कृष्ट स्थिति-बन्ध किया है। इसीसे यहाँ पर उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके एक आवलिके बाद उत्कृष्ट स्थिति संक्रमका स्वामी बतलाया है। यह अवस्था चारों गतियोंके जीवोंमें प्राप्त होती है इस लिये चारों गतियोंमें उत्कृष्ट स्वामित्वके कथन करनेकी ओघके समान सूचना की है। किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव ये मार्गणाएँ उक्त व्यवस्थाकी अपवाद हैं। इन मार्गणाओंमें आदेश उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामित्वके समान ही आदेश उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका स्वामित्व प्राप्त होता है, अतः इन मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमके स्वामित्वको उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामित्वके समान जाननेकी सूचना की है। इसी प्रकार इन्द्रिय आदि शेष मार्गणाओंमें भी उत्कृष्ट स्वामित्व घटित कर लेना चाहिये। यह तो उत्कृष्ट स्वामित्वके कथनका खुलासा हुआ। अब जघन्य स्वामित्वके कथनका खुलासा करते हैं—जिस क्षणके सूदन लोभका सत्त्व एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण शेष रहा है उसके उदयावलिके ऊपरकी एक समय प्रमाण स्थितिका अपकर्षण हाकर एक समयकम आवलिके एक समय अधिक त्रिभागमें निक्षेप होता है। यह जघन्य संक्रम है, इसलिये इसका स्वामी उस क्षणक सूक्ष्मसम्प्राय संयतको बतलाया है जिसके दसवें गुणस्थानका एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण काल शेष है। यह ओघ प्ररूपणा सामान्य, पर्याप्त और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंमें अविकल घटित हो जाती हैं, इसलिए इन मार्गणाओंमें स्वामित्वका कथन ओघके समान किया है। जो असञ्जी पंचेन्द्रिय जीव दो विग्रहसे नरकमें उत्पन्न होता है उसके यद्यपि शरीर ग्रहण करने पर संज्ञी पंचेन्द्रियके योग्य स्थितिबन्ध होने लगता है तथापि शरीर ग्रहण करनेके समयमें लेकर एक आवलि काल तक नवीन बन्धका संक्रम नहीं होता, इसलिए इसे नरकमें दो समय अधिक एक आवलिकालके अन्ततम समयमें जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी बतलाया है। यह अगंजी जीव प्रथम पृथिवीके नारकी, सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर टन चार मार्गणाओंमें उत्पन्न होता हुआ देखा जाता है इसलिये इनमें जघन्य स्थितिसंक्रमके स्वामित्वका कथन सामान्य नारकियोंके समान किया है। दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें जिनके जघन्य स्थिति प्राप्त होती है उन्हींके जघन्य स्थितिसंक्रम प्राप्त होता है, इसलिये इन मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिसंक्रमके स्वामित्वको जघन्य स्थितिबन्धके स्वामित्वके समान बतलाया है। किन्तु सातवीं पृथिवीमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि सातवीं पृथिवीमें जघन्य स्थिति उस जीवके होती है जो उत्कृष्ट आयु लेकर उत्पन्न हुआ और जिसने अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् उपशमसम्यक्त्वपूर्वक अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है। फिर आयुमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर मिथ्यात्वमें जाकर जिसने कुछ काल तक स्थितिसत्त्वसे कम स्थितिबन्ध किया है। तथापि ऐसे जीवके जघन्य स्थितिसंक्रम प्राप्त करना सम्भव नहीं है, इसलिये जब यद् जीव स्थिति सत्त्वके समान स्थितिबन्ध करता है तब इसके एक आवलि कालके बाद जघन्य स्थितिसंक्रम होता है। यहाँ एक आवलिके अन्तमें जघन्य स्थितिसंक्रम इसलिये ग्रहण किया गया है, क्योंकि इतना काल व्यतीत होने पर स्थितिसंक्रममें उतनी कमी देखी जाती है। इसीप्रकार तिर्यञ्चोंमें भी समान स्थितिका बन्ध करके एक आवलिके बाद जघन्य स्वामित्वको प्राप्त करना चाहिये। तिर्यञ्चोंमें यह जघन्य स्वामित्व हतसमुत्पत्तिक एकेन्द्रियके प्राप्त होता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि हतसमुत्पत्तिक बाद एकेन्द्रियका अपनी स्थितिके साथ सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होना शक्य है, इसलिये इन मार्गणाओंमें उक्त प्रकारके उत्पन्न हुए जीवके एक आवलिके अन्तमें जघन्य स्वामित्वका विधान किया है। तथा ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य

§ ५४७. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देशो जहणुक्कस्सभेएण । तत्थुक्कस्से ताव पयदं । दुविहो णिद्देशो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० उक्क० द्विदिमं० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अणुक्क० द्विदिमं० जह० अंतोमु०, उक्क० अणंत-कालममंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा ।

§ ५४८. आदेसेण णेरइय० मोह० उक्क० द्विदिमं० ओघमंगो । अणुक्क० जह० एयसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । एवं सव्वणेरइय०-तिरिक्ख०-पंचिंदिय-तिरिक्खतिए३ मणुसतिय३-देवा भवणादि जाव सहस्सार ति । णवरि अणु० उक्क० सगट्ठिदी । पंचिं०तिरि०अपज्ज०-मणुमअपज्ज० मोह० उक्क० द्विदिमं० जह० उक्क० एयसमओ । अणु० जह० खुदा० समयूणं, उक्क० अंतोमु० । आणदादि जाव सव्वट्ठे ति मोह० उक्क० द्विदिमं० जहणुक्क० एयस० । अणु० जह० जहणुट्ठिदी समयूणा, उक्क० उक्क०ट्ठिदी संपुण्णा । एवं जाव० ।

स्थितिभिक्तिवालेके ही जघन्य स्थितिमक्रमका स्वामित्व प्राप्त होता है, इसलिए इन मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामित्व जघन्य स्थितिभिक्तिके स्वामित्वके समान कहा है । गति मार्गणामें जिस प्रकार जघन्य स्वामित्वका निर्देश किया है उसी प्रकार वह अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य घटित कर प्राप्त किया जा सकता है, इसलिये उसका अलगसे बथन न करके संकेतमात्र कर दिया है ।

§ ५४७. कालानुगमकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे निर्देश दो प्रकारका है । उनमेंसे उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका कितना काच है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।

विशेषार्थ—मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल उक्त प्रमाण होनेसे यहाँ उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका भी काल उक्त प्रमाण बतलाया है ।

§ ४४८. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । इसी प्रकार सब नारकी, तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, मनुष्यत्रिक, देव और भवनवासी देवोंसे लेकर सहस्वार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम लुब्धक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल पूरी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जा ओघसे उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम और उसका काल बतलाया है । उसका नरकमें पाया जाना सम्भव है इसलिये नारकियोंमें भी उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका काल ओघके समान कहा

§ ५४७. जहण्णे पयदं । दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० जह० द्विदिमंक० केव० । जहण्णुक० एयसमभो । अज० तिण्णि भंगा । तत्थ जो सो सादिओ मपज्जवसिदो तस्म जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीमं सागरो० देसुणदोपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि ।

है । जो नारकी मरनेके पूर्व समयमें उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करके अन्तिम समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करता है उसके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा जो नारकी तेतीस सागर काल तक उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध न करके अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता रहता है उसके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर पाया जाता है । इसीसे यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागरप्रमाण कहा है । आगे सब नरकोंके नारकी आदि और जितनी मार्गणाओंका निर्देश किया है उनमें और सब काल तो पूर्ववत् घटित हो जाता है किन्तु अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल जुदा-जुदा प्राप्त होता है, क्योंकि इन मार्गणाओंका अवस्थान काल भिन्न-भिन्न प्रकारका है । इसीलिये इन मार्गणाओंमें इस अपवादके साथ शेष कथनका निर्देश सामान्य नारकियोंके समान किया है । पंचेन्द्रिय निर्यच अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त इन दो मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम उन जीवोंके होता है जो अन्य गतिमें उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अन्तर्मुहूर्त वाद इन मार्गणाओंमें उत्पन्न हुए हैं । यतः इनके उत्कृष्ट स्थिति एक समय तक ही पाई जा सकती है, अतः इनके उत्कृष्ट स्थिति संक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इन मार्गणाओंमें अनुत्कृष्ट स्थिति कमसे कम एक समय कम खुदाभवग्रहणप्रमाण और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तप्रमाण पाई जाती है, अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम खुदाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है । आनतादिकमें भी उत्कृष्ट स्थिति एक समय तक और अनुत्कृष्ट स्थिति कमसे कम एक समय कम अपनी-अपनी जघन्य आयु तक और अधिकसे अधिक उत्कृष्ट आयु तक पाई जा सकती है । इसीसे इन मार्गणाओंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्टकाल उक्तप्रमाण कहा है । आगेकी मार्गणाओंमें भी इसी प्रकार यथायोग्य कालका विचार कर लेना चाहिये ।

§ ५४६. अब जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—आघनिर्देश और आदेश-निर्देश । आघकी अपेक्षा मांहनीयके जघन्य स्थितिसंक्रमका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य स्थितिसंक्रमके तीन भंग हैं । उनमें जो सादि-सान्त भंग है उसकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ—क्षपक जीवके सूक्ष्म लोभका सत्त्व एक समय अधिक एक आवलि प्रमाण रह जाने पर उसका अपकर्षण एक समय तक ही होता है इसीसे मांहनीयके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । अजघन्य स्थितिसंक्रमके अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त ये तीन विकल्प होते हैं । पहिला विकल्प अभव्योंके होता है, क्योंकि उन्हें जघन्य स्थितिसंक्रमकी प्राप्ति कभी भी सम्भव नहीं है । दूसरा विकल्प भव्योंके होता है, क्योंकि उनके अनादि कालसे यद्यपि अजघन्य स्थितिसंक्रमका क्रम चला आ रहा है पर कालान्तरमें उसका अन्त देखा जाता है । तीसरा विकल्प उन क्षायिक सम्यग्दृष्टि भव्योंके होता है जिन्होंने उपशमश्रेणि पर चढ़ असंक्रामक होकर उतरते हुए सूक्ष्मलोभ गुणस्थानमें इसका प्रारम्भ किया है ।

§ ५५०. आदेसेण णेग्इय० मोह० जह० द्विदि० जह० उक्क० एयममओ । अज० जह० समयाहियावलिया, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । एवं पढमाण । णवरि सगद्धिदी । विदियादि जाव सत्तमि ति जह० जहण्णुक्क० एयसमओ । अज० जह० जहण्णद्धिदी, उक्क० उक्कस्सद्धिदी । णवरि मत्तमीए जह० जहण्णेणयसमओ, उक्क० अंतोमु० । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० सगद्धिदी ।

यह सादि-सान्त विकल्प जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे दो प्रकारका है । इनमेंसे जघन्य विकल्प उन जीवोंके होता है जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव अन्तर्मुहूर्तके भीतर दो बार श्रंणि पर चढ़े हैं । इसीसे सादि-सान्त विकल्पका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । तथा सादि-सान्त विकल्पका जो उत्कृष्ट भेद है सो उसका काल जो कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर कहा है सो वह क्षायिक सम्यग्दर्शनके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षासे कहा है । यहाँ क्षायिक सम्यग्दर्शनके उत्कृष्ट कालके प्रारम्भमें उपशमश्रेणि पर चढ़ा कर व उतरते समय अजघन्य स्थितिसंक्रमका प्रारम्भ करावे तथा उसके अन्तमें क्षपकश्रेणि पर चढ़ा कर अजघन्य स्थितिसंक्रमका अन्त करावे । इस प्रकार अजघन्य स्थितिसंक्रमका उक्तप्रमाण उत्कृष्ट काल प्राप्त हो जाता है ।

§ ५५०. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मांहनीयके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय अधिक एक आवलि-प्रमाण है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें है । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है तथा अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—सामान्यसे नरकमें मांहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम एक समय तक ही होता है, क्यों कि जो असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव नरकमें उत्पन्न होता है उसके शरीर ग्रहणके बाद एक आवली कालके अन्तिम समयमें यह जघन्य संक्रम देखा जाता है । इसीसे यहाँ जघन्य स्थिति-संक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल जो एक समय अधिक एक आवलि कहा है सो यह काल भी उस नारकीके प्राप्त होता है जो असंज्ञी पर्यायसे आकर नरकमें उत्पन्न हुआ है । ऐसे जीवके नरकमें उत्पन्न होनेके समयसे लेकर एक समय अधिक एक आवलि काल तक अजघन्य स्थितिसंक्रम बना रहता है और इसके बाद यह नियमसे एक समयके लिये जघन्य स्थितिसंक्रमको प्राप्त हो जाता है । इसीसे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण कहा है । तथा अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट आयुकी अपेक्षासे कहा है, क्यों कि इतने काल तक नारकीके अजघन्य स्थितिके प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती है । अजघन्य स्थितिसंक्रमके उत्कृष्ट कालके सिवा शेष सब काल प्रथम नरकमें घटित होते हैं, इसलिये प्रथम नरकमें उक्त कालोंको सामान्य नारकियोंके समान कहा है । किन्तु प्रथम नरककी उत्कृष्ट स्थिति एक सागरप्रमाण होनेके कारण यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल एक सागर ही प्राप्त होता है । दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तक जो जीव उत्कृष्ट आयुके साथ वहाँ उत्पन्न हुआ है । फिर अन्तर्मुहूर्तमें जिसने उपशमसम्यक्त्वपूर्वक

§ ५५१. तिग्गखेसु मोह० जह० जह० एयस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० एयम०, उक्क० अमखेजा लोगा । पंचि०तिरि०तिय३ जह० ड्दिदि०संक० जह० उक्क० एयम० । अज० जह० आवलिया ममयूणा, उक्क० मगड्दिदी । पंचिदि०तिरि०अपज०-मणुमअपज० जह० ड्दिदिमं जह० उक्क० एयस० । अज० जहण्णेणावलिया समयूणा, उक्क० अंतोमु० ।

अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना कर लो है उसके नरकायुके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिसंक्रम प्राप्त होता है । इसीसे यहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल वहाँकी जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह बात स्पष्ट ही है । सातवीं पृथिवीमें भी जो जीवन भर सम्यक्त्वके साथ रहा है । किन्तु अन्तमें अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहने पर जो मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है । ऐसा जीव यदि सत्कर्मस्थितिके समान एक समयके लिये स्थितिवन्ध करता है तो इसके जघन्य स्थितिसंक्रम एक समय तक होता है और यदि सत्कर्मस्थितिके समान अन्तर्मुहूर्ततक स्थितिवन्ध करता है तो इसके जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तर्मुहूर्ततक होता है । इसीसे यहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है । किन्तु इसी जीवके बादमें अन्तर्मुहूर्त काल तक अजघन्य स्थितिसंक्रम होता है । इसीसे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । तथा यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है ।

§ ५५१. तिर्यचोमे मोहनीयके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है । पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिकमे जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समयकम एक आवलिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—जो एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्तिक क्रियाको करके स्थितिसत्कर्मके समान एक समयके लिये स्थितिका बन्ध करता है उसके एक समय तक जघन्य स्थितिसंक्रम होता है । तथा जो अन्तर्मुहूर्त तक स्थितिसत्कर्मके समान स्थितिवन्ध करता है उसके अन्तर्मुहूर्त तक जघन्य स्थितिसंक्रम होता है । यही कारण है कि तिर्यचोमे जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । जो तिर्यच जघन्य स्थितिसंक्रमको करके एक समय तक अजघन्य स्थितिसंक्रमको प्राप्त होता है और दूसरे समयमें मर कर अन्य गतिमें चला जाता है उसके अजघन्य स्थितिसंक्रम एक समय तक देखा जाता है । इसीसे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कहा है । ऐसा नियम है कि एकेन्द्रियोंमें जघन्य स्थिति बादर जीवोंके ही प्राप्त होती है, सूक्ष्म जीवोंके नहीं । सूक्ष्म जीवोंके तो निरन्तर अजघन्य स्थिति ही पाई जाती है । और सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्यायमें निरन्तर रहनेका काल असंख्यात लोकप्रमाण है । इससे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है । जो एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्तिक क्रियाको करके पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिकमें उत्पन्न होता है उसके वहाँ उत्पन्न होनेके प्रथम

§ ५५२. मणुमतिए जह० ओघभंगो । अज० जह० एयस०, उक्क० सगट्टिदी । कथमेयसमयोवलद्धी ? ण, असंक्रमादो अजहण्णमंक्रमे पडिय तत्थेयसमयमच्छिय विदिममए कालगदस्म तदुवलंभादो । देवेसु पारयभंगो । एवं भवण०-वाण० । णवरि सगट्टिदी । जोदिमियादि जाव सच्चट्टे त्ति ट्टिदिविहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

समयसे लेकर एक आवलिके अन्तमें एक समयके लिये जघन्य स्थितिसंक्रम देखा जाता है । इसीसे पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इसी जीवके जघन्य स्थितिसंक्रमके प्राप्त होनेके पूर्व एक समय कम एक आवलि काल तक अजघन्य स्थितिसंक्रम होता रहता है । इसीसे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण कहा है । इनमें अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी कायस्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अर्थात् और मनुष्य अर्थात् जीवोंके भी जघन्य स्थिति-संक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके समान घटित कर लेना चाहिये । तथा यहाँ जो अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अनामुहूर्तप्रमाण कहा है सो यह इन जीवोंकी उत्कृष्ट काय-स्थितिकी अपेक्षासे कहा है ऐसा जानना चाहिये ।

§ ५५२. मनुष्यत्रिकमें जघन्य स्थितिसंक्रमका काल ओघके समान है । अजघन्य स्थिति-संक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है ।

शंका—यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कैसे उपलब्ध होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जो असंक्रमसे अजघन्य स्थितिसंक्रमको प्राप्त होकर और एक समय वहाँ रह कर दूसरे समयमें मर गया है उसके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय उपलब्ध होता है ।

देवोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमका काल नारकियोंके समान है । इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तरोमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिए । तथा ज्योतिषियोंके लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य और अजघन्य स्थिति-संक्रमका भंग जघन्य और अजघन्य स्थितिभिक्तिके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समयप्रमाण सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थानमें प्राप्त होता है जिसका प्राप्त होना मनुष्यत्रिकके ही सम्भव है । इसीसे यहाँ मोहनीयके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान कहा है । यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय क्यों है इसका खुलासा मूलमें किया ही है । तथा अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर इन तीन प्रकारके देवोंमें असंज्ञी जीव मर कर उत्पन्न हो सकते हैं, इसलिये इनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमका काल नारकियोंके समान बन जाता है । किन्तु इनकी भवस्थिति जुदी जुदी होनेसे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण प्राप्त होता है । अब रहे ज्योतिषी और सौधर्म कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव सो इनमें जिस प्रकार जघन्य और अजघन्य स्थितिभिक्तिका काल बतलाया है उसी प्रकार जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमका भी काल घटित कर लेना चाहिये । उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । यही कारण है कि यहाँ जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमका काल जघन्य और अजघन्य स्थितिभिक्तिके कालके समान कहा है ।

५५३. अंतरं दुविहं जहण्णुक्कम्मभेएण । उक्क० पयदं । दुविहो णिहेमो—
ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० उक्क० ट्टिदिसं० अंतरं जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्क०
अणंतकान्तमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । अणु० ज० एयम०, उक्क० अंतोमु० ।

५५४. आदेसेण गेग्इय० मोह० उक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० तेचीमं सागरो०
देसूणाणि । अणु० ओघं । एवं सव्वणेग्इय० । णवरि सगट्ठिदी देसूणा ।

५५५. तिरिक्खेसु ओघभंगो । पंचि० तिरिक्खतिय३ उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क०
पुव्वकोट्टिपुघत्तं । अणु० ओघो । एवं मणुम०३ । पंचि० तिरि० अपज्ज०-मणुमअपज्ज०
उक्क० अणु० णत्थि अंतरं । एवमाणदादि जाव सव्वट्ठे त्ति ।

§ ५५३. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो अमख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है ।

विशेषार्थ—अनुत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है । इसीसे उत्कृष्ट स्थिति-संक्रमका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त कहा है । एकेन्द्रियादि पर्यायमें रहकर यह जीव अनन्त काल तक अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता रहता है जिससे इसे इतने काल तक उत्कृष्ट स्थितिकी प्राप्ति नहीं होती । इसीसे यहाँ उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त कालप्रमाण कहा है । उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । इसीसे यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्तप्रमाण कहा है ।

§ ५५४. आदेशमें नारकियोंमें मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । तथा अनुत्कृष्टका भंग ओघके समान है । इसी प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त होनेसे उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त कहा है । जिम नारकीने आयुके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम किया है और मध्यमें जो अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रम करता रहा उसके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरप्रमाण पाया जाता है । इसीसे यहाँ उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर उक्तप्रमाण कहा है । उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । इसीसे यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त ओघके समान कहा है । शेष कथन सुगम है ।

§ ५५५. तिर्यञ्चोमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका अन्तर ओघके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्टका अन्तर ओघके समान है । मनुष्यत्रिकमें इसी प्रकार जानना चाहिये । तथा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका अन्तरकाल नहीं है । आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक भी इसी प्रकार जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिककी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है । किन्तु भोगभूमिमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका प्राप्त होना सम्भव नहीं है इसीसे यहाँ उत्कृष्ट

§ ५५६. देवगदीए देवसु उक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० अट्टारससागरो० सादिरैयाणि । अणु० ओघमंगो । भवणादि जाव सहस्सारे त्ति उक्क० द्विदिसं० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसुणा । अणु० ओघो । एवं जाव० ।

§ ५५७. जहण्णए पयदं । दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण जह० द्विदिसं० णत्थि अंतरं । अज० ज० एयस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं. उवसमसेटीए तदुवल्लदीदो । एवं मणुसतिय०३ । णवणि अज० अंतरं जहण्णु० अंतोमु० ।

§ ५५८. आदेसेण णेरइय० जह० णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक्क० एयसमओ ।

स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण कहा है । मनुष्यत्रिकमें भी अनुत्कृष्ट-स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तरकाल इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तमें दो बार उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका प्राप्त होना या उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका अन्तर देकर दो बार अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका प्राप्त होना सम्भव नहीं है । इसीसे इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमके अन्तरका निषेध किया है । यही बात आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक जाननी चाहिये । इसीसे वहाँ भी उक्त दो प्रकारके स्थितिसंक्रमोंके अन्तरका निषेध किया है । शेष कथन सुगम है ।

§ ५५६. देवगतिमें देवोंमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका अन्तर ओघके समान है । भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका अन्तर ओघके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—देवोंमें ओघ उत्कृष्ट स्थिति सहस्रार कल्प तक पाई जाती है । इसीसे यहाँ उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर प्रमाण कहा है । शेष कथन सुगम है ।

§ ५५७. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे जघन्य स्थितिसंक्रमका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि इसकी उपलब्धि उपशमश्रेणिमें होती है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकमें अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम क्षपकश्रेणिमें प्राप्त होता है । किन्तु एक जीवके क्षपकश्रेणिका दो बार प्राप्त होना सम्भव नहीं है । इसीसे यहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमके अन्तरका निषेध किया है । जो जीव उपशमश्रेणिमें एक समय तक मोहनीयकी अजघन्य स्थितिका असंक्रामक हांता है और दूसरे समयमें मर कर देव हो जाता है उसके मोहनीयकी अजघन्य स्थितिके संक्रमका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है । तथा उपशान्तमोहका काल अन्तर्मुहूर्त होनेके कारण अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । यह आंघप्ररूपणा मनुष्यत्रिकमें घटित हो जाती है, इसलिये मनुष्यत्रिकमें इस कथनका ओघके समान कहा है । किन्तु मनुष्यत्रिकमें अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय नहीं घटित होता, क्योंकि ओघसे एक समय अन्तर दो गतियोंकी अपेक्षासे प्राप्त होता है । इसलिये यहाँ उत्कृष्ट अन्तरके समान जघन्य अन्तर भी अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिये ।

§ ५५८. आदेशसे नारक्तियोंमें जघन्य स्थितिसंक्रमका अन्तर नहीं है । अजघन्य स्थिति

एवं पढमाए सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देवा भवण०-वाणवेंतरे त्ति । विदियादि जाव छट्ठि त्ति जहण्णाजह० णत्थि अंतरं । जोदिमियादि जाव सव्वट्ठा त्ति एवं चेव । सत्तमाए जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एयस०, उक्क० अंतोमु० । तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु जह० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० जह० एयस०, उक्क० अंतोमु० । एवं जाव० ।

संक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमका अन्तर नहीं है। ज्यातिपियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये। सातवीं पृथिवीमें जघन्य स्थितिसंक्रमका अन्तर नहीं है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—जो अमंझी नरकमें उत्पन्न होता है उसीके एक समयके लिये जघन्य स्थितिसंक्रमका प्राप्त होना सम्भव है। इसीसे यहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमके अन्तरका निषेध करके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय बतलाया है। प्रथम नरकके नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासी देव और व्यन्तर देव इनमें भी यथासम्भव जो अमंझी या एकेन्द्रिय जीव मर कर उत्पन्न होते हैं उन्हींके एक समयके लिये जघन्य स्थिति संक्रमका पाया जाना सम्भव है। इससे यहाँ भी सामान्य नारकियोंके समान जघन्य स्थितिसंक्रमके अन्तरका निषेध करके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय बतलाया है। दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके जिन नारकियोंमें जघन्य स्थितिसंक्रम पाया जाता है वह भवके अन्तिम समयमें ही पाया जाता है, इस लिये यहाँ जघन्य और अजघन्य दोनों प्रकारके स्थितिसंक्रमोंके अन्तरका निषेध किया है। ज्यातिपियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें भी जिनके जघन्य स्थितिसंक्रम पाया जाता है वह भवके अन्तिम समयमें ही पाया जाता है, इस लिये इन मार्गणाओंमें भी जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमके अन्तरका निषेध किया है। सातवीं पृथिवीमें जिनके जघन्य स्थितिसंक्रम होता है वह आयुमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त तक होता है। इसलिये इनके जघन्य स्थितिसंक्रमके अन्तरका निषेध करके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वाज अन्तर्मुहूर्त कहा है। तिर्यञ्चगतिमें अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण बतलाया है। इसीमें इनके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। तथा तिर्यञ्चगतिमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। इसीसे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य अन्तरकाल जान लेना चाहिये।

§ ५५९. णाणाजीवेहि भंगविचओ दुविहो जहण्णु०द्विदिसं०विसयभेदेण । एत्थुक्खस्से पयदं । तत्थद्वपदं—जे उक्खस्सियाए द्विदीए संकामगा ते अणुक्खस्सियाए द्विदीए असंकामगा इच्चादि । एदेणद्वपदेण दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० उक्ख०द्विदीए सिया सव्वे असंकामगा । सिया एदे च संकामओ च १ । सिया एदे च संकामया च २ । धुवसहिदा ३ भंगा । अणुक्ख० संकामयाणं पि एवं चेव । णवरि विवरीयं कायव्वं । एवं चदुसु गदीसु । णवरि मणुसअपज्ज० उक्ख० अणुक्ख० अद्दु भंगा । एवं जाव०

§ ५५८. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयके दो भेद हैं—जघन्य स्थितिसंक्रमविषयक और उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमविषयक । यहाँ उत्कृष्टका प्रकरण है । इस विषयमें यह अर्थपद है—जो उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं वे अनुत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक होते हैं आदि । इस अर्थपदके अनुसार निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके कदाचित् सब जीव असंक्रामक होते हैं । कदाचिन् मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके बहुत जीव असंक्रामक होते हैं और एक जीव संक्रामक होता है १ । कदाचिन् मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके बहुत जीव असंक्रामक होते हैं और बहुत जीव संक्रामक होते हैं २ । इस प्रकार ध्रुवमदित तीन भंग होते हैं ३ । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके भी इसी प्रकार तीन भंग होते हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ विपरीतरूपमें कथन करना चाहिये । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमवालोंकी अपेक्षा आठ भंग होते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तरु जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—नियम यह है कि जो उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं वे अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक नहीं होते और जो अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं वे उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक नहीं होते । इस हिसाबसे यद्यपि उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंसे उत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक जीव जुड़े नहीं ठहरते । तथापि एक बार उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंको और दूसरी बार अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंको मुख्य करके भंगोंका संग्रह करने पर तीन-तीन भंग प्राप्त होते हैं । जो मूलमें गिनाये ही हैं । वात यह है कि उत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक जीव कदाचिन् एक भी नहीं रहता, कदाचिन् एक होता है और कदाचिन् अनेक होते हैं । इन तीन विवरणोंको मुख्य करके भंग कहने पर वे इस प्रकारसे प्राप्त होते हैं—(१) कदाचिन् सब जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक होते हैं । (२) कदाचिन् बहुत जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक और एक जीव संक्रामक होता है । (३) कदाचिन् बहुत जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक और बहुत जीव संक्रामक होते हैं । ये तां उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकों और असंक्रामकोंकी अपेक्षासे भंग हुए । और जब अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकों और असंक्रामकोंको प्रमुख कर दिया जाता है तब इनकी अपेक्षासे ये तीन भंग प्राप्त होते हैं—(१) कदाचिन् सब जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं । (२) कदाचिन् बहुत जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं और एक जीव असंक्रामक होता है । (३) कदाचिन् बहुत जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं और बहुत जीव असंक्रामक होते हैं । इसी प्रकार चारों गतियोंमें ये तीन-तीन भंग होते हैं । किन्तु लक्ष्यपर्याप्त मनुष्य यह सान्तर मार्गणा है, इसलिए इसमें प्रत्येककी अपेक्षा आठ आठ भंग होते हैं । यथा—(१) कदाचिन् एक जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक होता है । (२) कदाचिन् नाना वजी

§ ५६०. जहणणए पयदं । तहा चैव अट्टपदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० जह० द्विदिसं० भयणिज्जा । पुणो अज० धुवं कारुण तिण्णि भंगा । एवं चदुगदीसु । णवरि तिरिक्खेसु जह० अज० णियमा अत्थि । मणुसअपज्ज० जह० अज० संका० भयणिज्जा । पुणो भंगा अट्ट ८ । एवं जाव० ।

मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक हांते हैं । (३) कदाचिन् एक जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका असंक्रामक होता है । (४) कदाचिन् नाना जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक होते हैं । (५) कदाचिन् एक जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक और एक जीव असंक्रामक होता है । (६) कदाचिन् एक जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक और नाना जीव असंक्रामक होते हैं । (७) कदाचिन् नाना जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक और एक जीव असंक्रामक होता है । (८) कदाचिन् नाना जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक और नाना जीव असंक्रामक हांते हैं । ये उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकों और असंक्रामकोंकी अपेक्षासे आठ भंग कहे हैं । इसी प्रकार अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकों और असंक्रामकोंकी अपेक्षासे भी आठ भंग कहने चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य भंग ले आना चाहिये ।

५६०. अब जघन्यका प्रकरण है । अर्थपद पूर्वोक्त प्रकार है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघानिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव भजनीय हैं । फिर अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका ध्रुव करके तीन भंग होते हैं । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जान लेना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चोंमें जघन्य स्थितिके संक्रमवाले और अजघन्य स्थितिके संक्रमवाले जीव नियमसे है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रमवाले भजनीय हैं । आठ भंग हांते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे मोहनीयकी जघन्य स्थितिका संक्रम क्षुपणश्रंणिमें होता है । किन्तु क्षुपकश्रंणिमें एक तो सदा जीवोंका पाया जाना सम्भव नहीं है । यदि पाये भी जाते हैं तो कदाचिन् एक जीव पाया जाता है और कदाचिन् नाना जीव पाये जाते हैं । इसीसे मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंको भजनीय कहा है । यहाँ एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा तीन भंग होंगे । भंगोंका क्रम वही है जिसका उल्लेख उत्कृष्टकी अपेक्षा तीन भंग बतलाते समय कर आये हैं । किन्तु अजघन्य स्थितिके संक्रामक जीव नियमसे पाये जाते हैं, अतः इस अपेक्षासे तीन भंग हांते हैं—(१) कदाचिन् अजघन्य स्थितिके संक्रामक सब जीव होते हैं । (२) कदाचिन् बहुत जीव अजघन्य स्थितिके संक्रामक और एक जीव असंक्रामक हांता है । (३) कदाचिन् बहुत जीव अजघन्य स्थितिके संक्रामक और बहुत जीव असंक्रामक होते हैं । यह ओघ प्ररूपणा चारों गतियोंमें बन जाती है, इसलिये चारों गतियोंके कथनका ओघके समान कहा है । किन्तु तिर्यञ्चगति इसका अपवाद है । बात यह है कि तिर्यञ्चगतिमें जघन्य स्थिति और अजघन्य स्थितिके संक्रामक नाना जीव सदा पाये जाते हैं । इसलिये वहाँका कथन भिन्न प्रकारका है । मनुष्य अपर्याप्तक सान्तर मार्गणा हांनेसे वहाँ जिस प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रामकोंकी अपेक्षा आठ-आठ भंग कहे हैं उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक अपनी-अपनी विशेषताको जानकर भंगोंका कथन करना चाहिये ।

इस प्रकार भंगविचयानुगम समाप्त हुआ ।

§ ५६१. भागाभा० दुविहो जह०-उक्० द्विदिसंका० विसयभेदेण । उक्कसे ताव पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० उक्क० द्विदिसंका० मया सव्वजीवाणं केव० भागो ? अणंतिमभागो । अणु० द्विदिसंका० सव्वजी० केव० भागो ? अणंता भागा । एवं तिरिक्खोघं आदेसेण णेरइय० उक्क० द्विदिसं० सगमव्वजी० केव० ? असंखे० भागो । अणु० असंखेज्जा भागा । एवमसंखेज्जरासीणं । संखेज्जरासीणं पि एवं चेव । णवरि सगपडिभागिओ भागो कायव्वो । एवं जाव० ।

§ ५६२. जह० पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० जह० द्विदिमं० सव्वजीवाणं केव० भागो ? उक्कस्सभंगो । अज० अणुक्कस्सभंगो । एवं सव्वत्थ गदिमग्गणाए । णवरि तिरिक्खेमु णारयभंगो । एवं जा० ।

§ ५६३. परिमाणं दुविहं—जह० उक्क० । तत्थुक्कस्मए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० उक्क० द्विदिमं० केत्तिया ? असंखेज्जा । अणु० अणंता । एवं तिरिक्खोघो । आदेसेण णेरइय० मोह० उक्क० अणुक्क० असंखेज्जा । एवं सव्वणेरइय०-सव्वपंचिदियतिरिक्ख०-मणुस० अपज्ज०-भवणादि जाव सहस्सार ति ।

§ ५६१. भागाभाग दो प्रकारका है—जघन्य स्थितिसंक्रमविषयक और उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमविषयक । सर्वप्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तों भागप्रमाण हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्त बहुभागप्रमाण हैं । इसीप्रकार सामान्य तिर्यच्चोंमें भागाभाग जानना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव सब जीवोंके असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । जिन राशियोंकी संख्या असंख्यात है उनका इसी प्रकार भागाभाग जानना चाहिये । तथा जिन राशियोंकी संख्या संख्यात है उनका भी इसी प्रकार भागाभाग जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अपने प्रतिभागके अनुसार भागाभाग प्राप्त करना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ५६२. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? इनका भागाभाग उत्कृष्टके समान है । अजघन्य स्थितिके संक्रामकोका भागाभाग अनुत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार सर्वत्र गतिमार्गणमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि तिर्यच्चोंमें भागाभाग नारकियोंके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ५६३. परिमाण दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । आघसे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव अनन्त हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यच्चोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका परिमाण जानना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यच्च, मनुष्य अपयाप्त और भवनवासी देवोंसे लेकर सहस्वार कल्प तकके देवोंमें

मणुसेसु उक्क० संखेज्जा । अणु० असंखेज्जा । एवमाणदादि जाव अवराइदा त्ति । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वट्ठे च उक्कस्साणुक्क० संका० संखेज्जा । एवं जाव० ।

§ ५६४. जह० पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० जह० द्विदिसं० केत्तिया ? संखेज्जा । अज० अणंता । आदेसेण णेरइय० जह० अज० असंखेज्जा । एवं पठमाए । सत्तमाए च एवं चेव । सव्वपंचि०तिरि०-मणुसअपज्ज०-देवगईए देवा भवण० वाणवंतरे त्ति विदियादि जाव छट्ठि त्ति जह० संखेज्जा, अज० असंखेज्जा । एवं मणुस-जोइसियादि जाव अवराइदा त्ति । तिग्गिखेसु जह० अज० अणंता । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वट्ठे च जह० अज० संखेज्जा । एवं जाव० ।

§ ५६५. खेतं दुविहं—जह० विसयमुक्क० विसयं च । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० उक्क० द्विदिसं० केव० ? लोगस्स अमंखे० भागे । अणु० सव्वलोगे । एवं तिग्गिखोघो । सेसगइमग्गणाभेदेसु उक्क० अणुक्क० लोग० अमंखे० भागे । एवं जाव० ।

उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका परिमाण जानना चाहिये । मनुष्योंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार आनत कल्पमें लेकर अपराजित तकके देवोंमें जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी और सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका परिमाण संख्यात है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ५६४. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अजघन्य स्थितिके संक्रामक जीव अनन्त हैं । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामक जीव असंख्यात है । पहली और सातवीं पृथिवीमें इसी प्रकार जानना चाहिये । तथा सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, देवगतिमें सामान्य देव, भवनवासी देव और व्यन्तर देवोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये । दूसरी से लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव संख्यात हैं और अजघन्य स्थितिके संक्रामक जीव असंख्यात है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य और ज्योतिषी देवोंसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें जानना चाहिये । तिर्यञ्चोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामक जीव अनन्त हैं । मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी और सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामक जीव संख्यात हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ५६५. क्षेत्र दो प्रकारका है—जघन्य स्थितिके संक्रामकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला और उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव सब लोकमें रहते हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिये । तथा गति मार्गणाके शेष जितने भेद हैं उनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ५६६. जह० पयदं । दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण उक्कस्स-
भंगो । एवं सव्वासु गईसु । णवरि तिरिक्खोघे जह० लोग० संखे०भागो ।
एवं जाव० ।

§ ५६७. पोसणं दुविहं—जहणणविसयमुक्कस्सविसयं च । उक्कस्से ताव पयदं ।
दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० उक्क०द्विदिसकामएहि केव०
पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो अट्ट-तेरहचोदस० देखणा । अणु० मव्वलोगो ।

§ ५६६. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-
निर्देश । ओघसे जघन्यका भंग उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार सब गतियोंमें जानना चाहिये ।
किन्तु इतनी विशेषता है कि सामान्य तिर्यञ्चोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव लोकके संख्यातवें
भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहाँ उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें कुछ ही होते
हैं । इसलिए उनका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । तथा शेष सब संसारी जीव
अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं, अतः उनका क्षेत्र सब लोकप्रमाण बतलाया है । तिर्यञ्चोंमें यह
प्ररूपणा ओघके समान बन जाती है, अतः उनके बथनको ओघके समान कहा है । तिर्यञ्चोंके सिवा गति
मार्गणाके और जितने भेद है, सामान्यतः उनका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे उनमें
उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका क्षेत्र उक्त प्रमाण कहा है । उसी प्रकार जघन्य और
अजघन्य स्थितिसंक्रमकी अपेक्षासे चारों गतियोंमें क्षेत्र घटित कर लेना चाहिये । किन्तु तिर्यञ्चोंमें
जघन्य स्थितिके संक्रामक जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है इतना यहाँ विशेष जानना
चाहिये जो बादर पर्याप्त वायुकायिक जीवोंकी अपेक्षा प्राप्त होता है ।

§ ५६७. स्पर्शन दो प्रकारका है—जघन्यस्थितिके संक्रामकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला और उत्कृष्ट
स्थितिके संक्रामकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला । यहाँ सर्व प्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा
निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके
संक्रामकोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रस-
नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया
है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंने सब लोकका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—यहाँ मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जो लोकके असंख्यातवें
भागप्रमाण स्पर्शन बतलाया है वह वर्तमान कालकी मुख्यतासे बतलाया है, क्योंकि मोहनीयकी
उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम सातों नरकोंके नारकी, संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्च, पर्याप्त मनुष्य व
बारहवें स्पर्गतकके देवोंके ही सम्भव है पर इन सबका वर्तमान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग-
प्रमाण ही है । तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे जो कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भाग-
प्रमाण स्पर्शन बतलाया है वह अतीत कालकी अपेक्षासे बतलाया है, क्योंकि विहारवस्त्वस्थान,
वेदना, कषाय और वैक्रियिक पदसे परिणत हुये मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंने
त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और मारणान्तिक
समुद्घातसे परिणत हुए मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे
कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । यहाँ तैजस, आहारक और उपपाद ये तीन
पद सम्भव नहीं । यद्यपि स्वस्थानस्वस्थान पद होता है पर इसकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके

§ ५६८. आदेशेण णेरइय० उक्क० अणुक्क० लोगस्स असंखे० भागो छचोद्दम० देसूणा । पढमाए खेत्तं । विदियादि जाव सत्तमि त्ति उक्क० अणुक्क० सगपोसणं ।

§ ५६९. तिरिक्खेसु उक्क० लोग० असंखे० भागो छचोद्दम० देसूणा । अणु० सव्वलोगो । पंचिंदियतिरिक्खतिए ३ मणुसतिए च एवं चेव । णवरि अणु० लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा । पंचि० तिरि० अपज्ज०-मणु० अपज्ज० उक्क० खेत्तं । अणुक्क० लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा ।

असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है । ओघसे अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन सब लोक है यह स्पष्ट ही है ।

§ ५६८. आदेशसे नारकियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रोंका और त्रसनालीके चौदह भागमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । पहली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन अपने-अपने नरकके स्पर्शनके समान जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंका और प्रत्येक नरकके नारकियोंका जो स्पर्शन बतलाया है वही यहाँ सामान्य नारकियोंमें और प्रत्येक नरकके नारकियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंकी अपेक्षासे प्राप्त होता है, इसलिये सामान्य नारकियोंका और प्रत्येक नरकके नारकियोंका जिस प्रकारसे स्पर्शन घटित करके बतलाया है उन्नी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिये ।

§ ५६९. तिर्यञ्चोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंने सब लोकका स्पर्शन किया है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें और मनुष्य-त्रिकमें इसी प्रकार स्पर्शन जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकका स्पर्शन किया है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्च ही करते हैं और इनका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः तिर्यञ्चोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । तथा इनका अतीत कालीन स्पर्शन जो त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण बतलाया है सो इसका कारण यह है कि ऐसे तिर्यञ्चोंने मारणान्तिक समुद्रातद्वारा नीचे कुछ कम छह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है, क्योंकि जो तिर्यञ्च मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम कर रहे हैं उनका संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्च, मनुष्य और नारकियोंमें ही मारणान्तिक समुद्रघात करना सम्भव है । मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रम सब तिर्यञ्चोंके सम्भव है और वे सब लोकमें पाये जाते हैं, अतः मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक तिर्यञ्चोंका स्पर्शन सब लोकप्रमाण बतलाया है । सामान्य तिर्यञ्चोंमें जो उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन कहा है वह पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिककी मुख्यतासे ही कहा है । तथा मनुष्यत्रिकमें भी यह स्पर्शन इसी प्रकारसे प्राप्त होता है, अतः इन तीन

§ ५७०. देवगदीए देवेसु उक्क० अणुक० लोग० असंखे०भागो० अट्ट-णव-
चोदसभागा वा देसुणा । एवं मोहम्मीसाणे । भवण०-वाण०-जोदिसि० उक्क० अणुक०
लोग० असंखे० भागो अट्ट-णव-चोदस० देसुणा । सणक्कुमारादि जाव सहस्सार
त्ति उक्क० अणुक० लोग० अमंखे०भागो अट्टचोदस० देसुणा । आणदादि जाव
अच्चुदा त्ति उक्क० खेतं । अणुक० लोग० असंखे०भागो छचोदस० देसुणा । उवरि
खेतभंगो । एवं जाव० ।

प्रकारके तिर्येचोंमें और तीन प्रकारके मनुष्योंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन सामान्य तिर्येच्चोंके समान बतलाया है । किन्तु उक्त तीन प्रकारके तिर्येच्चोंमें और तीन प्रकारके मनुष्योंमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके स्पर्शनमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि इन तीन प्रकारके तिर्येचों और तीन प्रकारके मनुष्योंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीतकालीन स्पर्शन सब लोक है, अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण बतलाया है । जो तिर्येच्च या मनुष्य मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके पंचेन्द्रिय तिर्येच्च लब्ध्यपर्याप्तकोंमें या लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके प्रथम समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम पाया जाता है । अब जब इनके वर्तमानकालीन और अतीतकालीन स्पर्शनका विचार करते हैं तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है । इसीसे यहाँ इन दोनों मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । वैसे पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त तिर्येच्चोंका और लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका वर्तमानकालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीतकालीन स्पर्शन सब लोक बतलाया है जो उनके अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रम होते हुए सम्भव है । इसीसे यहाँ इन दोनों मार्गणाओंमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका वर्तमान कालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीतकालीन स्पर्शन सब लोकप्रमाण बतलाया है ।

§ ५७०. देवगतिमें देवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सौधर्म और ऐशान कल्पमें जानना चाहिये । भवनवासी, व्यन्तर और व्यातिपी देवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आनत कल्पसे लेकर अच्युत कल्प तकके देवोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इससे आगेके देवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—सामान्य देवोंका व भवनवासी आदि देवोंका जो वर्तमानकालीन व अतीतकालीन स्पर्शन बतलाया है वही यहाँ उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक उक्त देवोंका स्पर्शन जानना चाहिये जो मूलमें बतलाया ही है । अन्तर केवल आनतादिक चार कल्पोंके देवोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके स्पर्शनमें है । बात यह है कि आनतादिक चार कल्पोंमें जो स्वयोग्य उत्कृष्ट

§ ५७१. जहण्णए पयदं । दुविहो णिदेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० जह० अज० खेत्तंभंगो । आदेसेण णेगइय० जह० खेत्तं । अज० छचोदस० । पढमाए खेत्तं । विदियादि जाव सत्तमा त्ति जह० खेत्तं । अज० सगपोसणं । तिरि० जह० अज० खेत्तं । सव्वपंचिदियतिरिक्ख-सव्वमणुस० जह० लोग० अमंखे० भागो । अज० लो० असं० भागो सव्वलोगो वा । देवेषु जह० खेत्तं । अज० लोग० असंखे० भागो अट्ट-णवचोद० देसूणा । एवं मोहम्मीसाणे । भवण-वाण-जोदिमि० जह० खेत्तं । अज० अणु० भंगो । सणक्कुमागदि जाव अच्चुदा त्ति एवं चैव । उवरि खेत्तं । एवं जाव० ।

स्थितिवाले द्रव्यलिंगी मुनि उत्पन्न होते हैं उन्हीं देवोंके प्रथम समयमें उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम पाया जाता है । पर ऐसे देव संख्यात ही होते हैं, अतः इनका वर्तमानकालीन व अतीतकालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है । इसीसे यहाँ इन चार कल्पोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य स्पर्शन जानना चाहिये ।

§ ५७१ जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । आघसे मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । आदेशसे नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । पहली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है । दूसरीसे लेकर मातवी पृथिवी तकके नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्र समान है । तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन अपने अपने नरकके स्पर्शनके समान है । तिर्यञ्चोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । सब पचेन्द्रिय तिर्यच और सब मनुष्योंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । देवोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ व कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सौधर्म और गेशान कल्पमें जानना चाहिये । भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके स्पर्शनके समान है । सनत्कुमारसे लेकर अन्युत बलर तकके देवोंमें इसी प्रकार स्पर्शन जानना चाहिये । इससे आगेके देवोंमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका क्षेत्र सब लोक बतलाया है । इनका स्पर्शन भी इतना ही है । अतः इनके स्पर्शनको क्षेत्रके समान कहा है । सामान्यसे नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है, स्पर्शन भी इतना ही प्राप्त होता है, क्योंकि जो अपने योग्य जघन्य स्थितिवाले असंज्ञी जीव नरकमें उत्पन्न होते हैं उन्हीं नारकियोंके जघन्य स्थितिसंक्रम पाया जाता है । किन्तु अमंज्ञी जीव प्रथम नरकमें ही उत्पन्न होते हैं और प्रथम नरकका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं है, अतः सामान्यसे नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान बतलाया है । अजघन्य स्थितिके संक्रामक नारकियोंमें

जघन्य स्थितिके संक्रामक नारकियोंके सिवा शेष सब नारकियोंका समावेश हो जाता है। और इनका वर्तमानकालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा अतीतकालीन स्पर्शन त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण है। इसीसे अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन उक्तप्रमाण बतलाया है। प्रथम पृथिवीके नारकियोंका स्पर्शन उनके क्षेत्रके समान ही है। अतः यहाँ प्रथम पृथिवीमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान बतलाया है। दूसरेसे लेकर छठे नरक तक जघन्य स्थितिसंक्रम उन सम्यग्दृष्टि नारकियोंके अन्तिम समयमें होता है जिन्होंने वहाँ उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर ली है। तथा सातवें नरकमें जघन्य स्थितिसंक्रम उन मिथ्यादृष्टि नारकियोंके सम्भव है जो जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहें हैं पर अन्तमें मिथ्यादृष्टि हो गये हैं। अब यदि इन जीवोंके स्पर्शनका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है। और इनका क्षेत्र भी इतना ही है, अतः उक्त नरकोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान बतलाया है। अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंके सिवा शेष सब नारकियोंका समावेश हो जाता है। अतः इनका स्पर्शन अपने-अपने नरकके स्पर्शनके समान बतलाया है। तिर्यचोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि जघन्य स्थितिका संक्रम बाद एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें ही सम्भव है। तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंमें एकेन्द्रिय मुख्य है और उनका स्पर्शन सब लोकप्रमाण है। इन दोनोंका क्षेत्र भी इतना ही है। अतः इनका स्पर्शन क्षेत्रके समान बतलाया है। पंचेन्द्रिय आदि तिर्यचोंमें और लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंमें माहनीयकी जघन्य स्थितिका संक्रम उन्हींके सम्भव है जो एकेन्द्रिय पर्याप्तमें आकर यहाँ उत्पन्न हुए हैं। अब यदि इनके क्षेत्रका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, स्पर्शनमें भी इससे विशेष अन्तर नहीं पड़ता, अतः इनका जघन्य स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। मनुष्यत्रिकामें माहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामक क्षपक सूक्ष्मसंरथाय जीव होते हैं और उनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। इसीसे यहाँ तीन प्रकारके मनुष्योंमें भी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है यह बतलाया है। तथा इन सबमें अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक है यह स्पष्ट ही है। जो असंज्ञी जीव मर कर देवमें उत्पन्न होते हैं उन्हीं देवोंके जघन्य स्थितिका संक्रम सम्भव है। अब यदि इनके स्पर्शनका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता। क्षेत्र भी इतना ही है। अतः देवोंमें माहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान बतलाया है। अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंके सिवा शेष सब देवोंका प्रहरण हो जाता है। और सामान्यमें देवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण है। इसीसे यहाँ अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन उक्तप्रमाण बतलाया है। सौधर्म और पेशान कल्पमें यह स्पर्शन उक्त प्रकारसे बन जाता है अतः यहाँ इस स्पर्शनका उक्त प्रकारसे जाननेकी सूचना की है। भवनरासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें जो जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव होते हैं उनका यदि स्पर्शन देखा जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है। क्षेत्र भी इतना ही है, अतः इनके स्पर्शनको क्षेत्रके समान कहा है। तथा इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके समान बहुभाग राशि अजघन्य स्थितिकी संक्रामक है। इसलिये इनके स्पर्शनको एक समान कहा है। इसी प्रकार सनत्कुमारसे लेकर अच्युत कल्प तक जानना चाहिये। तथा इससे आगेके जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामक देवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है यह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार विचार करके

§ ५७१. जहण्णण पयदं । दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० जह० अज० खेत्तमंगो । आदेसेण णेग्इय० जह० खेत्तं । अज० छचोहम० । पढमाए खेत्तं । विदियादि जाव सत्तमा त्ति जह० खेत्तं । अज० सगपोमणं । तिरि० जह० अज० खेत्तं । मच्चपंचिंदियतिरिक्ख-सच्चमणुम० जह० लोग० अमंखे० भागो । अज० लो० अमं० भागो मच्चलोगो वा । देवेमु जह० खेत्तं । अज० लोग० अमंखे० भागो अट्ट-णवचोह० देसूणा । एवं मोहम्मीमाणे । भवण-वाण-जोदिमि० जह० खेत्तं । अज० अणु० भंगो । मणक्कुमागदि जाव अच्चुदा त्ति एवं चेव । उवग्गि खेत्तं । एवं जाव० ।

स्थितिवाले द्रव्यलिंगी मुनि उत्पन्न होते हैं उन्हीं देवोंके प्रथम समयमें उत्कृष्ट स्थितिका संकाम पाया जाता है । पर ऐसे देव संख्यात ही होते हैं, अतः इनका वर्तमानकालीन व अतीतकालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है । इसीसे यहाँ इन चार कल्पोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संकामकोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य स्पर्शन जानना चाहिये ।

५७१. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । आघसे मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके संकामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । आदेशसे नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संकामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिके संकामकोंने त्रसनालीके चौदह भागोंसे कुछ कम कुछ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । पहली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संकामकोंका स्पर्शन क्षेत्र समान है । तथा अजघन्य स्थितिके संकामकोंका स्पर्शन अपने अपने नरकके स्पर्शनके समान है । निर्दुर्गचोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संकामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । सब पंचेन्द्रिय तिर्यच और सब मनुष्योंमें जघन्य स्थितिके संकामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य स्थितिके संकामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकरुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । देवोंमें जघन्य स्थितिके संकामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य स्थितिके संकामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंसे कुछ कम आठ व कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सौधर्म और ऐशान कल्पमें जानना चाहिये । भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जघन्य स्थितिके संकामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य स्थितिके संकामकोंका स्पर्शन अनुत्कृष्ट स्थितिके संकामकोंके स्पर्शनके समान है । सतत्कुमारसे लेकर अच्युत वल्लभ तकके देवोंमें इसी प्रकार स्पर्शन जानना चाहिये । इससे आगेके देवोंमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संकामकोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अजघन्य स्थितिके संकामकोंका क्षेत्र सब लोक बतलाया है । इनका स्पर्शन भी इतना ही है । अतः इनके स्पर्शनका क्षेत्रके समान कहा है । सामान्यसे नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संकामकोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । स्पर्शन भी इतना ही प्राप्त होता है, क्योंकि जो अपने योग्य जघन्य स्थितिवाले असंज्ञी जीव नरकमें उत्पन्न होते हैं उन्हीं नारकियोंके जघन्य स्थितिमंक्रम पाया जाता है । किन्तु असंज्ञी जीव प्रथम नरकमें ही उत्पन्न होते हैं और प्रथम नरकका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं है, अतः सामान्यसे नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संकामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान बतलाया है । अजघन्य स्थितिके संकामक नारकियोंमें

जघन्य स्थितिके संक्रामक नारकियोंके सिवा शेष सब नारकियोंका समावेश हो जाता है। और इनका वर्तमानकालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा अतीतकालीन स्पर्शन त्रस नाज़ीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण है। इसीसे अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन उक्तप्रमाण बतलाया है। प्रथम पृथिवीके नारकियोंका स्पर्शन उनके क्षेत्रके समान ही है। अतः यहाँ प्रथम पृथिवीमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान बतलाया है। दूसरेसे लेकर छठे नरक तक जघन्य स्थितिसंक्रम उन सम्यग्दृष्टि नारकियोंके अन्तिम समयमें होता है जिन्होंने वहाँ उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर ली है। तथा सातवें नरकमें जघन्य स्थितिसंक्रम उन मिथ्यादृष्टि नारकियोंके सम्भव है जो जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहे हैं पर अन्तमें मिथ्यादृष्टि हो गये हैं। अब यदि इन जीवोंके स्पर्शनका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है। और इनका क्षेत्र भी इतना ही है, अतः उक्त नरकोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान बतलाया है। अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंके सिवा शेष सब नारकियोंका समावेश हो जाता है। अतः इनका स्पर्शन अपने-अपने नरकके स्पर्शनके समान बतलाया है। तिर्यचोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि जघन्य स्थितिका संक्रम बाद एकन्द्रिय पर्यायकोंमें ही सम्भव है। तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंमें एकन्द्रिय मुख्य है और उनका स्पर्शन सब लोचप्रमाण है। इन दोनोंका क्षेत्र भी इतना ही है। अतः इनका स्पर्शन क्षेत्रके समान बतलाया है। पंचेन्द्रिय आदि तिर्यचोंमें और लब्धपयाप्तक मनुष्योंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका संक्रम उन्हींके सम्भव है जो एकन्द्रिय पर्यायमें आकर यहाँ उत्पन्न हुए हैं। अब यदि इनके क्षेत्रका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, स्पर्शनमें भी इससे विशेष अन्तर नहीं पड़ता, अतः इनका जघन्य स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। मनुष्यत्रिकमें माहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामक क्षणक सूक्ष्ममंशराय जीव होते हैं और उनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। इसीसे यहाँ तीन प्रकारके मनुष्योंमें भी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है यह बतलाया है। तथा इन सबमें अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक है यह स्पष्ट ही है। जो असंज्ञी जीव मर कर देवमें उत्पन्न होते हैं उन्हीं देवोंके जघन्य स्थितिका संक्रम सम्भव है। अब यदि इनके स्पर्शनका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता। क्षेत्र भी इतना ही है। अतः देवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान बतलाया है। अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंके सिवा शेष सब देवोंका ग्रहण हो जाता है। और सामान्यमें देवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालोकके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण है। इसीमें यहाँ अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन उक्तप्रमाण बतलाया है। सौधर्म और पेशान कल्पमें यह स्पर्शन उक्त प्रकारमें बन जाता है अतः यहाँ इस स्पर्शनको उक्त प्रकारसे जाननेकी सूचना दी है। भवनामी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें जो जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव होते हैं उनका यदि स्पर्शन देखा जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है। क्षेत्र भी इतना ही है, अतः इनके स्पर्शनको क्षेत्रके समान कहा है। तथा इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके समान बहुभाग राशि अजघन्य स्थितिकी संक्रामक है। इसलिये इनके स्पर्शनको एक ममन कहा है। इसी प्रकार सनत्कुमारसे लेकर अच्युत कल्प तक जानना चाहिये। तथा इसमें आगेके जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामक देवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है यह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार विचार करके

५७२. णाणाजीवेहि कालो दुविहो जहण्णुक्कस्सट्टिदिसंक्रमविसयभेदेण । तत्थुक्कस्से ताव पयदं । दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोहो उक्कं ट्टिदिमंकां केवचिरं ? जहं एयमं, उक्कं पल्लिदो अमंखे भागो । अणुं सच्चद्धा । एवं मच्चणिरय-मच्चतिरिक्ख-देवा भवणादि जाव महम्मर ति । णवरि पंचिंतिरिं-अपज्जं उक्कं ट्टिदिमं जहं एयमं, उक्कं आवलिं अमंखे भागो । अणुं ओघो ।

५७३. मणुमतिण्ण उक्कं जहं एयसं, उक्कं अंतोमुहुत्तं । अणुं ओघमंगो । मणुसअपज्जं उक्कं जहं एयममओ, उक्कं आवलिं अमंखे भागो । अणुं जहं

अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य स्पशनका विचार कर लेना चाहिये ।

§ ५७२. नाना जीवोंकी अपेक्षा काल दो प्रकारका है—जघन्य स्थितिके संक्रामकोंकी विषय करनेवाला और उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंकी विषय करनेवाला । सर्व प्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—अपेक्षानिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सामान्य देव और भवनवासी देवोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका काल ओघके समान है ।

विशेषार्थ—नाना जीवोंकी अपेक्षा मोहनीयकी स्थितिका बन्ध कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक होता है । इसके बाद एक भी जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्धक नहीं रहता । इसीसे यहाँ मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम उत्कृष्ट स्थितिवन्धवा अधिनाभावी है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं, उससे अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा बतलाया है । सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सामान्य देव और भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देव ये मार्गणाँ ऐसी है जिनमें यह ओघप्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान बतलाया है । किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है । वात यह है कि जो संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके इनमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके यह उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम पाया जाता है । पर ऐसे जीव पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक ही उत्पन्न हो सकते हैं । इसके बाद नियमसे अन्तर पड़ जाता है । इसलिये पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । इनमें जघन्य कालका कथन सुगम है ।

§ ५७३ मनुष्यत्रिकमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका काल ओघके समान है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय कम खुदाभव-

खुदा० समग्रुणं, उक्त० पल्लिदो० अमंखे० भागो । आणदादि जाव सव्वट्टे त्ति उक्त० जह० एयसमओ, उक्त० संखेज्जा समया । अणु० सव्वट्टा । एवं जाव० ।

§ ५७४. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० जह० द्विदिसंक्रां केव० ? जह० एयममओ, उक्त० मंखेज्जा समया । अज० सव्वट्टा । एवं मणुसतिय० । विदियादि जाव छट्ठि त्ति जोदिसियादि जाव सव्वट्टा त्ति च ।

ग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवै भागप्रमाण है । अज्ञान कल्पसे लेकर सर्वार्थ-सिद्धि तकके देवोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है । यतः उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले मनुष्य संख्यात होते हैं, अतः इनमें उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तमें अधिक नहीं प्राप्त होता । यतः उत्कृष्ट स्थितिके मनुष्य उत्कृष्ट स्थितिवन्धका अविनाभायी है अतः मनुष्यत्रिकमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है । तथा मनुष्यत्रिकमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव सदा पाये जाते हैं, अतः इनका काल सर्वदा बतलाया है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल ता पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान घटित कर लेना चाहिये । तां इनके अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके कालमें कुछ विशेषता है । वात यह है कि यह सान्तर मार्गणा है और इसका जघन्य काल खुदाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवै भागप्रमाण है । इसीमें यहा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण प्राप्त होता है । यहाँ जघन्य कालमें जो एक समय कम किया है सो वह उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकी अपेक्षासे किया है । अज्ञानतादिकमें उत्कृष्ट स्थिति उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें सम्भव है । किन्तु यहाँ उत्कृष्ट स्थितियाले मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं और वे संख्यात होते हैं, अतः यहाँ उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय बतलाया है । यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है । इसी प्रकार अपनी-अपनी विशेषताका जातकर अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टस्थितिके संक्रामकोंका काल जान लेना चाहिये ।

§ ५७४. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—आंघनिर्देश और आदेशनिर्देश । आंघसे मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अ जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें, दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारक्रियोंमें और ज्यातिपी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें जानना चाहिये ?

विशेषार्थ—आंघसे मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम क्षणिक जीवके सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थानमें एक समय अधिक एक आवलि कालके शेष रहने पर होता है । यतः क्षपकश्रेणि पर चढ़नेका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है अतः आंघमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है । आंघसे अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है । मूलमें जो मनुष्यत्रिक, दूसरी पृथिवीसे

१५७५. आदेमेण पेग्इय० जह० द्विदिमं० जह० एयसमओ, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अज० ओघो । एवं पढमाण सव्वपंचिदियतिरिक्ख-देव०-भवण०-वाणवेतर त्ति । मत्तमाण जह० जह० एयस०, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । अज० ओघो ।

लेकर छठी पृथिवी तकके नारकी और ज्योतिषी देवोंमें लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव जो ये मार्गणाएँ गिनाई हैं सो इनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल ओघके समान बन जाता है। इसके कारण भिन्न भिन्न हैं। मनुष्यत्रिकका कारण तो ओघके समान ही है, क्योंकि क्षपकश्रिणीकी प्राप्ति मनुष्यत्रिकके ही होती है। दूसरी पृथिवीमें लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें और ज्योतिषी देवोंमें यह कारण है कि जो उत्कृष्ट आयुके साथ उत्पन्न हों और उत्पन्न होनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्ते कालके भीतर सम्यग्दृष्टि हांकर अनन्तानुबन्धीचतुष्करी विसंयोजना कर लें उनके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिभङ्गकम होता है। ऐसे जीव मर कर मनुष्योंमें ही उत्पन्न होते हैं अतः उनका प्रमाण संख्यात ही होगा। यही कारण है कि इन मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय बतलाया है। सोधर्म कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें उन्हींके भयके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिसंक्रम होता है जो पहले मनुष्य पयायमें दो बार उपशमश्रिणी पर चढ़े हों और फिर दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करके उत्कृष्ट आयुके साथ उक्त देवोंमें उत्पन्न हुए हों। यतः ये भी मर कर पयात्त मनुष्योंमें ही उत्पन्न होते हैं अतः इनका प्रमाण संख्यात ही प्राप्त होता है। यही कारण है कि इनमें भी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। इन सब मार्गणाओंमें अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है।

१५७५. आदेशसे नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकियोंमें तथा सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, सामान्य देव, भवनवासी देव और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिये। सातवीं पृथिवीमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल ओघके समान है।

विशेषार्थ—नरकमें जो असेंजी पंचेन्द्रिय अपने योग्य जघन्य स्थितिके साथ उत्पन्न होते हैं उन्हींके जघन्य स्थितिका संक्रम पाया जाता है। इनके वहाँ निरन्तर उत्पन्न होनेका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसीसे यहाँ सामान्य नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। प्रथम नरकके नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, सामान्य देव, भवनवासि देव और व्यन्तर देव इन मार्गणाओंमें यह काल इसी प्रकार प्राप्त होता है, इसलिये इनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल सामान्य नारकियोंके समान कहा है। इसी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें एकेन्द्रियोंका उत्पन्न कराकर यह काल प्राप्त करना चाहिये। कुछ ऐसे काल हैं जो नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्टरूपसे पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाये हैं। उदाहरणार्थ सासादनसम्यग्दृष्टिका काल, सम्यग्मिथ्यादृष्टिका काल, अनन्तानुबन्धीका विसंयोजनाकाल, मिथ्यात्वकी प्राप्त होनेका काल आदि। सातवें नरकमें जघन्य स्थिति उन्हीं जीवोंके होती है जो जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहकर अन्तमें अन्तर्मुहूर्ते काल शेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुए हैं। उनके इस प्रकार मिथ्यात्वको प्राप्त होनेका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः

५७६. तिग्गिखेसु जह० अज० मव्वद्धा । मणुमअपज्ज० जह० जह० एयस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अज० जह० आवलिया समयूणा, उक्क० पल्लिदो० असंखे०भागो । एवं जाव ।

५७७. अंतरं दुविह—जह० उक्क० । उक्कस्सए ताव पयदं । दुविहो णिहेसो ओघादेमभेदेण । तत्थोघेण मोह० उक्क० द्विदिमंक्क० अंतरं केव० ? जह० एयस०, उक्क० अंगुलस्स असंखे०भागो असंखेज्जाओ ओमप्पिणि-उस्मप्पिणीओ । अणु० णत्थि अंतरं । एवं चदुमु वि गदीमु । णवरि मणुमअपज्ज० अणु० जह० एयस०, उक्क० पल्लिदो० असंखे०भागो । एवं जाव० ।

यहाँ जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल क्रमसे उक्तप्रमाण कहा है । इन सब मार्गणाओंमें अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल आंधके समान सर्वदा है यह स्पष्ट ही है ।

५७६. तिर्यञ्चोमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोमें एकेंद्रियोंकी प्रधानता है और इनमें जघन्य तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामक जीव सदा पाये जाते हैं । इसीसे इनमें जघन्य तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा कहा है । पहले मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित करके बतला आये हैं । उन्ही प्रकार यहाँ जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

५७७. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । सर्वे प्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आंध और आदेश । उनमेंसे आंधकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका कितना अन्तरकाल है । जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है जो असंख्यातासंख्यात अपर्याप्ति-उत्सर्पिणी कालप्रमाण है । तथा ओघसे अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका अन्तर काल नहीं है । उन्ही प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—महाबन्धमें उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । यतः उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम उत्कृष्ट स्थितिवन्धका अविनाभावी है, अतः यहाँ मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण बतलाया है । तथा यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका अन्तरकाल नहीं है यह स्पष्ट ही है । यह आंधप्ररूपणा चारों गतियोंमें बन जाती है, अतः वहाँ इस प्ररूपणाको आंधके समान कहा है । किन्तु मनुष्य अपर्याप्त यह सान्तर मार्गणा है और इसका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यातवें भाग-

६५७८. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० जह० द्विदिमंका० अंतरं जह० एयममओ, उक्क० छम्मामं । अज० णत्थि अंतरं । एवं मणुमतिए । णवरि मणुमिणीसु वामपुधत्तं । आदेसेण सच्चत्थ उक्क०-भंगो । णवरि निग्गिखोघे जह० अज० णत्थि अंतर । एवं जाव० ।

६५७९. भावो सच्चत्थ ओट्ठओ भावो ।

६५८०. अप्पावहुअं दुविहं—द्विदि-जीवप्पावहुअभेदेण । द्विदिअप्पावहुअं दुविहं जहण्णक्कस्सद्विदिमंतकम्मविमयभेदेण । तत्थुक्कस्से ताव पयदं । दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । आघेण उक्कस्सद्विदिमंकां थोवो । जद्विदिमंकां विसेसाहिओ ।

प्रमाण हैं। उसीसे यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असम्बन्धितवें भागप्रमाण कहा है। अनाहारक मार्गणा तक इसी प्रकार यथायोग्य अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिये।

६५७८ जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा माहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका अन्तरकाल नहीं है। उसी प्रकार मनुष्यत्रिकसे जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। आदेशकी अपेक्षा सर्वत्र उत्कृष्टके समान भग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सामान्य तिर्यञ्चोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे माहनीयकी जघन्य स्थितिका संक्रम क्षपकश्रेणिके प्राप्त होता है और क्षपकश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। इसीसे यहाँ जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना बतलाया है। ओघसे अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका अन्तर नहीं है यह स्पष्ट ही है। यतः क्षपकश्रेणिकी प्राप्ति मनुष्यत्रिकसे सम्भव है, अतः यहाँ भी यह अन्तर ओघके समान बतलाया है। किन्तु मनुष्यत्रिकीके क्षपकश्रेणिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व पाया जाता है, अतः इस मार्गणामे जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण बतलाया है। तथा आदेशकी अपेक्षा सर्वत्र जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरके समान पाया जाता है, इसलिये इस कथनको उत्कृष्टके समान कहा है। किन्तु सामान्य तिर्यञ्चोंमें जघन्य और अजघन्य दोनों प्रकारकी स्थितिके संक्रामक जीव सदा पाये जाते हैं, अतः इनका अन्तरकाल नहीं है यह बतलाया है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य अन्तर काल घटित कर लेना चाहिये।

६५७९. भाव सर्वत्र औदयिक है ।

६५८०. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—स्थितिअल्पबहुत्व और जीवअल्पबहुत्व । स्थिति अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य स्थितिअल्पबहुत्व और उत्कृष्ट स्थितिअल्पबहुत्व । इनमेंसे सर्व प्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम थोड़ा है। यस्स्थिति संक्रम विशेष अधिक है।

१. ता०-आ०प्रत्योः जहण्णद्विदिसकमो इति पाठ ।

केचित्तियमेत्तेण ? आवलियमेत्तेण । एवं चदुमु गदीमु । एवं जाव० ।

§ ५८१. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । तत्थोघेण जहण्णओ द्विदिसंक्रमो थोवो, एयणिसेयपमाणत्तादो । जट्टिदी अमंखे० गुणा, समया-हियावलियपमाणत्तादो । एवं मणुसतिए । आदेसेण णेरइय० सन्वत्थोवा जह० द्विदि-संक्रमो । जट्टिदिसंक्रमो विसेमाहिओ । एवं सन्वासु गईसु । एवं जाव० ।

§ ५८२. जीवप्पावहुअं दुविहं जहण्णुक० द्विदिसंक्रमयविमयभेदेण । उक्कस्सए ताव पयदं । दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । तन्थ ओघेण उक्क० द्विदिसंक्रा० थोवा । अणु० अणंतगुणा । एवं तिग्गिखोघे । आदेसेण णेरइय० मोह० उक्क०

कितना विशेष अधिक है ? एक आवलिप्रमाण अधिक है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होनेपर क्वावलिके वाद उदयावलिप्रमाण निपेकोंको छोड़कर शेषका संक्रम होना है । उसलिये उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमसे यत्स्थिति एक आवलि-प्रमाण अधिक प्राप्त होनी है । यहाँ संक्रम दो आवलि कम उत्कृष्ट स्थितिका हुआ है किन्तु यत्स्थिति एक आवलि कम उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण पाई जाती है । इसीसे प्रकृतमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमसे यत्स्थितिको एक आवलि अधिक बतलाया है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें यह अल्पबहुत्व जानना चाहिये । आगे अनाहारक मार्गणा तक भी इसका इसी प्रकार यथायोग्य विचार करके कथन करना चाहिये ।

§ ५८१ जघन्यका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा जघन्य स्थितिसंक्रम स्तोत्रक है, क्योंकि उसका प्रमाण एक निपेक है । उससे यत्स्थिति असंख्यातगुणी है, क्यों कि उसका प्रमाण एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोत्रक है । उससे यत्स्थिति विशेष अधिक है । इसी प्रकार सब गतियोंमें जानना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—क्षपक जीवके मूहसम्परायका एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण काल शेष रह जाने पर जघन्य स्थितिसंक्रम प्राप्त होता है । यहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमका प्रमाण एक निपेक है और यत्स्थितिका प्रमाण एक समय अधिक एक आवलि है । इसीसे प्रकृतमें जघन्य स्थिति-संक्रमसे यत्स्थिति असंख्यातगुणी बतलाई है । यह अल्पबहुत्व मनुष्यत्रिकमें घटित हो जाता है, इसलिये उनमें इस अल्पबहुत्वको ओघके समान बतलाया है । तथा नारकी आदि शेष मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिसंक्रमसे यत्स्थिति एक आवलि अधिक होती है यह स्पष्ट ही है । इसीसे वहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमसे यत्स्थितिको विशेष अधिक बतलाया है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथा-योग्य अल्पबहुत्वको जान लेना चाहिये ।

§ ५८२. जीवअल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य स्थितिके संक्रामकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला और उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला । सर्वप्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव थोड़े हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव अनन्तगुणें हैं । इसी प्रकार सामान्य

द्विदिसं० थोवा । अणु० द्विदिसं० अमंखे०गुणा । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदिय-तिरिक्ख-मणुम-मणुसअपज्जं०-देवा जाव अवगइदा त्ति । मणुसपज्जं०-मणुसिणीसु सव्वद्वं०देवेमु एवं चेव । णवरि मंखेज्जगुणं कायच्चं । एवं जाव० ।

§ ५८३. जह० पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघादेसं सव्वमुक्कस्सभंगो । णवरि तिरिक्खा णारयभंगो ।

एवं मूलपयडिद्विदिसंक्रमे तेवीसमणिओगहागणि समत्ताणि ।

§ ५८४. भुजगारसंक्रमे त्ति तत्थ इमाणि तेरस अणियोगहागणि—समुक्कित्ताणा जाव अप्पावहुए त्ति । समुक्कित्ताणाणु० दुविहो णिहेसो ओघादेमभेदेण । ओघेण अत्थि मोह० भुजगार-अप्पदर-अवद्विद-अवत्तव्वद्विदिसंक्रामया । एवं मणुसतिए । आदेसेण सव्वगइमग्गणाविसेसेसु द्विदिविहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव थोड़े हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव असंख्यातगुण हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और अपराजित तकके देवोंमें जानना चाहिये । मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यनी और सर्वार्थसिद्धिके देशोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु यहाँ संख्यातगुणा करना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

§ ५८३. जयन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । यहाँ ओघ और आदेश दोनोंका कथन उत्कृष्टके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चोंका भंग नारकियोंके समान है । अर्थात् जयन्य स्थितिके संक्रामक तिर्यचोंसे अजयन्य स्थितिके संक्रामक तिर्यञ्च असंख्यातगुण हैं ।

इसी प्रकार मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रममे तेईम अनुयोगद्वार समाप्त हुए ।

§ ५८४. भुजगारसंक्रमका प्रकरण है । उसमें समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक ये तेरह अनुयोगद्वार जानने चाहिये । समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी भुजगार, अन्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिके संक्रामक जीव हैं । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमे जानना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा गति-मार्गणाके सब भेदोंमें स्थितिभिक्तिके समान कथन जानना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—भुजगार अनुयोगद्वारमें भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य इन चारोंका विचार किया जाता है । इसके अन्तर् अधिकार तेरह हैं । वे ये हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व । सर्व प्रथम यहाँ समुत्कीर्तनाका विचार करते हैं । ओघसे भुजगारस्थितिके संक्रामक अल्पतरस्थितिके संक्रामक, अवस्थितस्थितिके संक्रामक और अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक जीव हैं । जो कम स्थितिका संक्रम करके अन्तर समयमें अधिक स्थितिका संक्रम करे उसे भुजगारस्थितिका संक्रामक कहते हैं । जो अधिक स्थितिका संक्रम करके

§ ५८५. सामित्ताणु० दुविहो णिहेसो— ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० भुज०-अवट्टि० संक्रमो कस्स ? अण्णद० मिच्छाइड्डिस्स । अप्प० संक्रमो कस्स ? अण्णद० सम्माइड्डिस्स वा मिच्छाइड्डिस्स वा । अवत्तव्वसंक्रमो कस्स ? अण्णद० उवसामणादो परिवदमाणयस्स पढमसमयदेवस्स वा । एवं मणुसतिण् । णवरि पढमसमयदेवालावो ण कायव्वो । आदेसेण मव्वगइमग्गणावयवेसु ओघभंगो । णवरि अवत्तव्वपदमामित्तं णत्थि । अण्णं च पंचि०तिग्गि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० भुज०-अप्प०-अवट्टि० कस्स ? अण्णदरस्स । आणदादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति अप्पदरपदमोघभंगो । अणुहिसादि जाव सव्वट्टे त्ति अप्पद० कस्स ? अण्णद० । एवं जाव० ।

§ ५८६. कालाणु० दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह०

अनन्तर समयमे कम स्थितिका संक्रम करे उसे अल्पतरस्थितिका संक्रामक कहते हैं । जिसके पहले समयके समान ही दूसरे समयमे स्थितिका संक्रम हो उसे अवस्थितसंक्रामक कहते हैं और जो असंक्रामक होनेके बाद पुनः संक्रामक होता है उसे अवक्तव्यस्थितिका संक्रामक कहते हैं । आघसे इन चारों प्रकारके जीवोंका पाया जाना सम्भव है, इमलिये आघसे भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अरक्तव्य स्थितिके संक्रामक जीव है यह कहा है । मनुष्यत्रिकमे यह व्यवस्था घटित हो जाती है, अतः इनके कथनको आघके समान कहा है । इनके सिवा गतिमार्गणाके और जितने भेद है उनमें स्थितिविभक्तिके समान भुजगार, अल्पतर और अवस्थित ये तीन भेद ही सम्भव हैं तथा आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक एक अल्पतर पद ही सम्भव है । इमलिये इनके कथनको स्थितिविभक्तिके समान कहा है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक यथायांग्य जानना चाहिये ।

§ ५८७। स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आघनिर्देश और आदेश-निर्देश । आघकी अपेक्षा मोहनीयकी भुजगार और अवस्थितस्थितिका संक्रम किसके होता है ? किसी एक मिथ्यादृष्टिके होता है । अल्पतरस्थितिका संक्रम किसके होता है ? किसी एक सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होता है । अवक्तव्यस्थितिका संक्रम किसके होता है ? जो उपशामक उपशामनासे च्युत हो रहा है उसके होता है । या जो उपशामक मर कर देव हुआ है उसके प्रथम समयमें होता है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि 'जो उपशामक मर कर प्रथम समयवर्ती देव है उसके होता है' यह आलाप यहाँ नहीं कहना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके सब भेदोंमें आघके समान जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अवक्तव्यपदका स्वामित्व नहीं है । इसके सिवा इतनी विशेषता और है कि पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिका संक्रम किसके होता है । किसी एकके होता है । आशय यह है कि इन दो मार्गणाओंमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है, अतः यहाँ मिथ्यादृष्टिके ही तीनों पद घटित करने चाहिए । आनतसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें अल्पतरपदका कथन आघके समान है । आशय यह है कि इनमें मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों प्रकारके जीव होते हुए भी यहाँ मात्र एक अल्पतर पद ही पाया जाता है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतरस्थितिका संक्रम किसके होता है । किसीके भी होता है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

§ ५८६. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।

भुज०संक्रामओ केव० ? जह० एयममओ, उक्क० चत्तारि समयया । अप्पद० जह० एयस०, उक्क० तेवड्डिमागगेवममदं मादिरेयतिवलिदोवमेहि' सादिरेयं । अवड्डि० जह० एयस०, उक्क० अंतोमु० । अवत्तन्व० जहण्णुक्क० एयममओ ।

§ ५८७. आदेसेण पेग्इय० भुज० ज० एयममओ, उक्क० तिण्णि समयया ।

आंधकी अपेक्षा माहनीयकी भुजगारस्थितिके संक्रामकका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय हैं । अल्पतरस्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त और तीन पत्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर हैं । अवस्थित स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अवक्तव्यका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

विशेषार्थ—किसी एक जीवने एक समय तक भुजगारस्थितिका संक्रम किया और दूसरे समयमें वह अल्पतर या अवस्थितस्थितिका संक्रम करने लगा तो भुजगार स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । तथा जब कोई एक एकैन्द्रिय जीव पहले समयमें अज्ञानसे स्थितिको बढ़ा कर बोधता है, दूसरे समयमें सम्लेशक्षयसे स्थितिको बढ़ा कर बोधता है, तीसरे समयमें सरकर और एक विग्रहसे संज्ञियोंमें उत्पन्न होकर असंज्ञियोंके योग्य स्थितिका बढ़ाकर बोधता है और चौथे समयमें शरीरको ग्रहण करके संज्ञीके योग्य स्थितिका बढ़ाकर बोधता है तब उसके भुजगार स्थितिवन्धके चार समय पाये जानेके कारण प्रथम समयमें एक आवलिके बाद भुजगार-स्थितिसंक्रमके भी चार समय पाये जाते हैं, इसलिये भुजगार स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय बनलाया है । जो जीव एक समय तक अल्पतरस्थितिका संक्रम करके दूसरे समयमें भुजगार या अवस्थितस्थितिका संक्रम करने लगता है उसके अल्पतरस्थितिके संक्रमका जघन्य काल एक समय पाया जाता है ! तथा जिस जीवने अन्तर्मुहूर्त तक अल्पतर स्थितिका संक्रम किया । फिर वह तीन पत्यकी आयु लेकर भांगभूमिमें उत्पन्न हुआ और वहाँ आयुमें अन्तर्मुहूर्त कालके जोप रहने पर उसने सम्यक्त्वको ग्रहण किया । फिर वह छयासठ सागर तक सम्यक्त्वके साथ परिध्रमण करता रहा । पश्चान् अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यग्मिथ्यात्वमें रहा और अन्तर्मुहूर्तके बाद पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त करके दूसरी बार छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ परिध्रमण करता रहा । पश्चान् मिथ्यात्वमें गया और इकतीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हो गया । फिर वहाँसे न्युत होकर और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त काल तक अल्पतर स्थितिका संक्रम किया । फिर वह भुजगारस्थितिका संक्रम करने लगा । इस प्रकार इस कालका योग अन्तर्मुहूर्त और तीन पत्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर होता है अतः प्रकृतमें अल्पतर स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त और तीन पत्य अधिक एकसौ त्रेसठ सागरप्रमाण कहा है । एक स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बनलाया है । स्थितिसंक्रम स्थितिवन्धका अग्निभावी होनेसे उसका भी इतना ही काल प्राप्त होता है । इसीसे यहाँ अवस्थितस्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बनलाया है । अवक्तव्यस्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है यह स्पष्ट ही है ।

५८७. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय

१. ता० -आ०प्रत्योः सादिरेयं तिवालदोवमेहि इति पाठः ।

अप्पद० ज० एयस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अवट्टिदकालो ओघभंगो ।
एवं पटमाए । विदियादि जाव सत्तमा त्ति विहत्तिभंगो ।

§ ५८८. तिरिक्खेसु भुज० जह० एयसमओ, उक्क० चत्तारि समया । अवट्टि०
ओघं । अप०^१ जह० एयम०, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि अंतोमुहुत्ताहियाणि ।
एवं पंचिदियतिरिक्खतिए । पंचि०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० भुज० जह० एयस०,
उक्क० चत्तारि समया । अप्पद०-अवट्टि० जह० एयस०, उक्क० अंतोमु० ।

हैं और उत्कृष्ट काल तीन समय है । अल्पतर स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय हैं और
उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर हैं । तथा अवस्थितका काल ओघके समान हैं । इसी प्रकार
पहली पृथिवीमें जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें भुजगार
आदिका काल स्थितिबिभक्तिके भुजगार आदिके समान हैं ।

विशेषार्थ— जो असंखी जीव दो विग्रहसे नरकमें उत्पन्न होता है उसके यदि दुसरे समयमें
अद्धाक्षयमे, तीमरे समयमें शरीरको ग्रहण करनेसे और चौथे समयमें संक्लेशक्षयमे भुजगार
स्थितिबन्ध होता है तो उसके भुजगारस्थितिके तीन समय पाये जानेके कारण भुजगारस्थिति-
संक्रमके भी तीन समय पाये जाते हैं । इसीसे नरकमें भुजगार स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल तीन
समय बनलाया है । अथवा अद्धानय और संक्लेशक्षयसे स्थिति बढ़ाकर बाँधनेवाले नारकके दो
भुजगार समय होते हैं ऐसा भी उच्चारणाका पाठ है । पर उसकी यहाँ विवक्षा नहीं की है । जिस
जीवने नरकमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्तके भीतर सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है और अन्तर्मुहूर्त
काल शेष रहने पर जो मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया है उसके नरकमें अल्पतरस्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट
काल कुछ कम तेतीस सागर पाया जाता है । पहले नरकमें यह ओघ व्यवस्था बन जाती है, अतः
वहाँके कथनको ओघके समान कहा है । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अल्पतरस्थितिसंक्रमका
उत्कृष्ट काल कुछ कम एक सागरप्रमाण ही कहना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं तक
भुजगार स्थितिबिभक्ति आदिके कथनसे भुजगारस्थितिसंक्रम आदिके कथनमें कोई अन्तर नहीं है,
इसलिये भुजगारस्थितिसंक्रम आदिका काल भुजगारस्थितिबिभक्ति आदिके कालके समान
बनलाया है । शेष कथन मुगम है ।

§ ५८९. तिर्यञ्चोमें भुजगारस्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट
काल चार समय है । अवस्थितस्थितिसंक्रमका काल ओघके समान है । अल्पतरस्थितिके
संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पत्य हैं । इसी
प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें जानना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकमें
भुजगारस्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है ।
अल्पतर और अवस्थितस्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल
अन्तर्मुहूर्त हैं ।

विशेषार्थ— तिर्यञ्चोंमें भुजगारस्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट
काल चार समय जिस प्रकार ओघप्ररूपणोंमें घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी
घटित कर लेना चाहिये । उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । अवस्थितस्थितिके संक्रामकका

§ ५८०. मणुमतिय०३ भुज० जह० एयम०, उक्क० चत्तारि समय। अप्पद०^१ जह० एयम०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडितिभागम्भहियाणि । मणुसिणीसु अंतोमुहुत्ताहियाणि । अवट्टिदमोघभंगो । अवत्तव्वं जहणुण० एयसमओ ।

§ ५९०. देवेसु भुज० जह० एयस०, उक्क० तिण्णि ममया । अप्पद०-अवाट्टि० विहत्तिभंगो । एवं भवण०-वाणवेंत्तर० । णवरि सगट्टिदी । जोदिसियादि जाव सव्वट्टा नि विहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त औघर्म जिस प्रकारसे बतलाया है उसी प्रकार यहाँ भी प्राप्त होता है। इसीसे इस कथनको औघर्मे समान कहा है। अब रहा अल्पतरस्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल सो इसके जघन्य काल एक समयका ज्ञान करना तो सरल है। किन्तु उत्कृष्ट काल उम तिर्यञ्चके प्राप्त होता है जो पूर्व पर्यायमे अन्तर्मुहूर्तकाल तक अल्पतरस्थितिका संक्रम करके तीन पल्यकी आयुके साथ उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न हो जाता है। इसीसे यहाँ अल्पतर स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य बतलाया है। यह पूर्वोक्त काल पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमे अच्यी तरहसे घट जाता है, इसलिये इनमे भुजगार स्थिति आदिके संक्रामकोंका काल सामान्य तिर्यञ्चके समान बतलाया है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्धयपयाप्त और मनुष्य अपर्याप्त इनमे भुजगार स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय तथा अवस्थितस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त पृथक् ही है। अब रहा अल्पतरस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल सो इनके जघन्य कालमे कोई विशेषता नहीं है। इसे भी पहलेके समान जानना चाहिये। हाँ उत्कृष्ट काल जो अन्तर्मुहूर्त कहा है सो यह उनकी आयुके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षासे कहा है।

§ ५८६. मनुष्यत्रिकमे भुजगारस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अल्पतरस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिके त्रिभागसे अधिक तीन पल्य है। किन्तु मनुष्यनियोंमें यह उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य है। अवस्थितका काल औघर्मे समान है। तथा अवक्तव्यका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमे जिनमे त्रिभागमे मनुष्यायुका बन्ध करके क्षायिकसम्यग्दर्शन उपार्जित किया है उसीके अल्पतरस्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिके त्रिभागसे अधिक तीन पल्य पाया जाता है। इसीसे प्रकृतमे इस कालको उक्त प्रमाण बतलाया है। किन्तु मनुष्यनिके यह काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य ही पाया जाता है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव मर कर मनुष्यनियोंमें नहीं उत्पन्न होता है। शेष कथन सुगम है, क्योंकि शेष कालोंका खुलासा अनेक बार किया जा चुका है। उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिये।

§ ५८०. देवोंमे भुजगारस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है। तथा अल्पतर और अवस्थितस्थितिके संक्रामकोंका काल स्थितिबिभक्तिके समान है। इसी प्रकार भवनवासी औ व्यन्तर देवोंमे जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमे अल्पतरस्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिये। उद्योतिपी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमे भुजगारस्थिति आदिके संक्रामकोंका काल स्थितिबिभक्तिके समान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गेणा तक जानना चाहिये।

२. आ०प्रती अप्पज० इति पाठः ।

§ ५०.१. अंतराणु० दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण भुज०-अप्प०-अवट्ठि० विहत्तिभंगो । अवत्तव्व० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० किंचूण-दोपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि । सेममग्गणासु विहत्तिभंगो । णवरि मणुसतिय० अवत्त० जह० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडी देसणा ।

§ ५०.२. णाणाजीव० भंगविचयाणु० दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य ।

विशेषार्थ—सामान्यसे देवों, व्यन्तरों और भवनवासियोंमें असंज्ञी जीव मर कर उत्पन्न होते हैं, इसलिये इनमें भुजगारस्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट काल तीन समय बन जाता है । तथा भवनवासी और व्यन्तरोंमें अल्पतरस्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण कहते समय उसे अन्तर्मुहूर्त कम कहना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ५१. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थितस्थितिके संक्रामकोंका अन्तर स्थिति-विभक्तिके समान है । अवक्तव्यस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है । शेष मार्गणाओंमें भुजगारस्थिति आदिके संक्रामकोंका अन्तर स्थिति-विभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकमें अवक्तव्यस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटि-प्रमाण है ।

विशेषार्थ—स्थिति-विभक्तिके भुजगार और अवस्थितस्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर तीन पल्प और अन्तर्मुहूर्त अधिक एक सौ त्रैमथ सागर बनलाया है । तथा अल्पतरस्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त बनलाया है । यहाँ भी यह इसी प्रकारसे प्राप्त होता है, इसलिये इस कथनको स्थिति-विभक्तिके समान कहा है । जो ज्ञायिक सम्यग्दृष्टि जीव अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर दो बार उपशमश्रेणि पर चढ़ता है उसके अवक्तव्य स्थितिके संक्रामका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । तथा एक पूर्वकोटिकी आयुवाले जिस मनुष्यने आठ वर्षका होनेपर ज्ञायिक सम्यक्त्व पूर्वक उपशमश्रेणिको प्राप्त किया है । फिर जो मर कर तेतीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ है । फिर वहाँसे आकर जो एक पूर्वकोटिकी आयुके साथ मनुष्य हुआ है और आयुमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर जो पुनः उपशमश्रेणि पर चढ़ा है उसके अवक्तव्य स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर पाया जाता है । इसीसे प्रकृतमें अवक्तव्यस्थितिके संक्रामकका जघन्यअन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर कहा है । अब रहीं नरकगति आदि चार गतिमार्गणाएँ जो इनमें सब अन्तरकाल स्थिति-विभक्तिके अन्तर कालके समान बन जाता है, अतः इस अन्तरको स्थिति-विभक्तिके समान कहा है । किन्तु यहाँ मनुष्यत्रिकमें अवक्तव्य-स्थितिसंक्रम भी सम्भव है इतना विशेष जानना चाहिये । अब यदि मनुष्यत्रिकमेंसे किसी एक ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि जीवको अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर दो बार उपशमश्रेणि पर चढ़ाया जाता है तो यह अन्तर प्राप्त होता है और यदि भवके प्रारम्भमें आठ वर्षका होने पर और भवके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर उपशमश्रेणि पर चढ़ाया जाता है तो यह अन्तर कुछ कम पूर्वकोटि-प्रमाण प्राप्त होता है । इसीसे यहाँ अवक्तव्यस्थितिके संक्रामकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटि-प्रमाण बनलाया है ।

§ ५२. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश

ओघेण भुज०-अप्प०-अवट्टि०संक्रामया णियमा अत्थि । सिया एदे च अवत्तव्वओ च १ । सिया एदे च अवत्तव्वया च २ । ध्रुवसहिदा तिण्णि भंगा ३ । मणुसतिए अप्प०-अवट्टि० णियमा अत्थि, सेसपदा भयणिज्जा । भंगा णव ० ।

§ ५०३. आदेशेण णेरइय० अप्प०-अवट्टि०संक्रामया णियमा अत्थि । भुज०संक्रामजियव्वा । भंगा ३ । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिदियतिरिक्ख-देवा जाव सहस्सार ति । तिरिक्खेसु भुज०-अप्प०-अवट्टि०संक्रामया णियमा अत्थि । मणुसअपज्ज० सव्वपदा भयणिज्जा । भंगा छवीस २६ । आणदादि जाव सव्वट्टा ति अप्पद०संक्रामया णियमा अत्थि । एवं जाव० ।

और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थितस्थितिके संक्रामक जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये बहुत जीव हैं और एक जीव अवक्तव्यस्थितिका संक्रामक है १। कदाचित् ये बहुत जीव हैं और बहुत जीव अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक हैं २। इन दो भंगोंमें ध्रुवपदके मिला देने पर तीन भंग होते हैं। मनुष्यत्रिकमें अल्पतर और अवस्थितस्थितिके संक्रामक जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। भंग ६ होते हैं।

विशेषार्थ—भुजगार आदि कुल चार पद हैं। जिनमेसे ओघकी अपेक्षा तीन पदवाले जीव तो नियमसे पाये जाते हैं किन्तु अवक्तव्य पदवाले जीव भजनीय हैं। इस पदकी अपेक्षा कदाचित् एक और कदाचित् नाना जीव होते हैं, इसलिये दो भंग तो ये हुए और इनमें एक ध्रुव भंगके मिलाने पर तीन भंग होते हैं। किन्तु मनुष्यत्रिकमें अल्पतर और अवस्थित ऐसे दो पदवाले जीव तो सदा पाये जाते हैं, किन्तु शेष दो पदवाले जीव भजनीय हैं। अतः यहाँ एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा एकसंयोगी और द्विसंयोगी कुल भंगोंका विचार करने पर ध्रुव पदके साथ कुल नौ भंग होते हैं।

§ ५६३. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अल्पतर और अवस्थितस्थितिके संक्रामक जीव नियमसे हैं। भुजगारस्थितिके संक्रामक जीव भजनीय हैं। भंग तीन होते हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यंच, सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिये। तिर्यञ्चोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थितस्थितिके संक्रामक जीव नियमसे हैं। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब पद भजनीय हैं। भंग २६ होते हैं। आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतरस्थितिके संक्रामक जीव नियमसे हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—नारकियोंमें कुल तीन पद हैं जिनमेसे दो ध्रुव हैं और एक भजनीय है, अतः यहाँ तीन भंग कहे हैं। सब नारकी आदि और जितनी मार्गणाएँ मूलमे बतलाई हैं उनमे भी यही बात जाननी चाहिये। सामान्य तिर्यञ्चोंमें तीनों पद ध्रुव हैं, अतः वहाँ एक ही भंग है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें तीन पद होते हैं पर वे तीनों ही भजनीय हैं, अतः वहाँ एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षासे एकसंयोगी, द्विसंयोगी और त्रिसंयोगी भंग प्राप्त करने पर वे २६ होते हैं। आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक एक अल्पतरपद ही पाया जाता है, अतः वहाँ इसकी अपेक्षा एक ध्रुव भंग ही है।

§ ५९४. भागाभागो विहत्तिभंगो । णवरि ओघपरूवणाए अवत्तव्वसंका० सव्वजी० केव० भागो ? अणंतिमभागो । मणुस० अवत्त० केव० ? असंखे० भागो । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु संखे० भागो ।

§ ५९५. परिमाणं विहत्तिभंगो । णवरि अवत्तव्वसंका मया केत्तिया ? संखेजा ।

§ ५९६. खेत्तं पोसणं च विहत्तिभंगो । णवरि अवत्तव्वसंका मया० लोगस्स अमंखे०-भागो ।

§ ५९७. कालो विहत्तिभंगो । णवरि अवत्त० जह० एयसमओ, उक्क० संखेजा समयो ।

§ ५९८. अंतरं विहत्तिभंगो । णवरि अवत्त० जह० एयस०, उक्क० वासपुघत्तं ।

§ ५९९. भावो मव्वत्थ ओदइयो भावो ।

§ ६००. अप्पावहुआणु० दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण । ओघेण सव्वत्थोवा अवत्तव्वसंका० । भुज० मंका० अणंतगुणा । अवद्धिसंका० अमंखे० गुणा । अप्पद०-

§ ५९४. भागाभागका कथन स्थितिविभक्तिके समान करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि ओघकी अपेक्षा प्ररूपणा करते समय अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक जीव सध जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवे भागप्रमाण हैं । मनुष्योंमें अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक जीव कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवे भागप्रमाण हैं । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक जीव संख्यातवे भागप्रमाण हैं ।

विशेषार्थ—भुजगार अनुयोगद्वारसम्बन्धी स्थितिविभक्तिमें भुजगार अल्पतर, और अवस्थित कुल तीन पद सम्भव हैं । किन्तु यहाँ एक अवक्तव्य पद बह जाता है । इसलिये इसकी अपेक्षा जहाँ विशेषता सम्भव थी वह यहाँ बतला दी है । शेष कथन स्थितिविभक्तिके समान है ।

§ ५९५. परिमाणका कथन स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं ।

§ ५९६. क्षेत्र और स्पर्शनका कथन स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यस्थितिके संक्रामकोंका क्षेत्र और स्पर्शन लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण है ।

§ ५९७. कालका कथन स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । उपशमश्रेणि पर निरन्तर चढ़नेका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय होनेसे उतरते समय यह काल प्राप्त होता है ।

§ ५९८. अन्तरका कथन स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रथक्त्व है । उपशमश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रथक्त्व होनेसे जघन्य और उत्कृष्ट उक्त अन्तर प्राप्त होता है ।

§ ५९९. भाव सर्वत्र औदयिक है ।

§ ६००. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । ओघकी अपेक्षा अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे भुजगारस्थितिके

संका० संखे०गुणा । मणुस्सेसु मच्चत्थोवा अवत्तव्वसंका० । भुज०संका० असंखे०-
गुणा । अवट्टिमंका० असंखे०गुणा । अप्प०मंका० संखे०गुणा । एवं मणुसपजत्त-
मणुमिणीसु । णवरि मच्चत्थ संखेज्जगुणालावो कायव्वो । सेसं विहत्तिभंगो ।

एवं भुजगारो समत्तो ।

§ ६०१. पदणिक्खेवे तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्वाराणि—समुक्कित्तणा
सामित्तमप्पावहुजं च । तत्थोघादेससमुक्कित्तणाए विहत्तिभंगो ।

§ ६०२. सामित्तं द्विहं—जहण्णमुक्कस्सं च । उक्क० ताव पयदं । दुविहो
णिहेसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण उक्कम्मिया वट्टी विहत्तिभंगो । णवरि उक्कस्सट्टिदिं
बंधियूणावलियादीदम्म । तस्सेव से काले उक्कस्समवट्टाणं । उक्कस्सिया हाणी विहत्तिभंगो ।
एवं मच्चणेग्इय०-तिरिक्ख०-पंचि०तिरिक्खतिय३-मणुसतिय३-देवा जाव सहस्सार
त्ति । पंचि०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० उक्क० वट्टी कस्म ? अण्णदग्ग्म तप्पाओग्ग-
जहण्णट्टिदिसंका० तप्पाओग्गुक्कस्मट्टिदिं बंधियूणावलियादीदम्म । तस्सेव से काले उक्कस्स-
मवट्टाणं । हाणी विहत्तिभंगो । आणदादि मच्चट्टा त्ति विहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

संक्रामक जीव अनन्तगुणे है । उनसे अवस्थितस्थितिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे
अल्पतरस्थितिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । मनुष्योंमें अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक जीव सबसे
थाड़े हैं । उनसे भुजगारस्थितिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अवस्थितस्थितिके
संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अल्पतरस्थितिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । इसी
प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इन दो
मार्गणोंमें सर्वत्र संख्यातगुणा करना चाहिये । शेष बचन स्थितिविभक्तिके समान है ।

इस प्रकार भुजगार अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ६०१. पदनिर्देशके विषयमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व
और अल्पबहुत्व । इनमेंसे आंध और आदेशकी अपेक्षा समुत्कीर्तनाका कथन स्थितिविभक्तिके
समान है ।

§ ६०२. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । सर्वप्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है ।
उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आंधनिर्देश और आदेशनिर्देश । आंधकी अपेक्षा उत्कृष्ट
वृद्धिका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके
जिसे एक आवलि काल हो गया है उसके यह उत्कृष्ट वृद्धि होती है । तथा उसीके तदनन्तर समयमें
उत्कृष्ट अवस्थान होता है । उत्कृष्ट हानिका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । इसी प्रकार सब
नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, मनुष्यत्रिक, सामान्य देव और सहस्सार बल्य
तकके देवोंमें जानना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट वृद्धि
किसके होती है ? जो तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका संक्रम बर रहा है । फिर जिसने तत्प्रायोग्य
उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके एक आवलि काल बिता दिया है उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है । फिर
तदनन्तर समयमें उसीके उत्कृष्ट अवस्थान होता है । तथा उत्कृष्ट हानिका भंग स्थितिविभक्तिके
समान है । आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । इसी प्रकार
अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ६०३. जहण्णए पयदं । दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० जह० वड्डी कस्स ? अण्णदरस्स जो ममयूणद्विदिमंकादो उक्क० द्विदिं संकामेदि तस्स जह० वड्डी । जह० हाणी कस्स ? अण्णद० जो उक्क० द्विदिं संकामेमाणो समयूणुक्कस्सद्विदिं संका० जादो तस्स जहण्णिणया हाणी । एयदरत्थ अवट्ठाणं । एव चदुगदीसु । णवरि आणदादि सव्वट्ठा त्ति जह० हाणी कस्स ? अण्णद० अधद्विदिं गालेमाणयस्स । एवं जाव० ।

§ ६०४. अप्पावहुअं विहत्तिभंगो ।

एवं पदणिकखेवो त्ति समत्तमणियोगहारं ।

§ ६०५. वृद्धिमंकासंगे त्ति तन्थ इमाणि तेग्ग अणियोगहागणि १३—ममुक्कित्तणा जाव अप्पावहुए त्ति । ममुक्कित्तणदाए दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० अत्थि तिण्णिवड्ढि-चत्ताग्गिहाणि-अवट्ठि०-अवत्तव्वमंकासया । एवं मणुस०३ । सेमं विहत्तिभंगो ।

§ ६०६. माम्भित्तं विहत्तिभंगो । णवरि अवत्त० अण्ण० उवसामगस्स पणिवद-

विशेषार्थ—जिसका बन्ध होता है उसका एक आवालि काल जानेके बाद ही संक्रम होता है और यह संक्रमका प्रकरण है । इसीसे ओघकी अपेक्षा वर्णन करते समय उत्कृष्ट वृद्धि उत्कृष्ट स्थितिवन्धके होनेके बाद एक आवालि कालके बाद बतलाई है । अन्यत्र जहाँ बन्धके बाद एक आवालि काल बाद उत्कृष्ट वृद्धि बतलाई है वहाँ यही कारण जानना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ६०३. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जो एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करनेके बाद उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करता है उसके जघन्य वृद्धि होती है । जघन्य हानि किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करनेवाला जो जीव तदनन्तर एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करता है उसके जघन्य हानि होती है । तथा किमी एक जगह जघन्य अवस्थान होता है । इसी प्रकार चारो गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि आनत कलसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवामे जघन्य हानि किसके होती है ? अधःस्थितिका गलानेवाले किसी भी जीवके होती है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ६०४. अल्पवहुत्वका भंग स्थितिविभक्तिसे सम्बन्ध रखनेवाले पदनिक्षेपके अल्पवहुत्वके समान हैं ।

इस प्रकार पदनिक्षेप अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ६०५. वृद्धिसंक्रामक नामक अनुयोगद्वारमें समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पवहुत्वतक तेरह अनुयोगद्वार होते हैं । समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी तीन वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवक्तव्य पदके संक्रामक जीव हैं । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । शेष भंग स्थितिविभक्तिके समान है ।

§ ६०६. स्वामित्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि जो

१. ता०प्रतौ उपसामगो [गस्स], आ०प्रतौ उवसामगो इति पाठः ।

माणयस्स पढमसमयदेवस्स वा । एवं मणुसतिए । णवरि पढमसमयदेवालावो ण कायव्वो ।

§ ६०७. कालाणु० दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण तिण्णिवद्धि-
चत्तारिहाणि-अवद्धि०मंका० कालो विहत्तिभंगो । णवरि संखे०भागहाणि—अवत्त०
जहण्णु० एयसमओ ।

§ ६०८. सव्वणेरो-सव्वदेवेसु विहत्तिभंगो । तिग्गिखाणं च विहत्तिभंगो । पंचि०-
तिग्गिख०३ अमंखे०भागवद्धि-संखेज्जगुणवद्धि० जह० एयसमओ, उक्क० वे समया ।
संखेज्जभागवद्धि-हाणि-संखेज्जगुणहाणिमंका० जहण्णु० एयसमओ । अमंखे०भागहाणि-
अवद्धि० तिग्गिखोघं । एवं पंचिदियतिग्गिखअपज्ज० । णवरि अमंखे०भागहाणी० जह०
एयसमओ, उक्क० अंतोसु० । एवं मणुसअपज्ज० । मणुस० पंचि०तिग्गिखभंगो । णवरि

उपशामक जीव उपशामश्रेणिसे च्युत हो रहा है या जो उपशामक मर कर प्रथम समयवर्ती देव है उसके अवक्तव्य पद होता है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ प्रथम समयवर्ती देवके अवक्तव्य पद होता है यह आलाप नहीं करना चाहिये ।

§ ६०७. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा तीन वृद्धि, चार हानि और अवस्थितके संक्रामकोंका काल स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानि और अवक्तव्यका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

विशेषार्थ—इन सब वृद्धियों और हानियोंके काल स्थितिविभक्तिमें घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार प्रकृतमें घटित कर लेना चाहिये । किन्तु स्थितिविभक्तिमें स्थितिसत्त्वकी अपेक्षासे वह काल बतलाया है । यहाँ उसका कथन स्थितिसंक्रमकी अपेक्षासे करना चाहिये । तथापि वहाँ संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल जो दो समय कम उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण बतलाया है वह यहाँ नहीं प्राप्त होता, क्योंकि जिस स्थितिसत्त्वके सद्भावमें संख्यातभागहानिका यह उत्कृष्ट काल घटित किया गया है वहाँ संक्रम नहीं होता । इसलिये स्थितिसंक्रमकी अपेक्षा संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय प्रमाण ही प्राप्त होता है ऐसा जानना चाहिये । स्थितिसत्त्वके सिवा यहाँ स्थितिसंक्रममें एक पद और हांता है जिसे अवक्तव्य पद कहते हैं । यह या तो उपशामश्रेणिसे च्युत होनेवाले क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवके एक समयके लिये होता है या जो उपशान्तमोह क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव मर कर देव हांता है, उसके प्रथम समयमें होता है, अतः इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है ।

§ ६०८. सब नारकी और सब देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान काल है । तिर्यञ्चोंमें भी काल स्थितिविभक्ति के समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें असंख्यात भागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । संख्यातभाग-
वृद्धि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । असंख्यात भागहानि और अवस्थितके संक्रामकका काल सामान्य तिर्यचोंके समान है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें असंख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिये । मनुष्य त्रिकमें पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान काल है । किन्तु इतनी

असंखे० भागहाणि० जह० एयसमओ, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि पुव्वकोडितिभागेण मादिरेयाणि । अवत्त० जहण्ण० एयसमओ । एवं जाव० ।

विशेषता है कि इनमें असंख्यातभागहानिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पत्य है। अवक्तव्यस्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—स्थितिविभक्तिमें सब नारकियोंके असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय, दो वृद्धि और दो हानियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय, असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण तथा अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। सब देवों और सामान्य तिर्यञ्चोमें भी इसी प्रकार जहां जितने पद सम्भव हैं उनका यथायोग्य काल बतलाया है। प्रकृतमें इन मार्गणाओंमें अपने-अपने पदोंका उक्त काल उन्नी प्रकार बन जाता है। इसीसे यहां इस सब कथनको स्थितिविभक्तिके समान कहा है। इस कालका विशेष खुलासा स्थितिविभक्तिमें किया ही है, अतः वहांसे जान लेना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें अद्वाक्ष्य और संक्लेशक्षय दोनों प्रकारसे असंख्यातभागवृद्धिरूप संक्रम सम्भव हैं, इसीसे इनमें उसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय बतलाया है। जो ऐकेन्द्रिय जीव एक विग्रहसे संज्ञी तिर्यञ्चोमें उत्पन्न होता है उसके प्रथम समयमें असंज्ञीके योग्य और शरीरग्रहणके समयमें संज्ञीके योग्य स्थितिवन्ध होता है। अतः पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें संख्यातगुणवृद्धिरूप संक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय बतलाया है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें संख्यात-भागवृद्धि संक्लेशक्षयसे ही होती है, अतः इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है। संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि स्थितिवाण्डघानकी अन्तिम फालिके पतनके समय होता है, अतः इनका भी जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है। सामान्य तिर्यञ्चोमें असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पत्य तथा अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। यह पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें भी बन जाता है, अतः पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें इन दो पदोंके कालका सामान्य तिर्यञ्चोके समान कहा है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें अपने सम्भव पदोंका जो काल बतलाया है वह पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तोंमें भी बन जाता है, अतः इनमें सब पदोंका काल पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके सब पदोंके समान बतलाया है। केवल असंख्यातभागहानिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तमें अधिक नहीं होता है, इसलिये यहां इस पदका अन्तर्मुहूर्त ही काल प्राप्त होता है। कालकी यह व्यवस्था मनुष्य अपर्याप्तोंमें भी जाननी चाहिये, क्योंकि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तोंके कालसे इनके कालमें कोई विशेषता नहीं है। मनुष्यत्रिकमें और सब पदोंके काल तो पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान बन जाते हैं। किन्तु असंख्यातभागहानिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि जिम मनुष्यने आगामी भवकी मनुष्यायुका बन्ध करनेके बाद क्षात्रिकसम्यग्दर्शनको उत्पन्न कर लिया है उसके पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पत्यप्रमाण कालतक असंख्यातभागहानि पाई जाती है। इसीसे यहां मनुष्यत्रिकमें यह काल उक्तप्रमाण बतलाया है। किन्तु मनुष्यनियोंमें यह काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पत्य ही पाया जाता है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव मर कर मनुष्यनियोंमें उत्पन्न नहीं होते हैं। यह बात भुज्जगारस्थितिमंक्रममें अत्यन्त पदके बतलाये गये कालसे जानी जाती है। मनुष्यत्रिकमें अवक्तव्यपद भी सम्भव है सो उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय ओषके समान यहां भी घटित कर लेना चाहिये।

§ ६०९. अंतराणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण सव्वविहत्तिभंगो । णवरि अवत्त० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादिरेयाणि । सव्वणेरइय०—सव्वदेवा नि विहत्तिभंगो । तिग्गिक्खाणं पि विहत्तिभंगो । पंचिदियतिरिक्ख०३ विहत्तिभंगो । णवरि मंग्गे० गुणवट्ठि० जह० एयसमओ, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं । पंचिदिय-तिरिक्खअपज्ज०—मणुमअपज्ज० असंखे० भागवट्ठि—हाणि-संखे० गुणवट्ठि-अवट्ठि० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । संखे० भागवट्ठि-हाणि-संखे० गुणहाणि० जहण्णुक० अंतोमु० । मणुम३ विहत्तिभंगो । णवरि मंग्गे० गुणवट्ठि० जह० एयसमओ, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा । अवत्त० जह० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा । एवं जाव० ।

§ ६०८. अन्तरानुगमकी अपक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आवांनदेश और आदेशानिर्देश । ओघकी अपेक्षा सब पदोंका अन्तर स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तृतीस सागर है । सब नारकी और सब देवोंमें सब पदोंका अन्तर स्थितिविभक्तिके समान है । तिर्यचोंमें भी सब पदोंका अन्तर स्थितिविभक्तिके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें सब पदोंका अन्तर स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिप्रथमप्रमाण है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकों और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, संख्यातगुणवृद्धि और अवस्थितपदके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है । संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है । मनुष्य त्रिकमें सब पदोंका अन्तर स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यात गुणवृद्धिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है । तथा अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिकमें संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय बतलाया है । इसका कारण यह है कि जो एकेंद्रिय दो विग्रह द्वारा अपने योग्य स्थितिके साथ उक्त जीवोंमें उत्पन्न होता है वह प्रथम समयमें असंज्ञीके योग्य संख्यातगुणी स्थितिका बढ़ाकर बांधता है, दूसरे समयमें अन्य पदके साथ स्थितिवन्ध करता है और तीसरे समयमें शरीरग्रहणके साथ सज्ञीके योग्य संख्यातगुणी स्थिति बढ़ाकर बांधता है । इस प्रकार उसके संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें भी इसी प्रकारसे संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त होता है । तथा मनुष्यत्रिकमें भी संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय उक्त प्रकारसे ही प्राप्त होता है । मनुष्यत्रिकमें जो मनुष्य अन्तमुहूर्तके भीतर दो बार उपशमश्रेणि पर चढ़ता है उसके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त पाया जाता है । तथा जो पूर्वकोटिके प्रारम्भमें आठ वर्षका होकर उपशमश्रेणि पर चढ़ता है और फिर जो जीवनके अन्तमें उपशमश्रेणि पर चढ़ता है उसके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि वर्षप्रमाण पाया जाता है । इस प्रकार अन्तर सम्बन्धी विशेषताओंका निर्देश यहां पर कर दिया है । शेष सब स्थानोंमें सब पदोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर स्थिति विभक्तिके बतलाये गये वृद्धि अनुयोगद्वारमें प्रतिपादित अन्तरके समान हैं, अतः यहां हमने उसका अलगसे निर्देश नहीं किया है ।

§ ६१०. णाणाजीवभंगविचओ भागाभागं परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं भावो च विहत्तिभंगो । णवरि सव्वत्थ अवत्त०परूवणा जाणिऊण कायव्वा ।

§ ६११. अप्पाबहुगाणु० दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण सव्वत्थोवा अवत्त०संका० । अमंखे०गुणहाणिमंका० संखे०गुणा । सेमं विहत्तिभंगो । एवं मणुसतिए ३ । सेमं० विहत्तिभंगो ।

एवं बद्धिपरूवणा गया ।

§ ६१२. एत्थ द्वाणपरूवणाए मत्तरिमागगे०कोडाकोडिं वंधियूण बंधावलियादीद-मोकहुणाए मंक्रमेमाणयस्म तमेगं द्विदिसंक्रमद्व्याणं । एत्तो समयूण-दुममयूणादिकमेण अणुक्कस्समंक्रमद्व्याणवियप्पा ओयारेयव्वा जाव णिव्वियप्पंतोकोडाकोडि ति । तदो धुवट्टिदीदो हेट्टा हदममुप्पत्तियकम्मालंबणेणोदारेयव्वं जाव वादरेइंदियपज्जत्तधुवट्टिदि ति । पुणो खवयपाओग्गाणि वि ठाणाणि मागगेवमद्विदिसंक्रमपटमद्विदिग्गंडयप्पहुडि जहासंभवमोयारेयव्वाणि जाव मुहुमसांपगाइयखवगममयाहियावलिया ति । एदाणि च मंक्रमद्व्याणाणि किंचूण मत्तरिमागगेवमकोडाकोडिमेत्ताणि, उक्कम्मद्विदिसंक्रमादो जाव एइंदियधुवट्टिदि ति णिरंतमस्सवेण तदुप्पत्तिदंमणादो । तत्तो हेट्टा खवगपाओग्ग-द्वाणाणं मान्तर-णिरंतरक्रमेण अंतोमुहुत्तमेत्ताणमुपत्तिउवलंभादो ।

एवं मूलपयडिद्विदिसंक्रमो समत्तो ।

§ ६१०. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पशन, काल, अन्तर और भाव इनका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहां अवक्तव्यपद भी होता है, इसलिये इसका कथन सर्वत्र जान कर करना चाहिये ।

§ ६११. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आवनिर्देश और आदेश-निर्देश । ओघकी अपेक्षा अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक जीव सबमे थोड़े हैं । उनसे असंख्यात गुणदानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । शेष पदोंका अल्पबहुत्व स्थितिविभक्तिके समान है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमे जानना चाहिये । शेष भंग स्थितिविभक्तिके समान है ।

इह प्रकार वृद्धि परूवणाका कथन समाप्त हुआ ।

§ ६१२. यहाँ स्थान परूवणाका कथन करनेपर जो जीव सत्तर कोडाकोटी सागरप्रमाण स्थितिका बंधकर बन्धावलिके बाद अपकर्षण करके उसका संक्रमण करता है उसके एक स्थिति-संक्रमस्थान होता है । इसके बाद एक समय कम, दो समय कम आदिके क्रमसे अनुत्कृष्ट संक्रमस्थानोंके विकल्प निर्विकल्प अन्तःकोडाकोटीप्रमाण स्थितिके प्राप्त होनेतक अवतरित करने चाहिये । फिर ध्रुवस्थितिसे नीचे बाहर एकेन्द्रिय पर्याप्तकी ध्रुवस्थितिके प्राप्त होनेतक दृढसमुत्पत्तिक कर्मके सहारेसे संक्रमस्थानोंको प्राप्त कर ले आना चाहिये । फिर एक सागर/प्रमाण स्थितिसत्कर्मके प्रथम स्थितिकाण्डकसे लेकर सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकके एक समय अधिक एक आयातप्रमाण स्थितिके शेष रहने तक यथासम्भव क्षपकके योग्य संक्रमस्थान ले आने चाहिये । ये संक्रमस्थान कुछ कम सत्तर कोडाकोटी सागरप्रमाण होते हैं, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमस्थानसे लेकर एकेन्द्रियके योग्य ध्रुवस्थिति तक निरन्तर क्रमसे इन स्थानोंकी उत्पत्ति देखी जाती है । और उससे नीचे क्षपक योग्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थानोंकी मान्तर-निरन्तर क्रमसे उत्पत्ति देखी जाती है ।

इस प्रकार मूलप्रकृत स्थितिसंक्रम समाप्त हुआ ।

§ ६१३. संपहिउत्तरपयडिडिदिसंकमो पत्तावसरो । तत्थ इमाणि चउवीसमणियोग-
 दाराणि—अद्वाच्छेदो सच्चसंकमो णोसच्चसंकमो उक्कस्ससंकमो अणुक्कस्ससंकमो जहण्ण-
 संकमो अजहण्णसंकमो मादियसंकमो अणादियसंकमो धुवसंकमो अद्भवसंकमो एयजीवेण
 मामित्तं कालो अंतरं णाणजीवभंगविचओ भागाभागो परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो
 अंतरं मण्णियामो भावाणुगमो अप्पावहुगाणुगमो चेदि । भुजगारादीणि च ४ । तत्थ
 दुविहो अद्वाच्छेदो जहण्णक्कस्मट्टिदिसंकमविमयभेदेण । एत्थ ताव पुव्विद्धमप्पणासुत्तमव-
 लंबणं काऊणुक्कस्मट्टिदिसंकमद्वाच्छेदे उक्कस्मट्टिदिउदीरणाभंगमणुवत्तइस्सामो । तं जहा—
 दुविहो तस्म णिहेमो ओघादेमभेदेण । ओघेण मिच्छत्त-मोलमकसायाणमुक्कस्सओ
 ट्टिदिसंकमद्वाच्छेदो मत्तरि-चत्तालीममागरोवमकोडाकोडीओ दोहि आवलियाहि ऊणाओ ।
 णवणोक० उक्कस्मट्टिदिसंकम० अद्वाच्छेदो चत्तालीमं सागरोवमकोडाकोडीओ तीहि
 आवलियाहि परिहीणाओ^१ । सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणमुक्कस्सट्टिदिसं० अद्वा० सत्तरि-
 सागरोवमकोडा० अंतोमुहुत्तणाओ । एवं चदुसु गदीसु । णवरि पंचि०तिरि०अपज्ज०-
 मणुम०अपज्ज० अद्वावीमं पयडीणमुक्कस्सट्टिदिसं० अद्वा० सत्तरि-चत्तालीमं मागरो०कोडा०
 अंतोमुहुत्तणाओ । आणदादि जाव मच्चट्टा त्ति सच्चवामिं पयडीणमुक्कस्मट्टिदिसं० अद्वा०
 अंतोकोडा० । एवं जाव० ।

§ ६१३. अब उत्तर प्रकृति स्थितिसंकमका कथन अवसर प्राप्त है । उसमें ये चौबीस
 अनुयोगद्वार हांत हैं—अद्वाच्छेद, सर्वसंकम, नोसर्वसंकम, उत्कृष्टसंकम, अनुत्कृष्टसंकम,
 जवन्यसंकम, अजवन्यसंकम, मादिसंकम, अनादिसंकम, ध्रुवसंकम, अध्रुवसंकम, एक जीवकी
 अपेक्षा स्वामित्य, काल, अन्तर, नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र,
 दर्शन, काल, अन्तर, सन्निकर्ष, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम । तथा भुजगार आदि चार ।
 उनमेंसे अद्वाच्छेद दो प्रकारका है—जवन्य स्थितिसंकमका विषय करनेवाला और उत्कृष्ट स्थिति-
 संकमका विषय करनेवाला । अब यहाँ पूर्वके अर्पणासूत्रका अबलम्बन लेकर उत्कृष्ट स्थितिसंकम
 विषयक अद्वाच्छेद उत्कृष्ट स्थिति उदीरणविषयक अद्वाच्छेदके समान है यह बतलाते हैं । यथा—
 उत्कृष्ट स्थितिसंकमविषयक अद्वाच्छेदका निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।
 ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंकम अद्वाच्छेद दो आवलि कम मत्तर कोड़ाकोड़ी
 सागरप्रमाण है । सोलह कपायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंकम अद्वाच्छेद दो आवलि कम चालीस
 कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है । तथा नौ नोकपायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंकम अद्वाच्छेद तीन आवलि
 कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंकम
 अद्वाच्छेद अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना
 चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अद्वाइस
 प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिसंकम अद्वाच्छेद अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर और चालीस कोड़ाकोड़ी सागर
 है । आननसे लेकर सर्वाथसिद्धितकके देवोंमें सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिसंकम अद्वाच्छेद
 अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

१. ता०आ०प्रत्यो. —कोडीहि परिहीणाओ इति पाठः ।

§ ६१४. संपहि जहण्णडिडिमंक्रमद्वाच्छेदपरूवणट्टमुवरिमसुत्तसंबंधमवलंबेमो—

❀ एत्तो जहण्णयं वत्तइस्सामो ।

§ ६१५. पइजासुत्तमेदं जहण्णडिडिमंक्रमद्वाच्छेदपरूवणाविसयं सुगमं ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोडीकोडी सागरप्रमाण होता है, किन्तु इसका संक्रम बन्धावलिके बाद उदयावलिके ऊपरके निषेकोंका ही होता है, अतः इसका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद दो आवलिकम सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण बतलाया है। सोलह कपायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चालीस कोडाकोडी सागरप्रमाण होता है, अतः इसका भी उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम पूर्वोक्त कारणसे दो आवलिकम चालीस कोडाकोडी सागरप्रमाण ही कहा है। अब रहे नौ नोकपाय सो इनकी बन्धकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति विविध प्रकारकी बतलाई है। हां संक्रमकी अपेक्षा इनकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलिकम चालीस कोडाकोडी सागर प्राप्त होती है, अतः इनका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद तीन आवलिकम चालीस कोडाकोडी सागरप्रमाण जानना चाहिये, क्योंकि जो उत्कृष्ट स्थिति संक्रमसे प्राप्त होती है उसका संक्रमावलिके बाद ही संक्रम होता है। उसमें भी उदयावलिप्रमाण निषेकोंका संक्रम नहीं होता, अतः नौ नोकपायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद तीन आवलिकम चालीस कोडाकोडी सागरप्रमाण होता है यह बात सिद्ध हुई। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्वाच्छेद होता है, क्योंकि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके जिस जीवने अन्तर्मुहूर्तमे वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है उसके सम्यक्त्वको प्राप्त करनेके समयमें ही मिथ्यात्वकी अन्तर्मुहूर्तकम उक्त स्थिति सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमे संक्रमित हो जाती है और फिर इस स्थितिका संक्रम होने लगता है। तथापि यह संक्रम उदयावलिके ऊपरके निषेकोंका ही होता है। अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम-अद्वाच्छेद अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण है यह सिद्ध होता है। यतः यह स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद चारों गतियोंमे घटित हो जाना है अतः उसके कथनको ओघके समान जानना चाहिये। किन्तु कुछ मार्गणाएं इनकी अपवाद हैं। वात यह है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम प्राप्त होती है, क्योंकि इन मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सम्भव नहीं है। अतः जो जीव उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अन्तर्मुहूर्तके भीतर इन दो मार्गणाओंमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके यह उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है। तथापि ऐसे जीव इनमें अन्तर्मुहूर्त बाद ही उत्पन्न होते हैं, अतः यहां ओघ उत्कृष्ट स्थितिको अन्तर्मुहूर्त कम कर देना चाहिये। यही कारण है कि इन दो मार्गणाओंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम-अद्वाच्छेद अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण और शेष पच्चीस प्रकृतियोंका अन्तर्मुहूर्त कम चालीस कोडाकोडी सागरप्रमाण बतलाया है। तथा अनतादिकमें अन्तर्कोडाकोडी सागरप्रमाण ही उत्कृष्ट स्थिति होती है, अतः यहाँ सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद उक्तप्रमाण बतलाया है।

§ ६१४. अब जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेदका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रोंके सम्बन्धका अवलम्ब लेते हैं—

❀ इमसे आगे जघन्य स्थितिगंक्रमअद्वाच्छेदको बतलाते हैं ।

§ ६१५ यह प्रतिज्ञा सूत्र है। इसमें जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेदके कथन करनेकी सूचना की गई है। यह सुगम है।

१. आ०प्रती -मवलंबेव्वो इति पाठः ।

३६

❀ मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त-चारसकसाय-इत्थि-णवुंसयवेदाणं जहण्ण-ट्टिदिसंकमो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

§ ६१६. कुदो ? मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणं दंसणमोहक्खवणाचरिमफालीए अणंताणुबंधीणं विमंजोयणाचरिमफालिमंकमे अट्टकसायाणं च खवयस्स तेसिं चैव पच्छिमट्टिदिसंखंडयचरिमफालिमंकमकाले इत्थि-णवुंसयवेदाणं पि चरिमट्टिदिसंखंडयम्मि मुत्तुत्तपमाणजहण्णट्टिदिसंकममंभवोवलद्धीदो । एवमेदेसिं कम्माणं जहण्णट्टिदिसंकमद्वा-छेदं परूविय मंपहि मम्मत्त-लोहमंजलणाणं तण्णिण्णयविहाणट्टमुत्तरमुत्तमाह—

❀ सम्मत्त-लोहसंजलणाणं जहण्णट्टिदिसंकमो एया ट्टिदी ।

§ ६१७. मम्मत्तस्स दंसणमोहक्खवणाए ममयाहियावलियमेत्तसेसे लोह-संजलणस्स वि मुहुममाणगइयक्खवणट्टाए समयाहियावलियासेमाए ओकड्डुणासंकम-वसेण पयदट्टाछेदमंभवो वत्तच्चा । सेमकम्माणं जहण्णट्टिदिअट्टाच्छेदणिद्वारणट्टमुवरिमो मुत्तपबंधो—

❀ कोहसंजलणस्स जहण्णट्टिदिसंकमो वे मासा अंनोमहुत्तणा ।

* मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बाग्द कपाय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिमंक्रमअट्टाच्छेद पन्थके अमंग्यातवें भागप्रमाण है ।

§ ६१६. क्योंकि दर्शनमोहकी क्षपणाके कालमें मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिका पतन होते समय, अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजनाकी अन्तिम फालिका संक्रम होते समय, क्षपक जीवके आठ कपायोंकी अन्तिम स्थितिकाण्डकी अन्तिम फालिका संक्रम होते समय और स्त्रीवेद व नपुंसकवेदके अन्तिम स्थितिकाण्डके पतनके समय सूत्रमें कहे अनुसार जघन्य स्थितिमंक्रम प्राप्त जाता है । आशय यह है कि अपनी अपनी क्षपणाके समय जब इन कर्मोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकी अन्तिम फालिका पतन होता है तब यह जघन्य स्थितिमंक्रम-अट्टाच्छेद होता है । इस प्रकार इन कर्मोंके जघन्य स्थितिमंक्रमअट्टाच्छेदका कथन करके अथ सम्यक्त्व और लोभ संज्वलनके इस जघन्य स्थितिमंक्रमअट्टाच्छेदका निर्णय करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* सम्यक्त्व और लोभ संज्वलनका जघन्य स्थितिमंक्रमअट्टाच्छेद एक स्थिति-प्रमाण है ।

§ ६१७. क्योंकि दर्शनमोहकी क्षपणामें एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण काल शेष रहने पर सम्यक्त्वका और सूद्धमसाम्पराय क्षपकके कालमें एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण काल शेष रहने पर लोभ संज्वलनका अपकर्षणमंक्रमके कारण प्रकृत अट्टाच्छेद सम्भव है यह कहना चाहिये । अब शेष कर्मोंके जघन्य स्थितिमंक्रमअट्टाच्छेदका निश्चय करनेके लिये आगेके सूत्रोंका निर्देश करते हैं—

* क्रोधसंज्वलनका जघन्य स्थितिमंक्रमअट्टाच्छेद अन्तर्मुहूर्त कम दो महीना है ।

§ ६१८. खवयस्स चरिमद्विदिवंधचरिमफालिसंक्रमणावत्थाए तदुवलंभादो । कुदो अंतोमुहुत्तणत्तं ? ण, आवाहावाहिरस्सेव णवकबंधस्स तत्थ संकंतीए तदूणत्ताविरोहादो ।

❀ माणसंजलणस्स जहणणद्विदिसंक्रमो मासो अंतोमुहुत्तणो ।

§ ६१९. सुगमं ।

❀ मायासंजलणस्स जहणणद्विदिसंक्रमो अद्धमासो अंतोमुहुत्तणो ।

§ ६२०. सुगमं ।

❀ पुरिसवेदस्स जहणणद्विदिसंक्रमो अट्ट वस्साणि अंतोमुहुत्तणाणि ।

§ ६२१. सुगमं ।

❀ छुरणोकसायाणं जहणणद्विदिसंक्रमो संखेज्जाणि वस्साणि ।

§ ६२२. कुदो ? तेमिं चरिमद्विदिवंधयायामस्स तप्पमाणत्तादो । एवमांधेण अट्टावीममोहपयडोणं जहणणद्विदिसंक्रमद्विच्छेदं परूविय मंपहि आदेमपरूवणाए वीजपडि-भूदमुवरिममुत्तमाह—

❀ गदीसु अणुमग्गियन्वो ।

§ ६१८. क्योंकि अपक जीवके अन्तिम स्थितिवन्धकी अन्तिम फालिका संक्रम होनेकी अवस्थामें यह अद्वाच्छेद पाया जाता है ।

शंका—इसे द्वा महीनासे अन्तर्मुहूर्त कम क्यों बतलाया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि आवाधाकालके बाहरके नवकवन्धका ही यहां संक्रम होता है, इसलिये इसे द्वा महीनासे अन्तर्मुहूर्त कम कहनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

* भानमंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद अन्तर्मुहूर्त कम एक महीना है ।

§ ६१९. यह सूत्र सुगम है ।

* मायामंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद अन्तर्मुहूर्त कम आधा महीना है ।

§ ६२०. यह सूत्र सुगम है ।

§ ६२१. यह सूत्र सुगम है ।

§ ६२२. यह सूत्र सुगम है ।

* छह नोकपायोका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद मंग्यात वर्ष है ।

§ ६२२. क्योंकि इनके अन्तिम स्थितिकाण्डकका आयाम संख्यात वर्षप्रमाण ही पाया जाता है । इस प्रकार आंधसे माहनीयकी अट्टाईस प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेदका कथन करके अथ आदेशप्ररूपणा के बीजभूत आगेका सूत्र कहते हैं—

* चारों गतियोंमें जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेदका विचार कर लेना चाहिए ।

५ ६२३. एदीए दिसाए णिरयादिगदीसु वि जहण्णट्टिदिअद्धान्छेदो अणुमग्गणिज्जो ति वुत्तं होइ । एदेण सूचिदमादेसपरूवणमुच्चारणाणुमारेण वत्तहम्मामो । तं जहा— आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-वारगमक०-णवणोक० ट्टिदिविहत्तिभंगो । मम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४ ओघो । एव पढमाए । विदियादि जाव मत्तमा ति मिच्छत्त-वारसक०-णवणोकमायाणि ट्टिदिविहत्तिभंगो । मम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४ जहण्णट्टिदिसं०-अद्दा० पल्लिदो० अमंखे०भागो ।

§ ६२४. तिग्गख-पंचि०तिग्गखतिय०३ मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० जह० ट्टिदिसं०अद्दा० मागरो० मत्त-सत्त० चत्ताग्गि-मत्त० पल्लिदो० अमंखे०भागेणूणया । मम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४ ओघभंगो । णवरि जोणिणीसु मम्मत्त० सम्मामिच्छत्त-

५ ६२३. इसी पद्धतिसे नरक आदि गतियोंमें भी जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धान्छेदका विचार कर लेना चाहिये यह इस सूत्रका तात्पर्य है । अब इस सूत्रद्वारा सूचित हुई आदेश प्ररूपणा-को उन्चारणाके अनुसार बतलाते हैं । यथा—आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नाकपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धान्छेद स्थितिभिक्तिके समान है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धान्छेद ओघके समान है । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नाकपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धान्छेद स्थिति-भिक्तिके समान है । तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धान्छेद पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंमें और प्रथम नरकके नारकियोंमें सम्यक्त्वकी क्षण, सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वलना और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना सम्भव होनेके कारण यहां इन तीनोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धान्छेद ओघके समान बतलाया है । इसी प्रकार द्वितीयादि शेष नरकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वलना होनेके कारण तथा अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना सम्भव होनेके कारण यहां इनका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धान्छेद पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । इसके सिवा सब नरकोंमें शेष कर्मोंका जहां जितना जघन्य स्थितिसत्त्व सम्भव है वहां उतना संक्रम पाया जाता है, अतः सर्वत्र शेष प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रम अद्धान्छेद स्थितिभिक्तिके समान बतलाया है । किन्तु यहां इतना विशेष जानना चाहिये कि जहां जितना जघन्य स्थितिसत्त्व होगा उससे यह जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धान्छेद एक आवलिप्रमाण कम ही होगा, क्योंकि जो निपेक उदयावलिके भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं उनका संक्रम नहीं होता है ।

५ ६२४. तिर्यञ्च सामान्य और पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम अद्धान्छेद एक सागरके सात भागोंमेंसे पत्यका असंख्यातवां भाग कम सात भागप्रमाण है । तथा बारह कपाय और नौ नाकपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धान्छेद एक सागरके सात भागोंमेंसे पत्यका असंख्यातवां भाग कम चार भागप्रमाण है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धान्छेद ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि योनिनी तिर्यञ्चोंमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धान्छेद सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धान्छेदके

भंगो । पंचिन्द्रियतिरिक्त्वअपञ्ज०—मणुमअपञ्जत्तएसु जोणिणीभंगो । णवरि अणंताणु०—
चउकं सह कसाएहि भाणियव्वं ।

६ ६२५. मणुसतिए ओघं । णवरि मणुसिणीसु पुरिमवेदस्स छण्णोकसाय-
भंगो । देवेषु णारयभंगो । एवं भवण०—वाणवेत० । णवरि सम्मत्त० जह० पलिदो०
अमंखे०भागो । जोदिमियाणं विदियपुढविभंगो । सोहम्मादि जाव णवगेवजा त्ति सो
चेव भंगो । णवरि सम्मत्तस्म ओघं । अणुहिमादि जाव मव्वट्ठे त्ति २३ पयडीणं
जहण्णट्ठिदिमं०अद्वा० अंतोकोडाकोडी । सम्मत्ताणंताणुवंधीणमोघभंगो । एवं जाव० ।

समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपयाप्त और मनुष्य अपयाप्तकामे सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थिति-
संक्रमअद्वाच्छेद योनिनी तिर्यञ्चोके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धी
चतुष्कका भंग कपायोंके साथ कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—सामान्य तिर्यञ्चोमे और पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमे मिथ्यात्व, बारह कपाय
और नौ नोकपायोंका जघन्य स्थितिमंक्रमअद्वाच्छेद कहते समय एकेन्द्रियोंकी व जो एकेन्द्रिय
पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमे उत्पन्न हुए हैं उनकी प्रधानता है । इस अपेक्षासे मूलमें उक्त प्रकृतियोंका
जो जघन्य स्थितिमंक्रमअद्वाच्छेद बतलाया है वह बन जाता है । अब रहीं सम्यक्त्व,
सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्क ये छह प्रकृतियां सो इन मार्गणाओंमें सम्यक्त्वकी क्षपणा
करनेवाला जीव भी उत्पन्न होता है और यहां सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना व अनन्तानुबन्धी
चतुष्ककी विसंयोजना भी सम्भव है, अतः इन छह प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिमंक्रमअद्वाच्छेद
ओघके समान बतलाया है । किन्तु योनिनी तिर्यञ्चोमे कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर नहीं
उत्पन्न होते, अतः यहां सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिमंक्रमअद्वाच्छेद ओघके समान नहीं प्राप्त होता ।
किन्तु उद्वेलनाकी अपेक्षा जो जघन्य स्थितिमंक्रमअद्वाच्छेद सम्भव है वह यहां प्राप्त होता है,
अतः इस मार्गणांमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिमंक्रमअद्वाच्छेद सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थिति-
मंक्रमअद्वाच्छेदके समान बतलाया है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपयाप्त और मनुष्य अपयाप्तकामे
सब व्यवस्था योनिनी तिर्यञ्चोके समान बन जाती है, इसलिये इनके कथनको उनके समान कहा
है । किन्तु इन दो मार्गणाओंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना नहीं होती, अतः यहां
अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिमंक्रमअद्वाच्छेद शेष कपायोंके समान प्राप्त होनेके कारण
वैसा बतलाया है ।

७ ६२५. मनुष्यत्रिकमे सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिमंक्रमअद्वाच्छेद ओघके समान
है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनिधोमें पुरुषवेदका जघन्य स्थितिमंक्रमअद्वाच्छेद छह
नोकपायोंके समान है । देवोंमें जघन्य स्थितिमंक्रमअद्वाच्छेदका भंग नारकियोंके समान है । इसी
प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व
का जघन्य स्थितिमंक्रमअद्वाच्छेद पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । ज्योतिषी देवोंमें जघन्य
स्थितिमंक्रमअद्वाच्छेदका भंग दूसरी पृथिवीके समान है । सौधर्म कल्पसे लेकर नौ भैवेयक तकके
देवोंमें वही भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहां सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिमंक्रमअद्वाच्छेद-
का भंग ओघके समान है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें तैर्दम प्रकृतियोंका जघन्य
स्थितिमंक्रमअद्वाच्छेद अन्तःकोडाकोडी सागरप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके
जघन्य स्थितिमंक्रमअद्वाच्छेदका भंग ओघके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक
जानना चाहिये ।

§ ६२६. सव्व-णोसव्व-उक्कस्साणुकस्स-जहण्णाजहण्णाट्ठिसिंसकं० द्विदिविहत्ति-भंगो ।

§ ६२७. मादि-अणादि-धुव-अद्भुवाणु० दृविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्तस्स उक्क०-अणुक०-जहण्णाट्ठिसिंसकमो किं सादिया ४ ? सादी अद्भुवो । अज० अणादी धुवो अद्भुओ वा । सोलसक०-णवणोकसायाणमुक्क०-अणुक०-जहण्णाणं मिच्छत्तभंगो । अज० चत्ताग्गि भंगो । सम्मत्त०-सम्माग्गि० उक्कस्साणुक०-जहण्णाजह०-संकमा सादि-अद्भुवा । आदेसेण सव्वं सव्वत्थ सादि-अद्भुवमेव ।

विशेषार्थ—ओघसे जो सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद कहा है वह मनुष्यत्रिकमें अविकल घट जाता है, इसलिये इनके कथनको ओघके समान कहा है । किन्तु मनुष्यनियोगमें छह नोकपायोंके साथ ही पुरुषवेदकी क्षणता होती है, अतः इनके पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद छह नोकपायोंके समान बतलाया है । नारकियोंमें सब प्रकृतियोंका जो जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद बतलाया है वह सामान्य देवोंमें तथा भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें अविकल घट जाता है, इसलिये इनके कथनको सामान्य नारकियोंके समान बतलाया है । किन्तु भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव मर कर नहीं उत्पन्न होते, अतः वहाँ सम्यक्त्व प्रकृतिका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद पर्यन्त असंख्यात्वे भागप्रमाण बतलाया है । सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेदकी अपेक्षा दृमरी पृथिवी और ज्योतिषियोंकी स्थिति एक सी है, अतः एतद्विषयक ज्योतिषियोंका कथन दृमरी पृथिवीके नारकियोंके समान बतलाया है । यह अवस्था सौधर्म कल्पसे लेकर नौ प्रवेयक तक बन जाती है, अतः वहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमका भंग भी इसी प्रकार बतलाया है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि जीव भी मरकर उत्पन्न होते हैं, अतः यहाँ सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद ओघके समान बतलाया है । अनुदिशादिकमें अनन्तानुबन्धी और सम्यक्त्वके सिवा शेष सब कर्मोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोड़ी सागरप्रमाण पाई जाती है, अतः यहाँ सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीके सिवा शेष सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद अन्तःकोडाकोड़ी सागर-प्रमाण बतलाया है । तथा यहाँ कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव भी उत्पन्न होते हैं और अनन्तानुबन्धीकी विमंयोजना भी पाई जाती है, अतः इनका जघन्य स्थितिसंक्रम ओघके समान बतलाया है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद घटित कर जान लेना चाहिये ।

§ ६२६. सर्वस्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद, नोसर्वस्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद, उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्वाच्छेद, अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद, जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद और अजघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद इनका कथन जैसा स्थितिविभक्तिमें किया है वैसा यहाँ करना चाहिये ।

§ ६२७. सादि, अनादि, धुव अद्भुवानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्वका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थितिसंक्रम क्या सादि है, क्या अनादि है; क्या धुव है या क्या अधुव है ? सादि और अधुव है । अजघन्य स्थितिसंक्रम अनादि, धुव और अधुव है । सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्यका भंग मिथ्यात्वके समान है । अजघन्यके चार भंग हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रम सादि और अधुव है । तथा आदेशकी अपेक्षा सब पद सभी गति मार्गणाओंमें सादि और अधुव है ।

❀ सामित्तं ।

§ ६२८. एत्तो सामित्ताणुगमं कस्सामो त्ति पइज्जासुत्तमेदं सुगमं ।

❀ उक्कस्सद्विदिसंक्रमयस्स सामित्तं जहा उक्कस्सियाए द्विदीए उदीरणा तथा षेदन्वं ।

§ ६२९. संपहि एत्थुक्कस्सद्विदिसंक्रमसामित्तं सुत्तसमण्णिदमुच्चारणाबलेण वत्त-इस्सामो । तं जहा—सामित्तं दुविहं—जह० उक्क० च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-सोलसक० उक्क०द्विदिसं० कस्स ? अण्णदर० मिच्छाइद्विस्स उक्कस्सद्विदिं बंधिदूणावलियादीदस्स । एवं णवणोकसाय० । णवरि कसा-युक्कस्सद्विदिं पडिच्छियूणावलियादीदस्स । सम्मत्त०-मम्मामि० उक्क०द्विदिसं० कस्स ?

विशेषार्थ—मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति-संक्रम कदाचित्क है । तथा जघन्य स्थितिसंक्रम क्षणिके समय ही होता है, अतः इन प्रकृतियोंके ये तीनों स्थितिसंक्रम सादि और अध्रुव कहे हैं । किन्तु अजघन्य स्थितिसंक्रममें कुछ विशेषता है । बात यह है कि मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम प्राप्त होनेके पूर्वतक अजघन्य स्थितिसंक्रम रहता है, इसलिये तो वह अनादि है । तथा भव्यकी अपेक्षा अध्रुव और अभव्यकी अपेक्षा ध्रुव है । अब रह मोलह कपाय और नौ नोकपाय सो इनमें से अनन्तानुबन्धी विसंयोजना प्रकृति हानेके कारण इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमके सादि आदि चारों विकल्प बन जाते हैं । इसी प्रकार शेष इक्कीस प्रकृतियोंका उपशमश्रेणिक संक्रमका अभाव हो कर अजघन्य स्थितिसंक्रम पुनः चालू होता है, अतः इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमके भी सादि आदि चारों विकल्प बन जाते हैं । इस प्रकार मिथ्यात्व आदि २६ प्रकृतियोंका विचार हुआ । अब रही सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ सो ये प्रकृतियाँ ही जब कि सादि और सान्त हैं तब इनके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम आदि चारों संक्रम सादि और सान्त हैं ऐसा होनेमें कोई आपत्ति नहीं है । नरक गति आदि चारों गतियाँ प्रत्येक जीवकी अपेक्षा सादि और अध्रुव हैं, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके सादि और अध्रुव ये दो भंग ही बनते हैं यह स्पष्ट ही है ।

❀ अब स्वामित्वका अधिकार है ।

§ ६२८. इससे आगे स्वामित्वानुगमका विचार करते हैं । इस प्रकार यह प्रतिज्ञा सूत्र है जो सुगम है ।

❀ उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका स्वामित्व उत्कृष्ट स्थितिकी उदीरणाके स्वामित्वके समान जानना चाहिए ।

§ ६२९. अब यहाँ जो सूत्रमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रमके स्वामित्वका संकेत किया है सो उसे उच्चारणके बलसे बतलाते हैं । यथा—स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मिथ्यात्व और सोलह कपायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जिस मिथ्यादृष्टिको उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किए एक आवलि हुआ है उसके होता है । इसी प्रकार नौ नोकपायोंका जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम किये जिसे एक आवलिकाल हो

अण्णद० जो पुव्ववेदगो सम्मत्त-मम्मामि०मंतकम्मिओ मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधियूणंतो-
मुहुत्तपडिभग्गो ट्ठिदिधादमकाऊण सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स विदियसमयसम्माइट्ठिस्स ।
एवं चदुमु गदीमु । णवरि पंचिदियतिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-आणदादि जाव सव्वट्ठे
त्ति ट्ठिदिप्रहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

❀ जहणणयमेयजीवेण सामित्तं कायव्वं ।

§ ६३०. सुगमं ।

❀ मिच्छत्तस्स जहणणओ ट्ठिदिसंकमो कस्स ?

§ ३३१. सुगमं ।

❀ मिच्छत्तं खवेमाणस्स अपच्छिमट्ठिदिखंडघचरिमसमयसंकामयस्स
तस्स जहणणयं ।

§ ६३२. मिच्छत्तं खवेमाणस्से त्ति त्रिसेमणेण तदुवमामणादिवावागंतरेसु
पयट्ठम्म मामित्ताभावो पदुप्पाइदो । अपच्छिमट्ठिदिखंडघचरणेण तदण्णट्ठिदिखंडयपडिसेहो
कओ । चरिमसमयसंकामयविसेमणेण दुचरिमादिममयसंकामयस्स मामित्तमंधंधो
पडिमिट्ठो । मेमं सुगमं ।

गया है उसके यह नौ लोकगणोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम होता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम किमके होता है ? जो जीव पूर्वमे वेदक होकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका
सत्कर्मवाला है और इसके बाद जिसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके वहाँसे निवृत्त हुए
अन्तर्मुहूर्त काल हो गया है व० जीव स्थितिघात किये बिना यदि सम्यक्त्वको प्राप्त होता है तो उस
सम्यग्दृष्टिके दूसरे समयमें यह उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम होता है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना
चाहिये । किन्तु उतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय त्रियैच अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और आनत कल्पसे
लेकर सर्वार्थामिद्धितकके देवोंमे सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रमका स्वामित्व स्थिति-
विभक्तिके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

❀ अब एक जीवकी अपेक्षा जघन्य स्वामित्वका कथन करना चाहिये ।

§ ६३०. यह सूत्र सुगम है ।

❀ मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम किमके होता है ।

§ ६३१. यह सूत्र सुगम है ।

❀ जो मिथ्यात्वकी क्षणणा करनेवाला जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकके अन्तिम
समयमें उमका संक्रम कर रहा है उसके मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ।

§ ६३२. जो जीव मिथ्यात्वके उपशामना आदि दूसरे ध्यापारोंमें लगा है उसके प्रकृत
स्वामित्व नहीं होता है यह बतलानेके लिए सूत्रमे 'मिच्छत्तं खवेमाणस्स' पद दिया है । अपच्छिम-
ट्ठिदिखंडय' वचन द्वारा इसके सिवा शेष स्थितिकाण्डकोंका प्रतिषेध किया है । तथा 'चरिमसमय-
संकामय' इस विशेषण द्वारा जो जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकके संक्रमके द्विचरम आदि समयोंमें
विद्यमान है उसके स्वामित्वका निषेध किया है । शेष कथन सुगम है ।

❀ सम्मत्तस्स जहणणद्विदिसंकमो कस्स ?

§ ६३३. सुगमं ।

❀ समयाहियावलियअक्खीणदंसणमोहणीयस्स ।

§ ६३४. समयाहियावलियाए अक्खीणदंसणमोहणीयं जस्स सो समयाहियावलिय-
अक्खीणदंसणमोहणीओ । तस्स पयदजहण्णसामित्तं होइ त्ति सुत्तत्थसंबंधो । सेसं सुगमं ।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स जहणणद्विदिसंकमो कस्स ?

§ ६३५. पुच्छासुत्तमेदं सुगमं ।

❀ अपच्छिमद्विदिसंकमं चरिमसमयसंलुहमाणयस्स तस्स जहण्णयं ।

§ ६३६. एदस्स सुत्तस्स वक्खाणे कीरमाणे जहा मिच्छत्तजहण्णद्विदिसं०
सामित्तसुत्तस्स वक्खाणं कयं तथा कायव्वं, दंसणमोहक्खवणाचरिमफालीए सामित्त-
विहाणं पडि तत्तो एदस्स विसेसाणुवलंभादो ।

❀ अणंताणुबंधीणं जहणणद्विदिसंकमो कस्स ?

§ ६३७. सुगमं ।

❀ विसंजोएंतस्स तेसिं चव अपच्छिमद्विदिसंकमं चरिमसमय-
संकामयस्स ।

* सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ?

§ ६३३. यह सूत्र सुगम है ।

* जिसके दर्शनमोहनीयका क्षय होनेमें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष है उसके सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ।

§ ६३४. जिसके दर्शनमोहनीयका क्षय होनेमें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष है वह समयाधिकआवलिअक्षीणदर्शनमोहनीय है । उसके प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है यह इस सूत्रका तात्पर्य है । शेष कथन सुगम है ।

* सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ?

§ ६३५. यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

* जो अन्तिम स्थितिकाण्डकका उसके अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ।

§ ६३६. इस सूत्रका व्याख्यान करनेपर जिस प्रकार मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमके स्वामित्वविषयक सूत्रका व्याख्यान किया है उसी प्रकार करना चाहिये, क्योंकि वहाँ जो दर्शन-मोहनीयकी क्षयकी अपेक्षा अन्तिम फालिका पतन होते समय जघन्य स्वामित्वका विधान किया है इसकी अपेक्षा उससे इसमें कोई विशेषता नहीं पाई जाती ।

§ * अनन्तानुबन्धियोंका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ।

§ ६३७. यह सूत्र सुगम है ।

* जो विसंयोजना करनेवाला जीव अनन्तानुबन्धियोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकका अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके अनन्तानुबन्धियोंका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ।

§ ६३८. अणंताणुबंधिविसंजोयणाए पयट्टस्स चरिमट्टिदिखंडयचरिमफालि-
संकामयस्स पयदजहण्णसामित्तं होइ त्ति सुत्तथो । सेमं सुगमं ।

❀ अट्टण्हं कसायाणं जहण्णट्टिदिसंकमो कस्स ?

§ ६३९. सुगमं ।

❀ खवयस्स तेसिं चेव अपच्छिमट्टिदिखंडयं चरिमसमयसंछुह-
माणयस्स जहण्णयं ।

§ ६४०. खवयस्स चेव तेसिं जहण्णसामित्तं होइ त्ति सुत्तथसंबंधो । सो च
कदमाए अवत्थाए सामिओ होइ त्ति पुच्छिदे तदुद्देसजाणावणट्टमिदं उत्तं—‘तेसिं चेव’
इत्थादि । तेसिं चेव अट्टकसायाणमपच्छिमे चरिमे ट्टिदिखंडए वट्टमाणो विवक्खिय-
जहण्णट्टिदिसंकमसामिओ होइ । तत्थ वि चरिमसमयसंछुहमाणो चेव, हेट्टा एगेग-
णिसेगेण सह दुचरिमादिफालीणमुवलंभेण जहण्णभावाणुप्पत्तीदो । तदो अंतोमुहुत्त-
मेत्ततदुक्कीरणद्वागालणेण सामित्तविहाणं सुमंबद्धमिदि ।

❀ कोहसंजलणस्स जहण्णट्टिदिसंकमो कस्स ?

§ ६४१. सुगमं ।

❀ खवयस्स कोहसंजलणस्स अपच्छिमट्टिदिबंधचरिमसमयसंछुह-
माणयस्स तस्स जहण्णयं ।

§ ६३८. अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजनामे प्रवृत्त हुआ जो जीव अन्तिम स्थितिकाण्डककी
अन्तिम फालिका संक्रम कर रहा है उसके प्रवृत्त जघन्य स्वामित्व होता है यह इस सूत्रका तात्पर्य
है । शेष कथन सुगम है ।

§ * आठ कपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ?

§ ६३९. यह सूत्र सुगम है ।

* जो क्षपक जीव उन्हींके अन्तिम स्थितिकाण्डकका अन्तिम समयमें संक्रम कर
रहा है उसके आठ कपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ।

§ ६४०. क्षपक जीवके ही उन प्रकृतियोंका जघन्य स्वामित्व होता है यह इस सूत्रका तात्पर्य है ।
किन्तु वह क्षपक जीव किस अवस्थामें स्वामी होता है ऐसी पृच्छा होने पर स्वामित्वविषयक स्थानका
ज्ञान करानेके लिये ‘तेसिं चेव’ इत्यादि सूत्रवाक्य कहा है । आशय यह है कि जो उन्हीं आठ
कपायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकमें प्रियमान हैं वह विवक्षित जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी होता
है । उसमें भी अन्तिम समयमें संक्रम करनेवाला जीव उसका स्वामी होता है, क्योंकि इससे नीचे
एक एक निषेकके साथ द्विचरम आदि फालियोंकी प्राप्ति होनेसे वहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमका प्राप्त होना
सम्भव नहीं है । इसलिये अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कीरण कालको गलानेके बाद स्वामित्वका विधान
करना सुसम्बद्ध है ।

* क्रोधसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ?

§ ६४१. यह सूत्र सुगम है ।

* जो क्षपक जीव क्रोधसंज्वलनके अन्तिम स्थितिबन्धका अन्तिम समयमें संक्रम
कर रहा है उसके क्रोधसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ।

§ ६४२. खवयस्से त्ति वयणेणोवसामयादीणं पडिसेहो कओ । तत्थ वि अणियट्टिखवयस्सेव, अण्णत्थ तज्जहण्णभावाणुववत्तीदो । होंतो वि सोदएणेव सेटि-मारूढस्स होइ । माणादीणमुदएण चट्ठिदस्स कोहसंजलणचरिमफालीए अंतोमुहुत्तूणवेमास-सरूचेणाणुवलंभादो । कुदो एवं ? तत्थ तदो हेट्टिमसंखेज्जगुणाट्टिदिवंधविसए चेव तण्णिणल्लेवणुवलंभादो । सोदएण वि चट्ठिदस्स अपच्छिमट्टिदिवंधसंकांमणदाए चेव सामित्तमंभवो, दुचरिमादिट्टिदिवंधाणमेत्तो विसेसाहियाणं संकांमणावत्थाए जहण्ण-सामित्तविरोहादो । तत्थ वि चरिमसमयसंलुहमाणयस्सेव पयदजहण्णसामित्तं णेदरत्थ । किं कारणं हेट्टिमहेट्टिमफालीणमणंतराणंतरोवग्गिमफालीहिंतो एगोणिसेगवुट्टिदंसणेण तत्थ जहण्णसामित्तविहाणाणुववत्तीदो । कुदो वुण समाणट्टिदिवंधविसयाणमेदासिं फालीणमेवं विमग्गिभावो चे ? ण, दुचरिमादिममयपवद्धचरिमफालीणं हेट्टिमहेट्टिम-ममएगु चेव परिच्छिण्णावाहाणं संबंधेण तहाभावसिद्धीदो । तदो चरिमसमयणवक-बंधचरिमफालिविगए चेव जहण्णसामित्तमिदि णिरवज्जं । एवं ताव सोदएणेव चट्ठिदस्स खवयस्स कोधवेदगद्दाचरिमसमयणवकबंधमावलियादीदं संकांमेमाणयस्स समयूणा-

§ ६४२. 'खवयस्स' इस वचन द्वारा उपशामक आदिका निषेध किया है । उसमें भा अनिवृत्तिक्षपकके ही यह जघन्य स्वामित्व होता है, क्योंकि अन्यत्र प्रकृत जघन्य स्वामित्व नहीं प्राप्त हो सकता । अनिवृत्तिक्षपकके प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता हुआ भी स्वोदयसे जो क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है उसीके होता है, क्योंकि मान आदिके उदयसे जो क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है उसके क्रोधसंज्वलनकी अन्तिम फालि अन्तर्मुहूर्त कम दो महीनाप्रमाण नहीं पाई जाती है ।

शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि वहां पर उससे नीचे संख्यातगुणे स्थितिबन्धके रहते हुए ही संज्वलन क्रोधका अभाव उपलब्ध होता है ।

स्वोदयसे चढ़े हुए जीवके भी अन्तिम स्थितिबन्धका संक्रम होते समय ही प्रकृत स्वामित्व सम्भव है, क्योंकि द्विचरम आदि स्थितिबन्ध इससे विशेष अधिक होते हैं, अतः उनका संक्रम होते समय जघन्य स्वामित्व होनेमें विरोध आता है । उसमें भी जो अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसीके प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है अन्यके नहीं, क्योंकि इससे नीचे नीचेकी जितनी भी फालियां हैं उनमें आगे आगेकी फालियोंसे एक एक निषेककी वृद्धि देखी जानेके कारण वहां जघन्य स्वामित्वका विधान नहीं बन सकता है ।

शंका—जबकि इन फालियोंका स्थितिबन्ध समान होता है तब इनमें इस प्रकारकी विद्वत्शता कैसे होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि नीचे नीचेके समयोंमें ही जिनकी आबाधा समाप्त होती है ऐसी द्विचरम आदि समयप्रवद्ध सम्बन्धी अन्तिम फालियोंके सम्बन्धसे इस प्रकारकी विसदृशता सिद्ध हो जाती है ।

इसलिये अन्तिम समयके नवकबन्धकी अन्तिम फालिके आश्रयसे ही जघन्य स्वामित्व होता है यह युक्तियुक्त है । इस प्रकार जो क्षपक स्वोदय से ही क्षपकश्रेणि पर चढ़कर क्रोधवेदकके कालके अन्तिम समयमें नवकबन्ध करके एक आवलिके बाद उसका संक्रम करने लगा है और

बलियमेत्तफालीओ गालिय चरमफालि संकामणे वावदस्स कोहसंजलणस्स जहण्णओ
ट्टिदिसंकमो होइ ति । एदं णिद्वारिय संपहि सेसदोसंजलणाणं पुरिसवेदस्स च एसो
चेव भंगो ति समप्पणं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

❀ एवं माण-मायासंजलण-पुरिसवेदाणं ।

§ ६४३. एदेसिं च कम्माणमेवं चैव जहण्णसामित्तं दायव्वं, सोदएण चट्ठिदस्स
खवयस्स अणियट्टिट्ठाणे सगसगवेदगद्धाचरिमसमयणवकबंधचरिमफालिसंकमावत्थाए
जहण्णट्टिदिसंकमसंभवं पडि विसेसाभावादो । णवरि माणसंजलणस्स अंतोमुहूत्तूण-
मासपरिमाणाए णवकबंधचरिमफालीए मायासंजलणस्स वि अंतोमुहूत्तपरिहीणद्धमास-
मेत्तीए णवकबंधचरिमफालीए पुरिसवेदस्स य तदूणट्टवस्समेत्तणवकबंधचरिमफालिविसए
जहण्णसामित्तमिदि एसो विसेसलेसो जाणियव्वो ।

❀ लोहसंलणस्स जहएणट्टिदिसंकमो कस्स ?

§ ६४४. सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

❀ आयलियसमयाहियसकसायस्स खवयस्स ।

फिर जो एक समय कम एक आवलिप्रमाण फालियोंको गलाकर अन्तिम फालिका संक्रम कर
रहा है उसके क्रोडसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है। इस प्रकार क्रोधसंज्वलनके
जघन्यस्थितिसंक्रमका निर्णय करके अब शेष दो संज्वलन और पुरुषवेदका जघन्य
स्थितिसंक्रमविषयक स्वामित्व इसी प्रकार होता है इस बातका समर्थन करनेके लिये आगेका
सूत्र कहते हैं—

❀ इसी प्रकार मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और पुरुषवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमका
स्वामित्व जानना चाहिये ।

§ ६४३. इन कर्मोंका भी इसी प्रकार जघन्य स्वामित्व देना चाहिये, क्योंकि स्वोदयसे
क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपक जीवके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें अपने अपने वेदकालके अन्तिम
समयमें प्राप्त हुए नवकबन्धकी अन्तिम फालिकी संक्रमावस्थाके प्राप्त होने पर इन कर्मोंका जघन्य
स्थितिसंक्रम हांता है, इसलिये संज्वलनक्रोधके जघन्य स्थितिसंक्रमके स्वामित्वके कथनसे इनके
स्वामित्वके कथनमें कोई विशेषता नहीं है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मानसंज्वलनका
अन्तर्मुहूर्त कम एक महीनाप्रमाण नवकबन्धकी अन्तिम फालिके प्राप्त होने पर मायासंज्वलनका भी
अन्तर्मुहूर्त कम आधे महीनाप्रमाण नवकबन्धकी अन्तिम फालिके प्राप्त होने पर और पुरुषवेदका
अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षप्रमाण नवकबन्धकी अन्तिम फालिके प्राप्त होने पर जघन्य स्वामित्व प्राप्त
होता है ऐसा यहाँ विशेष अभिप्राय जानना चाहिये ।

❀ लोभसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ?

§ ६४४. यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

❀ जिस क्षपक जीवके सकषायभावमें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष
है उसके लोभसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ।

§ ६४५. आवलिया समयाहिया जस्स सकसायस्स सो आवलियसमयाहियसकसाओ । तस्स पयदजहण्णसामित्तं दट्टुच्चं । सकसायवयणेत्थ सुहुमसांपराइओ विवक्खिओ; सेसाणं समयाहियावलियविसेसणाणुववत्तीए । सो चेव खवयत्तेण विसेसिज्जे, अखवयस्स पयदजहण्णसामित्तविरोहादो ।

❀ इत्थिवेदस्स जहण्णदिसंकमो कस्स ?

§ ६४६. सुगमं ।

❀ इत्थिवेदोदयक्खवयस्स तस्स अपच्छिम्मदिसंखंडयं संलुहमाणयस्स तस्स जहण्णयं ।

§ ६४७. एत्थित्थिवेदोदयक्खवयस्से त्ति वयणं सेसवेदोदयक्खवयपडिसेहफलं । गिरत्थयमिदं विसेसणं, अण्णवेदोदएण वि चट्ठिदस्स खवयस्स जहण्णदिसंकमाविरोहादो । ण च सोदय-परोदएहि चट्ठिदाणं खवयाणमित्थिवेदचरिमदिसंखंडयम्मि विसरित्तभावो अत्थि, णवुंसयवेदस्सेव तदणुवलंभादो । तम्हा अण्णदरवेदोदइल्लस्स खवयस्से त्ति सामित्तणिद्देशो कायव्वो त्ति । एत्थ परिहारो—सच्चमेदमुदाहरणमेत्तं तु इत्थिवेदोदय-क्खवयावलंबणं णेदं तंतमिदि धेत्तच्चं । परोदएणेव सामित्तं कायव्वं, सोदएण पढमद्विदीए

§ ६४५. जिस सकपाय जीवके एक समय अधिक एक आर्वात्त काल शेष है वह आवलि-समयाधिकसकपाय जीव है । उसके प्रकृत जघन्य स्वामित्व जानना चाहिये । इस सूत्रमें 'सकसाय' इस वचन द्वारा सूक्ष्मसाम्प्रायिक जीव लिया गया है, क्योंकि शेष जीवोंके 'जिनके एक समय अधिक एक आर्वात्त काल शेष है' यह विशेषण नहीं बन सकता । उसमें भी वह जीव क्षपक ही होता है यह बतलानेके लिये क्षपक यह विशेषण दिया है, क्योंकि अक्षपक जीवके प्रकृत जघन्य स्वामित्वके होनेमें विरोध आता है ।

* स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ।

§ ६४६. यह सूत्र सुगम है ।

* जो स्त्रीवेदके उदयवाला क्षपक जीव स्त्रीवेदके अन्तिम स्थितिकाण्डकका संक्रम कर रहा है उसके स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ।

§ ६४७. शेष वेदके उदयवाले क्षपक जीवका निषेध करनेके लिये यहां सूत्रमें 'इत्थिवेदोदय-क्खवयस्स' वचन दिया है ।

शंका—'इत्थिवेदोदयक्खवयस्स' विशेषण निरर्थक है, क्योंकि अन्य वेदके उदयसे चढ़े हुए क्षपक जीवके भी जघन्य स्थितिसंक्रमके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है । स्वोदय या परोदय किसी भी प्रकारसे चढ़े हुए क्षपक जीवोंके स्त्रीवेदके अन्तिम स्थितिकण्डकमें किसी प्रकारकी विसदृशता नहीं होती, क्योंकि जिस प्रकार स्वोदय और परोदयसे चढ़े हुए जीवके नपुंसकवेदके अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विसदृशता होती है उस प्रकार यहाँ विसदृशता नहीं पाई जाती, इसलिये प्रकृतमें स्त्रीवेदके उदयवाले क्षपक जीवके ऐसा निर्देश न करके 'किसी भी वेदके उदयवाले क्षपक जीवके' इसप्रकार स्वामित्वका निर्देश करना चाहिये ?

समाधान—यहाँ स्त्रीवेदके उदयवाले क्षपकका अवलम्ब लिया गया है सो यह उदाहरण-मात्र है, सिद्धान्त नहीं है यह बात सत्य है ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिये ।

ओकड्डणासंकमसंभवादो जहण्णभावाणुव्वत्तीदो त्ति चे ? ण, संकमपाओग्गपढमट्टिदिं गालिय आवलियपविट्टपढमट्टिदियस्स जहण्णसामित्तविहाणेण तद्दोसपरिहारो । पढमट्टिदीए संकमाभावे वि जट्टिदिव्वहुगो होइ त्ति णासंकणिज्जं, एत्थ जट्टिदिव्विक्खाए अभावादो, णिसेयट्टिदीए चेव पाहण्णियादो । तम्हा सोदएण वा परोदएण वा पयदसामित्तमविरुद्धं सिद्धं ।

❀ णवुंसयवेदस्स जहण्णट्टिदिसंकमो कस्स ?

§ ६४८. सुगमं ।

❀ णवुंसयवेदोदयक्खवयस्स तस्स अपच्छिन्नमट्टिदिखंडयं संल्लुहमाणयस्स तस्स जहण्णयं ।

§ ६४९. एत्थ णवुंसयवेदोदयक्खवयस्सेव पयदजहण्णमामित्तं होइ त्ति अण्णजोगववच्छेदेण सेसवेदोदयक्खवयाणं मामित्तमबंधपडिसेहो कायव्वो । किमट्ठं तप्पडिसेहो कीरदे ? ण, तत्थ णउंसयवेदस्स पुच्चमेव अंतोमुहुत्तमन्थि त्ति खीयमाणस्स चरिमट्टिदि-

शंका—यहाँ परोदयसे ही स्वामित्व प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि स्वोदयसे प्रथम स्थितिका अपकर्षणसंक्रम सम्भव होनेसे वहाँ जघन्यपना नहीं बन सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि संक्रमके योग्य प्रथम स्थितिको गला कर जिसके प्रथम स्थिति आवलिके भीतर प्रविष्ट हो गई हैं उसके जघन्य स्वामित्वका विधान करनेसे उक्त दोषका परिहार हो जाता है ।

शंका—प्रथम स्थितिके संक्रमका अभाव हो जाने पर भी यत्स्थिति बहुत हांती है, इसलिये स्वोदयसे चढ़े हुए जीवके जघन्य स्वामित्व नहीं बन सकता है ?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि यहाँ पर यत्स्थितिकी विवक्षा नहीं की गई है । किन्तु निपेकस्थितिकी ही प्रधानता है, इसलिये स्वोदय या परोदय किसी प्रकार भी चढ़े हुए जीवके प्रकृत स्वामित्वके प्राप्त होनेमें कोई विरोध नहीं आता है यह बात सिद्ध हुई ।

* नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ।

§ ६४८ यह सूत्र सुगम है ।

* जो नपुंसकवेदके उदयवाला क्षपक जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकका संक्रम कर रहा है उसके नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ?

§ ६४९. यहाँ नपुंसकवेदके उदयवाले क्षपक जीवके ही प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है इस प्रकार अन्ययोग्यवच्छेदद्वारा शेष वेदोंके उदयवाले क्षपक जीवोंके प्रकृत स्वामित्वका निषेध करना चाहिए ।

शंका—किस लिये यहां अन्य वेदके उदयवाले क्षपक जीवोंके प्रकृत जघन्य स्वामित्वका निषेध करते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्य वेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़े हुए जीवके नपुंसकवेद-

खंडयस्स सोदयक्खवयस्स चरिमद्विदिसंखंडयामादो असंखेज्जगुणत्तदंसणादो । तदो सोदएणेव णवुंसयवेदस्स जहण्णसामित्तमिदि सिद्धं ।

❀ छरणोक्तसायाणं जहण्णद्विदिसंक्रमो कस्स ?

§ ६५०. सुगमं ।

❀ खवयस्स तेसिमपच्छिमद्विदिसंखंडयं संलुहमाणयस्स तस्स जहण्णयं ।

§ ६५१. एत्थ खवयस्से त्ति वयणमक्खवयवुदासदुवारेणाणियद्विखवयस्स जहण्णसामित्तपदुप्पायणफलं, अण्णत्थ तज्जहण्णभावाणुवल्लदीदो । तेसिं छरणोक्तसायाणमपच्छिमं सन्वपच्छिमं द्विदिसंखंडयं संलुहमाणयस्स संकामेमाणयस्स पयदजहण्णसामित्तं होइ । एत्थ चरिमफालिविसेसणं ण कयं, चरिमद्विदिसंखंडयचरिमफालीसु चेव सामित्तविहाणे विप्पडिसेहाभावादो ।

§ ६५२. एवमोघेण जहण्णसामित्तं सञ्वासि मोहपयडोणं परूविदं । एत्तो ओघादेसपरूवणद्वुमुच्चारणावलंबणं कस्सामो । तं जहा—जह० पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ० जह० द्विदिसं० कस्स ? अण्णद० दंमणमोहक्खवयस्स चरिमद्विदिसंखंडयचरिमसमयसंकामयस्स । एवं सम्मामि० । सम्म० जह० द्विदिसं०

का अन्तिम स्थितिकाण्डक अन्तर्मुहूर्त पहले ही क्षय हो जाता है, इसलिये वह स्वोदयसे चढ़े हुए क्षपक जीवके अन्तिम स्थितिकाण्डकके आयाममें असंख्यातगुणा देखा जाता है । अतः स्वोदयसे ही नपुंसकवेदका जघन्य स्वामित्व प्राप्त होता है यहदुवात सिद्ध हुई ।

❀ छह नोकपायोका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ?

§ ६५०. यह सूत्र सुगम है ।

❀ जो क्षपक उनके अन्तिम स्थितिकाण्डकका संक्रम कर रहा है उसके छह नोकपायोका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ।

§ ६५१. यहाँ सूत्रमें 'खवयस्स' वचन अक्षपकके निराकरण द्वारा अनिवृत्तिक्षपकके जघन्य स्वामित्वका कथन करनेके लिये दिया है, क्योंकि अन्यत्र उसका जघन्य स्वामित्व नहीं उपलब्ध होता । इन छह नोकपायोके अन्तिम स्थितिकाण्डकका 'संलुहमाणयस्स' अर्थात् संक्रम करनेवाले जीवके प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है । यहाँ सूत्रमें 'चरिमफालि' विशेषण नहीं दिया है तो भी अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालियोंके प्राप्त होने पर ही जघन्य स्वामित्वका विधान करनेमें कोई विरोध नहीं है ।

§ ६५२. इस प्रकार ओघसे सब मोहप्रकृतियोंके जघन्य स्वामित्वका कथन किया । अब आगे ओघ और आदेशका कथन करनेके लिये उच्चारणाका अवलम्ब लेते हैं । यथा—जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जो दर्शनमोहका क्षपक जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकका अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके होता है । इसी प्रकार ही मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामित्व जानना चाहिये । सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जिसे दर्शनमोहकी क्षपणा

कस्स ? अण्णद० समयाहियावलयिअक्खीणदंसणमोहणीयस्स । अणंताणु०४ जह०
 द्विदिसं० कस्स ? अण्णद० अणंताणु०४ विसंजोएमाणस्स चरिमद्विदिखंडए चरिमसमय-
 संकामेंतस्स । अट्टक० जह० कस्स ? अण्णद० खवयस्स चरिमे द्विदिखंडए चरिमसमय-
 संकामेंतस्स । इत्थि०-णवुंसं०-छण्णोक० जह० द्विदिसंका० कस्स ? अण्णद० खवयस्स
 चरिमे।द्विदिखंडए वट्टमाणयस्स । णवरि णवुंसं० जह० णवुंसयवेदोदयक्खवयस्स ।
 एदेण।णव्वदे जहा इत्थिवेदस्स परोदएण वि सामित्तमविरुद्धमिदि । क्रोध-माण-माया-
 संजल०-पुरिसवेद० जह० द्विदिसं० कस्स ? अण्णद० खवयस्स चरिमद्विदिबंधे चरिम-
 समयसंकामेंतस्स । णवरि अप्पणो वेद-कसायस्स सेटिमारूठस्स । लोहसंज० जह०
 द्विदिसं० कस्स ? अण्णद० खवयस्स समयाहियावलयिचरिमसमयसकसायस्स ।

§ ६५३. आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-वारसक०-भय-दुगुच्छ० जह०, द्विदिसं०
 कस्स ? अण्णदरस्स असण्णिपच्छायदस्स हदसमुत्पत्तियदुसमयाहियावलयिउववण्णलयस्स ।
 सत्तणोक० द्विदिविहत्तिभंगो, पडिवक्खबंधगद्दागालणेण अंतोमुहुत्तणुववण्णलयस्स
 सामित्तविहाणं पडि भेदाभावादो । णवरि मगबंधपारंभादो आवलयिचरिमसमय सामित्त-

करनेमें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष है ऐसे अन्यतर जीवके होता है । अनन्तानुबन्धी
 चतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रम किमके होता है ? अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करनेवाला
 जो जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकके अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके होता है । आठ
 कपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जो क्षपक जीव उनके अन्तिम स्थितिकाण्डकका
 अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके होता है । लोभ, नपुंसकवेद और छह नोकपायोंका
 जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है । जो अन्यतर क्षपक जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विद्यमान
 है उसके होता है । किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम नपुंसकवेदके
 उदयबाले क्षपक जीवके ही होता है । इससे ज्ञात होता है कि लोभवेदका जघन्य स्वामित्व परोदयसे
 प्राप्त होनेमें भी कोई विरोध नहीं आता है । क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और पुरुष-
 वेदका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ! जो अन्यतर क्षपक जीव अन्तिम स्थितिवन्धका
 अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके होता है । किन्तु इतनी विशेषता है कि वेद और कपायोंमें
 से स्वोदयसे श्रेणिपर चढ़े हुए जीवके यह जघन्य स्वामित्व होता है । लोभ संज्वलनका जघन्य
 स्थितिसंक्रम किमके होता है ? जो अन्यतर क्षपक जीव एक समग्र अधिक एक आवलि कालरूप
 अन्तिम समयमें सकपायभावसे स्थित है उसके होता है ।

§ ६५३. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, वारह कर्षय, भय और जुगुप्साका जघन्य
 स्थितिसंक्रम किसके होता है ? हतसमुत्पत्तिक क्रियाको करिके जो अन्यतर जीव असंज्ञी पर्यायसे
 आकर नरकमें उत्पन्न हुआ है उसके दो समय अधिक एक आवलि कालके होने पर उक्त प्रकृतियोंका
 जघन्य स्थितिसंक्रम होता है । सात नोकपायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामित्व स्थितिभिक्तिके
 समान है, क्योंकि नरकमें उत्पन्न होनेके बाद प्रतिपन्न प्रकृतियोंके बन्धकालके गलानेमें जो अन्तर्मुहूर्त
 काल लगता है उसनी स्थिति विवक्षित नोकपायोंकी और व म हो जाती है और तब जाकर उनका
 जघन्य स्थितिसत्त्व प्राप्त होता है । इनका जघन्य स्थितिसंक्रम भी अन्तर्मुहूर्त बाद ही प्राप्त होता है
 इस अपेक्षासे इन दोनोंके जघन्य स्वामित्वके कथनमें कोई भेद नहीं है । किन्तु इतनी विशेषता है
 कि जिस प्रकृतिका जघन्य स्वामित्व प्राप्त करना हो उसका बन्ध प्रारम्भ हो जानेके बाद एक

मेत्थ दद्वुव्वं । समत्त-अणंताणु०४ ओघभंगो । सम्मामि० उव्वेल्लमाणस्स चरिम-
द्विदिखंडए चरिमसमयसंक्रामे० । एवं पढमाए । विदियादि जाव छट्टि ति मिच्छ०-
बारसक०-णवणोक० द्विदिविहत्तिभंगो । सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०४ जह० द्विदिसं०
कस्स ? अण्णद० उव्वेल्लमाणस्स विसंजोएंतस्स च चरिमे द्विदिखंडए चरिमसमयसंक्रा० ।
सत्तमाए मिच्छत्त०-बारसक०-भय-दुगुंछ० जह० द्विदिविहत्तिभंगो । णवरि संतकम्मं
वोलेऊणावलियादीदस्स भय-दुगुंछाणं दोआवलियादीदस्स । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०४
विदियपुढविभंगो । सत्तणोकसायाणं द्विदिविहत्तिभंगो, संतसमाणबंधादो अंतोमुहुत्तादीदस्स
पडिवक्खबंधगद्दागालणेण सामित्तं पडि तत्तो भेदाभावादो । णवरि सगबंधावलियचरिम-
समए सामित्तं गहेयव्वं ।

§ ६५४. तिरिक्खेसु मिच्छ०-बारसक०-भय-दुगुंछ० द्विदिविहत्तिभंगो । णवरि
संतकम्मं वोलेऊणावलियादीदस्स भय-दुगुंछाणं दोआवलियादीदस्स । सम्मत्त०-सम्मामि०-
अणंताणु०४ णारयभंगो । सत्तणोक० द्विदिविहत्तिभंगो । णवरि सण्णपंचिंदियतिरिक्ख-
आवलिके अन्तिम समयमे प्रकृत जघन्य स्वामित्व जानना चाहिये । सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी-
चतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी ओघके समान हैं । जो सम्यगिमध्यात्वकी उद्वेलना करने-
वाला जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकके अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके सम्यगिमध्यात्वका
जघन्य स्थितिसंक्रम होता है । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये । दूसरीसे लेकर छठी
पृथिवीतकके नारदियोंमें मिध्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी
स्थितिविभक्तिके समान है । सम्यक्त्व, सम्यगिमध्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य
स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जो सम्यक्त्व और सम्यगिमध्यात्वकी उद्वेलना करनेवाला और
अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करनेवाला जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकके अन्तिम समयमें
संक्रम कर रहा है उसके होता है । सातवीं पृथिवीमें मिध्यात्व, बारह कपाय, भय और जुगुप्साके
जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी स्थितिविभक्तिके समान हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि जिसे
सत्कर्मके समान स्थितिवन्ध होनेके बाद एक आवलि काल हुआ है उसके मिध्यात्व और
बारह कपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है तथा भय और जुगुप्साका सत्कर्मके समान स्थितिवन्ध
हानेके बाद दो आवलि काल व्यतीत हुआ है उसके भय और जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम
होता है । सम्यक्त्व, सम्यगिमध्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी
दूसरी पृथिवीके समान है । तथा सात नोकपायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी स्थितिविभक्तिके
समान है, क्योंकि सत्कर्मके समान बन्धके द्वारा जिसने अन्तर्मुहूर्त काल विता दिया है उसके
प्रतिपत्त प्रकृतियोंके बन्धक कालको गलानेकी अपेक्षा स्वामित्वके प्रति उससे इसमें कोई भेद नहीं
है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी बन्धावलिके अन्तिम समयमें यह जघन्य स्वामित्व ग्रहण
करना चाहिये ।

§ ६५४. तिर्यञ्चोमं मिध्यात्व, बारह कपाय, भय और जुगुप्साके स्थितिसंक्रमका जघन्य
स्वामी स्थितिविभक्तिके समान हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि सत्कर्मके समान स्थितिवन्ध हानेके
बाद एक आवलि होने पर मिध्यात्व और बारह कपायोंका तथा सत्कर्मके समान स्थितिवन्ध हानेके
बाद दो आवलि काल जाने पर भय और जुगुप्साका प्रकृत जघन्य स्वामित्व कहना चाहिये । सम्यक्त्व,
सम्यगिमध्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी नारकीके समान है ।
सात नोकपायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता

पञ्जत्तएमुप्पज्जिय सच्चुकस्सपडिवक्खबंधगद्धं गालिय सगबंधपारंभादो आवलियचरिम-
समए सामित्तं वत्तव्वं ।

§ ६५५. पंचिंदियतिरिक्ख०३ मिच्छ०-बारसक०-भय-दुगुंछ० जह० द्विदिसं०
कस्स ? अण्णद० बादरेइंदियपच्छायदस्स हदसमुप्पत्तियआवलियउववण्णल्लयस्स ।
सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०४ णारयभंगो । सत्तणोक० जह० द्विदिसं० कस्स ?
अण्णद० हदसमुप्पत्तियबादरेइंदियपच्छायदस्स अंतोमुहुत्तुववण्णल्लयस्स अप्पप्पणो
कसायं बंधियूणावलियादीदस्स । जोणिणीसु सम्म० मम्मामि०भंगो । पंचि०निरिक्ख-
अपञ्जत्त-मणुसअपञ्ज० जोणिणीभंगो । णवरि अणंताणु०४ मिच्छ०भंगो ।

§ ६५६. मणुस३ ओघं । णवरि मणुसिणीसु पुग्गिमवेद० छण्णोकसायभंगो ।

§ ६५७. देवाणं णारयभंगो । एवं भवण०-वाण० । णवरि सम्म० सम्मामि०-
भंगो । जोदिसि० विदियपुढविभंगो । सोहम्मादि जाव णवगेवजा त्ति द्विदिविहत्तिभंगो ।
णवरि सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४ णारयभंगो । अणुद्दिमादि जाव सच्चवट्टा त्ति

है कि सक्षी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंमें उत्पन्न कराके और प्रतिपत्त प्रकृतियोंके सर्वोत्कृष्ट बन्धकाल-
को गला कर विवक्षित नोकपायके बन्धका प्रारम्भ करावे । फिर जब एक आवलि काल हो जाय तब
उसके अन्तिम समयमें प्रकृत स्वाभित्व कहना चाहिये ।

§ ६५५. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें मिथ्यात्व, बारह कपाय, भय और जुगुप्माका जघन्य
स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जो हतसमुत्पत्तिक्रियाको करनेके साथ बादर एकेन्द्रिय पर्यायसे
आकर यहाँ उत्पन्न हुआ है उसके यहाँ उत्पन्न होने पर एक आवलि कालके अन्तमें उक्त प्रकृतियोंका
जघन्य स्थितिसंक्रम होता है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य
स्थितिसंक्रमका स्वामी नारकियोंके समान है । सात नोकपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके
होता है ? हतसमुत्पत्तिक्रियाको करनेके साथ बादर एकेन्द्रिय पर्यायसे आकर यहाँ उत्पन्न
हुए जिस अन्यतर जीवको एक अन्तर्मुहूर्त काल हो गया है उसके तदनन्तर विवक्षित
नोकपायका बन्ध होनेके बाद एक आवलि कालके अन्तमें सात नोकपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम
होता है । योनिनी तिर्यञ्चोंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च
अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी योनिनी तिर्यञ्चोंके
समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है ।

§ ६५६. मनुष्यत्रिकमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी ओघके समान है ।
किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनिर्योमें पुरुषवेदका भंग छह नोकपायोंके समान है ।

§ ६५७. देवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी नारकियोंके समान है ।
इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ
सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । ज्योतिषियोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका
स्वामी दूसरी पृथिवीके समान है । सौधर्म कल्पसे लेकर नौ प्रवेयक तकके देवोंमें सब प्रकृतियोंका
भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और
अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग नारकियोंके समान है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें
सब प्रकृतियोंका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व

द्विदिविहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-अणंताणु०४ णारयभंगो । एवं जाव० ।

एवं जहण्णयं सामित्तं समत्तं ।

❀ एयजीवेण कालो ।

§ ६५८. एतो एयजीवविसेसिदो कालो परूवणिज्जो । सो वुण दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ च । तत्थुक्कस्सओ ताव उक्कस्सद्विदिउदीरणाकालादो ण भिज्जदि त्ति तदप्पणाकरणद्वमुवरिमसुत्तविण्णासो—

❀ जहा उक्कस्सिया द्विदिउदीरणा तहा उक्कस्सओ द्विदिसंकमो ।

§ ६५९. सुगममेदमप्पणामुत्तं । संपहि एदिस्से अप्पणाए फुडीकरणद्वमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—तत्थ दुविहो णिहेसो—ओघेणादेसेण य । ओघेण मिच्छ०-सोलमक०-णवणोक० उक्क० द्विदिमंका० केव० ? जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । चट्टणोक० आवलिया । अणुक्क० जह० अंतोमु०, णवणोक० एयसमओ, उक्क० अणंत-कालममंखेज्जपोगलपरियट्ठं । सम्म०-सम्मामि० उक्क० द्विदिमंका० जहण्णु० एयसमओ । अणु० जह० अंतोमु०, उक्क० वेज्जावडिमागरो० सादिरेयाणि ।

और अतन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग नारकियाके समान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

इस प्रकार जवन्य स्यामित्य समाप्त हुआ ।

* अब एक जीवो अपेक्षा कालका अधिकार है ।

§ ६५८. अब इससे आगे एक जीवकी अपेक्षा कालका कथन करना चाहिये। वह दो प्रकारका है—जवन्य और उत्कृष्ट । उनमें उत्कृष्ट कालका उत्कृष्ट स्थितिउदीरणाके कालसे कोई भेद नहीं है, इसलिये उसकी प्रमुखतासे कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति उदीरणा होती है उसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति-संक्रम है ।

§ ६५९. यह अप्पणासूत्र सुगम है । अब इस अर्पणाका स्पष्टीकरण करनेके लिये उच्चारणाको बतनाते हैं । यथा—निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रामकका कितना काल है ? जवन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । किन्तु चार नोकपायोंका उत्कृष्ट काल एक प्रायलि है । मिथ्यात्व और सोलह कपायोंके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रामकका जवन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और नौ नोकपायोंका जवन्य काल एक समय है । तथा सभीका उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रामकका जवन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रामकका जवन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर है ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी बन्धसे और नौ नोकपायोंकी संक्रमसे उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होता है । यतः उत्कृष्ट स्थितिके बन्धका जवन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इन सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जवन्य काल एक समय और उत्कृष्ट

§ ६६०. आदेसेण षेरइय० सोलसक०-पंचणोक०-चदुणोक० उक० द्विदिसं० जह० एयसमओ, उक० अंतोमू० आवलिया । अणु० जह० एयस०, उक० तेतीसं सागरोवमाणि । सम्म०-सम्मामि० उक० द्विदिसंका० जहणु० एयसमओ । अणुक०

काल अन्तर्मुहूर्त वतलाया है । किन्तु स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिका उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय बन्ध न होकर उत्कृष्ट स्थितिबन्धके रूक जानेके बाद ही इनका बन्ध होता है, इसलिये इनमें एक आवलिप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका ही संक्रम देखा जाता है, अतः इनके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रामकका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त न प्राप्त होकर एक आवलिप्रमाण प्राप्त होता है । इसीसे इनकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट काल एक आवलिप्रमाण वतलाया है । मिथ्यात्व और सोलह कपायोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । इसीसे यहाँ इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त वतलाया है । क्रोधादि कपायोंका एक एक समयके अन्तरसे उत्कृष्ट स्थितिबन्धका होना सम्भव है और जब क्रोधादि कपायोंका इस प्रकारसे बन्ध होता है तब नौ नोकपायोंका अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रम एक समयके लिये बन जाता है । इसीसे इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय वतलाया है । तथा इन सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जो उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण वतलाया है सो वह एकेन्द्रियोंकी अपेक्षासे जान लेना चाहिये, क्योंकि जब कोई जीव इतने काल तक एकेन्द्रिय पर्यायमें रहता है तब उसके इतने काल तक न तो उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पाया जाता है और न ही उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम ही सम्भव है । अतः इन सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है । जो जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अन्तर्मुहूर्तमें वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति होकर दूसरे समयमें एक समय तक इस उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम होता है । इसीसे यहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय वतलाया है । जो जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ताको प्राप्त करके अन्तर्मुहूर्तमें उनकी क्षणिका कर देता है उसके इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । तथा जो जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उद्वेलनाकालके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त होता है और ज्ञ्यासठ सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ रह कर पुनः मिथ्यात्वमें जाकर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना करने लगता है । तथा अपनी अपनी उद्वेलनाके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुनः ज्ञ्यासठ सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ रहता है । फिर अन्तमें मिथ्यात्वमें जाकर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना करता है उसके इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट काल साधिक दो ज्ञ्यासठ सागर पाया जाता है । इसीसे यहाँ इनकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक दो ज्ञ्यासठ सागर वतलाया है ।

§ ६६०. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय और चार नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय तथा चार नोकपायोंके सिवा शेषका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त और चार नोकपायोंका उत्कृष्ट काल एक आवलि है । तथा इन सबकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । इसी

जह० एयस०, उक्क० तेचीसं सागरो० । एवं सव्वणेरइय०-पंचि०तिरिक्ख३-
मणुस०३-देवा जाव सहस्सार त्ति । णवरि सव्वेसिमणुक्क० जह० एयसमओ,
उक्क० सगड्ढिदी ।

§ ६६१. तिरिक्खेमु मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० उक्क० द्विदिसंका० जह०
एयस०, उक्क० अंतोमु० आवलिया । अणु० जह० एयस०, उक्क० अणंतकालमसंखेज-
पोगलपरियडुं । सम्म०-सम्मामि० उक्क० द्विदिसंका० जहणु० एयस० । अणुक्क०
जह० एयसमओ, उक्क० तिण्णि० पल्लिदो० सादिरियाणि । पंचि०तिरि०अपज्ज० मिच्छ०-
सोलसक०-णवणोक० उक्क० द्विदिसं० जहणु० एयसमओ । अणु० जह० खुदाभव०

प्रकार सब नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिक, मनुष्यत्रिक, सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इन सभीमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—यहाँ और सब काल तो जिस प्रकार आघातरूपणमें घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार जान लेना चाहिये । किन्तु सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकके उत्कृष्ट कालमें और कुछ प्रकृतियोंके जघन्य कालमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि जिस मार्गणाकी जितनी कायस्थिति सम्भव है वहाँ उतने काल तक सभी प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थिति और उसके संक्रमका पाया जाना सम्भव है, अतः सर्वत्र अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण कहा है । जिस मार्गणामें भवस्थिति और कायस्थितिमें अन्तर नहीं है वहाँ भवस्थितिको ही कायस्थिति जानना चाहिये । और जिस मार्गणामें इनमें अन्तर है वहाँ कायस्थिति लेनी चाहिये । अब जघन्य कालका नुजासा करते हैं । बात यह है कि जिस जीवने भवके उरान्त्य समयमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम करके अन्तम समयमें एक समयके लिये मिथ्यात्व और सोलह कपायोंका अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रम किया और दूसरे समयमें मरकर अन्य गतिको प्राप्त हो गया उसके उक्त प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । इसी प्रकार जिसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रममें एक समय शेष रहने पर जो विवक्षित गतिको प्राप्त हुआ है उसके उस गतिमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । इसीसे इन मार्गणाओंमें उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय बतलाया है ।

§ ६६१. तिर्यचोमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार नोकपायोंके सिवा शेष सबका अन्तर्मुहूर्त है तथा चार नोकपायोंका एक आवलिप्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्पप्रमाण है । पंचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्रकोमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य

समयूणं, उक्क० अंतोमु० । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० द्विदिसं० जहणु० एयसमओ । अणु० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवं मणुसअपजत्तएसु ।

§ ६६२. आणदादि जाव उवरिमगेवजा त्ति मिच्छ०-वारसक०-णवणोक० उक्क० द्विदिसं० जहणु० एयसमओ । अणु० जह० जहणुद्विदी समयुणा, उक्क० सगद्विदी । सं०-सम्मामि०-अणंताणु०४ उक्क० द्विदिसं० जहणुक्क० एयस० । अणुक्क० ज० एयस०, उक्क० सगद्विदी । अणुदिमादि मच्चट्टा त्ति एवं चैव । णवरि सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । अणंताणु०४ उक्क० द्विदिसं० जहणु० एयसमओ । अणुक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० सगद्विदी । एवं जाव० ।

एवमुक्कस्सकालाणुगमो समत्तो ।

❀ एत्तो जहणुद्विदिसंकमकालो ।

§ ६६३. एत्तो उक्कस्सद्विदिसंकमकालविहायणादो अणतग्मवसरपत्तो जहणुद्विदिसंकमकालो विहायिज्ज्वो त्ति पइजावयणमेदं ।

काल एक समय कम खुदाभवप्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार मनुष्य अपयाप्तकौमे जानना चाहिये ।

§ ६६२ आनतादिकसे लेकर उपरिम प्रवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, चारह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धाचतुष्करी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अनुदिशम लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें इसी प्रकार है । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है । अनन्तानुबन्धीचतुष्करी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—पूर्वमें ओषसे और नरकगतिके कालका स्पष्टीकरण कर आये हैं । उमें ध्यानमें रखकर और अपने अपने स्वामित्वको जानकर तिर्चञ्जगति आदि । कालका स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए । खास विशेषता न होनेसे यहाँ अलगसे स्पष्टीकरण नहीं किया है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ ।

* अब आगे जघन्य स्थितिसंकमके कालका अधिकार है ।

§ ६६३. अब इस उत्कृष्ट स्थितिसंकमके कालका व्याख्यान करनेके बाद अवसर प्राप्त जघन्य स्थितिसंकमके कालका व्याख्यान करना चाहिये इस प्रकार यह प्रतिज्ञावचन है ।

१. आ०प्रतो समयुणा, उक्क० द्विदिसकमो [उक्कस्सद्विदी] [सम्मत्त] सम्मामि० इति पाठः ।

❀ अट्टावीसाए पयडीणं जहण्णट्टिदिसंक्रमकालो केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णुक्कस्सेण एयसमओ ।

§ ६६४. अट्टावीससंखाए परिच्छिण्णाणं मोहपयडीणं जहण्णट्टिदिसंक्रमकालो एयजीवविसओ क्रियच्चिरं होइ त्ति आसंक्रिय तण्णिहेसो कओ—जहण्णु० एयसमओ त्ति । होउ णाम जेसिं कम्माणं जहण्णट्टिदिसंक्रमम्म चरिमफालिविसए समयाहियावलियाए च सामित्तं तेसिं जहण्णुक्कस्सेणेयसमयकालणियमो, ण सेमाणमिच्चासंकाए तत्थतणविसेस-संभवपदुप्पायणट्टमिदमाह—

❀ एवरि इत्थि—एवुंसयवेद-छरण्णोकसायाणं जहण्णट्टिदिसंक्रमकालो केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ६६५. एदेसिमड्डुण्हं णोकसायाणं चरिमट्टिदिसंखंडए लद्धजहण्णसामित्ताणं जहण्णट्टिदिसंक्रमजहण्णुक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तपमाणो होइ त्ति सुत्तत्थसंगहो । छरण्णोकसायाणं ताव जहण्णुक्कस्सकालो एयवियप्पां चैव, चरिमट्टिदिसंखंडयुक्कीरणद्वा-पडिबद्धणिच्चियप्पंतोमुहुत्तपमाणतादा । एवुंसयवेदस्स पढमट्टिदिविवक्खाए आवलियमेत्तो । तदाविवक्खाए चरिमट्टिदिसंखंडयुक्कीरणद्वामेत्तो जहण्णुक्कस्सकालो होइ ।

* अट्टाईम प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिमंक्रमका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय हैं ।

§ ६६६. यहाँ मोहनीयकी अट्टाईम प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका एक जीवकी अपेक्षा कितना काल है ऐसी आशंका करके उसका निर्देश जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है इस रूपसे किया है । जिन कर्मोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामित्व अन्तिम फालिके पवनके समय या एक समय अधिक एक आवलि कालके शेष रहने पर प्राप्त होता है उनके जघन्य और उत्कृष्ट कालका नियम एक समयप्रमाण मले ही रहा आओ किन्तु शेष कर्मोंकी जघन्य स्थितिके संक्रमके कालका यह नियम नहीं प्राप्त होता इस प्रकार इस आशंकाके होने पर यहाँ जो विशेष काल सम्भव है उसका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और छह नोकपायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ६६७. अन्तिम स्थितिकाण्डके समय जघन्य स्वामित्वको प्राप्त होनेवाली इन आठ नोकपायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है यह इस सूत्रका तात्पर्य है । उनमेंसे छह नोकपायोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक ही प्रकारका है, क्योंकि इनके अन्तिम स्थितिकाण्डके उत्कीरणाकालसे सम्बन्ध रखनेवाला अन्तर्मुहूर्त एक ही प्रकारका है । नपुंसकवेदका जघन्य और उत्कृष्ट काल प्रथम स्थितिकी अपेक्षा एक आवलिप्रमाण है और उसकी विवक्षा नहीं करनेपर अन्तिम स्थितिकाण्डके उत्कीरणाकालप्रमाण है । स्त्रीवेदका

१. अ०प्रती एयवियप्पा इति पाठः ।

२. अ०प्रती—युक्कीरणद्वापडिबद्धणिच्चियप्पंतो जहण्णुक्कस्सकालो इति पाठः ।

इत्थिवेदस्स सोदएण चट्ठिदस्स एसो चेव भंगो । परोदएण वि चट्ठिदस्स छण्णोकसाय-
भंगो त्ति । एवमोघेण सच्चकम्माणं जहण्णट्ठिदिसंक्रमकालो सुत्ताणुसारेण परूविदो ।
एदेण सूचिदमजहण्णट्ठिदिसंक्रमकालमणुवण्णइस्सामो—मिच्छ० अज० ट्ठिदिसं० अणादियो
अपज्जवसिदो अणादियो सपज्जवसिदो वा । सम्म०-सम्मामि० अज० जह० अंतोमु०,
उक० वेछावट्ठिसागरो० तीहि पलिदो० असंखे० भागेहि सादिरियाणि । सोलसक०-
णवणोक० अज० तिण्णिण भंगा । तत्थ जो सो सादियो सपज्जवसिदो जह० अंतोमुहुत्तं,
उक० अट्ठपोग्गलपरियट्ठं देखुणं ।

एवमोघपरूवणा समत्ता ।

स्वोदयसे चढ़े हुए जीवकी अपेक्षा यही भङ्ग है। तथा परोदयसे चढ़े हुए जीवकी अपेक्षा भी छह नोकपायोंके समान भङ्ग है। इस प्रकार ओघसे सब कर्मोंके जघन्य स्थितिसंक्रामकका काल सूत्रके अनुसार कहा। अब इससे सूचित होनेवाले अजघन्य स्थितिसंक्रामकका काल बतलाते हैं— मिथ्यात्वके अजघन्य स्थितिसंक्रामकका काल अनादि-अनन्त या अनादि-सान्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक दो छयासठ मागरप्रमाण हैं। सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमके तीन भङ्ग हैं। उनमेंसे जो सादि-सान्त भङ्ग है उसकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ मोहनीयकी अट्टाईस प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाया गया है। इन अट्टाईस प्रकृतियोंमेंसे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और मध्यत्री आठ कपाय ये चौदह प्रकृतियां ऐसी हैं जिनका जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय प्राप्त होता है। क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और पुरुषवेद ये चार प्रकृतियां ऐसी हैं जिनका जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तिम स्थितिवन्धके संक्रमके अन्तिम समयमें प्राप्त होता है और सम्यक्त्व तथा संज्वलन लोभ ये दो प्रकृतियां ऐसी हैं जिनका जघन्य स्थितिसंक्रम इनकी क्षणामें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष रहने पर प्राप्त होता है। यह उक्त प्रकारसे विचार करने पर इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका केवल एक समय काल प्राप्त होता है, अतः इनके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है। अब रहीं शेष छह नोकपाय, क्षीवेद और नपुंसकवेद ये आठ प्रकृतियां सो इनका जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तिम स्थितिकाण्डकके पतनके समय प्राप्त होनेसे चूर्णिकारने इनके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। यहाँ इतनी विशेषता है कि छह नोकपायोंकी अपनी क्षणामें प्रथम स्थिति सम्भव न होनेसे इनके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक प्रकारका ही प्राप्त होता है। किन्तु क्षीवेद और नपुंसकवेदका यह काल दो प्रकारसे प्राप्त किया जा सकता है। प्रथम प्रकारमें प्रथम स्थितिकी प्रधानता है और दूसरे प्रकारमें प्रथम स्थितिकी विवक्षा न रहकर केवल अन्तिम स्थितिकाण्डकके उत्कीरणकालकी विवक्षा रहती है। जिसका निर्देश स्वयं टीकाकारने किया ही है। इस प्रकार ओघसे जघन्य स्थितिसंक्रमके कालका विचार करके अब अजघन्य स्थितिसंक्रमके जघन्य और उत्कृष्ट कालका विचार करते हैं—मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिके दो प्रकार ही सम्भव हैं—अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त। अभव्य जीवोंके और अभव्योंके समान भव्य जीवोंके अनादि-

§ ६६६. संपहि आदेसपरूवणदुमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-बारसक०-भय-दुगुंछ० जह० द्विदिसं० जहण्णु० एयसमओ । अज० जह० समयाहियावलिआ, उक्क० तेत्तीसं सागरो० । एवं सत्तणोक०। णवरि अज० जह० अंतोसु० । सम्म०-मम्मामि०-अणंताणु०४ जह० जहण्णु० एयस० । अज० जह० एयसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । एवं पढमाए । णवरि सगद्विदी । विदियादि जाव सत्तमा त्ति द्विदिविहत्तिभंगो ।

अनन्त विकल्प होता है और शेष सभी भव्योंके अनादि-सान्त विकल्प होता है। यतः स्थितिके ये दो विकल्प प्राप्त होते हैं अतः इनका संक्रमकाल भी दो ही प्रकारका जानना चाहिये। इसीसे यहाँ मिथ्यात्वके अजघन्य स्थितिसंक्रमका काल पूर्वोक्त विधिसं दो प्रकारका बतलाया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता प्राप्त होनेके बाद उनकी क्षपणा द्वारा कमसे कम अन्तर्मुहूर्तकालके भीतर जघन्य स्थिति प्राप्त हो जाती है, अतः इन दो प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट सत्त्वकाल पत्यके तीन असंख्यातवें भाग अधिक दो छयासठ सागर होता है। इसीसे यहाँ इन दो प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण बतलाया है। अब रहीं सोलह कपाय और नौ नोकपाय ये पच्चीस प्रकृतियों सो इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमके तीन भङ्ग प्राप्त होते हैं—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। अनादि-अनन्त विकल्प अभव्योंके या अभव्योंके समान भव्योंके होता है। अनादि-सान्त विकल्प उन भव्योंके होता है जिन्होंने अभौतक उपशमश्रेणिको नहीं प्राप्त किया है और सादि-सान्त विकल्प उन भव्योंके होता है जो उपशमश्रेणिकपर चढ़कर पुनः उससे च्युत हुए हैं। प्रकृतमें इसी तीसरे विकल्पकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाया है। जो जीव अन्तर्मुहूर्तके भीतर दो बार उपशमश्रेणिकपर चढ़ता है उसके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। तथा जो जीव अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालके आदि और अन्तमें श्रेणीपर चढ़ता है उसके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल कुछकम अर्धपुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण प्राप्त होता है।

इस प्रकार ओघपरूपणा समाप्त हुई।

§ ६६६. अब आदेशका कथन करनेके लिए उच्चारणाको बतलाते हैं। यथा—आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय, भय और जुगुप्साके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय अधिक एक आवलि है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी प्रकार सात नोकपायोंके विषयमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण कइना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें स्थितिभिक्तिके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—नरकमें मिथ्यात्व, बारह कपाय, भय और जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम एक समय अधिक एक आवलिके बाद एक समयके लिए प्राप्त होता है, अतः इनके जघन्य स्थिति-संक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इस जघन्य स्थितिसंक्रमके पूर्व एक

§ ६६७. तिरिक्खेसु द्विदिवि०भंगो । पंचि०तिरिक्खे३ मिच्छ०-वारसक०-भय-दुगुंछ० जह० द्विदिमंका० जहण्णु० एयस० । अज० जह० आवलिया समयूणा, उक्क० सगद्धिदी । सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०-सत्तणोक० द्विदिविहत्तिभंगो । पंचि०-तिरि०अपज्ज०-मणुमअपज्ज० मिच्छ०-सोलमक०-भय-दुगुंछ० जह० जहण्णुक० एग-

समय अधिक एक आवलि कालतक उक्त प्रकृतियोंका अजघन्य स्थितिसंक्रम होता है, अतः यहाँ उनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण कहा है। उत्कृष्ट काल तेतीस सागर हैं यह स्पष्ट ही है। यद्यपि रात नोकपायोंकी अपेक्षा यह काल इसी प्रकार बन जाता है। पर इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमके जघन्य कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि यहाँ सात नोकपायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका काल नरकमें उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद प्राप्त होता है अतः इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है। नरकमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम उसकी क्षणामे एक समय अधिक एक आवलि कालके शेष रहनेपर एक समयके लिए प्राप्त होता है। सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम उद्वेलनाके समय अन्तिम स्थितिकाण्डकी अन्तिम फालिके पतनके समय प्राप्त होता है। तथा अनन्तानुबन्धी-चतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रम विसंयोजनाके समय अन्तिम स्थितिकाण्डकी अन्तिम फालिके पतनके समय प्राप्त होता है। अतः यहाँ इनके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बनलाया है। जो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाला अन्य गतिका जीव इनके अजघन्य स्थितिसंक्रममें एक समय शेष रहनेपर नरकमें उत्पन्न होता है उसके इनका एक समयके लिए अजघन्य स्थितिसंक्रम होता है। तथा जिस नारकीने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना की है वह यदि सासादनमें जाकर और एक आवलि कालके बाद एक समयके लिये इसकी अजघन्य स्थितिका संक्रामक होकर मर जाता है तो उसके अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय देखा जाता है। इसीसे यहाँ इन सम्यक्त्व आदि छह प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय बनलाया है। तथा इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर स्पष्ट ही है। यह सब काल प्रथम पृथिवीमें भी बन जाता है अतः प्रथम पृथिवीके कथनका सामान्य नारकियोंके समान बनलाया है। किन्तु यहाँ उत्कृष्ट आयु एक सागर ही पाई जाती है, अतः यहाँ सब प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण बनलाया है। स्थितिबिभक्तिमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका द्वितीयादि नरकोंमें जो काल बनलाया है वह यहाँ स्थितिसंक्रमकी अपेक्षासे अविकल घटित हो जाता है अतः दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें सब भङ्ग स्थिति-बिभक्तिके समान कहा है।

§ ६६७. तिर्यचोंमें स्थितिबिभक्तिके समान भङ्ग है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकमें मिथ्यात्व, वारह कषाय, भय और जुगुप्साके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और सात नोकपायोंका भङ्ग स्थितिबिभक्तिके समान है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट

समञ्चो । अज० जह० आवलि० समयूणा, उक्क० अंतोमु० । सम्म०-सम्मामि०-सत्तणोक०
द्विदिविहत्तिभंगो ।

§ ६६८. मणु०३ मिच्छ० जह० द्विदिसं० जहण्णु० एयस० । अज० जह०
सुहाभव० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी । सम्म०-सम्मामि०-सोलसक०-पुरिसवेद० जह०
द्विदिसं० जहण्णु० एयस० । अज० जह०' एयस०, उक्क० सगट्टिदी । एवमट्टणोक० ।
णवरि जह० जहण्णु० अंतोमु० । मणुसिणीसु पुरिसवेद० छण्णोक०भंगो । देवाणं
णारयभंगो । एवं भवण०-वाणवेत० । णवरि सगट्टिदी । जोदिसियादि० सव्वट्टा त्ति
द्विदिविहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

काल एक समय है । अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समयकम एक आवलिप्रमाण है
और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—जो वादर एकेन्द्रिय जीव मरकर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें उत्पन्न होते है उनके वहाँ
उत्पन्न होनेके एक आवलि कालके अन्तिम समयमें मिथ्यात्व आदि पन्द्रह प्रकृतियोंका जघन्य स्थिति-
संक्रम होता है, इसलिए उन तीन प्रकारके तिर्यञ्चोमें उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और
उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इस एक समय कालको एक आवलिमेंसे कम करने पर इनमें
इन्हीं प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण होनेसे
यह तत्प्रमाण कहा है । इनमें उक्त प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी
उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । शेष कथन सुगम है । तात्पर्य यह है कि यहाँ जो भी काल
कहा है उसे स्वामित्वको देखकर घटित कर लेना चाहिए ।

§ ६६८. मनुष्यत्रिकमें मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल
एक समय है । अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल सुहाभवमहणप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त-
प्रमाण है तथा उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व,
सोलह कपाय और पुरुषवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।
अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।
इसी प्रकार आठ नोकपायोंके विषयमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके
जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्यनियोंमें पुरुषवेदका भंग
छह नोकपायोंके समान है । देवोंमें नारकियोंके समान भंग है । इसी प्रकार भवनवासी और
व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट
काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिये । ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थमिद्धि तकके देवोंमें
स्थितिविभक्तिके समान भंग है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—आद्यसे जा प्रत्येक प्रकृतिके स्थितिसंक्रमका स्वामित्व घतलाया है उसी प्रकार
मनुष्यत्रिकमें सम्भव होनेसे यहाँ कालका विचार उसीके अनुसार कर लेना चाहिए । मात्र सब
प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है ।
तथा मनुष्यनियोंमें पुरुषवेदका भंग छह नोकपायोंके समान है इतनी विशेषता यहाँ अलगसे जान
लेनी चाहिए । इसका कारण यह है कि इनमें छह नोकपायोंके स्थितिसंक्रमके स्वामित्वसे पुरुषवेदके
स्थितिसंक्रमके स्वामित्वमें कोई भेद नहीं है । शेष कथन सुगम है ।

❀ एत्तो अंतरं ।

§ ६६०. एत्तो उवरि अंतरं वत्तइस्सामो त्ति पइज्जासुत्तमेदं । तं पुण दुविहं जहण्णुकस्सट्ठिदिमंक्रमविमयभेदेण । तत्थुकस्सट्ठिदिमंक्रामयंतरं उक्कस्सट्ठिदिउदीरणंतरेण समाणपरूवणमिदि तेण तदप्पणं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भण्णइ—

❀ उक्कस्सयट्ठिदिसंक्रामयंतरं जहा उक्कस्सट्ठिदिउदीरणए अंतरं तथा कायव्वं ।

§ ६७०. सुगममेदमप्पणासुत्तं । मंपहि एदेण ममप्पिदत्थविवरणमुच्चारणाणुसारेण वत्तइस्सामो । तं जहा—उक्क० पयदं । दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ०-वारमक० उक्क० ट्ठिदिसंक्रा० अंतरं के० ? जह० अंतोमु०, णवणो० एयस०, उक्क० सव्वेमिमणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । अणु० जह० एयस०, उक्क० अंतोमु० । सम्म०-सम्मामि० उक्क० अणुक० ट्ठिदिमंक्रा० जह० अंतोमु० एयस०, उक्क० उवट्ठुपोग्गलपरियट्ठा । अणंताणु०४ उक्क० ट्ठिदिसं० जह० अंतोमु०, उक्क० अणंत-कालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्ठं । अणु० जह० एयसमओ, उक्क० वेखावट्ठिसागरो० देसूणाणि । आदेसेण मव्वासु गदीमु ट्ठिदिविहात्तभंगो । णवरि मणुसतिए चट्ठुणोकसायाणमणुकस्सु-

❀ अब इससे आगे अन्तरका अधिकार है ।

§ ६६६. अब इस कालप्ररूपणाके बाद अन्तर प्ररूपणाका बतलाते हैं । इस प्रकार यह प्रतिज्ञासूत्र है । वह दो प्रकारका है—जघन्य स्थितिसंक्रमको विषय करनेवाला और उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमको विषय करनेवाला । उनमेंसे उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकके अन्तरका कथन उत्कृष्ट स्थितिकी उदीरणाके अन्तरके समान है, इसलिये उसकी प्रधानतासे आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिकी उदीरणाका अन्तर है उसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका अन्तर प्राप्त परना चाहिये ।

§ ६७०. यह अर्पणासूत्र सुगम है । अब इसके द्वारा जो अर्थका विवरण प्राप्त होता है उसे उच्चारणाके अनुसार बतलाते हैं । यथा—उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व और बारह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय है तथा इन सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक का जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य अन्तर क्रमसे अन्तर्मुहूर्त और एक समय है । तथा उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो लयामठ सागर हैं । आदेशकी अपेक्षा सब गतियोंमें स्थितिभिक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यात्रकमें चार नोकपायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट

कस्संतरमंतोमुहुत्तं । एवं जाव० ।

❀ एत्तो जहण्णयमंतरं ।

§ ६७१. एत्तो उक्कस्सट्टिदिसंक्रामयंतरविहासणादो उवरि जहण्णट्टिदिसंक्रामयंतरं कस्सामो त्ति पइजासुत्तमेदं ।

अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओषसे मिथ्यात्व और बारह कपायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम होनेके बाद पुनः वह अन्तमुहूर्तके अन्तरसे ही प्राप्त हो सकता है, क्योंकि एक बार इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होकर पुनः यह अन्तमुहूर्तके बाद ही होता है और संक्रम बन्धके अनुसार होता है, अतः यहाँ उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त कहा है । मात्र नौ नोकपायोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय बन जाता है । कारण कि क्रोधादि कपायोंमेंसे एकके बाद दूसरेका एक एक समयके अन्तरसे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होकर तथा एक एक समयके अन्तरसे उनका नौ नोकपायोंमें संक्रम होकर नौ नोकपायोंका भी एक एक समयके अन्तरमें उत्कृष्ट स्थिति-संक्रम सम्भव है । इन सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है यह स्पष्ट ही है । इन सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त होनेसे इनके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त कहा है । जो जीव अन्तमुहूर्तके अन्तरसे दो बार वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होता है और मिथ्यात्वमें दोनों बार वेदकसम्यक्त्व होनेके पूर्व मिथ्यात्व प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करके उसका काण्डकघात नहीं करता उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त देखा जाता है तथा जो उपशमसम्यग्दृष्टि जीव एक समयके लिए सासादन सम्यग्दृष्टि होकर दूसरे समयमें मिथ्यादृष्टि हो जाता है उसके उक्त दोनों प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय देखा जाता है, इसलिए तो इन दोनों प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय कहा है । तथा इन दोनों प्रकृतियोंकी उपार्थपुद्गलपरिवर्तनकाल तक सत्ता न हो कर उसके प्रारम्भमें और अन्तमें इनका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रम हो यह सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर उपार्थपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका शेष सब अन्तर कथन तो बारह कपायोंके समान होनेसे उसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए । मात्र इनके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमके उत्कृष्ट अन्तरमें कुछ फरक है । बात यह है कि जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर देता है उसके कुछ कम दो छयासठ सागर काल तक इनकी सत्ता नहीं पाई जाती, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है । यहाँ चारों गतियोंमें सब प्रकृतियोंके स्थितिसंक्रमका अन्तरकाल स्थितिबिभक्तिके समान बतलाकर मनुष्यत्रिकमें चार नोकपायोंके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तरकाल एक आवलिया एक आवलिका असंख्यातवाँ भाग न कह कर जो अन्तमुहूर्त कहा है सा उसका कारण यह है कि उपशमश्रेणियोंमें हास्य, रति, स्त्रीवेद और पुरुषवेदका अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अन्तमुहूर्त काल तक नहीं होता ।

* इससे आगे जघन्य अन्तरकालका अधिकार है ।

§ ६७१. इससे अर्थान् उत्कृष्ट स्थितिसंक्रामकके अन्तरका कथन करनेके बाद जघन्य स्थिति-संक्रामकका अन्तर कहेंगे इस प्रकार यह प्रतिज्ञासूत्र है ।

❖ सव्वासि पयडीणं णत्थि अंतरं ।

६७२. सव्वासि मोहपयडीणं जहण्णट्टिदिसंक्रामयस्स णत्थि अंतरं, खवय-
चरिमफालीए चरिमट्टिदिसंक्रामयस्स ममयाहियावलियाए च लद्धजहण्णसामित्ताणमंतरसंबंधस्स
अचंताभावेण णिमिद्धत्तादो । एदेण सामण्णवयणेणाणंताणुबंधीणं पि अंतराभावे पसत्ते
तण्णिवाग्गणमुहेणंतरमंभवपटुप्पायणट्टमुत्तरमुत्तं—

❖ एवरि अणंताणुबंधीणं जहण्णट्टिदिसंक्रामयंतरं जहएणेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कस्सेण उवडुपोग्गलपरियट्टं ।

६७३. विमंजोयणाचरिमफालीए लद्धजहण्णभावस्साणंताणु०चउक्कस्स ट्टिदि-
संक्रमस्स मव्वजहण्णविसंजुत्त-मंजुत्तकालेहि अंतग्गिय पुणो वि विमंजोयणाए कादुमाट्ताए
चरिमफालिविसए लद्धमंतोमुहुत्तं होइ । उक्कस्सेण उवडुपोग्गलपरियट्टपरूवणा सुग्गमा ।

एवमाघेण जहण्णंतरं गयं ।

* मत्र प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है ।

६७२. सब मोहप्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रामकका अन्तरकाल नहीं है, क्योंकि इनका
अपने त्रयके अन्तिम स्थितिकाण्डके अन्तिम फालिके पतन होते समय और एक समय अविक
एक आवलि काल रहनेपर जघन्य स्थामित्व प्राप्त होता है, इसलिए उनके अन्तरकालका अत्यन्त
अभाव होनेसे उसका निषेध किया है । इस सामान्य वचनसे अनन्तानुबन्धियोंका भी अन्तराभाव
प्राप्त हुआ, इसलिए उसके निषेध द्वारा उनका अन्तरकाल सम्भव है इसका कथन करनेके लिए
आगेका सूत्र कहते हैं—

* किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धियोंके जघन्य स्थितिके संक्रामकका
जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्थपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।

६७३. क्योंकि विसंयोजनाकी अन्तिम फालिके पतनके समय जिसने अपने स्थिति-
संक्रामकका जघन्यपना प्राप्त किया है ऐसे अनन्तानुबन्धोचतुष्कका सबसे जघन्य विसंयोजना
और संयोजनाके काल द्वारा अन्तर करके पुनः उसे विसंयोजना करनेके लिए प्रवृत्त करनेपर चरम
फालिके पतनके समय तक अन्तर्मुहूर्त काल होता है । इसके उपार्थपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट
अन्तरकालकी प्ररूपणा सुग्गमा है ।

विशेषार्थ—सम्यक्त्वप्रकृति और मंज्वलन लोभका जघन्य स्थितिसंक्रम अपनी अपनी
क्षणामें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष रहने पर होता है और शेष प्रकृतियोंका जघन्य
स्थितिसंक्रम अपनी अपनी क्षणाके समय अन्तिम स्थितिकाण्डके अन्तिम फालिके पतनके
समय होता है, इसलिए ओघसे उनके जघन्य स्थितिसंक्रामकके अन्तरकालका निषेध किया है ।
किन्तु अनन्तानुबन्धीचतुष्क इस विधिके अपवाद है । कारण कि उसकी विसंयोजना होनेके बाद
अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर ही पुनः संयोजनापूर्वक विसंयोजना हो सकती है । तथा दो बार
विसंयोजनारूप क्रिया होनेसे उपार्थपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कालका व्यवधान भी हो सकता है,
इसलिए इनकी जघन्य स्थितिके संक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्तप्रमाण बन जानेसे
वह उक्त कालप्रमाण कहा है ।

इस प्रकार ओघसे जघन्य अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

§ ६७४. एत्तो अजहणणद्विदिसंक्रमंतरं देमामासयसुत्तेणेदेणेव सूचिदमिदाणिमणु-
मगाइस्सामो—मिच्छ० अज० णत्थि अंतरं । सम्म०-मम्मामि० अज० जह० एगसमओ,
उक्क० उवड्डुपोगगलपरियट्टं । अणंताणु०४ अज० जह० अंतोमु०, उक्क० वेछावड्डिसागरो०
देसूणाणि । बारसक०-णवणोक० अज० जह० एयस०, उक्क० अंतोमु० ।

एवमोघो समत्तो ।

§ ६७५. आदेसेण सव्वणेइय०-गव्वतिग्गिक्ख-मणुसअपज्ज०-सव्वदेवा त्ति द्विदि-
विहत्तिभंगो । मणुम३ मिच्छ० जह० अज० णत्थि अंतरं । मम्मामि०-मम्मामि० जह०
णत्थि अंतरं । अजह० ज० एगम०, उक्क० निण्णिग पत्तिदो० पुव्वकोडिपुघत्तेण-

§ ६७४. अब इसी देशामर्षक सूत्रसे सूचित होनेवाले अजघन्य स्थितिसंक्रमके अन्तरकालका इस समय विचार करते हैं—मिथ्यात्वके अजघन्य स्थितिसंक्रामकका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अजघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । बारह कपाय और नोकपायोंके अजघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वकी क्षण होनेके पूर्व तक उसका सर्वेदा अजघन्य स्थितिसंक्रम होता रहता है, इसलिए उसका निषेध किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका यथाविधि कमसे कम एक समयके लिए और अधिकसे अधिक उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कालके लिए अन्तर होकर अजघन्य स्थितिसंक्रम सम्भव है, इसलिए उनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक और अधिकसे अधिक कुछ कम दो छयासठ सागर कालतक विसंयोजना होकर अभाव रहता है । तथा विसंयोजनाके पूर्वमें तथा संयोजना होनेके बादमें इनका अजघन्य स्थितिसंक्रम होता रहता है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर कहा है । बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी उपशमना होनेके बाद जो एक समय वहीं रुककर दूसरे समयमें मरकर देव हो जाते हैं उनके इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त होता है और जो इनकी उपशमना करके तथा उपशमश्रेणसे उतरते समय यथास्थान पुनः इनका अजघन्य स्थितिसंक्रम करने लगते हैं उनके इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

इस प्रकार आद्यप्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ६७५. आदेशसे सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त और सब देवोंमें स्थिति-
विभक्तिके समान भंग है । मनुष्यत्रिकमें मिथ्यात्वके जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रामकका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रामकका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिप्रयत्न अधिक तीन पलयप्रमाण है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य अन्तर

म्हियाणि । अणंताणु०४ ज० जह० अंतोमु०^१, उक० सगट्टिदी । अज० ज० अंतोमु०,
उक० तिण्णि पलिदो० देखणाणि । बारसक०-णवणोक० जह० णत्थि अंतरं । अज०
जहण्णु० अंतोमु० । एवं जाव० ।

❀ णाणाजीवेहि भंगविचओ तुविहो उक्कस्सपदभंगविचओ च जहण-
पदभंगविचओ च ।

§ ६७६. तत्पुक्कस्सपदभंगविचओ णाम उक्कस्सट्टिदिसंक्रामयाणं पवाहवोच्छेद-
संभवासंभवपरिक्खा । तथा जहण्णो वि वत्तवो । एदेसिं च दोण्णमट्टपदं—जे उक्कस्सट्टिदीए
संक्रामया ते अणुक्कस्सट्टिदीए असंक्रामया । जे अणुक्कस्सट्टिदीए संक्रामया ते उक्कस्सियाए
ट्टिदीए असंक्रामया । एवं जहण्णयं पि वत्तवं । एदमट्टपदं काऊण सेमपरूवणा कायव्वा
त्ति जाणावणट्टमुत्तरसुत्तमाह—

❀ तेसिमट्टपदं काऊण उक्कस्सओ जहा उक्कस्सट्टिदिउदीरणा तथा
कायव्वा ।

अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । अजघन्य स्थितिसंक्रामकका
जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्यप्रमाण है । बारह कपाय और
नौ नोकपायोंके जघन्य स्थितिसंक्रामकका अन्तरकाल नहीं है तथा अजघन्य स्थितिसंक्रामकका
जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है और
इसके प्रारम्भमें तथा अन्तमें सम्यक्त्व और सम्यग्निश्चयात्वकी सत्ता हो और मध्यमें न हो यह
सम्भव है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रामका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त कालप्रमाण
कहा है । कोई मनुष्य कृतकृत्यबंदक या क्षायिकके सिवा अन्य सम्यक्त्वके साथ मरकर मनुष्योंमें नहीं
उत्पन्न होता । वेदकसम्यग्दृष्टि या उपशमसम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च भी मरकर मनुष्योंमें नहीं उत्पन्न होता,
अतः मनुष्यत्रिकमें अनन्तनुबन्धीचतुष्कके अजघन्य स्थितिसंक्रामका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन
पल्य ही प्राप्त होता है, इसलिए इनमें यह उक्त कालप्रमाण कहा है । शेष कथन सुगम है ।

* नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय दो प्रकारका है—उत्कृष्ट पदभंगविचय और
जघन्य पदभंगविचय ।

§ ६७६. यहाँ पर उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके प्रवाहका व्युच्छेद सम्भव है या असम्भव
है इसकी परीक्षा करना उत्कृष्ट पदभंगविचय कहलाता है । उसी प्रकार जघन्यका भी कथन करना
चाहिए । इन दोनोंका अर्थपद—जो उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक हैं वे अनुत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक
होते हैं और जो अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक हैं वे उत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक होते हैं । इसी
प्रकार जघन्यके आश्रयसे भी कथन करना चाहिए । इसप्रकार अर्थपद करके शेष प्ररूपणा करनी
चाहिए इस बातका ज्ञान करानेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

* उनका अर्थपद करके जिस प्रकार उत्कृष्ट उदीरणाकी प्ररूपणा की गई है उस
प्रकार उत्कृष्टपदभंगविचय करना चाहिए ।

१. आ०प्रतौ ज० अंतोमु० इति पाठः ।

६७७. तेसिं दोण्हमणंतरपरूविदमद्वुपदं काऊण तदो उक्कस्सओ भंगविचओ पुव्वं कायव्वो, जहा उहेमो तथा णिहेमो ति णायादो । सो च कथं कायव्वो ? जहा उक्कस्मिया द्विदिउदीरणा भंगविचयविमया^१ तथा कायव्वो, तत्तो एदस्स भेदानुवलंभादो । संपहि एदेण समप्पिदत्थविवरणद्वुमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तत्थ दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण सव्वपयडीणं उक्कस्सद्विदीए सिया सव्वे असंकायया । सिया एदे च संकायओ च । सिया एदे च मंकायया च । एवं तिण्णि भंगा । अणुक्कस्ससंकाययाणं पि विवज्जासेण तिण्णि भंगा कायव्वा । एवं मव्वासु गईसु । णवरि मणुसअपज्ज० सव्वपयडीणमुक्क०—अणु०मंका० अद्वु भंगा० । एवं जाव० ।

❀ एत्तो जहणणपदभंगविचयो ।

६७८. उक्कस्सभदभंगविचयादो अणंतरं जहणणपदभंगविचयो परूवणाजोगो ति अहियागसंभालणमुत्तमेदं । तण्णिहेमकरणद्वुमुत्तरमुत्तावयारो—

❀ सव्वासिं पयडीणं जहणणद्विदिसंकाययस्स सिया सव्वे जीवा असंकायया, सिया असंकायया च संकायओ च, सिया असंकायया च संकायया च ।

६७७. उन दोनों में अनन्तर पूर्वकथित अर्थपद करके अनन्तर उत्कृष्ट भङ्गविचय पहिले करना चाहिए, क्योंकि उद्देशके अनुसार निर्देश किया जाता है ऐसा न्याय है ।

शंका—यह किसप्रकार करना चाहिए ?

ममाधान—जिस प्रकार भंगविचयविषयक उत्कृष्ट उदीरणा की गई है उस प्रकार करना चाहिए, क्योंकि उससे उगमे भेद नहीं उपपन्न होता ।

अब इससे प्राप्त हुए अर्थका विवरण करनेके लिए उच्चारणाको बतलाते हैं । प्रकृतमें निर्देश दो प्रकारका है—आधनिर्देश और आदेशनिर्देश । आधमे सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके सब जीव कदाचित् अमंक्रामक हैं । कदाचित् बहुत जीव अमंक्रामक हैं और एक जीव संक्रामक है । कदाचित् बहुत जीव असंक्रामक हैं और बहुत जीव संक्रामक हैं । इस प्रकार तीन भंग होते हैं । अनुत्कृष्ट संक्रामकोंके भी उलटकर तीन भंग करने चाहिए । इसी प्रकार सब गतियोंमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट संक्रामकोंके आठ भंग होते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

❀ इससे आगे जघन्यपदभंगविचयका प्रकरण है ।

६७८. उत्कृष्ट पदभंगविचयके बाद जघन्य पदभंगविचय प्ररूपणायोग्य है इस प्रकार अधिकारकी मंभाल करनेवाला यद सूत्र है । अब उमका निर्देश करनेके लिए आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

❀ सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिमंक्रमके कदाचित् सब जीव असंक्रामक हैं । कदाचित् बहुत जीव अमंक्रामक हैं और एक जीव संक्रामक है । कदाचित् बहुत जीव असंक्रामक हैं और बहुत जीव संक्रामक हैं ।

१. ता० प्रती -विचयविचया इति पाठः ।

§ ६७०. गयत्थमेदं सुत्तं ।

❀ सेसं विहत्तिभंगो ।

§ ६८०. एत्थ सुगमत्तादो सुत्तेणापरूविदाणं भागाभाग-परिमाण-खेत्त-पोसणाणं द्विदिविहत्तिभंगो । णवरि जहण्णए परिमाणाणुगमे ओघेण मणुसगईए च सम्मामि० जह० द्विदिमंका० केत्तिया ? संखेज्जा । खेत्तपरूवणाए णत्थि णाणत्तं । पोसणाणुगमे ओघेण मणुसगईए च सम्मामि० जहण्णद्विदिमंकांमयाणं खेत्तभंगो कायव्वो ।

❀ णाणाजीवेहि कालो ।

§ ६८१. अहियारमंभालणसुत्तमेदं सुगमं ।

❀ सन्वासिं पयडीणमुक्कस्सद्विदिसंकमो केवचिरं कालादो होइ ? जहण्णेण एयसमओ ।

§ ६८२. एयसमयमुक्कस्सद्विदिं संकामेदण विदियममए अणुक्कस्सद्विदिं संकामे-माणएसु णाणाजीवेषु तदुवलंभादो ।

❀ उक्कस्सेण पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

§ ६८३. एत्थ मिच्छ०-मोलमक०-भय-दुगुंछ०-णउंभयवेद-अग्ग्-सोगाणमुक्कस्स-द्विदिवंधगद्वं ठविय आवलि० अमंखेज्जभागमेत्ततदुवकमणवारमलागाहि गुणिदे उक्कस्स-कालो होइ । हस्स-ग्ग्-इत्थि-पुरिमवेदाणमावलियं ठविय तदमंखेज्जभागेण गुणिदे

§ ६७८. यह सूत्र गतार्थ है ।

* शेष भंग स्थितिविभक्तिके समान है ।

§ ६८०. यहाँपर सुगम होनेमें सत्रद्वारा नहीं कहे गये भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र और स्पर्शनका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । इतनी विशेषता है कि जघन्य परिमाणानुगममें ओघसे तथा मनुष्यगतिकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । क्षेत्रप्ररूपणामें कोई विशेषता नहीं है । स्पर्शानुगममें ओघसे और मनुष्यगतिकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंके स्पर्शनका भंग क्षेत्रके समान करना चाहिए ।

* अब नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका अधिकार है ।

§ ६८१. अधिकारकी मंहाल करनेवाला यह सूत्र सुगम है ।

* सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिमंक्रमका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है ।

§ ६८२. क्योंकि एक समय तक उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करके दूसरे समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करनेवाले नाना जीवोंके उक्त काल उपलब्ध होता है ।

* उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ ६८३. यहाँ पर मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, नपुंसकवेद, अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धक कालको स्थापित कर उसको आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण उपक्रमण वारशलाकाओंसे गुणित करनेपर उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है । हास्य, रति, स्वावेद और पुरुषवेदके उत्कृष्ट संक्रमकाल एक आवलिको स्थापित कर उसके असंख्यातवें भागसे गुणित करने पर प्रकृत उत्कृष्ट

पयदुकस्सकालसमुप्पत्ती वत्तच्चा । सच्चवासिं पयडीणमिदि वयणेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पि पल्लिदोवमासंखभागपमाणुकस्सट्ठिदिमंकमुक्कस्सकालाड्ढप्पसंगे तप्पडिसेहमुहेण तत्थ विसेसं पदुप्पायणट्ठमिदमाह—

❀ एवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिसंकमो केवच्चिरं कालादो होदि । जहणणेण एयसमञ्चो, उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदि-भागो ।

∴ ६८४. कथमेदस्मुप्पत्ती ? वुच्चदे—एयवारमुवकंताणमेयसमञ्चो चेव लब्भइ त्ति तमेयममयं ठविय आवलि० अमंवे०भागमेत्तुवकमणवारोहि णिरंतग्गुवल्लभमाणसरूवेहि गुणिदे तदुवलांभो होइ । एवमोवेणुकस्सट्ठिदिमंकमकालो णाणाजीवविसेमिदो सच्चपयडीणं परूविदो । अणुकस्सट्ठिदिमंकमकालो पुण सच्चवेमिं कम्माणं सच्चद्धा । आदेसपरूवणाए ट्ठिदिविहत्तिभंगो अणूणाहियो कायव्वो ।

❀ एत्तो जहणणयं ।

∴ ६८५. सुगमं ।

❀ सच्चवासिं पयडीणं जहणणट्ठिदिसंकमो केवच्चिरं कालादो होदि ? जहणणेण्येयसमञ्चो, उक्कस्सेण संखेज्जा समया ।

कालकी उत्पत्ति कहनी चाहिए । सूत्रमें 'सच्चवासि पयडीणं' यह वचन आया है । मो इससे सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यातृके भी उत्कृष्ट स्थितिमंकमके उत्कृष्ट काल पद्वयके असंख्यातर्वे भागप्रमाण प्राप्त होने पर उसके प्रतिपेय द्वारा वहाँ विशेषका कथन करनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

* किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यातृके उत्कृष्ट स्थितिमंकमका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके अमंख्यातर्वे भागप्रमाण है ।

∴ ६८४. इसकी उत्पत्ति कैसे होती है ? कहते हैं—एकवार उपक्रम करनेवाले जीवोंके एक समयप्रमाण ही काल उपलब्ध होता है, इसलिए उस एक समयको स्थापितकर निरन्तर उपलब्ध होनेवाले आवलिके असंख्यातर्वे भागप्रमाण उपक्रमणवारोंसे गुणित करने पर उस कालकी प्राप्ति होती है । इस प्रकार ओषसे सब प्रकृतियोंका नाता जीवविषयक उत्कृष्ट स्थितिमंकमकाल कहा । किन्तु सब कर्मोंका अनुरकृष्ट स्थितिमंकमकाल सर्वदा है । तथा आदेशसे कथन करने पर न्यूनाधिकतासे रहित स्थितिमंकमके समान भंग करना चाहिये ।

* अब आगे जघन्यका प्रकरण है ।

∴ ६८५. यह सूत्र सुगम है ।

* सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिमंकमकाल कितना है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ।

§ ६८६. खवणाए लद्धजहण्णभावाणं तदुवलंभादो । संपहि एदेण मामण्णवयणेण विसंजोयणचरिमफालीए लद्धजहण्णभावाणमणंताणुबंधीणं चरिमट्टिदिखंडए लद्धजहण्ण-सामित्ताणमट्टणोकसायाणं च जहाणिट्टिट्टिजहण्णुकस्मकालाइण्णमंगे तप्पडिसेहदुवारेण तत्थतणविसेमपदुप्पायणट्टमुवरिमं सुत्तदयमाह—

❀ णवरि अणंताणुबंधीणं जहण्णट्टिदिसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एयसमओ, उक्कस्सेण आवलियाए असखेज्जदिभागो ।

§ ६८७. सुगमं ।

❀ इत्थिणनुंसयवेद-ल्लुण्णोकसायाणं जहण्णट्टिदिसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णुकस्सेणंतोसुहुत्तं ।

§ ६८८. चरिमट्टिदिखंडयम्मि लद्धजहण्णभावाणं तदुवलंभादो । णवरि जहण्ण-कालादो उक्कस्मकालम्म मंखेज्जगुणत्तमेत्थ दट्टुव्वं, मंखेज्जतां तदणुमंधाणावलंबणे, तदविगेहादो । एमोघेण जहण्णट्टिदिमंकमकालो पण्विदो ।

§ ६८९. मव्वामिमजहण्णट्टिदिमंकमकालो मव्वद्धा । एयं मणुमतिण । णवरि अणंताणु ०४ जहण्ण ० जह ० एयम ०, उक्क ० मंखेज्जा ममया । मणुग्गिणीमु पुग्गिमेवद ०

§ ६८६. क्योंकि क्षणामे जघन्यपनेको प्राप्त हुई उन प्रकृतियोंका उक्तकाल प्राप्त होता है । अब इस सामान्य बचनके अनुसार विमंयोजनकी अन्तिम फालिके पतनके समय जघन्यपनेको प्राप्त हुई अनन्तानुबन्धियोंके तथा अन्तिम स्थितिकाण्डके पतनके समय जघन्य म्वामित्वको प्राप्त हुए आठ नोकपायोंके यथानिर्दिष्ट जघन्य और उत्कृष्ट कालका प्रसंग प्राप्त होने पर उसके प्रतिषेध द्वारा वहाँ पर विशेषताका कथन करनेके लिए आगेके दो सूत्र कहते हैं—

* किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धियोंके जघन्य स्थितिमंकमका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके अमरुवातवें भागप्रमाण है ।

§ ६८७. यह सूत्र सुगम है ।

* स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और छह नोकपायोंके जघन्य स्थितिमंकमका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त हैं

§ ६८८. अन्तिम स्थितिकाण्डके पतनके समय जघन्यपनेको प्राप्त हुए उक्त आठ नोकपायोंका उक्त काल प्राप्त होता है । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ पर जघन्य कालसे उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा जानना चाहिए, क्योंकि संख्यातवार उनके कालका अविच्छिन्नभावसे अवलम्बन लेने पर जघन्य कालसे उत्कृष्ट कालके संख्यातगुणा होनेमें विरोध नहीं आता । इस प्रकार आघसे जघन्यस्थितिमंकमका काल कहा ।

§ ६८९. आघसे सब प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिमंकमका काल सर्वदा है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमे जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धोचतुष्कमे जघन्य स्थितिसंकमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । मनुष्यिनियोंमें

१. आ०प्रतो —मकामकालो इति पाठ ।

छण्णोक०भंगो । आदेसेण सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख०-सव्वदेवा द्विदिविहत्तिभंगो । मणुमअपज्ज० मिच्छ०-सोलमक०-भय-दुगुच्छ० जह० द्विदिमं० जह० एयम०, उक्क० आवलि० अमंखे०भागो । अज० जह० आवलिया समयुणा, उक्क० पलिदो० असंखे०-भागो । सम्म०-सम्मामि०-सत्तणोक० द्विदिविहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

§ ६०. अंतरं दुविहं—जह० उक्क० । उक्क० द्विदिविहत्तिभंगो । जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्वेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण दंसणतिय-णवकसाय-इत्थिवेद०-छण्णोक० जह० द्विदिसका० जह० एयसमओ, उक्क० छम्मासं । अणंताणु०४ जह० द्विदिमंका० जह० एयसमओ, उक्क० चउवीममहोरत्ते सादिरेये । पुरिसवेद-तिण्णिमंजल० जह० द्विदिमं० जह० एयसमओ, उक्क० वामं सादिरेयं । णवुंस० जह० द्विदिमं० जह० एयसमओ, उक्क० वामपुधत्तं । सव्वासिमजह०, द्विदिमंका० णत्थि अतरं । एवं मणुमतिए । णवरि मणुसिणीसु खवयपयडीण वामपुधत्तं । सैमसव्वमग्गणामु विहत्तिभंगो ।

पुरुषवेदका भंग छह नोकपायोंके समान है । आदेशसे सब नारकी, सब तिर्यञ्च और सब देवोंमें स्थितिबिभक्तिके समान भंग है । मनुष्य अर्थात्प्रकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय और जुगुप्सा के जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आबलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम एक आबलिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सात नोकपायोंका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । इम प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

§ ६०. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । जघन्यका प्रकरण है । निदेश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे तीन दर्शनमोहनीय, नौ कपाय, स्त्रीवेद और छह नोकपायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात है । पुरुषवेद और तीन संज्वलनके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है । नपुंसकवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । सब प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें क्षपक प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । शेष सब मार्गणाओंमें स्थितिबिभक्तिके समान भंग है ।

विशेषार्थ—क्षपकश्रेणिका और क्षायिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । इसलिए यहाँ पर तीन दर्शनमाहनीय आदि १६ प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है । इन प्रकृतियोंमें स्त्रीवेदको गिनानेका कारण यह है कि इस प्रकृतिकी परोदय और स्वोदय दोनों प्रकारसे क्षपणा होने पर अन्तमें जघन्य स्थितिसंक्रम होता है । सम्यक्त्वकी प्राप्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात है । तदनुसार यह अन्तर अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाका भी जानना चाहिए । इसलिए यहाँ पर अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात कहा है । क्रोधादि तीन संज्वलन और पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़नेका जघन्य अन्तर एक समय

❀ एत्थ सण्णयासो कायव्वो ।

§ ६०१. एत्थुद्देसे मण्णयामो कायव्वो ति चुण्णिसुत्तयारस्स अत्थसमप्पणा-
वयणमेदं । संपहि एदेण समप्पिदत्थस्स फुडीकरणट्टमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—
सण्णयामो दुविहो—जह० उक्क० । उक्कस्मं उक्कस्सट्ठिदिविहत्तिभंगो । णवरि आणदादि
सव्वट्टसिद्धिं मात्तूण जम्हि जम्हि मम्म०-सम्मामि० सण्णियासिज्जंति तम्हि तम्हि मिया
अत्थि, मिया णत्थि । जदि अत्थि, मिया संकामओ मिया अमंकामओ । जदि संकामओ,
किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क० अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव चरिमेणुव्वेल्लण-
कंडएण्णं ति । आणदादि णवगेवज्जा ति ट्ठिदिविहत्तिभंगो । णवरि जम्हि मम्म०-सम्मामि०
तम्हि मिया अत्थि मिया णत्थि । जइ अत्थि, मिया संहा० मिया अमंका० । जदि
संका० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्मा वा अणुक्कस्मा वा । उक्कस्मादो अणुक्कस्मं पल्लिदो०
अमंखे० भागूणमादिं कादूण जाव चरिमेणुव्वेल्लणकंडएण्णं ति । अणुदिमादि सव्वट्टा ति
ट्ठिदिविहत्तिभंगो ।

और उत्कृष्ट अन्तर साविक एक वर्ष होनेसे यहाँपर इत प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य
अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष कहा है । इस सम्बन्धमें कुछ विशेष
वक्तव्य है सो उसे स्थितिविभक्तिके जान लेना चाहिए । नपुंसकवैदके साथ सप्तकश्रणिपर चढ़नेका
जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व होनेसे यहाँ इसके जघन्य स्थितिसंक्रमका
जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा है । सोप कथन मुगम है ।

❀ यहाँपर मन्त्रिकर्प करना चाहिए ।

§ ६११. इस स्थानपर सन्निकर्प करना चाहिए इस प्रकार चूणिमूत्रकारका अर्थका प्रतिपादन
करनेवाला यह वचन है । अब इस द्वारा कहे गये अर्थवा स्पष्टीकरण करनेके लिए उच्चारणको
बतलाते हैं । यथा—सन्निकर्प दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका भंग उत्कृष्ट स्थिति-
विभक्तिके समान है । इतनी विशेषता है कि आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंका छोड़कर
जिन-जिन प्रकृतियोंके साथ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका मन्त्रिकर्प करते हैं वहाँ-वहाँ
कदाचिन् ये दोनों प्रकृतियाँ हैं और कदाचिन् नहीं है । यदि है तो कदाचिन् संक्रामक होता है
और कदाचिन् असंक्रामक होता है । यदि संक्रामक होता है तो क्या उत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक
है या अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक है ? नियमसे अन्तमुद्धृत कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तिम
उद्देलनाकाण्डकसे न्यून स्थितिके अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक होता है । आनतसे लेकर तो प्रवेयरु
तक स्थितिविभक्तिके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि जिसके साथ सम्यक्त्व और
सम्यग्मिथ्यात्वका सन्निकर्प करते हैं वहाँ ये दोनों प्रकृतियाँ कदाचिन् है और कदाचिन् नहीं है ।
यदि है तो वह इनका कदाचिन् संक्रामक है और कदाचिन् असंक्रामक है । यदि संक्रामक है तो
क्या उत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक है या अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक है ? अपनी उत्कृष्ट स्थितिका भी
संक्रामक है और अनुत्कृष्ट स्थितिका भी संक्रामक है । यदि अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक है तो वह
उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा पर्यके अमंख्यातर्वे भागसे न्यून अनुत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तिम उद्देलना-
काण्डकसे न्यून तककी स्थितिका संक्रामक है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक स्थितिविभक्तिके
समान भंग है ।

§ ६९.२, जहणण पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छं
 जहं । द्विदिसंक्रमेतो सम्मं-मम्मामिं-वारसकं-णवणोकं किं जहं अजहं ?
 णियमा अजं अमंखेण गुणवमहियं । सम्मं जहं द्विदिसंक्रामं २१ पयडीणं णियमा
 अजं अमंखेण गुणवमहियं । मम्मामिं जहं द्विदिसंक्रामं सम्मं-वारसकं-णवणोकं
 णियमा अजं अमंखेण गुणवमहियं । अणंताणुंकोहं जहं द्विदिसंक्रामं २४ पयडीणं
 णियमा अजं अमंखेण गुणवमहियं । तिण्हं कमायाणं णियमा जहणं । एवं
 तिण्हमणंताणुं कमायाणं । अपच्चक्खाणकोहं जहं द्विदिसंक्रामं ४ चदुमंजं-णवणोकं
 णियमा अजं अमंखेण गुणवमहियं । मत्तकमायाणं णियमा जहणं । एवं मत्तकमायाणं ।
 णउंसयवेण जहं द्विदिसंक्रामं इत्थिवेदं णियमा जहणं । छण्णोकं-पुरिसवेदं-
 चदुमंजं णियमा अजं अमंखेण गुणवमहियं । इत्थिवेदं जहं द्विदिसंक्रामयस्स
 णनुंमं सिया अत्थि मिया णत्थि । जइ अत्थि णियमा जहं । मत्तणोकं-चदुमंजं
 णियमा अजं अमंखेण गुणवमहियं । हस्मस्स जहं द्विदिसंक्रामं पुरिसवेण तिण्हं
 मंजलणं णियं अजं अमंखेण गुणवमहियं । लोहमंजं णियं अजं अमंखेण
 गुणवमहियं । पंचणोकं णियमा जहं । एवं पंचणोकं । पुरिसवेदं जहं द्विदिसंक्रामं

§ ६९.२. जघन्यका प्रकरणे ह । निर्देश दो प्रकारका है—आर्वा निर्देश और आदेश निर्देश ।
 ओघमे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका संक्रम करनेवाला जीव सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह
 कपाय और नौ नोकपायोंकी क्या जघन्य स्थितिका संक्रामक होता है या अजघन्य स्थितिका
 संक्रामक होता है ? नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है ।
 सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव २१ प्रकृतियोंकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक
 अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव
 सम्यक्त्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका
 संक्रामक होता है । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव २४ प्रकृतियोंकी
 नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । अनन्तानुबन्धी मान
 आदि तीन कपायोंकी नियमसे जघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । इसी प्रकार मान आदि तीन
 अनन्तानुबन्धी कपायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष होता है । अप्रत्याख्यातावरण क्रोधकी जघन्य
 स्थितिका संक्रामक जीव चार संज्वलन और नौ नोकपायोंकी नियमसे असंख्यातगुणी अजघन्य
 स्थितिका संक्रामक होता है । सात कपायोंकी नियमसे जघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । इसी
 प्रकार सात कपायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष होता है । नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव
 स्त्रीवेदकी नियमसे जघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । छह नोकपाय, पुरुषवेद और चार
 संज्वलनकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । स्त्रीवेदकी
 जघन्य स्थितिके संक्रामक जीवके नपुंसकवेद कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो वह
 नपुंसकवेदकी नियमसे जघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । मान नोकपाय और चार संज्वलनकी
 नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । हाम्यकी जघन्य स्थितिका
 संक्रामक जीव पुरुषवेद और तीन संज्वलनकी नियमसे संख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका
 संक्रामक होता है । लोभमंज्वलनकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक
 होता है । तथा पाँच नोकपायोंकी नियमसे जघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । इसी प्रकार पाँच
 नोकपायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव

निण्हं संजल० णियमा अज० संखे०गुणव्भहियं । लोभसंजल० णिय० अज०
असंखे०गुणव्भ० । कोहमंजल० जह० द्विदिमंका० दोण्हं संजल० णियमा अज०
संखे०गुणव्भ० । लोभमंज० णि० अज० असंखे०गुणव्भ० । माणमंज० जह०
द्विदिमंका० मायासंज० णिय० अज० संखे०गुणव्भ० । लोभसंज० णियमा अज०
असंखे०गुणव्भहियं । मायामंज० जह० द्विदिमंका० लोभमंज० णि० अज० असंखे०-
गुणव्भ० । लोहमंज० जह० द्विदिमंका० सव्वपयडीणमसंक्रामओ ।

§ ६०३. आदेसेण णेरइय० मिच्छ० जह० द्विदिमंका० सम्मत्तस्म सिया कम्मसिओ
मिया ण । जइ कम्मसिओ मंक्रामओ^१ । जइ मंक्रामओ, किं जह० अज० ? णियमा अज०
असंखे०गुणव्भ० । सम्मामि० सिया कम्मसिओ मिया ण । जइ कम्मसिओ सिया
संक्रामओ । जइ संक्रामं, किं जह० अज० ? तं तु चउट्टाणपदिदं । सेमं द्विदिविहत्ति-
भंगो । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०४ सण्णियासो वि द्विदिविहत्तिभंगेण णेयव्वो ।
अपच्चक्खाणकोह० जह० द्विदिमंका० सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । सेमं द्विदि-
विहत्तिभंगो । एवमेक्कारमक० । णवणोक्कमायाणं द्विदिविहत्तिभंगो । णवरि सम्मत्त-

नीत संज्वलनोंकी नियमसे संख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । तथा लोभसंज्वलनकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । क्रोध-
संज्वलनकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव दो संज्वलनोंकी नियमसे संख्यातगुणी अधिक अजघन्य
स्थितिका संक्रामक होता है । तथा लोभसंज्वलनकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य
स्थितिका संक्रामक होता है । मानसंज्वलनकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव मायासंज्वलनकी
नियमसे संख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । तथा लोभसंज्वलनकी नियमसे
असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । मायासंज्वलनकी जघन्य स्थितिका
संक्रामक जीव लोभसंज्वलनकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक
होता है । लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव सब प्रकृतियोंका असंक्रामक होता है ।

§ ६०३. आदेशसे नारिकर्योंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव सम्यक्त्वका
कदाचित् कर्मांशिक है और कदाचित् अकर्मांशिक है । यदि कर्मांशिक है तो कदाचित् संक्रामक है ।
यदि संक्रामक है तो क्या जघन्य स्थितिका संक्रामक है या अजघन्य स्थितिका संक्रामक है ? नियमसे
असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक है । सम्यग्मिथ्यात्वका कदाचित् कर्मांशिक है
और कदाचित् नहीं है । यदि कर्मांशिक है तो कदाचित् संक्रामक है । यदि संक्रामक है तो क्या
जघन्य स्थितिका संक्रामक है या अजघन्य स्थितिका संक्रामक है ? वह चतुःस्थानपतित है । शेष भङ्ग
स्थितिबिभक्तिके समान है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धीचतुष्का सन्निकर्ष भी
स्थितिबिभक्तिके भंगके समान ले जाना चाहिए । अप्रत्याख्यानावरणक्रोधकी जघन्य स्थितिके
संक्रामकके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है । शेष भंग स्थितिबिभक्तिके
समान है । इसी प्रकार ग्यारह कपायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । नौ नाकपायोंका
भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके

१. ता० -आ०प्रत्योः सिया कम्मसिओ सिया च संक्रामओ इति पाठः ।

सम्प्राप्तिच्छत्तेण सह जहा णोदाणि तथा णेदव्वाणि । एवं पढमाए पुढवीए । तिरिक्खेसु एवं चेव । णवरि बारसक० जह० द्विदिसंका० भय-दुगुंछ० णियमा संका० । तं तु समयुत्तरमादिं कादूण जाव आवलियब्भहियं ति । भय-दुगुंछ० जह० द्विदिसंका० मिच्छ०-वारसक० । तं तु अज० असंखे० भागब्भहियं । णत्थि अण्णो वियप्पो ।

§ ६९४. विद्यादि जाव सत्तमा त्ति द्विदिविहत्तिभंगो । णवरि अणंताणु०४ जह० द्विदिसंका० मिच्छ०-वारसक० णवणोक० णियमा अज० संखेज्ज० भागब्भहियं । पंचि० तिरिक्ख० तिय० पढमपुढविभंगो । णवरि भय-दुगुंछा० जह० द्विदिसं० मिच्छ०-वारसक० तं तु अज० असंखे० भागब्भ० संखे० भागब्भ० णत्थि । जोणिणीसु सम्मत्त० सम्प्राप्तिच्छत्तभंगो । पंचि० तिरिक्ख० अपज्ज० जोणिणीभंगो । णवरि अणंताणु०४ सह कसाएहि भणियच्चं । एवं मणुसअपज्ज० ।

§ ६९५. मणुमतिए ओघं । णवरि मणुसिणीसु इत्थिवेद० जहण्णद्विदिसंका० णउंसय० णत्थि । णउंस० जह० द्विदिमंका इत्थिवेद० णियमा अज० अमंखे० गुणब्भ० । पुरिसवेदस्स छण्णोक० भंगो । देवाणं णारयभंगो । एवं भवण०-वाणवे० । णवरि

साथ जिस प्रकार ले गये हैं उस प्रकार ले जाना चाहिए । इसी प्रकार पहिली पृथिवीमें जानना चाहिए । तिर्यञ्चोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कपायोंकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव भय और जुगुप्साका नियमसे संक्रामक है । किन्तु वह एक समय अधिकसे लेकर एक आवलि अधिक तक स्थितिका संक्रामक है । भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव मिथ्यात्व और बारह कपायोंका नियमसे संक्रामक है । किन्तु वह असंख्यातवें भाग अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक है । यहाँ अन्य विकल्प नहीं हैं ।

§ ६९४. दूसरीसे सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें स्थितिभक्तिके समान भङ्ग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी नियमसे असंख्यातवें भाग अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें प्रथम पृथिवीके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव मिथ्यात्व और बारह कपायोंकी जघन्य स्थितिका भी संक्रामक है और अजघन्य स्थितिका भी संक्रामक है । यदि अजघन्य स्थितिका संक्रामक है तो नियमसे असंख्यातवें भाग अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक है । संख्यातवें भाग अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक नहीं है । योनिनी तिर्यञ्चोंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कके साथ कपायोंको कहना चाहिए । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें कहना चाहिए ।

§ ६९५. मनुष्यत्रिकमें ओघके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिके संक्रामक जीवके नपुंसकवेद नहीं है । नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव स्त्रीवेदकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक है । पुरुषवेदका भंग छह नोकपायोंके समान है । देवोंमें नारकियोंके सम्पन्न भंग है । इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वका भंग

सम्म० सम्मामि० भंगो । जोदिसि० विदियपुढविभंगो । सोहम्मादि जाव सच्चट्टा त्ति
ट्टिदिविहत्तिभंगो । एवं जाव ।

§ ६०६. भावो सच्चत्थ ओदइयो भावो ।

❀ अप्पावहुअं ।

§ ६०७. ट्टिदिसंकमस्स जहण्णुकस्सभेयभिण्णस्स अप्पावहुअमिदाणि वत्तइस्सामो
त्ति पइजावकमेदमहियारमंभालणवयणं वा । तं पुण दुविहमप्पावहुअं जहण्णुकस्सट्टिदि-
संकामयजीवविसयं जहण्णुकस्समंकमट्टिदिविमयं चेदि । तत्थ जीवप्पावहुअपरूवणा
सुगमा त्ति तमपरूविय ट्टिदिअप्पावहुअमेव परूवेमाणो सुत्तमुत्तरमाह—

❀ सच्चत्थोवो णवणोकसायाणमुक्कस्सट्टिदिसंकमा ।

§ ६०८. ट्टिदिअप्पावहुअं दुविहं जहण्णुकस्सट्टिदिविमयभेदेण । तत्थुक्कस्से ताव
पयदं । तस्स दुविहोणिहेसो—ओघेणादेसेण य । तत्थोघेण णवणोकसायाण-
मुक्कस्सट्टिदिसंकमो उवरि भण्णमाणासेमुक्कस्सट्टिदिसंकमपडिबद्धपदेहितो थोवयरो
त्ति उचं होइ । एदस्स पमाणं वंघमंकमणोदयावलियाहि परिहीणचालीससागरोवम-
कोडाकोडिमेत्तं ।

❀ सोलसकसायाणमुक्कस्सट्टिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ६०९. कुदो ? दोआवलिकणचालीमसागरोवमकोडाकोडिपमाणत्तादो ।

सम्यग्मिध्यात्वके समान है । ज्योतिषी देवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भंग है । सौधर्म स्वर्गसे लेकर
सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है ।

§ ६१६. भाव सर्वत्र औद्यिक भाव है ।

❀ अल्पबहुत्वका प्रकरण है ।

§ ६१७. जघन्य और उत्कृष्ट भेदरूप प्रकृत स्थितिसंक्रमके अल्पबहुत्वको इस समय बतलाते
हैं इस प्रकार यह प्रतिज्ञा वाक्य है या अधिकारकी सम्हाल करनेवाला वचन है । वह अल्पबहुत्व
दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंको विषय करनेवाला और जघन्य
और उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमको विषय करनेवाला । उनमेंसे जीव अल्पबहुत्वका कथन सुगम है इसलिए
उसका कथन न करके स्थिति अल्पबहुत्वका ही कथन करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

❀ नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है ।

§ ६१८. जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिको विषय करनेवाला होनेसे स्थिति अल्पबहुत्व दो
प्रकारका है । उनमेंसे सर्वप्रथम उत्कृष्टवा प्रकरण है । उसका निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और
आदेश । उनमेंसे ओघसे नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम आगे कहे जानेवाले उत्कृष्ट स्थिति-
संक्रमसे सम्बन्ध रखनेवाले पदोंकी अपेक्षा स्तोक्तर है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इसका प्रमाण
बन्धावलि, संक्रमावलि और उदयावलिसे न्यून चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है ।

❀ उससे सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ६१९. क्योंकि यह दो आवलिकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है ।

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमक्कस्सट्ठिदिसंकमो तुल्लो विसेसाहिओ ।
 ७००. एदेमिमुक्कस्सट्ठिदिसंकमो अंतोमुहुत्तणमत्तरिसागरो०कोडाकोडीमेत्तो ।
 एमो वुण कमायाणमुक्कस्सट्ठिदिसंकमादो विसेसाहिओ । केत्तियमेत्तेण ? अंतोमुहुत्तण-
 तीसंसागरो०कोडाकोडीमेत्तेण ।

❀ मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ ।
 ७०१. कुदो ? वंधोदयावलिउणमत्तरिकोडाकोडीसागरोवमपमाणत्तादो । एत्थ
 विसेमपमाणमंतोमुहुत्तं ।

एवमोघाणुगमो समत्तो ।

❀ एवं सव्वासु गईसु ।

७०२. सव्वासु णिरयादिगदीसु एवं चेव उक्कस्सट्ठिदिसंकमप्पावहुअपरूवणा
 कायव्वा, विसेमाभावादो त्ति उत्तं होइ । णवरि पंचि०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज०
 मोलसक०-णवणोक० उक्कस्सट्ठिदिसंकमो सरिमो थोवो । सम्म०-सम्मामि० उक्कस्स-
 ट्ठिदिसंक० सरिसो विसे० । मिच्छ० उक्क०ट्ठिदिसंक० विसेसाहिओ । आणदादि जाव सव्वट्ठ
 त्ति सोलसक०-णवणोक० उक्कस्सट्ठिदिसंक० तुल्लो थोवो । मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि० उक्क०

* उमसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिमंक्रम परस्पर तुल्य
 होकर विशेष अधिक है ।

७००. क्योंकि इनका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोडाकोडीसागरप्रमाण
 है । यह कपायोके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमसे विशेष अधिक है । कितना अधिक है ? अन्तर्मुहूर्त कम
 तीस कोडाकोडी सागर अधिक है ।

* उमसे मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिमंक्रम विशेष अधिक है ।

७०१. क्योंकि यह बन्धावलि और उदयावलिसे न्यून सत्तर कोडाकोडीसागरप्रमाण है ।
 यहाँपर विशेषका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है ।

इस प्रकार आवाणुगम समाप्त हुआ ।

* इसी प्रकार सब गतियोंमें अल्पबहुत्व है ।

७०२. नरकादि सब गतियोंमें इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा
 करनी चाहिए, क्योंकि ओषसे इस प्ररूपणामे विशेषता नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । किन्तु
 इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमे सोलह कपाय और नौ
 नाकपायोका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम परस्पर सदृश होकर सबसे स्तोत्र है । उससे सम्यक्त्व और
 सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम परस्पर सदृश होकर विशेष अधिक है । उससे मिथ्यात्वका
 उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । आननसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमे सोलह कपाय और
 नौ नाकपायोका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम परस्पर तुल्य होकर सबसे स्तोत्र है । उससे मिथ्यात्व,
 सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम परस्पर तुल्य होकर विशेष अधिक है । यह

द्विदिसं० तुल्लो विसेसाहिओ । एसो च विसेसो सुगमो चि सुत्तयारेण ण परूविदो ।
एवं जाव० ।

❀ एत्तो जहएणयं ।

§ ७०३. सुगमं ।

❀ सव्वत्थोवा सम्मत्त-लोहसंजलणाणं जहएणद्विदिसंकमो ।

§ ७०४. एयद्विदिपमाणत्तादो ।

❀ जद्विदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ७०५. समयाहियावलियपमाणत्तादो ।

❀ मायाए जहएणद्विदिसंकमो संखेज्जगुणो ।

§ ७०६. आवाहापरिहीणद्धमासपमाणत्तादो ।

❀ जद्विदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७०७. केत्तियमेत्तेण ? ममयूणदोआवलियपरिहीणावाहामेत्तेण ।

❀ माणसंजलणस्स जहएणद्विदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७०८. ममयूणदोआवलियूणद्धमाग्गदो अंतोमुहुत्तृणमामस्सेदम्म तदविगेहादो ।

❀ जद्विदिसंकमो विसेसाहिओ ।

विशेष सुगम है, इसलिए सूत्रकारने इसका कथन नहीं किया। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

* आगे जघन्यका प्रकरण है।

§ ७०३. यह सूत्र सुगम है।

* सम्यक्त्व और लोभसंज्वलनका जघन्य स्थितिमंक्रम सबसे स्तोत्रक है।

§ ७०४. क्योंकि वह एक स्थितिप्रमाण है।

* उससे यत्स्थितिसंक्रम अमंख्यातगुणा है।

§ ७०५. क्योंकि वह एक समय अधिक एक आवालिप्रमाण है।

* उससे मायाका जघन्य स्थितिमंक्रम असंख्यातगुणा है।

§ ७०६. क्योंकि वह आवाधासे हीन अर्धमास प्रमाण है।

* उससे यत्स्थितिमंक्रम विशेष अधिक है।

§ ७०७. कितना अधिक है ? एक समय कम दो आवलिसे हीन आवाधाकाल प्रमाण अधिक है।

* उससे मानसंज्वलनका जघन्य स्थितिमंक्रम विशेष अधिक है।

§ ७०८. क्योंकि एक समय कम दो आवलिसे हीन अर्धमाससे अन्तर्मुहूर्तकम एक माहके विशेष अधिक होनेमें विरोध नहीं आता।

* उससे यत्स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है।

§ ७०९. समयूणदोआवलिपरिहीणाबाहापवेसादो ।

✽ कोहसंजलणस्स जहणणट्टिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७१०. कुदो ? आबाहणवे०मासपमाणत्तादो ।

✽ जट्टिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७११. एत्थ विसेसपमाणं समयूणदोआवलयपरिहीणाबाहामेत्तं ।

✽ पुरिसवेदस्स जहणणट्टिदिसंकमो संखेज्जगुसो ।

§ ७१२. किंचूणवेमासेहितो अंतोमुहुत्तूणट्टवस्साणं तहाभावस्स णायोववण्णत्तादो ।

✽ जट्टिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७१३. सुगमं ।

✽ छण्णोकसायाणं जहणणट्टिदिसंकमो संखेज्जगुणो ।

§ ७१४. समयूणदोआवलयपरिहीणट्टवस्सेहितो छण्णोकमायचग्गिमट्टिदिसंखेज्जगुणो संखेज्जवस्ससहसपमाणस्स संखेज्जगुणत्ताविगेहादो ।

✽ इत्थि-णवुंसयवेदाणं जहणणट्टिदिसंकमो तुल्लो असंखेज्जगुणो ।

§ ७१५. कुदो ? पलिदोवमामंखभागपमाणत्तादो ।

✽ अट्टण्हं कसायाणं जहणणट्टिदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ७०६. क्योंकि इसमें एक समय कम दो आवलिसे हीन आवाधाकालका प्रवेश हो गया है ।

✽ उससे क्रोधसंज्वलनका जघन्य स्थितिमंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७१०. क्योंकि यह आवाधासे हीन दो मासप्रमाण है ।

✽ उससे यत्स्थितिमंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७११. यहाँ पर विशेषका प्रमाण एक समय कम दो आवलिसे हीन आवाधामात्र है ।

✽ उससे पुरुषवेदका जघन्य स्थितिमंक्रम मंख्यातगुणा है ।

§ ७१२. क्योंकि कुछ कम दो माहसे अन्तर्मुहूर्तकम आठ वर्षका उस प्रकारका होना न्यायसंगत है ।

✽ उससे यत्स्थितिमंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७१३. यह-सूत्र सुगम है ।

✽ उससे छह नोकपायोंका जघन्य स्थितिमंक्रम मंख्यातगुणा है ।

§ ७१४. क्योंकि एक समय कम दो आवाधियोंमें हीन आठ वर्षोंमें मंख्यात हजार वर्ष-प्रमाण छह नोकपायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकके संख्यातगुणों होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

✽ उससे स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिमंक्रम परम्पर तुल्य होकर भी असंख्यातगुणा है ।

§ ७१५. क्योंकि यह पत्रके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

✽ उससे आठ कपायोंका जघन्य स्थितिमंक्रम असंख्यातगुणा है ।

§ ७१६. तं कथं ? इत्थि-णवुंसयवेदाणं चरिमट्टिदिखंडयायामादो दुचरिम-ट्टिदिखंडयायामो असंखे०गुणो । एवं दुचरिमादो तिचरिमट्टिदिखंडयमसंखेज्जगुणं । तिचरिमादो चदुचरिमिदि एदेण कमेण संखेज्जट्टिदिखंडयसहस्माणि हेट्ठा ओसरिय अंतरकरणप्पांभादो पुव्वमेव अट्ट कसाया खविदा । तेण कारणेणेदेसिं चरिमट्टिदिखंडय-चरिमफाली तत्तो असंखेज्जगुणा जादा ।

✽ सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्टिदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ७१७. चारित्तमोहक्खवयपरिणामेहि घादिदावसेसो अट्टकसायाणं जहण्णट्टिदि-संकमो । एमो वुण तत्तो अणंतगुणहीणविसोहिदंसणमोहक्खवयपरिणामेहि घादिदावसेसो त्ति । तत्तो एदस्सासंखेज्जगुणमव्वामोहेण पडिवज्जेयव्वं ।

✽ मिच्छत्तस्स जहण्णट्टिदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ७१८. कुदो ? मिच्छत्तक्खवणादो अंतोमुहुत्तमुवरि गंतूण सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्टिदिसंकमुप्पत्तिदंसणादो ।

✽ अणंताणुबंधीणं जहण्णट्टिदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ७१९. कुदो ? विसंजोयणापरिणमेहिंता दंसणमोहक्खवयपरिणामाणमणंत-गुणत्तेण मिच्छत्तचरिमफालीदो अणंताणुबंधिचरिमफालीए असंखेज्जगुत्तावगेहाभावादो । एवं ताव ओघेण जहण्णट्टिदिसंकमप्पावहुअं पस्सविय एत्ता णिरय्यगइपडिवट्टजहण्णट्टिदि-

§ ७१६. सो कैसे ? स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके अन्तिम स्थितिकाण्डक आयामसे द्विचरम स्थितिकाण्डक आयाम असंख्यातगुणा हैं । इसी प्रकार द्विचरमसे त्रिचरम स्थितिकाण्डक आयाम असंख्यातगुणा है । त्रिचरमसे चतुश्चरम इस प्रकार इस क्रमसे संख्यात हजार स्थितिकाण्डक नीचे जाकर अन्तरकरणके प्रारम्भसे पूर्व ही आठ कपाय क्षयका प्राप्त हुए हैं । इस कारणसे इनके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालि स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य स्थितिसंकमसे विशेष अधिक हो जाती हैं ।

✽ सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिमंक्रम अगंख्यातगुणा है ।

§ ७१७. क्योंकि चारित्रमोहक्षपकके परिणामासे घात करनेसे शप बचा हुआ आठ कपायोंका जघन्य स्थितिसंकम है और यह तो उनसे अनन्तगुणे हीन दर्शनमोहक्षपकके परिणामोंसे घात करनेसे शेष बचा हुआ जघन्य स्थितिसंकम है । इसलिए उससे इसे असंख्यातगुणा व्यामोहके विना जानना चाहिए ।

✽ उससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिमंक्रम अगंख्यातगुणा है ।

§ ७१८. क्योंकि मिथ्यात्वका क्षपणासे अन्तमुहूर्त ऊपर जाकर सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंकमकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

✽ उससे अनन्तानुबन्धियोंका जघन्य स्थितिमंक्रम अगंख्यातगुणा है ।

§ ७१९. क्योंकि विसंयोजनारूप परिणामोंसे दर्शनमोहक्षपकके परिणाम अनन्तगुणे होनेसे मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिसे अनन्तानुबन्धीकी अन्तिम फालिके असंख्यातगुणे होनेमें कोई विरोध नहीं है । इस प्रकार सर्व प्रथम ओघसे जघन्य स्थितिसंकम अल्पबहुत्वका कथन करके आगे

संकमप्पाबहुअं परूवेदुमुवरिमसुत्तपबंधमाह—

❀ षिरयगईए सव्वत्थोवो सम्मत्तस्स जहण्णट्टिदिसंकमो ।

§ ७२०. कदकरणिज्जोववादं पडुच्च एयट्टिदिमेत्तो लब्भइ त्ति सव्वत्थोवत्तमेदस्स भणिदं ।

❀ जट्टिदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ७२१. सुगमं ।

❀ अणंताणुबंधीणं जहण्णट्टिदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ७२२. कुदो ? पल्लिदोवमासंखभागपमाणत्तादो ।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्टिदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ७२३. कुदो ? उच्चेल्लणाचरिमफालीए जहण्णभावोवल्लदीदो । एत्थतणी पल्लिदोवमासंखभागायामा चरिमफाली अणंताणुबंधिविमंजोयणाचरिमफालिआयामादो अमंखेज्जगुणा, तत्थ करणपरिणामेहि घादिदावसेसस्स एत्तो थोवत्तसिद्धीए णाहत्तादो ।

❀ पुरिसवेदस्स जहण्णट्टिदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ७२४. कुदो ? हदममुप्पत्तिकम्मियामणिणपच्छायदणेरइयम्मि अंतोमुहुत्त-तम्भवत्थम्मि पल्लिदोवमम्म संखेज्जदिभागोणूणमागगेवमसहस्मचदुमत्तभाममेत्तपुरिसवेद-जहण्णट्टिदिसंकमावल्लंघणादो ।

नरकगतिसे प्रतिबद्ध जघन्य स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* नरकगतिमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है ।

§ ७२०. कृतकृत्यके उपपादकी अपेक्षा एक स्थितिप्रमाण उपलब्ध होता है, इसलिए इसे सबसे स्तोक कहा है ।

* उमसे यत्स्थितिमंक्रम असंख्यातगुणा है ।

§ ७२१. यह सूत्र सुगम है ।

* उमसे अनन्तानुबन्धियोंका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है ।

§ ७२२. क्योंकि यह पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

* उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है ।

§ ७२३. क्योंकि यहाँपर उद्वेलनाकी अन्तिम फालि जघन्यरूपसे उपलब्ध होती है । पल्यके असंख्यातवें भागरूप आयामवाली यह फालि अनन्तानुबन्धीकी विमंयोजनासम्बन्धी अन्तिम फालिके आयामसे असंख्यातगुणी है, क्योंकि वहाँपर करणपरिणामोंसे घात करनेसे शेष बचा जघन्य स्थितिसंक्रमका इससे स्तोक सिद्ध होना न्यायप्राप्त है ।

* पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है ।

§ ७२४. क्योंकि जो हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला असंखी जीव मरकर नारकी हुआ है उसके तद्भवस्थ होनेके अन्तर्मुहूर्त होने पर पल्यके संख्यातवें भागसे न्यून एक हजार सागरके सात भागोंमेंसे चार भागप्रमाण पुरुषवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमका अवलम्बन लिया है ।

⊗ इत्थिवेदे जहणणट्टिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

। ७२५. एत्थ कारणपरुवणट्टिमिमा ताव बंधगद्धाणमप्पाबहुअविहासणा कीरदे । तं जहा— सव्वत्थोवा पुरिसवेदबंधगद्धा ३ । इत्थिवेदबंधगद्धा संखेज्जगुणा ९ । हस्स-रदि-बंधगद्धा विसेसाहिआ ११ । णवुंसयवेदबंधगद्धा संखेज्जगुणा २२ । अरदि-सोगबंधगद्धा विसेसाहिआ २३ । एदमप्पाबहुअं साहणं काऊण पुरिसवेदजहणणट्टिदिसंकमादो इत्थिवेद-जहणणट्टिदिसंकमस्स विसेसाहियत्तमेवमणुगतच्चं । तं कथं ? पुरिसवेदस्म, इत्थि-णउंसय-वेदबंधगद्धाममासो संदिट्ठीए ३१, एत्तियमेत्तो गालिदो । एत्तो पुण विसेमहीणो पुरिस-णउंसयवेदबंधगद्धासमासो संदिट्ठी ० एसो २५ । इत्थिवेदस्स गालिदो एवंविहो ति पुरिमवेदबंधगद्धमित्थिवेदबंधगद्धाए सोहिय सुद्धसेममेत्तेण विसेसाहियत्तमित्थिवेदजहणण-ट्टिदिसंकमस्स दट्टच्चं । संदिट्ठीए सुद्धसेसपमाणमेदं ६ । एत्थागालियपडिवक्खबंधगद्ध-णोकमायजहणणट्टिदिसंकमसंदिट्ठी एमा ९६ । एत्तो पडिवक्खबंधगद्धागालणेण पुरिसवेद-जहणणट्टिदिसंकमो एमो ६५ । एत्तो विसेसाहिओ इत्थिवेदस्स गालिदावसेमो एमो ७१ ।

⊗ हस्स-रईणं जहणणट्टिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

। ७२६. केत्तियमेत्तेण ? इत्थिवेदबंधगद्धामंखेज्जदिभागं पुरिमवेदबंधगद्धाए सोहिय सुद्धसेममेत्तेण । संदिट्ठीए तमेदं २ । तेणाहिओ हस्स-रइजहणणट्टिदिसंकमो एमो ७३ ।

* उमसे स्त्रीवेदमें जघन्य स्थितिसंकम विशेष अधिक है ।

६ ७२१. यहाँपर कारणका कथन करनेके लिए बन्धककालके उस अल्पबहुत्वका सुलासा करते हैं । यथा—पुरुषवेदका बन्धककाल सबसे स्तोक है ३ । उससे म्त्रीवेदका बन्धककाल संख्यातगुणा है ६ । उमसे हास्य-रतिका बन्धककाल विशेष अधिक है ११ । उससे नपुंसकवेदका बन्धककाल संख्यातगुणा है २२ । उमसे अरति-शाकका बन्धककाल विशेष अधिक है २३ । इस अल्पबहुत्वको साधन करके पुरुषवेदके जघन्य स्थितिसंकमसे स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंकम विशेष अधिक ही जानना चाहिए ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके बन्धककालका जोड़ संदृष्टिसे ३१ है । पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंकम लानेके लिए इतना गलाया है । परन्तु इससे विशेषहीन पुरुषवेद और नपुंसक-वेदके बन्धककालका जोड़ है जो संदृष्टिसे यह २५ है । स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंकम लानेके लिए जो गलाया गया वह इस प्रकार है, इसलिए पुरुषवेदके बन्धककालको स्त्रीवेदके बन्धककालमेंसे घटाकर जो शेष बचे उतना विशेष अधिक स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंकम जानना चाहिए । संदृष्टिसे घटाकर जो शेष बचा उसका प्रमाण यह ६ है । यहाँपर नहीं गलाये गये प्रतिपक्ष बन्धक कालके साथ नोकपायोंके जघन्य स्थितिसंकमकी संदृष्टि यह ९६ है । इसमेंसे प्रतिपक्ष बन्धककालके गलानेसे पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंकम यह ६५ प्राप्त होता है । इससे विशेष अधिक गलाकर शेष बचा स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंकम यह ७१ है ।

* उससे हास्य-रतिका जघन्य स्थितिसंकम विशेष अधिक है ।

६ ७२६. कितना अधिक है ? स्त्रीवेदके बन्धककालके संख्यातर्वे भागको पुरुषवेदके बन्धककालमेंसे घटाकर जो शेष बचे उतना अधिक है । संदृष्टिसे वह यह २ है । उतना विशेष अधिक हास्य-रतिका जघन्य स्थितिसंकम यह ७३ है ।

❊ एवंसयवेदजहणणट्टिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७२७. किं कारणं ? हस्म-रईणमरइ-सोगबंधगद्धा गालिदा । णवुंसयवेदस्स पुण एत्तो संखेज्जगुणहीणो पुरिमिथिवेदबंधगद्धासमासो गालिदो । तम्हा अरदि-सोगबंधगद्धाए संखेजेहि भागेहि णवुंसयवेदजहणणट्टिदिसंकमो तत्तो विसेसाहिओ जादो । संदिट्ठीए तस्म पमाणमेदं ८४ ।

❊ अरइ-सोगाणं जहणणट्टिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७२८. कारणमरइ-सोगाणं हस्स-रदिवंधगद्धामेत्तं गालिदं । णवुंसयवेदस्स पुण एत्तो विसेसाहियं इत्थि-पुरिसवेदबंधगद्धासमाममेत्तं गालिदं । तदो इत्थि-पुरिसवेदबंधगद्धा-समासे हस्म-रइबंधगद्धं सोहिय सुद्धसेसमेत्तेण विसेसाहियत्तमेत्थ दट्ठव्वं । पयद-जहणणट्टिदिसंकममंदिट्ठी एसा ८५ ।

❊ भय-दुगुंझाणं जहणणट्टिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७२९. केत्तियमेत्तो एत्थतणो विसेसो ? हस्स-रइबंधगद्धामेत्तो । कुदो एवं ? ध्रुवबंधित्तेण पडिवक्खबंधगद्धागालणेण विणा लद्धजहणणभावत्तादो ।

❊ बारसकसायाणं जहणणट्टिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

* उससे नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७२७. कारण क्या है ? क्योंकि हास्य-रतिका जघन्य स्थितिसंक्रम लानेके लिए अरति-शोकका बन्धककाल गलाया गया है । परन्तु नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम लानेके लिए इससे संख्यातगुणा हीन पुरुषवेद-स्त्रीवेदके बन्धककालके जोड़ रूप कालको गलाया गया है, इसलिए नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम हास्य-रतिके जघन्य स्थितिसंक्रमसे विशेष अधिक हो गया है जो विशेष अधिकका प्रमाण अरति-शोकके संख्यात बहुभागरूप होता है । संदृष्टिसे नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम ८४ है ।

* उससे अरति-शोकका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७२८. क्योंकि अरति-शोकका जघन्य स्थितिसंक्रम लानेके लिए हास्य-रतिबन्धककालमात्र गला है । परन्तु नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम लानेके लिए इससे विशेष अधिक गला है, क्योंकि वह स्त्री-पुरुषवेदके बन्धककालका जो जोड़ हो तत्प्रमाण गला है, इसलिए स्त्री-पुरुषवेदके बन्धककालके जोड़मेंसे हास्य-रतिबन्धककालका घटाकर जो शेष रहे, उतना विशेष अधिक यहाँ पर जानना चाहिए । उस प्रकार प्रकृत जघन्य स्थितिसंक्रमकी संदृष्टि यह ८५ है ।

* उससे भय-जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७२९. ६६। यहाँ पर विशेषका प्रमाण कितना है ? यहाँ पर विशेषका प्रमाण हास्य-रतिके बन्धककालप्रमाण है ।

शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि भय जुगुप्सा ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए प्रतिपक्ष बन्धककालको गलाये बिना यहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमपना प्राप्त हो जाता है ।

* उससे बारह कपार्योंका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७३०. १०० । केत्तियमेत्तेण ? आवलियमेत्तेण । कुदो एवं ? बारसक० जह०
 द्विदिमंकमं पडिच्छिय आवलियादीदस्स भय-दुगुंछाणं जहण्णसामित्तविहाणादो । तं
 जहा—असण्णिचरिमावत्थाए सगपाओग्गमव्वजहण्णहदममुप्पत्तियद्विदिमंतकम्मेण समाणं
 बंधमाणस्स कमायद्विदिपमाणं मंदिद्वीए एत्तियमिदि घेत्तव्वं १०४ । मंपहि एत्तियमेत्त-
 मसण्णिचरिमावलियाए विदियममयम्मि वंधियूण वंधावलियादिकंतमेदं णेरइयविदियविग्गहे
 भय-दुगुंछामु पडिच्छदि त्ति तक्कालपडिच्छिदावलिगुणकमायद्विदिममाणमेत्तियं होइ १०० ।
 पुणो एदं णेरइओ मरीरं घेत्तणावलियमेत्तं गालिय भय-दुगुंछाणं जहण्णसामित्तं
 पडिवज्जदि त्ति तक्कालियजहण्णद्विदिमंकमो भय-दुगुंछाणमेत्तियो होइ ९६ । कमायाणं
 पुण संतसमाणद्विदिबंधो असण्णिपच्छायदणेइयविदियविग्गहविमओ एत्तियमेत्तो
 होइ १०४ । पुणो गालिदावलिओ एत्तियमेत्तो होऊण १०० जहण्णसामित्तमणुहवदि त्ति
 सिद्धं पुव्विल्लजादो एदस्सावलियव्वहियत्तं । एवमेमो चुण्णिमुत्ताहिप्पाओ परुव्विदो,
 तदहिप्पाएण असण्णिपच्छायदणेइयम्म दुममयाहियावलिगुणव्वंतरे मव्वत्थेव बारसकमाय-
 भय-दुगुंछाणं जहण्णसामित्तावलंबणे विग्गहाभावादो । उच्चारणाहिप्पाएण पुण बारस-

§ ७३०. १०० । कितना अधिक है ? आवलिमात्र अधिक है ।

शंका—एसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि भय-जुगुप्सामें बारह कपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम करके एक
 आवलिके बाद भय-जुगुप्साके जघन्य स्वामित्वके प्राप्त होनेका विधान है । यथा—असंज्ञीकी
 अन्तिम अवस्थामें अपने योग्य सबमें जघन्य हतममुत्तत्तिक स्थितिमत्कर्मके समान बन्ध करनेवाले
 उसके जो कपायकी स्थितिका प्रमाण प्राप्त होता है वह संज्ञिकी अपेक्षा इतना १०४ ग्रहण करना
 चाहिए । अब इतनीमात्र कपायकी स्थितिकी असंज्ञीकी अन्तिम आवलिके दूसरे समयमें बाँधकर
 बन्धावलिसे रहित इसे नारकी जीवके दूसरे विग्रहमें भय-जुगुप्सामें संक्रमित करता है, इसलिए
 उस कालमें जो संक्रमित हुआ है वह एक आवलिकम कपायकी स्थितिके समान इतना
 १०० होता है । पुनः नारकी जीव शरीरको ग्रहण कर इससेसे आवलिमात्रको गलाकर भय-
 जुगुप्साके जघन्य स्वामित्वको प्राप्त होता है, इसलिए उस समयमें भय-जुगुप्साका जघन्य
 स्थितिसंक्रम इतना ९६ होता है । परन्तु असंज्ञी पर्यायसे आकर उक्त नारकी जीवके दूसरे विग्रहसे
 सम्बन्ध रखनेवाला सत्कर्मके समान कपायोंका जघन्य स्थितिबन्ध इतना १०४ होता है । पुनः
 एक आवलिके गलनेके बाद इतना १०० होकर जघन्य स्वामित्वको प्राप्त होता है, इसलिए भय-
 जुगुप्साके जघन्य स्थितिसंक्रमसे इसका एक आवलि अधिक जघन्य स्थितिसंक्रम सिद्ध हुआ ।
 इस प्रकार यह चूणिसूत्रका अभिप्राय कहा, क्योंकि उसके अभिप्रायानुसार असंज्ञी पर्यायसे आकर
 नरकमें उत्पन्न हुए नारकी जीवके दो समय अधिक एक आवलिके भीतर सभी जगह बारह कपाय,
 भय और जुगुप्साके जघन्य स्वामित्वका अवलम्बन करने पर कोई विरोध नहीं आता । परन्तु
 उच्चारणाके अभिप्रायानुसार बारह कपाय, भय और जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम नारकीयोंमें

१. ता०प्रतौ -मेत्तोहितो (होइ), आ०प्रतौ -मेत्तोहितो इति पाठः

कसाय-भय-दुगुंछाणं जहण्णट्टिदिमंकमो णेरइणसु सरिसो चव होइ, विदियविग्गहे गलिद-
सेमजहण्णट्टिदिमंतकम्मं कमाय-णोकमायाणं समाणभावेणावट्टिदं घेत्तूण पुणो वि
आवलियमेत्तकालं गालिय दुममथाहियावलियणेरइयम्मि जहण्णसामित्तविहाणादो ।

❀ मिच्छत्तस्स जहण्णट्टिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७३१. कुदो ? पलिदोवमंखेज्जभागूणमागरोवममहस्मचदुसत्तभागमेत्तकसाय-
जहण्णट्टिदिमंकमादो किंचणमागरोवममहस्ममेत्तमिच्छत्तजहण्णट्टिदिमंकमस्म विसेमा-
हियत्तदंमणादो । एवमेवो मुत्ताणुमारेण णिरओघो परूविदो । एत्तो उच्चारणाहिप्पाय-
मस्मिऊण वत्तइस्सामो । तं जहा—

७३२. णेरइणसु मव्वत्थोवा मम्मत्तं जहंट्टिसंकं । जट्टिदिसं अंसं गुणो ।
अणंताणुं ४ जहंट्टिदिमंकं अंसंखे गुणो । मम्मामिं जहं असंखे गुणो ।
पुरिसवेदं जहंट्टिदिसं अंसंखे गुणो । इत्थिवेदं जहंट्टिदिसं विसेमाहिओ ।
हस्म-इं जहंट्टिदिमं विसें । अरदि-सोगं जहं विसेमां । णवुंसं जहं विसें ।
वारमकं-भय-दुगुंछाणं जहंट्टिदिमंकं विसें । मिच्छं जहंट्टिदिमं विसेमाहिओ त्ति ।

§ ७३३. एत्थुवउज्जंतयमद्वप्पावद्दअं । तं जहा—मव्वत्थोवा पुरिमवेदवंधगद्धा २ ।
इत्थिवेदवंधगद्धा मंखेज्जगुणा ४ । हस्म-इवंधगद्धा मंखेज्जगुणा १६ । अरदि-सोगवंधगद्धा

समान ही होता है, क्योंकि कपायों आर नापायाक गल कर शेष रहे जघन्य स्थितिसत्कर्मको
समानरूपसे अवस्थित प्रमाण कर तथा फिर एक आवलि कालको गलाकर नारकीके दो समय
अधिक एक आवलि काल के अन्तमें जघन्य स्वामित्वका विधान किया है ।

❀ उससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिमंकम विशेष अधिक है ।

§ ७३१. क्योंकि एक हजार सागरक पत्थके संख्यातवे भाग कम चार भागप्रमाण
कपायोंके जघन्य स्थितिसंकमसे मिथ्यात्वका कुद्व कम एक हजार सागरप्रमाण जघन्य स्थितिसंकम
विशेष अधिक देखा जाता है । इस प्रकार यह सूत्रके अनुसार सामान्यसे नारकियोंमें जघन्य स्थिति-
संकमके अलबहुत्वका कथन किया । अब उच्चारणके अभिप्रायानुसार इसे बतलाते हैं । यथा—

७३२. नारकियोंमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंकम सबसे स्तोक है । उससे यत्स्थिति-
संकम असंख्यातगुणा है । उसमें अनन्तानुवर्धाचतुष्कका जघन्य स्थितिमंकम असंख्यातगुणा
है । उससे मय्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंकम असंख्यातगुणा है । उससे पुरुषवेदका जघन्य
स्थितिसंकम असंख्यातगुणा है । उससे स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंकम विशेष अधिक है । उससे
हास्यरतिका जघन्य स्थितिसंकम विशेष अधिक है । उससे अरति-शोकका जघन्य स्थितिसंकम
विशेष अधिक है । उससे नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंकम विशेष अधिक है । उससे बारह
कपाय, भय और जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंकम विशेष अधिक है । उससे मिथ्यात्वका जघन्य
स्थितिसंकम विशेष अधिक है ।

§ ७३३. अब यहाँ उपयुक्त काल अल्पबहुत्वको बतलाते हैं । यथा—पुरुषवेदका बन्धककाल
सबसे स्तोक है २ । उससे स्त्रीवेदका बन्धककाल संख्यातगुणा है ४ । उससे हास्यरतिका बन्धककाल
संख्यातगुणा है १६ । उससे अरति-शोकका बन्धककाल संख्यातगुणा है ४८ । उससे नपुंसकवेदका

संखेजगुणा ४८ । णवुंसयवेदबंधगडा विसेसाहिया ५८ । एदमप्पावहुअं साहणं काऊणा-
णंतरपरूविदमुच्चारणप्पावहुअं सकारणमणुगंतव्वं । एवं णिग्ओधो समत्तो । एवं चैव
पढमाए पुढवीए । एत्तो विदियपुढवीए सेसपुढवीणं देसामासयभावेणप्पावहुअपरूवणट्ट-
मुत्तरसुत्तकलावमाह—

✽ विदियाए सव्वत्थोवो अणंताणुबंधीणं जहणणट्टिदिसंकमो ।

§ ७३४. तत्थ विसंजोयणाचरिमफालीए करणपरिणामेहि लद्धघादावसेमिदाए
सव्वत्थोवत्ताविरोहादो ।

✽ सम्मत्तस्स जहणणट्टिदिसंकमो असंखेजगुणो ।

§ ७३५. कुदो ? उव्वेल्लणचरिमफालीए लद्धजहणणभावत्तादो ।

✽ सम्मामिच्छत्तस्स जहणणट्टिदिसंकमो विसेसाहियो ।

§ ७३६. दोणहं पि उव्वेल्लणाचरिमफालीए जहणणमारित्तं जादं । किंतु समत्त-
चरिमुव्वेल्लणफालिं पेक्खिऊण सम्मामिच्छत्तुव्वेल्लणचरिमफाली विसेसाहिया । कारणं
पढमादाए उव्वेल्लमाणो मिच्छाइट्टी सव्वत्थ सम्मामिच्छत्तुव्वेल्लणकंडयादो सम्मत्तस्स
विसेसाहियमेव ट्टिदिसंखंडयघादं करेइ जाव सम्मत्तमुव्वेल्लिदं ति । पुणो मम्मामिच्छत्त-
मुव्वेल्लेमाणो मम्मत्तचरिमफालीदो विसेसाहियकमेण ट्टिदिसंखंडयमागाएदि जाव
सगचरिमट्टिदिसंखंडयादो ति । तदो एदमेत्थ विसेसाहियत्ते कारणं ।

बन्धककाल विशेष अधिक है ५८ । इस अल्पबहुत्वको साधन करके अनन्तर बह गये उच्चारणा
अल्पबहुत्वको सकारण जानना चाहिए । इस प्रकार सामान्य नारकियोंमें अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।
इसी प्रकार पहिली पृथिवीमें जानना चाहिए । आगे दूसरी पृथिवीमें शेष पृथिवियोंके देशामर्परूपसे
अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रकलापका कहते हैं—

✽ दूसरी पृथिवीमें अनन्तानुबन्धियोंका जघन्य स्थितिमंक्रम सबसे स्तोत्र है ।

§ ७३४. क्योंकि करणपरिणामोंके द्वारा घात होनेसे शेष बची हुई विसंयोजनासम्बन्धी
अन्तिम फालिके सबसे स्तोत्र होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

✽ उससे सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिमंक्रम अमंगल्यातगुणा है ।

§ ७३५. क्योंकि उद्वेलनाकी अन्तिम फालिमें इसका जघन्यपना प्राप्त होता है ।

✽ उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिमंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७३६. क्योंकि यद्यपि दोनोका ही उद्वेलनाकी अन्तिम फालिमें जघन्य स्वामित्व प्राप्त
हुआ है फिर भी सम्यक्त्वकी अन्तिम उद्वेलनाफालिको देखते हुए सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम
उद्वेलनाफालि विशेष अधिक है । कारण कि प्रथम अवस्थामें उद्वेलना करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव
सम्यक्त्वकी उद्वेलना होने तक सर्वत्र सम्यग्मिथ्यात्वके उद्वेलनाकाण्डकसे सम्यक्त्वका स्थिति-
काण्डकघात विशेष अधिक ही करता है । फिर सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करता हुआ अपने अन्तिम
स्थितिकाण्डकके प्राप्त होने तक सम्यक्त्वकी अन्तिम फालिसे विशेष अधिकके क्रमसे स्थिति-
काण्डकको ग्रहण करता है । इसलिए यह यहाँ पर विशेष अधिक होनेका कारण है ।

✽ बारसकसाय-णवसोकसायाणं जहणणडिदिसंकमो तुल्लो असंखेज्जगुणो ।

§ ७३७. कुदो ? अंतोकोडाकोडीपमाणत्तादो ।

✽ मिच्छत्तस्स जहणणडिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७३८. जइ वि सामित्तभेदो णत्थि तो वि मिच्छत्तजहणणडिदिसंकमस्स कसाय-जहणणडिदिसंकमादो विसेमाहियत्तमेत्थ ण विरुद्धं, चालीस०पडिभागीयंतोकोडाकोडीदो सत्तरि०पडिभागीयंतोकोडाकोडीए तीहि सत्तभागेहि अहियत्तदंसणादो । एवं सेसपुठवीसु । णवरि सत्तमाए सन्वत्थोवो अणंताणु०४ जहणणडिदिसंकमो । सम्म० जह०डिदिसंक० अमंखे०गुणो । सम्मामि० जह०डिदिसं० विसे० । पुरिसवेद० जह०डिदिसं० अमंखेज्ज-गुणो । इत्थिदेद० जह०डिदिसं० विसे० । हस्म-रइ० जह०डिदिसं० विसे० । णवुंसय-वेद० जह०डिदिसं० विसे० । अरदि-सोग० जह०डिदिसं० विसे० । उच्चारणाहिप्पाण्ण अरइ-सोगाणमुवरि णवुंम० जह०डिदिसं० विसेमाहिओ वत्तच्चं । तदो भय-दुगुंछ० जह०-डिदिसंक० विसे० । वारमक० जह०डिदिसं० विसे० । मिच्छ० जह०डिदिसं० विसे० ।

§ ७३९. एत्तो सेसगईणमप्पावहुअमुच्चारणाणुमारेण वत्तइस्सामां । तं जहा—तिरिक्खा० णारयभंगो । णवरि णवुंमयवेदम्मुवरि भय-दुगुंछ० विसे० । वारमक० विसे० ।

✽ उससे बारह कपाय और नौ नोकपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम परस्पर तुल्य होकर भी असंख्यातगुणा हैं ।

§ ७३७. क्योंकि यह अन्तःकोटाकांठिप्रमाण हैं ।

✽ उससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७३८. यद्यपि स्थानित्वभेद नहीं है तो भी कपायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमसे मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमके यहाँपर विशेष अधिक होनेमें विरोध नहीं आता, क्योंकि चालीस कांडाकोडीके प्रतिभागरूपसे प्राप्त हुए अन्तःकोडाकोडीसे सत्तरकोडाकोडीके प्रतिभागरूपसे प्राप्त हुआ अन्तःकोडाकांठी तीन-सातभाग अधिक देखा जाता है । इसी प्रकार शेष पृथिवियोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोत्र है । उससे सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा हैं । उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है । उससे स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे हास्य-रतिका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे अति-शोकका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उच्चारणके अभिप्रायसे अरति-शोकके ऊपर नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । ऐसा कहना चाहिए । उससे भय-जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे बारह कपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७३९. आगे शेष गतियोंके अल्पबहुत्वका उच्चारणके अनुसार बतलाते हैं । यथा—तिर्यञ्चोंका भङ्ग नारकियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदके ऊपर भय-जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे बारह कपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक

मिच्छ० विसे० । पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंतिरि०पज्ज० पारयभंगो । पंचिंदियतिरिक्ख-
जोणिणीमु सच्चत्थोवो अणंताणु०४ जह०ट्टिदिमं० । सम्म० जह० ट्टिदिसं० अमंखे०-
गुणो । मम्मामि० जह०ट्टिदिसं० विसेसा० । पुरिसवेद० जह० अमंखे०गुणो । सेमं
पारयभंगो । पंचिंतिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० सच्चत्थोवो सम्मत्त० जह०ट्टिदिमं० ।
सम्मामि० जह०ट्टिदिसं० विसे० । पुरिसवेद० जह०ट्टिदिमं० अमंखे०गुणो । इत्थि-
वेद० जह०ट्टिदिमं० विसेसा० । हस्स-रइ० विसे० । अरइ-सोग० विसे० । णवुंमय-
वेद० जह०ट्टिदिमं० विसे० । सोलसक०-भय-दुगुंछ० जह० विसे० । मिच्छ० जह०-
ट्टिदिसं० विसे० ।

§ ७४०. मणुस-मणुसपज्ज० ओघं । मणुसिणीमु सच्चत्थोवो सम्म०-लोह०-
संज० जह०ट्टिदिमं० । जट्टिदिमं० अमंखे०गुणो । मायामंज० जह०ट्टिदिमं०
संखेज्जगुणो । जट्टिदिमं० विसे० । माणमंजल० जह०ट्टिदिमं० विसे० । जट्टिदिमं०
विसे० । कोहमंज० जह०ट्टिदिमं० विसे० । जट्टिदि० विसे० । पुरिसवेद०-छण्णोकमा०
जह०ट्टिदिमं० तुल्लो मंखेज्जगुणो । इत्थिवेद० जह०ट्टिदिसं० असंखे०गुणो । णउंसयवेद०
जह०ट्टिदिमं० अमंखे०गुणो । अट्टकमाय० जह०ट्टिदिसं० अमंखे०गुणो । मम्मामि०

हैं । उससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय
तिर्यञ्च पर्याप्तकोंमें नारकियोंके समान भंग है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च यानिनियोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्पदाका
जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोत्र है । उससे सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है ।
उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम
असंख्यातगुणा है । शेष भंग नारकियोंके समान है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य
अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोत्र है । उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य
स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है । उससे
स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे दाम्यवृत्तिका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष
अधिक है । उससे अरति-शोषका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे नपुंसकवेदका
जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे सोलह कषाय, भय और जुगुप्साका जघन्य स्थिति-
संक्रम विशेष अधिक है । उससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७४० मनुष्य और मनुष्य पर्याप्तकोंमें ओघके समान भंग है । मनुष्यनियोंमें सम्यक्त्व
और लाभसंवलनका जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोत्र है । उससे यात्स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा
है । उससे मायाका जघन्य स्थितिसंक्रम भंग्यातगुणा है । उससे यात्स्थिति संक्रम विशेष अधिक है ।
उससे मानका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे यत्स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।
उससे क्रोधका जघन्य स्थितिसंक्रमविशेष अधिक है । उससे यत्स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।
उससे पुरुषवेद और छह नाकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम परस्पर तुल्य होकर संख्यातगुणा है ।
उससे स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है । उससे नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम
असंख्यातगुणा है । उससे आठ कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है । उससे

जह०द्विदिसं० असंखे०गुणो । मिच्छ० जह० असंखे०गुणो । अणंताणु०४ जह०द्विदिसं०
असंखे०गुणो ।

§ ७४१. देवाणं पारयभंगो । भवण०-त्राण०-सन्वत्थोवो अणंताणु०४ जह०-
द्विदिसं० । सम्म० जह०द्विदिसं० असंखे०गुणो । सम्मामि० जह०द्विदिसं० विसे० ।
पुरिमवेद० जह०द्विदिसं० असंखे०गुणो । सेमं देवोघं । जोदिसि० विदियपुढवि-
भंगो । सोहम्मादि जाव णवगोवज्जा त्ति सन्वत्थोवो सम्म० जह०द्विदिसंक० ।
जद्विदिसं० असंखे०गुणो । अणंताणु०४ जह०द्विदि०मंक० अमंखे०गुणो । सम्मामि०
जह०द्विदिमंक० अमंखे०गुणो । वारमक०-णवणोक० जह०द्विदिमं० अमंखे०गुणो ।
मिच्छ० जह०द्विदिमं० मंखे०गुणो । अणुदिमादि सव्वट्ठे त्ति सन्वत्थोवो सम्म० जह०-
द्विदिमंक० । जद्विदिमंक० अमंखे०गुणो । अणंताणु०४ जह०द्विदिमंक० असंखे०गुणो ।
वारमक०-णवणोक० जह०द्विदिमं० अमंखे०गुणो । मिच्छ०-सम्मामि० जह०द्विदिसं०
मग्गिो मंखे०गुणो । एवं जाव० ।

एवं चउवीममणिओगहागणि समत्ताणि ।

❀ भुजगारसंकमस्स अट्टपदं काऊण सामित्तं कायव्वं ।

सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य स्थितिसंकम असंख्यातगुणा हैं । उससे मिध्यात्वका जघन्य स्थितिसंकम
असंख्यातगुणा हैं । उससे अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंकम असंख्यातगुणा हैं ।

§ ७४१. देवोंमें नारकियोंके समान भंग है । भवनवासी और ध्यन्तर देवोंमें अनन्तानुबन्धी-
चतुष्कका जघन्य स्थितिसंकम सबसे स्तोत्र है । उससे सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंकम असंख्यात-
गुणा हैं । उससे सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य स्थितिसंकम विशेष अधिक है । उससे पुरुषवेदका
जघन्य स्थितिसंकम असंख्यातगुणा है । शेष भंग सामान्य देवोंके समान है । ज्योतिषियोंमें
दूसरी पृथिवीके समान भंग है । सौधर्म कल्पमे लेकर नौ प्रैवेयकतकके देवोंमें सम्यक्त्वका जघन्य
स्थितिसंकम सबसे स्तोत्र है । उससे यत्स्थितिसंकम असंख्यातगुणा हैं । उससे अनन्तानुबन्धी-
चतुष्कका जघन्य स्थितिसंकम असंख्यातगुणा हैं । उससे सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य स्थितिसंकम
असंख्यातगुणा हैं । उससे बारह कपायों और नौ नोकपायोंका जघन्य स्थितिसंकम असंख्यातगुणा
हैं । उससे मिध्यात्वका जघन्य स्थितिसंकम संख्यातगुणा हैं । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके
देवोंमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंकम सबसे स्तोत्र है । उससे यत्स्थितिसंकम
असंख्यातगुणा हैं । उससे अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंकम असंख्यातगुणा है ।
उससे बारह कपायों और नौ नोकपायोंका जघन्य स्थितिसंकम असंख्यातगुणा है । उससे मिध्यात्व
और सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य स्थितिसंकम परस्पर सदृश होकर संख्यातगुणा हैं । इसी प्रकार
अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

इस प्रकार चौबीस अनुयोगद्वार समाप्त हुए ।

* भुजगारसंकमका अर्थपद करके स्वामित्व करना चाहिए ।

§ ७४२. एत्तो भुजगारपरूवणा पत्तावसरो । तत्थ ताव अट्टपदं कायव्वं, अण्णहा तस्सरूवविमयणिण्णयाणुप्पत्तीः । किं तमट्टपदं ? वुच्चदे—अणंतरोसक्काविदविदिकंत-समए अप्पदरमंकमादो एण्हं बहुवयरं संकामेइ त्ति एसो भुजगारसंकमो । अणंत रुस्सक्काविदविदिकंतसमए बहुवयरमंकमादो एण्हं थोवयराओ ठिदीओ संकामेइ त्ति एस अप्पयरमंकमो । तत्तियं तत्तियं चैव संकामेइ त्ति एसो अवट्टिदमंकमो । अणंतरवदिकंतसमए अरमंकमादो संकामेदि त्ति एमो अवत्तव्वमंकमो । एदेणट्टपदेण भुजगारअप्पदर-अवट्टिदा-वत्तव्वमंकमयाणं परूवणा भुजगारसंकमो त्ति वुच्चइ । संपहि भुजगारपरूवणाए इमाणि तेरस अणियोगहाराणि समुक्कित्तादीणि अप्पावहुअपजंताणि । तत्थ समुक्कित्तणं काऊण पच्छा मामित्तं कायव्वमिदि सुत्ताहिप्पाओ, असमुक्कित्तिदाणं भुजगारादीणं सामित्तादि-विहाणे असंबद्धत्तपसंगादो । मा च समुक्कित्ता ओघादेसभेदेण दुविहा । ओघेण ताव मिच्छत्तस्स अत्थि भुजगार-अप्प०अवट्टिदसंकामगा । सम्म०-सम्मामि०-सोलसक०-णवणो० अत्थि भुज०-अप्प०-अवट्टि०-अवत्त०मंका० । एवं मणुमतिए । आदेसेण मच्चमग्गाणासु द्विदिविहत्तिभंगो । एवं समुक्कित्तिदाणं भुजगारादिपदाणं सामित्तपरूवणट्ट-मुत्तरमुत्तावयागो—

❀ मिच्छत्तस्स भुजगार०-अप्पदर-अवट्टिसंकामओ को होदि ?
अएणदरो ।

§ ७४२. आगे भुजगारका कथन अवसर प्राप्त है । उसमें सर्वप्रथम अर्थपद करना चाहिए, अन्यथा उसका स्वरूपविषयक निर्णय नहीं बन सकता । वह अर्थपद क्या है ? कहते हैं—अनन्तर पूर्व अतीत समयमें हुए अल्पतर संक्रमसे वर्तमान समयमें बहुतरका संक्रम करता है यह भुजगारसंक्रम है । अनन्तर पूर्व अतीत समयमें हुए बहुतर संक्रमसे वर्तमान समयमें स्तोकरत स्थितियोंका संक्रम करना है यह अल्पतर संक्रम है । उतनी ही उतनी ही स्थितियोंका संक्रम करता है यह अवस्थितसंक्रम है तथा अनन्तर अतीत समयमें हुए असंक्रमसे वर्तमान समयमें संक्रम करना है यह अवक्तव्यसंक्रम है । इस अर्थपदके अनुसार भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यसंक्रामकोंकी प्ररूपणा भुजगारसंक्रम कही जाती है । अब भुजगारसंक्रममें समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पत्रहुत्व तक ये तरह अनुयोगद्वार होते हैं । उनसे समुत्कीर्तनाको करके बादमें स्वामित्व करना चाहिए यह इस सूत्रका अभिप्राय है, क्योंकि समुत्कीर्तना किये बिना भुजगार आदिकके स्वामित्वका विधान करने पर असम्बद्धपनेका प्रसंग आता है । वह समुत्कीर्तना ओघ और आदेशके भेदसे दो प्रकारकी है । ओघसे मिथ्यात्वके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके संक्रामक जीव हैं । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, मोलह कपाय और नौ नोकपायोंके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव हैं । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिए । आदेशसे सब मार्गणाओंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । इस प्रकार जिनकी समुत्कीर्तना की है ऐसे भुजगार आदि पदोंके स्वामित्वका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

❀ मिथ्यात्वके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका संक्रामक कौन जीव है ? अन्यतर जीव है ।

§ ७४३. एत्थण्णदरणिद्देसेण णेरइओ तिरिक्खो मणुस्सो देवो वा त्ति गहियव्वं, सव्वत्थ सामित्तस्साविरोहादो । ओगाहणादिविसेसपडिसेहट्ठं च अण्णदरणिद्देसो । एत्थ भुजगारावडिदसंक्रामगो मिच्छाइट्ठी चेव अप्पदरसंक्रामगो पुण अण्णदरो मिच्छाइट्ठी सम्माइट्ठी वा होइ त्ति घेत्तव्वं ।

❀ अवत्तव्वसंक्रामओ एत्थि ।

§ ७४४. अमंक्रमादो संक्रमो अवत्तव्वसंक्रमो णाम । ण च मिच्छत्तस्स तारिस-मंक्रमसंभवो, उवमंतकसायस्स वि तस्सोकड्डुणापरपयडिसंक्रमाणमत्थित्तदंसणादो ।

❀ एवं सेसाणं पयडीणं णवरि अवत्तव्वया अत्थि ।

§ ७४५. एवं सेसाणं पि सम्मत्तादिपयडीणं भुजगारादिविसयं सामित्तमणुगंतव्वं, अण्णदरसामिबंधं पडि मिच्छत्तपरूवणादो विसेसाभावादो । णवरि सम्मत्त-सम्मा-मिच्छत्ताणं भुजगारस्स अण्णदरो सम्माइट्ठी, अप्पदरस्स मिच्छाइट्ठी सम्माइट्ठी वा, अवट्ठिदस्स पुन्नुप्पणादो सम्मत्तादो समयुत्तरमिच्छत्तसंतकम्मियविदियसमयसम्माइट्ठी सामी होइ त्ति विसेसो जाणियव्वो । अण्णं च अवत्तव्वया अत्थि, सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण-मणादियमिच्छाइट्ठिणा उव्वेल्लिदत्तदुभयसंतकम्मिएण वा सम्मत्ते पडिवण्णे

§ ७४३. यहाँ सूत्रमें 'अन्यतर' पदके निर्देश द्वारा नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य अथवा देव मिथ्यात्वके उक्त पदोंका संक्रामक है ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि सर्वत्र स्वामित्वके प्राप्त होनेमें विरोधका अभाव है। अवगाहना आदि विशेषका निषेध करनेके लिए 'अन्यतर' पदका निर्देश किया है। यहाँ पर भुजगार और अवस्थितपदका संक्रामक मिथ्यादृष्टि ही होता है। परन्तु अल्पतरपदका संक्रामक मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों होते हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

* मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका संक्रामक नहीं है।

§ ७४४. असंक्रमसे संक्रम होना अवक्तव्यसंक्रम है। परन्तु मिथ्यात्वका इस प्रकारका संक्रम सम्भव नहीं है, क्योंकि उपशान्तकपाय जीवके भी मिथ्यात्वके अपकर्षण और परप्रकृति संक्रमका अस्तित्व देखा जाता है।

* इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका स्वामित्व है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यसंक्रमवाले जीव हैं।

§ ७४५. इसी प्रकार शेष सम्यक्त्व आदि प्रकृतियोंका भी भुजगार आदि पदविषयक स्वामित्व जानना चाहिए, क्योंकि अन्यतर जीव स्वामी है इस अपेक्षामें मिथ्यात्वकी प्ररूपणासे इस प्ररूपणमें कोई भेद नहीं है। इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार-पदका अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है। अल्पतरपदका मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है। तथा अवस्थितपदका पूर्वमें उत्पन्न हुए सम्यक्त्वसे एक समय अधिक मिथ्यात्वका सत्कर्मवाला द्वितीय समयमें स्थित सम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है इतना विशेष यहाँ जानना चाहिए। इतना और है कि इनके अवक्तव्य पदवाले जीव हैं, क्योंकि अनादि मिथ्यादृष्टि जीवोंके अथवा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनों प्रकृतियोंके सत्कर्मकी उद्वेलना कर चुके जीवोंके सम्यक्त्वको प्राप्त होनेपर

विदियसमयम्मि तदुवलंभादो । अणंताणुबंधीणं पि विसंजोयणापुच्चसंजोगे अवसेसाणं च सच्चोवसामणादो परिवदमाणगस्स देवस्स वा पटमसमयसंक्रामगस्स अवत्तच्चसंकम-संभवादो । एवमोघेण सामित्तपरूवणा कया ।

§ ७४६. आदेसेण मणुसतिण ओघभंगो । णवरि बारमक०-णवणोकसाय-अवत्तच्चपटममयदेवालावो ण कायच्चो । सेमसच्चमग्गणासु द्विदिविहत्तिभंगो ।

✽ कालो ।

§ ७४७. अट्टियारसंभालणमुत्तमेदं ।

✽ मिच्छत्तस्स भुजगारसंक्रामगो केवचिरं कालादो होदि ?

§ ७४८. सुगमं ।

✽ जहण्णेण एयसमञ्चो, उक्कस्सेण चत्तारि समया ।

§ ७४९. एत्थ ताव जहण्णकालपरूवणा कीरदे—एगो द्विदिमंतकम्मस्सुवरि एयममयं बंधवुड्डीए परिणदो विदियादिममएसु अवट्टिदमप्पयं वा बंधिय बंधावलिआदीदं संक्रामिय तदणंतरसमए अवट्टिदमप्पदं वा पड्विणो लट्ठो मिच्छत्तट्टिदीए भुजगार-संक्रामयम्म जहण्णेणेयसमओ, उक्क० चदुममयपरूवणा । तं जहा—एइंदिओ अट्टाखयंमंकिसेसखएहिं दोमु समएसु भुजगारबंधं काट्ठण तदो से काले सण्णि-

दूसरे समयमें सम्यक्च और सम्यग्मिथ्यात्वका अवक्तव्यसंक्रम देखा जाता है। अनन्तानुबन्धियोंका भी विसंयोजनापूर्वक संयोग होने पर तथा अवशेष प्रकृतियोंका सर्वोपशामनासे गिरनेवाले जीवके या प्रथम समयमें संक्रम करनेवाले देवके अवक्तव्यसंक्रम सम्भव है। इस प्रकार आंधसे स्वामित्वकी प्ररूपणा की।

§ ७४६. आदेशमें मनुष्यत्रिकमें आंधके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें बारह कपाय और नौ नोकपायोंका अवक्तव्यपद प्रथम समयवर्ती देवके होता है यह आलाप नहीं करना चाहिये। शेष सब मार्गणाओंमें स्थितिभिक्तिके समान भंग है।

✽ कालका अधिकार है ।

§ ७४७. अधिकारकी सम्हाल करनेवाला यह सूत्र है ।

✽ मिथ्यात्वके भुजगारसंक्रामकका कितना काल है ।

§ ७४८. यह सूत्र सुगम है ।

✽ जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है ।

§ ७४९. यहाँ सर्वप्रथम जघन्य कालकी प्ररूपणा करते हैं—कोई एक जीव स्थितिसत्कर्मके ऊपर एक समय तक बन्धकी वृद्धिसे परिणत हुआ तथा द्वितीयादि समयोंमें अवस्थित या अल्पतर बन्ध करके बन्धाबलिके वाद भुजगारसंक्रम करके तदनन्तर समयमें अवस्थित या अल्पतरसंक्रमको प्राप्त हुआ। इस प्रकार मिथ्यात्वकी स्थितिके भुजगारसंक्रामकका जघन्य काल एक समय प्राप्त हुआ। अब उत्कृष्ट काल चार समयकी प्ररूपणा करते हैं। यथा—किसी एकेन्द्रिय जीवने अट्टाक्षय और संक्लेशक्षयसे दो समय तक भुजगारबन्ध किया। तदनन्तर अगले समयमें संज्ञी पञ्चेन्द्रियोंमें

पंचिदिएसुप्पज्जमाणो विग्गहगदीए एगसमयअसण्णिट्ठिदिं बंधिऊण तदणंतरसमए सरीरं धेत्तूण सण्णिट्ठिदिं पवट्ठो । एवं चदुसु समएसु णिरंतरं भुजगारबंधं कादूण पुणो तेणेव कमेण बंधावलियादिकंतं संकामेमाणस्स लद्धा मिच्छत्तभुजगारसंक्रमस्स उक्कस्सेण चत्तारि समया ।

❖ अप्पदरसंक्रामगो केवचिरं कालादो होदि ?

§ ७५०. सुगमं ।

❖ जहण्णेणयसमओ, उक्कस्सेण तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं ।

§ ७५१. एत्थ ताव एयसमओ उच्चदे । तं कथं ? भुजगारमवट्ठिदं वा बंधमाणस्स एयसमयमप्पदरं बंधिय विदियममए भुजगारावट्ठिदाणमण्णदरबंधेण परिणमिय बंधावलियवदिक्रमे बंधाणुसारणेव संक्रमेमाणयस्म अप्पदरकालो जहण्णेणयसमयमेत्तो होइ । मादिरेयतेवट्ठिसागरोवमसदमेत्तुक्कस्सकालाणुगममिदाणि कस्सामो । तं जहा—एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा मिच्छाड्ढी मंतकम्मस्स हेट्ठदो बंधमाणो सव्वुक्कस्संतोमुहुत्तमेत्तकालमप्पदरसंक्रमं काऊण पुणो तिपल्लिदोवमिएसुववण्णो । तत्थ वि अप्पदरमेव मिच्छत्तसंक्रममणुपालिय अंतोमुहुत्तावसेसे मगाऊए पढममम्मत्तं पडिवण्णो अंतोमुहुत्तमप्पदरमेव संक्रामेदि । कधमुवममसम्मत्तं पडिवण्णस्म अप्पदरसंक्रमो, तक्कालव्भन्तरे सव्वत्थेवावट्ठिदसरूवेण मिच्छत्तणिसेयट्ठिदीणं संक्रामोवलंभादो त्ति ? सच्चमेदं, णिसेयपहाणत्ते ममवलंबिए

उत्पन्न होकर त्रिमहगतिमें एक समय तक असंजीकी स्थितिका बन्ध किया । पुनः तदनन्तर समयमें शरीरको ग्रहणकर संजीकी स्थितिका बन्ध किया । इस प्रकार चार समय तक निरन्तर भुजगार बन्ध करके पुनः उसी क्रमसे बन्धावलिके बाद संक्रम करनेवाले उसी जीवके मिथ्यात्वके भुजगारसंक्रमके उत्कृष्ट चार समय प्राप्त हुए ।

❖ अल्पतरसंक्रामकका कितना काल है ?

§ ७५०. यह सूत्र सुगम है ।

❖ जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल माधिक एक सौ त्रैसठ सागर है ।

§ ७५१. यहाँ सर्वप्रथम एक समयका कथन करते हैं । वह कैसे ? भुजगार या अवस्थितपदका बन्ध करनेके बाद एक समय तक अल्पतरपदका बन्ध करके तथा दूसरे समयमें भुजगार या अवस्थितपदके बन्धरूपसे परिणमन करके बन्धावलिके व्यतीत होने पर बन्धके अनुसार ही संक्रम करनेवाले जीवके अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । अब साधिक एक सौ त्रैसठ सागरप्रमाण उत्कृष्ट कालका अनुगम करते हैं । यथा—सत्कर्मसे कम स्थितिका बन्ध करनेवाला कोई एक तिर्यञ्च या मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कालतक अल्पतर संक्रम करके पुनः तीन पल्यकी आयुवाले जीवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ पर भी मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रमका ही पालन करके अपनी आयुमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त काल तक अल्पतरपदका ही संक्रम करता है ।

शंका—उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त हुए जीवके अल्पतरसंक्रम कैसे हो सकता है, क्योंकि उस काजके भीतर सर्वत्र ही मिथ्यात्वकी निपेकस्थितियोंका अवस्थितरूपसे ही संक्रम उपलब्ध होता है ?

एदमेवं होजं ति ण पुण एवमेत्थ विवक्खा कया । किंतु कालपहाणत्तं विवक्खियं । तं कथं णव्वदे ? मम्मत्त-मम्मामिच्छत्ताणमवट्ठिदसंकमस्स जहण्णुक्कस्सेणेयसमयोवएमादो । पुणो वेदयसम्मत्तं पडिवण्णो पढमछावट्ठिं सव्वमप्पदरसंकमेणाणुपालिय तदो अंतो-मुहुत्तावसेसे पढमछावट्ठिकाले अप्पदरकालाविरोहेणंतोमुहुत्तं मिच्छत्तेणंतरिय सम्मत्तं पडिवण्णो विदियछावट्ठिं परिभमिय तदवसाणे परिणामपच्चएण पुणो वि मिच्छत्तमुवगओ दव्वलिंगमाहप्पेणेक्कीससागरोवमिएसु देवेसुववण्णो । तत्थ वि मुक्कलेस्सापाहम्मेण संतकम्मादो हेट्ठा चेव बंधमाणस्म अप्पयरसंकमो चेय । तत्तो चुदो वि संतो मणुसेसुव-वज्जिय अंतोमुहुत्तमप्परं चेव संकामिय तदो भुजगारमवट्ठिदं वा पडिवण्णो तस्स लद्धो पयदुक्कस्सकालो दोअंतोमुहुत्तम्भहियतिपल्लिदोवमेहि सादिरेयतेवट्ठिसागरोवममेत्तो । एत्थ पढमछावट्ठिं भमाविय अंतोमुहुत्तावसेसे सम्मामिच्छत्तेण किण्णांतराविज्जदे ? ण, तहा सम्मत्तं पडिवज्जमाणस्स भुजगारप्पमंगादो । तं कथं ? सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णस्स

समाधान—यह सत्य है, क्योंकि निपेकोंकी प्रधानता स्वीकार करने पर यह इसी प्रकार होता है । परन्तु यहाँपर इस प्रकारकी विवक्षा नहीं की है, किन्तु कालकी प्रधानता विवक्षित है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अवस्थितसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ऐसा उपदेश पाया जाता है । इससे ज्ञात होता है कि यहाँ पर निपेकोंकी प्रधानता न होकर कालकी प्रधानता है ।

पुनः वह उपशमसम्यग्दृष्टि जीव वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । तथा पृरे प्रथम छयासठ सागर काल तक अल्पतरसंक्रमका पालन कर उस प्रथम छयासठ सागरमे अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर अल्पतरपदके कालमें विरोध न पड़ते हुए अन्तर्मुहूर्तकालतक मिथ्यात्वके द्वारा वेदक-सम्यक्त्वको अन्तरित करके सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । तथा द्वितीय छयासठ सागर कालतक परिभ्रमण करके उसके अन्तमे परिणामवश फिर भी मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और द्रव्यलिंगके माहात्म्यसे इकतीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । तथा वहाँ भी शुक्ललेश्याके माहात्म्यसे सत्कर्मसे कम स्थितिका ही बन्ध करनेवाले उसके अल्पतरसंक्रम ही होता रहा । फिर वहाँसे च्युत होकर भी मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त कालतक अल्पतरपदका ही संक्रम करके अनन्तर भुजगार या अवस्थितसंक्रमको प्राप्त हुआ । इसप्रकार अल्पतर संक्रमका दो अन्तर्मुहूर्त और तीन पत्य अधिक एक सौ त्रैसठ सागरप्रमाण प्रकृत उत्कृष्ट काल प्राप्त हुआ ।

शंका—यहाँ पर प्रथम छयासठ सागर कालतक भ्रमण कराके उसमे अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानके द्वारा अन्तर क्यों नहीं कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उस प्रकार सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाले जीवके भुजगारसंक्रमके प्राप्त होनेका प्रसंग आता है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवके मिथ्यात्वका परप्रकृतिसंक्रम नहीं

ताव मिच्छत्तस्स परपयडिसंकमो णत्थि, किंतु ओकड्डणासंकमो चेय । सो च उदयप्पहुडि आवलियासंखेज्जभागव्वमहियदोआवालियमेत्तमिच्छत्तद्विदीणं णत्थि । किं कारणं ? जासिं पयडीणमुदयमंभवो अत्थि तासिं चेव उदयावलियवाहिरद्विदीओ सव्वाओ ओकड्डिज्जंति, उदयावलियव्वमंतरे णिक्खेवमंभवादो । जासिं पुण उदयो णत्थि तासिमुदयावलियवाहारे आवलियासंखेज्जभागव्वमहियआवालियमेत्तीणं द्विदीणमोकड्डणा ण संभवइ, उदयावलियव्वमंतरे णिक्खेवमंभवाणुवलंभादो । तदो तत्थ बाहिरआवलियासंखेज्जभागव्वमहियदोआवालियवज्जाणमुवग्गिमासेसद्विदीणमोकड्डणामंकमो त्ति धेत्तव्वं, आवलियमेत्तमइच्छाविय तदमंखेज्जदिभागे तत्थ णिक्खेवणियमदंमणादो । एवं च संते सम्मामिच्छत्तद्वं सव्वमधद्विधिगलणेणप्परसंकमं काऊण जाधे सम्मत्तं पडिवण्णो ताधे सम्मामिच्छाइड्डी चरिमसमयओकड्डणासंकमादो सम्माइद्विपठममयपरपयडिमंकमो आवलि० असंखे०-भागव्वमहियआवालियमेत्तणिसेगेहि ममहिओ होइ, परपयडिमंकमस्सुदयावलियवहिव्वभृद-सव्वणिसेएसु णिसेयाभावादो । तथा च सो भुजगारसंकमो पठमसमयसम्माइद्विपडिवद्वो अप्पदरविरोहिओ जायदि त्ति सम्मामिच्छत्तमेसो णेदुं ण सक्को त्ति ।

§ ७५२. अथवा णिसेयपरिहाणीए अप्पदरसंकमो एत्थ ण विवक्खिओ, किंतु कालपरिहाणीए । अत्थि च कालपरिहाणी, सम्मामिच्छाइद्विचरिमसमयमिच्छत्तद्विदि-

होता । किन्तु अपकर्षणसंकम ही होता है । वह भी उदय समयसे लेकर आवलिका असंख्यातवों भाग अधिक दो आवलिप्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितियोंका नहीं होता, क्योंकि जिन प्रकृतियोंका उदय सम्भव है उन्हीं प्रकृतियोंकी उदयवलिके बाहरकी सभी स्थितियों संक्रमित होती हैं, क्योंकि उनका उदयवलिके भीतर निक्षेप सम्भव है । परन्तु जिन प्रकृतियोंका उदय नहीं है उनकी उदयवलिके बाहर आवलिके असंख्यातवें भाग अधिक एक आवलिप्रमाण स्थितियोंका अपकर्षण सम्भव नहीं है, क्योंकि उनकी उदयवलिके भीतर निक्षेपकी सम्भावना उपलब्ध नहीं होती । इसलिए वहाँपर आवलिके असंख्यातवें भाग अधिक दो आवलिप्रमाण स्थितियोंके सिवा ऊपरकी सब स्थितियोंका अपकर्षणसंकम ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि वहाँ पर एक आवलिप्रमाण स्थितियोंको अतिस्थापनारूपसे स्थापित करके उसके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंमें निक्षेपका नियम देखा जाता है । और ऐसा होने पर सम्यग्मिथ्यात्वके सब कालतक अधःस्थितिगलनाके साथ अल्पतरसंकम करके जब सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ तब सम्यग्मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयमें होनेवाला परप्रकृतिसंकम एक आवलिके असंख्यातवें भागसे अधिक एक आवलिमें प्राप्त हुए निषेकोंसे अधिक होता है, क्योंकि परप्रकृतिसंकमका उदयवलिके बाहर स्थित सब निषेकोंमें होनेका निषेध नहीं है । और सम्यग्मिथ्यात्वमें ले जाने पर सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयसे सम्बन्ध रखनेवाला वह भुजगारसंकम अल्पतरसंकमका विरोधी हो जाता है, इसलिए ऐसे जीवको सम्यग्मिथ्यात्वमें ले जाना शक्य नहीं है ।

§ ७५२. अथवा यहाँ पर निषेकोंका परिहानिरूप अल्पतरसंकम विवक्षित नहीं है । किन्तु कालपरिहानिरूप अल्पतरसंकम यहाँपर विवक्षित है और यहाँ कालकी परिहानि है ही, क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयमें प्राप्त हुई मिथ्यात्वकी स्थितिके प्रमाणसे प्रथम समयवर्ती

पमाणादो षट्मगमयमम्माइट्टिमि तट्टिदीणमधट्टिदिगलणेण समयूणत्तदंसणादो । तदो तत्थ णिसेयमंकमवुट्ठीए वि कालपरिहाणिलक्खणो संकमस्स अप्पयरभावो चेवे त्ति । ण च एवंविहा विवक्खा सुत्ते ण दीसइ त्ति संकणिज्जं; उवसमसम्माइट्टिमि णिसेयावेक्खाए अट्टियसंकमपस्सुविय कालपरिहाणिवसेणप्पयरमंकमपस्सुवयम्मि सुत्तम्मि तदुवलंभादो । तदो सम्मामिच्छते पडिवज्जाविदे वि ण दोसो त्ति सिद्धं ।

❀ अवट्टिदसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ ७५३. सुगमं ।

❀ जहणणेण्यसमओ, उक्कस्सेणंतोमुहुत्तं ।

§ ७५४. कुदो ? एयट्टिदिबंधावट्टाणकालस्स जहण्णुक्कस्सेण्यसमयमंतोमुहुत्तमेत्तपमाणोवलंभादो ।

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अवट्टिद-अवत्तव्वसंकामया केवचिरं कालादो होंति ?

§ ७५५. सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

❀ जहण्णुक्कस्सेण्यसमओ ।

§ ७५६. भुजगारसंकमस्स ताव उच्चदे—तप्पाओग्गम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्टिदि-संतकम्मियमिच्छाइट्टिणा तत्तो दुसमुत्तगदिमिच्छत्तट्टिदिमंतकम्मिण्णु सम्मत्ते पडिवण्णे

सम्यग्दृष्टिके उसकी स्थितियोंमें अधःस्थितिगलनाके आलम्बनसे एक समय कमपना देखा जाता है, इसलिए वहाँ निपेकसंकममें वृद्धि होने पर भी संक्रमका कालपरिहानिलक्षण अप्पतरपना ही है । सूत्रमें इसप्रकारकी विवक्षा नहीं दिखलाई देती ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि उपशम सम्यग्दृष्टिके निपेकोंकी अपेक्षा अवस्थितसंकमका बंधन न करके कालपरिहानिके आलम्बन द्वारा अप्पतरसंकमका बंधन करनेवाले सूत्रमें उक्त विवक्षा उपलब्ध होती है, इसलिए सम्यग्मिथ्यात्वकी प्राप्त कराने पर भी दोष नहीं है यह सिद्ध हुआ ।

❀ अवस्थितसंकामकका कितना काल है ?

§ ७५३. यह सूत्र सुगम है ।

❀ जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ७५४. क्योंकि एक समान स्थितिके बन्धका अवस्थान काल जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उपलब्ध होता है ।

❀ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार, अवस्थित और अवत्तव्यपदके संक्रामकोंका कितना काल है ?

§ ७५५. यह पृक्षासूत्र सुगम है ।

❀ जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ ७५६. भुजगारसंकमका पहिले कहते हैं—जो तत्प्रायोग्य सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मसे युक्त है और जो उनकी स्थितिसे मिथ्यात्वकी दो समय अधिक आदि स्थितिसे युक्त है ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्वको प्राप्त होने पर दूसरे समयमें भुजगारसंकम होकर

विदियसमयम्मि भुजगारसंकमो होदूण तदणंतरसमए अप्पदरमंकमो जादो । लद्धो जहण्णुक्कस्सेणेगसमयमेत्तो भुजगारसंकामयकालो । एवमवट्टिदमंकमस्स वि । णवरि समयुत्तरमिच्छत्तट्टिदिसंतकम्मिएण वेदगसम्मत्ते पडिवण्णे विदियसमयम्मि तदुवलंभो वत्तव्वो । एवमवत्तव्वसंकमस्स वि वत्तव्वं । णवरि णिस्संतकम्मियमिच्छाइट्ठिणा उवसमसम्मत्ते गहिदे विदियसमयम्मि तदुवलद्धी होदि ।

❀ अप्पदरसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ ७५७. सुगमं ।

❀ जहण्णेणंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण वेत्थावट्टिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ७५८. एत्थ ताव जहण्णकालपरूवणा कीरदे—एगो मिच्छाइट्ठी पुव्वुत्तेहिं तीहिं पयारेहिं मम्मत्तं घेत्तण विदियममए भुजगारावट्टिदावत्तव्वाणमण्णदरसंकमपज्जाएण परिणमिय तदियसमए अप्पयरसंकामयत्तमुवगओ, सव्वजहण्णेण कालेण मिच्छत्तं गओ, जहण्णकालाविरोहेण मंकिलिट्ठो मम्मत्तट्टिदीए उवरि मिच्छत्तट्टिदिं तप्पाओगवट्ठीए वट्ठाविय मन्वलहुं मम्मत्तं पडिवण्णो, भुजगारसंकमेण अवट्टिदमंकमेण वा परिणदो त्ति तम्म अंतोमुहुत्तमेत्तो मम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणमप्पदरमं० जहण्णकालो होइ । अहवा मम्मत्तं पडिवज्जिय अंतोमुहुत्तमप्पदरमरूवेण मम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणं ट्टिदिमंकममणु-

तदनन्तर समयमें अल्पतरसंकम हांता है । इसी प्रकार इनके भुजगारसंकमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय प्राप्त हुआ । इसी प्रकार एक समय अवस्थितसंकमका भी प्राप्त होता है । किन्तु इतनी विज्ञेयता है कि एक समय अधिक मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मवाले जीवके द्वारा वेदकसम्यक्त्वके प्राप्त करने पर दूसरे समयमें उसकी प्राप्ति कहनी चाहिए । इसीप्रकार अवक्तव्य-संकमका भी कहना चाहिए । किन्तु इतनी विज्ञेयता है कि उक्त दोनों प्रकृतियोंके सत्कर्मसे रहित मिथ्यादृष्टि जीवके द्वारा उपशमसम्यक्त्वके ग्रहण करने पर दूसरे समयमें उसकी उपलब्धि होती है ।

* अल्पतरसंक्रामकका कितना काल है ?

§ ७५७. यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण है ।

§ ७५८. यहाँ पर सर्वप्रथम जघन्य कालका कथन करते हैं—कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव पूर्वोक्त तीन प्रकारसे सम्यक्त्वको ग्रहण कर दूसरे समयमें भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य इनमेंसे किसी एक पर्यायरूपसे परिणत होकर तीसरे समयमें अल्पतरसंकमपनेको प्राप्त हुआ । पुनः सबसे जघन्य काल द्वारा मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । फिर जघन्य कालमें विरोध न पड़े इस विधिसे संक्लिष्ट होकर सम्यक्त्वकी स्थितिके ऊपर मिथ्यात्वकी स्थितिको बढ़ाकर अतिशीघ्र सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । फिर भुजगारसंकमरूपसे या अवस्थितसंकमरूपसे परिणत हुआ । इस प्रकार उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतरसंकमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण प्राप्त हुआ । अथवा सम्यक्त्वको प्राप्त करके अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अल्पतररूपसे स्थितिसंकमका पालन करके अतिशीघ्र दर्शनमोहनीयकी क्षणामें व्यापृत हुए

पालिय मच्चलहुं दंमणमोहक्खवणाए वावदस्स पयदजहण्णकालो परूवेयव्वो । उक्खस्सेण सादियेववेछावट्टिमागरोवमकालपरूवणा एवं कायव्वा । तं जहा—एकौ मिच्छाइट्ठी सम्मत्तं घेत्तुण सच्चमहंतं मुवसमसम्मत्तद्धमप्पदरसंकममणुपालिय वेदयसम्मत्तेण पढम-छावट्टिमणुपालिय अंतोमुहुत्तावसेसे तम्मि अप्पयरसंकमाविरोहेण मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं वा पडिवण्णो तदो अंतोमुहुत्तेण वेदयसम्मत्तं पडिवज्जिय विदियछावट्टिमप्पयरसंकमेणाणु-पालिय तदवसाणे अंतोमुहुत्तावसेसे मिच्छत्तं गदो पल्लिदोवमासंखेज्जभागमेत्तकालमुच्चेल्लणा-वावारेणच्छिय सम्मत्तचरिमुच्चेल्लणफालीए तदप्पयरसंकमं समाणिय पुणो वि तप्पाओग्गेण कालेण सम्मामिच्छत्तचरिमफालिमुच्चेल्लिय तदप्पयरकालं समाणेदि । एवं पल्लिदोवमासंखेज्जभागव्महियवेछावट्टिसागरोवमाणि दोण्हमेदेसिं कम्माणमुक्खस्स-पयदट्टिदिसंकमकालो होइ ।

❀ सेसाणं कम्माणं भुजगारसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ?

! ७५०. सुगमं ।

❀ जहएणेणेयसमओ, उक्खस्सेण एगूणवीससमया ।

§ ७६०. एत्थ ताव मिच्छत्तस्सेव भुजगारकालो जहण्णेणेयममयमेत्तो वत्तव्वो । उक्खस्सेणेगूणवीसमयाणमुप्पत्तिं वत्तइस्सामो—अणंताणु०कोहस्स ताव एक्को एइंदिओ

जीवके प्रकृत जघन्य काल कहना चाहिए । उत्कृष्टरूपसे साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण कालकी प्ररूपणा इस प्रकार करनी चाहिए । यथा—कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वका ग्रहण कर मवसे अधिक उपशमसम्यक्त्वके काल तक अल्पतरसंकमका पालन कर तथा वेदकसम्यक्त्वके साथ प्रथम छयासठ सागर कालका पालन कर उसमें अन्तर्मुहूर्तकाल शेष रहने पर अल्पतरसंकमके अविरोध पूर्वक मिथ्यात्व या सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । फिर अन्तर्मुहूर्तमें वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर द्वितीय छयासठ सागर काल तक अल्पतरसंकमके साथ रहा । फिर उसके अन्तर्में अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । फिर पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक उद्वेलनाके व्यापारके साथ रह कर सम्यक्त्वकी अन्तिम उद्वेलनाफालिके द्वारा उसके अल्पतर संक्रमको समाप्त कर तथा फिर भी तत्प्रायोग्य कालके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिकी उद्वेलना कर उसके अल्पतरकालको समाप्त करता है । इस प्रकार इन दोनों कर्मोंके अल्पतर स्थितिसे संक्रमका उत्कृष्ट काल पत्यका असंख्यतवां भाग अधिक दो छयासठ सागरप्रमाण होता है ।

शेष कर्मोंके भुजगारसंक्रामकका कितना काल है ?

§ ७५६. यह सूत्र सुगम है ।

❀ जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल उन्नीस समय है ।

§ ७६०. यहाँ पर मिथ्यात्वके समान भुजगारसंकमका जघन्य काल एक समय कहना चाहिए । उत्कृष्ट काल उन्नीस समयोंकी उत्पत्तिकी बतलाते हैं । उसमें सर्व प्रथम अनन्तानुबन्धी क्रोधका बतलाते हैं—भाई एक एकेन्द्रिय जीव अपने जीवनकालकी अन्तिम आवलिके उपर

१. ता० प्रती सम्भ (व्व) महंतं— आ० प्रती सच्चमहंतं— इति पाठः ।

सगजीविदद्वाचरिमावलियाए उवरि सत्तारस समया अहिया अत्थि त्ति अद्दाक्खएण माणादीणं परिवाडीए पण्णाससु समएसु भुजगारेण बंधवुद्धि काऊण जहाकममेव बंधावलियादीदं कोहे पडिच्छिय पुणो चरिम-दुचरिमसमएसु विवक्खियकोहस्स अद्दा-संकिलेसक्खएहि भुजगारबंधमणुपालिय तदो भवक्खएण सण्णिपंचिंदिएसु विग्गहं काऊणोयसमयमण्णिणसमाणट्टिदिं बंधिऊण सगेरं गहिऊण सण्णिट्टिदिबंधेण परिणदो । तदो आवलियादीदं जहाकमं संकामेमाणस्स एगूणवीसभुजगारसमया लद्दा होंति । एवं सेसकमाय-णोकसायाणं । णवरि णोकसायाणं भण्णमाणे पुव्वुत्तसत्तारमसमयाहियचरिमा-वलियाए आदीदो पहुडि सोलमसमएसु कमायाणमद्दाक्खएण परिवाडीए ट्टिदिबंधमण्णो-ण्णादिरिं वड्ढाविय पुणो सत्तारममए संकिलेमक्खएण सव्वेमिमेव समगं भुजगारबंधं कादूण तेणेव कमेण बंधावलियादीदं णोकसाएसु पडिच्छिय तदो कालं कादूण पुव्वं व अमण्णि-मण्णिणट्टिदिं बंधिय बंधमंकमणावलियवदिकमे ताए चेव परिवाडीए संकामेमाणस्स तेसिं पयदुक्कस्सकालसमुप्पत्ती वत्तव्वा ।

❀ सेसपदाणि मिच्छुत्तभंगो ।

§ ७६१. अप्पयग्गं कामयम्म जहण्णेण्यममओ, उक्क० तेवट्टिमागगेवमसदं सादिरें । अवट्टिदपदस्स वि जहण्णकालो एगममयमेत्तो, उक्कस्सो अंतोमुहुत्तपमाणो त्ति एवमेदेण भेदाभावादो ।

सत्रह समय अधिक रहने पर अद्वाक्षयसे मानादिककी परिपाटीक्रमसे पन्द्रह समय तक भुजगार-रूपसे बन्धवुद्धि करके यथाक्रमसे ही बन्धावलिके बाद क्रोधमें संक्रमित करके पुनः अन्तिम समयमें और उपान्त्य समयमें विवक्षित क्रोधका अद्वाक्षय और संक्लेशक्षयसे भुजगारबन्धका पालन कर अनन्तर भवक्षयसे संज्ञी पञ्चेन्द्रियोंमें विग्रह करके एक समय तक असंज्ञीके समान स्थितिका बन्ध करके तथा शरीरका ग्रहण कर संज्ञीके योग्य स्थितिबन्धरूपसे परिणत हुआ । फिर एक आवलिके बाद क्रमसे संक्रम करनेवाले जीवके भुजगारसंक्रमके उन्नीस समय प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार शेष कपार्यों और नोकपार्योंके भुजगारसंक्रमके उन्नीस समय होते हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि नोकपार्योंका उक्त काल कहने पर पूर्वोक्त सत्रह समय अधिक अन्तिम आवलिके प्रारम्भसे लेकर सोलह समयोंमें कपार्योंके अद्वाक्षयसे क्रमसे स्थितिबन्धको परस्पर अधिक अधिक बढ़ाकर पुनः सत्रहवें समयमें संक्लेशक्षयसे समीका समान भुजगारबन्ध करके उन्नी क्रमसे बन्धावलिके बाद नोकपार्योंमें संक्रमित करके अनन्तर मरकर पहिलेके समान असंज्ञी और संज्ञीके योग्य स्थितिको बाँधकर बन्धावलि और संक्रमावलिके व्यतीत होने पर उन्नी क्रमसे संक्रम करनेवाले जीवके नौ नोकपार्योंकी प्रकृत उत्कृष्ट कालकी उत्पत्ति कहनी चाहिए ।

❀ शेष पदोंका भंग मिथ्यात्वके समान है ।

§ ७६१. क्योंकि अल्पतरसंक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक एक सौ त्रेसठ सागर है । अवस्थितपदका भी जघन्य काल एक समयमात्र है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्तप्रमाण है, इसप्रकार इस कालसे प्रकृतमें कोई भेद नहीं है ।

❀ णवरि अवत्तव्वसंक्रामया जहणुक्कस्सेण एयसमओ ।

§ ७६२. मिच्छत्तस्म अवत्तव्वसंक्रा० णत्थि त्ति उत्तं । एदेसिं पुण विसंजोयणादो सव्वोवसामणादो च परिवदंतं पडुच्च अत्थि अवत्तव्वसंक्रामो । सो च जहणुक्कस्सेणेय-समयमेत्तकालभाविओ त्ति एत्तिओ चैव विसेसो, णाण्णो त्ति वुत्तं होइ । एवमेयजीवेण कालो ओघेण परूविदो ।

§ ७६३. एत्तो आदेमपरूवणट्ठं मुत्तसूचिदमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-वाग्मक०-णवणोक० भुज०संक्रा० केवचिं० ? जह० एयसमओ, उक्क० मिच्छत्तस्म तिण्णिण समया, सेसाणमट्ठारस समयया । णवरि इत्थि-पुरिस०-हस्म-रईणं भुज० जह० एयसमओ, उक्क० सत्तारम समयया । अप्पदर० जह० एयसमओ, उक्क० तेत्तीमं मागरो देसूणाणि । अवट्ठिद० ओघभंगो । एवमणंताणु०४ । णवरि अवत्त० जहणु० एयसमओ । मम्मत्त-मम्मामि० भुज०-अवट्ठि०-अवत्त० ओघं । अप्पदर० मिच्छत्तभंगो । एवं पढमाए । णवरि मव्वेमिमप्पइर० मगट्ठिदी देसूणा । विदियादि जाव मत्तमि त्ति एवं चैव । णवरि मिच्छ० भुज० उक्क० वेममया, कमाय-णोक० सत्तारम समयया ।

* किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यसंक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ ७६२. मिथ्यात्वके अवक्तव्य संक्रामक जीव नहीं है यह कह आये हैं। किन्तु इन कर्मोंका विसंयोजनासे और सर्वोपशामनासे गिरते हुए जीवकी अपेक्षा अवक्तव्यसंक्रामक है और वह जघन्य तथा उत्कृष्टरूपसे एक समयभावी है। इसप्रकार इतना ही विशेष है, अन्य विशेष नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस प्रकार ओघसे एक जीवकी अपेक्षा कालका कथन किया ।

§ ७६३. आगे आदेशका कथन करनेके लिए सूत्रमे सूचित हुए उच्चारणको बतलाते हैं। यथा—आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कनाय और नौ नोकपायोंके भुजगारसंक्रामकका कितना काल है? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल मिथ्यात्वका तीन समय है तथा शेषका अठारह समय है। किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिके भुजगारसंक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सत्रह समय है। अल्पतर-संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। अवस्थित संक्रामकका भंग ओघके समान है। इसीप्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यसंक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्यसंक्रामकका भंग ओघके समान है। अल्पतर-संक्रामकका भंग मिथ्यात्वके समान है। इसीप्रकार पहिली पृथिवीमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि सब प्रकृतियोंके अल्पतरसंक्रामकका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। दूसरी पृथिवीसे लेकर मातर्वी पृथिवीतक इसीप्रकार भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके भुजगारसंक्रामकका उत्कृष्ट काल दो समय है। तथा कपायों और नोकपायोंका सत्रह समय है।

७६४. तिग्खिख-पंचिं०तिग्खितिय० ३ मिच्छ०वारसक०-णवणोक० भुज० जह० एयसमओ, उक्क० चत्ताग्गि ममया एग्गुणवीमसमया । अप्प०-अवट्ठि० विहत्तिभंगो । एवमणंताणु०४ । गवग्गि अवत्त० जहण्णु० एयसमओ । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । णवग्गि पंचिं०तिग्गि०पज्ज० इत्थिवेद० भुज० जह० एयसमओ, उक्क० सत्तारस समया । जोणिणीसु पुग्गि-णवुंमयवेद० भुज० जह० एग्गसमओ, उक्क० सत्तारस समया । पंचिं०-तिग्गि०अपज्ज०-मण्णुमअपज्ज० मिच्छ०-मोल्लमक०-णवणोक० भुज० जह० एग्गसमओ, उक्क० चत्ताग्गि ममया एग्गुणवीमं ममया । अप्पट्ठर०-अवट्ठि० जह० एयस०, उक्क० अंतो० । सम्म०-सम्मामि० अप्प० जह० एयस०, उक्क० अंतो० । णवग्गि इत्थिवे०-पुग्गिसवे० भुज०

विशेषार्थ—जा असंजी जीव दा विग्रहस नरकमे उत्पन्न होता है उसके दूसरे समयमें अद्वाश्रयसे एक भुजगार समय सम्भव है तीसरे समयमें संज्ञी होनेसे भुजगार समय प्राप्त होता है और चौथे समयमें संकलेशक्षयसे भुजगारसमय सम्भव है । इस प्रकार नरकमें लगातार तीन समय तक भुजगारबन्ध होनेसे एक आवलिके बाद लगातार वहाँ पर तीन समय तक भुजगार संक्रम भी सम्भव है, इसलिए सामान्यमें नरकमें मिथ्यात्वके भुजगारसंक्रमका उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है । यतः असंजी जीव प्रथम नरकमें ही उत्पन्न होता है, अतः वहाँ भी यह काल इसीप्रकार घटित कर लेना चाहिए । मात्र द्वितीयादि प्रयत्नियोंमें असंजी जीव मरकर नहीं उत्पन्न होता अतः वहाँ यह काल अद्वाश्रय और संकलेशक्षयसे दो समय ही जानना चाहिए । स्थितिविभक्तिके भुजगार अनुयोगद्वारमें नरकमें बारह कपायों और नौ नोकपायोंके भुजगारका उत्कृष्ट काल सत्रह समय ही बतलाया है । यहाँ अठारह समयका निषेध किया है । किन्तु यहाँ पर भुजगारसंक्रमका उत्कृष्ट काल अठारह समय कहा है सो इसे प्राप्त करते समय नरकमें शरीर ग्रहणके पूर्वतक सालह भुजगार समय प्राप्त करनेमें, सत्रहवें समयमें संज्ञीके योग्य स्थितिबन्ध करानेसे और अठारहवें समयमें संकलेशक्षयमें भुजगारबन्ध करानेसे प्राप्त करना चाहिए । यहाँ ये १२ समय जो भुजगारके प्राप्त हुए, उनका उसी क्रमसे एक आवलिके बाद संक्रम करानेसे उक्त बारह कपायोंमेंसे प्रत्येक कपायके तथा पाँच नोकपायोंके भुजगार संक्रमका उत्कृष्ट काल अठारह समय आ जाता है । मात्र खीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिके इस कालमें कुल विशेषता है सो उसे जानकर घटित कर लेना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

७६५. तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमे मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंके भुजगारसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल मिथ्यात्वका चार समय तथा शेषका उन्नीस समय है । अल्पतर और अवस्थितपदका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । इसीप्रकार अतन्तानुबन्धीचतुष्कके उक्त पदोंका काल जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंमें खीवेदके भुजगारसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सत्रह समय है । तिर्यञ्च योनिनियोंमें पुरुषवेद और तपुसवेदके भुजगारसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सत्रह समय है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सालह कपायों और नौ नोकपायोंके भुजगारसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल मिथ्यात्वका चार समय तथा शेषका उन्नीस समय है । अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । किन्तु इतनी विशेषता है कि खीवेद

जह० एयस०, उक्क० सत्तारस समयया । मणुस०३ पंचिंदियतिरिक्खतियभंगो । णवरि पयडीणमवत्त० अत्थि तासिमेयसमओ ।

§ ७६५. देवेसु मिच्छ०-चारसक-णवणोकमाय० भुज० जह० एयसमओ, उक्क० तिण्णिण समयया अट्टारस समयया । अप्प३०-अवट्ठि० विहत्तिभंगो । णवरि णवुंसयवेद० भुज० जह० एयसमओ, उक्क० सत्तारस समयया । अणंताणु०४ अपच्चक्खाणभंगो । णवरि अवत्त० जहण्णु० एयसमओ । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । एवं भवण०-वाणवेंतर० । णवरि मगट्ठिदी । जोदिमियादि जाव महस्सार त्ति विदियपुठविभंगो । णवरि मगट्ठिदी । आणदादि सच्चट्टा त्ति विहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

❀ एत्तो अंतरं ।

§ ७६६. एत्तो उवरि अंतरं वत्तइम्मामो त्ति पइज्जामुत्तमेदं । तस्स दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थोघपरूवणडुमुत्तरसुत्तणिहेसो ।

और पुरुषवेदके भुजगारसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सत्रह समय है । मनुष्यविक्रमे पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें जिन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद है उनका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

विशेषार्थ—ऐसा नियम है कि मिथ्यादृष्टि जीव मरकर जिन वेदवालोंमें उत्पन्न होता है उसके उसी वेदका बन्ध होता है । इसलिए यहाँ पर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोमें स्त्रीवेदके भुजगारके सत्रह समय तथा तिर्यञ्च योनिनियोगमें पुरुषवेद और नपुंसकवेदके भुजगारके सत्रह समय कहे हैं । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोगमें भी इसीप्रकार जान लेना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

§ ७६५. देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नाकपायोंके भुजगारसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल मिथ्यात्वका तीन समय तथा शेषका अठारह समय है । अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदके भुजगारपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सत्रह समय है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग अप्रत्याख्यानावरणके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिए । ज्योतिषियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिए । आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए ।

❀ आगे अन्तरकालका अधिकार है ।

§ ७६६. इससे आगे अन्तरका बतलाते हैं इस प्रकार यह प्रतिज्ञासूत्र है । उसका निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रका निर्देश करते हैं—

❀ मिच्छत्तस्स भुजगार-अवट्टिदसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहणणेण एयसमओ । उक्कस्सेण तेवट्टिसागरोवमसदं सादिरेयं ।

§ ७६७. एत्थ जहणंतरं भुजगागवट्टिदसंकमेहितो एयसमयमप्पयरे पडिय विदियसमए पुणो वि अप्पिदपदं गयस्स वत्तव्वं । उक्कस्मंतरं पि अप्पयरुक्कस्सकालो वत्तव्वो । णवरि भुजगारंतरे विवक्खिए अवट्टिदकालेण सह वत्तव्वं । अवट्टिदंतरं च भुजगारकालेण सह वत्तव्वं ।

❀ अप्पयरसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहणणेणयसमओ, उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं ।

§ ७६८. अप्पदगदो भुजगागवट्टिदाणमण्णदरन्थ एयममयमंतरिय पडिणियत्तस्स जहणमंतरं, तदुभयकालकलावे अतोमुहुत्तमेत्तावट्टिदकालपहाणे उक्कस्मंतरमिह गहेयव्वं ।

❀ एवं सेसाणं कम्माणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाणं ।

§ ७६९. जहा मिच्छत्तस्स भुजगागदिपदाणमंतरपरूवणं कयं तथा सेमाणं पि कम्माणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाणं कायव्वं, विसेमाभावादो । एत्थतणविसेसपदुप्पायणट्ट-मुत्तरसुत्तमाह—

* मिथ्यात्वके भुजगार और अवस्थितसंक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य एक समय है और उत्कृष्ट माधिका एक मां त्रेमठ सागर है ।

§ ७६७. यहाँपर भुजगार और अवस्थितसंक्रमसे एक समयके लिए अल्पसंक्रममें जाकर दूसरे समयमें पुनः विवक्षितपदको प्राप्त हुए जीवके जघन्य अन्तर रहना चाहिए । उत्कृष्ट अन्तर भी अल्पतरके उत्कृष्ट कालप्रमाण कहना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि भुजगारपदका अन्तर विवक्षित होने पर अवस्थितके कालको अल्पतरके कालमें मिलाकर कहना चाहिए । तथा अवस्थितकालका अन्तर भुजगारकालको अल्पतरके कालमें मिलाकर कहना चाहिए ।

* अल्पतरसंक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ७६८. अल्पतरसे भुजगार और अवस्थित इनमेंसे किसी एकमें ले जाकर एक समयके लिए अन्तरित कर पुनः लौटे हुए जीवके जघन्य अन्तर होता है । तथा अन्तर्मुहूर्तमात्र अवस्थितकालप्रधान उन दोनोंके कालकलापप्रमाण यहाँ उत्कृष्ट अन्तर ग्रहण करना चाहिए ।

* इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके गिवा शेष कर्मोंका अन्तरकाल जानना चाहिए ।

§ ७६९. जिसप्रकार मिथ्यात्वके भुजगार आदि पदोंके अन्तरकालका कथन किया उसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका छोड़कर शेष कर्मोंके भी अन्तरकालका कथन करना चाहिए, क्योंकि मिथ्यात्वके कथनसे इनके कथनमें कोई विशेषता नहीं है । अब यहाँपर विशेषताका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ एवचि अणंताणुबंधीणमप्पयरसंकामयंतरं जहणणेणेयसमओ उक्कस्सेण वेळावट्टिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ७७०. मिच्छत्तस्म अप्पयरसंकामयंतरं उक्कस्सेणंतोमुहुत्तमेव, इह वुण सादिरेय-वेळावट्टिसागरोवमेत्तमुवल्लब्धिं त्ति एमो विसेसो । सव्वेसिमवत्तव्वपदगओ अण्णो वि विसेसो संभवइ त्ति पदुप्पायणट्टिमिदमाह ।

❀ सव्वेसिमवत्तव्वसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहणणे णंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्दपोग्गलपरिघट्टं देसूणं ।

§ ७७१. अणंताणुबंधीणं विसंजोपणापुव्वमंजोणे सेमकमाय-णोकमायाणं च मव्वोवसामणापडिवादे अवत्तव्वमंकमस्मादिं करिय अंतरिदस्म पुणो जहण्णुक्कस्सेणंतो-मुहुत्तद्दपोग्गलपरिघट्टमेत्तमंतरिय पडिडवण्णतव्भावस्मि तद्दुभयमंभवदंमणादो । एवमेदेसि-मंतरगयं विसेसं जाणाविय मंपहि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तभुजगारादिपदानमंतरपमाण-परिच्छेदकरणट्टमिदं सुत्तमाह—

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अवट्टिदसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहणणेणंतोमुहुत्तं ।

§ ७७२. पुव्वुप्पणमम्मत्तादो पारिवीय मिच्छत्तट्टिदिमंतवुट्ठीण सह पुणो वि सम्मत्त पडिडवज्जिय ममयाविगेहेण भुजगारमवट्टिदं च एयममयं कादृणप्पदरेणंतरिय

* किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्के अल्पतरसंकामकका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर माथिक दो छयामठ मागर है ।

§ ७७०. मिथ्यात्वके अलातरसंकामकका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त ही है । किन्तु यहाँ पर साधिक दो छयामठ सागरप्रमाण उपलब्ध होता है इसप्रकार इतना विशेषता है । इसी प्रकार सब प्रकृतियोंकी अवक्तव्यपदगत अन्य विशेषता भा सम्भर है, इसलिए उसे कहनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

* सब प्रकृतियोंके अवक्तव्यसंकामकका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।

§ ७७१. अनन्तानुबन्धियोंके विमञ्जोजनापूरक संयोगके समय तथा शेष कपायों और नोकपायोंके सर्वोपशामनासे गिरते साथ अवक्तव्यसंकामकका आदि करा कर तथा दूसरे समयमें अन्तरको प्राप्त हुए जीवके पुनः जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालका अन्तर देकर अवक्तव्यपदके प्राप्त होनेपर उक्त दोनों अन्तरकाल सम्भव दिखलाई देते हैं । इसप्रकार इन कर्मोंकी अन्तरगत विशेषताको जताकर अब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार आदि पदोंके अन्तरके प्रमाणका ज्ञान करानेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार और अवस्थितसंकामकका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ७७२. पूर्वमें उत्पन्न हुए सम्यक्त्वसे गिरकर मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मकी वृद्धिके समय फिर भी सम्यक्त्वको प्राप्त होकर यथाविधि भुजगार और अवस्थितपदको एक समय करके

सव्वलहुं मिच्छत्तं गंतूण तेणेव क्रमेण पडिणियत्तिय भुजगारावट्टिदसंक्रामयपजाएग परिणदम्मि तदुवलंभादो । एदेमिमुक्कस्संतरं उवरि भणामि त्ति थप्पं काऊणप्पयरजहण्णंतरं ताव परूवेदुकामो सुत्तमुत्तरमाह—

❀ अप्पयरसंक्रामयंतरं जहण्णेषेयसमयो ।

§ ७७३. भुजगागवट्टिदाणमण्णदरेणंतरिदस्स तदुवलद्वीदो । एदस्स वि उक्कस्सं-
तमेरवं चेव ठविय अवत्तव्वसंक्रामयजहण्णंतरपरूवट्टिमिदमाह—

❀ अवत्तव्वसंक्रामयंतरं जहण्णेषेण फलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

§ ७७४. पट्ठममम्मत्तुप्पत्तिविदियसमए अवत्तव्वसंक्रमस्मादिं कादणंतरिदस्स सव्वलहुं मिच्छत्तं गंतूण जहण्णुव्वेत्तल्लणकालव्वमंतरे तदुभयमुव्वेत्तिलय चरिमफालिपद-
णाणंतरममए मम्मचं पडिवण्णस्स विदियगमयस्सि तदंतरपग्गिमत्तिदंमणादो । एवं जहण्णंतराणि परूविय मव्वेमिमुक्कस्संतरंमणाणि परूवेमाणो सुत्तमुत्तरमाह—

❀ उक्कस्सेण सव्वेसिमद्वूपोग्गलपरियट्टं देसूपां ।

§ ७७५. अद्वूपोग्गलपरियट्टिदिसमए पट्ठममम्मत्तमुप्पाइय विदियममए अवत्तव्वस्स संक्रमस्मादिं करिय तदणंतरममए तदणंतरमुप्पादिय अंतोमुहुत्तेण भुजगारावट्टिदाणं पि ममयाविरोहेणंतरस्मादिं काऊण मव्वलद्वुअकालपडिवद्वुव्वेत्तल्लणावावारेण चरिम-

फिर अल्पतरपदसे अन्नरित करके अतिशीघ्र मिथ्यात्वमें जाकर उन्नी क्रममें निवृत्त होकर भुजगार और अवस्थितसंक्रमपर्यायमें परिगत होनेपर उक्त अन्तरकाल उपलब्ध होता है । इनका उत्कृष्ट अन्तर आगे कहेगे इसलिए स्थगित करके सर्वप्रथम अल्पतरपदके जघन्य अन्तरको कहनेकी इच्छामें आगेका सूत्र करते हैं—

* अल्पतरसंक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

§ ७७३ भुजगार और अवस्थित इनसेसे किसी एकके द्वारा अन्तरको प्राप्त हुए उसका उक्त अन्तरकाल प्राप्त होता है । इसके भी उत्कृष्ट अन्तरकालको उन्नीप्रकार स्थगित करके अवक्तव्य-संक्रामकके जघन्य अन्तरका कथन करनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

* अवक्तव्यसंक्रामकका जघन्य अन्तर पल्यके अमंगल्यातर्वे भागप्रमाण है ।

§ ७७४. प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके दूसरे समयमें अवक्तव्यसंक्रमका प्रारम्भ करनेके बाद अन्तरको प्राप्त हुए जीवके अतिशीघ्र मिथ्यात्वमें जाकर जघन्य उद्वेलनाकालके भीतर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना करके अन्तिम फालिके पतनके अनन्तर समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके द्वितीय समयमें उसके अन्तरकी भ्रमाप्ति देवी जाती है । इसप्रकार जघन्य अन्तरको कथन करके इस समय सब पदोंके उत्कृष्ट अन्तरका कथन करते हुए आगेके सूत्रको करते हैं—

* सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है ।

§ ७७५. अर्धपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करके दूसरे समयमें अवक्तव्यसंक्रमका प्रारम्भ करके तथा उसके अगले समयमें उसका अन्तर उत्पन्न करके, अन्तर्मुहूर्त वाद भुजगार और अवस्थितपदोंके अन्तरका भी यथाविधि प्रारम्भ करके अतिलघुकालसे प्रतिबद्ध उद्वेलनाके व्यापार द्वारा अन्तिम फालिके पतनके बाद अल्पतरसंक्रमका भी अन्तर कराकर

फालिपादणाणंतरमप्ययरसंकममंतराविय देसूणमद्धपोगगलपरियडुं परिभमिय थोवावसेसए मिज्झिदव्वए मम्मत्तं पडिवण्णस्स तदंतरसमाणाणुवलंभादो । णवरि पुणो सम्मत्तं पडिवत्तिविदियसमए अवत्तव्वमंका मयंतरं परिममाणेयव्वं । तदणंतरसमए च अप्पयर-संकमंतरववच्छेओ कायव्वो, अंतोमुहुत्तपडिवादपडिवत्तीहि भुजगारावट्टिदाणमंतरपरिसमत्ती कायव्वा । एवमोघेणंतरपरूवणा गया ।

§ ७७६. संपहि एदेण देमामामयसुत्तेण सूचिदमादेमपरूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा—आदेसेण मव्वणेग्इय-मव्वतिग्ख-मव्वमणुस्म-मव्वदेवा त्ति ट्टिदिविहत्तिभंगो । णवरि मणुमतिय० ३ वारणक०-णवणोक० अवत्त० जह० अंतोमु० । उक्क० पुव्वकोडि-पुधत्तं । एवं जाव० ।

❀ णाणाजीवेहि भंगविचओ ।

§ ७७७. सुगममेदं सुत्तं, अहियारमंभालणमेत्तफलत्तादो ।

❀ मिच्छत्तस्स सव्वजीवा भुजगारसंकामगा च अप्पयरसंकामया च अवट्टिदसंकामया च ।

§ ७७८. मिच्छत्तस्म भुजगारादिसंकामया णाणाजीवा णियमा अत्थि त्ति एत्थाहियारमबंधो कायव्वो । कुदो एदेमिं णियमा अत्थित्तं ? ण, मिच्छत्तभुजगारादि-

कुछ कम अधपुद्गल परिवर्तन काल तक परिभ्रमण करके सिद्ध होनेके लिए थोड़ा काल शेष रहने पर सम्यक्त्वको प्राप्त हुए जीवके उनके अन्तरोकी समाप्ति उल्लेख होती है। किन्तु इतनी विशेषता है कि पुनः सम्यक्त्वका प्राप्त होनेके दूसरे समयमें अवक्तव्यसंक्रमका अन्तर समाप्त करना चाहिए। और तदनन्तर समयमें अल्पतरसंक्रमके अन्तरका विच्छेद करना चाहिए तथा अन्तर्मुहूर्तके भीतर सम्यक्त्वसे च्युत होकर पुनः प्राप्त करनेरूप क्रियाके द्वारा भुजगार और अवस्थितपदके अन्तरकी समाप्ति करनी चाहिए। इस प्रकार औघसे अन्तरकालकी प्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ७७६. अब इस देशामर्षक सूत्रसे सूचित हुए आदेशका कथन करते हैं। यथा—आदेशसे सब नारकी, सब निर्यञ्च, सब मनुष्य और सब देवोंमें स्थितिभिक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकमे बारह कपाय और नौ नो०पायोंके अवक्तव्यसंक्रामकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

* अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयकका अधिकार है।

§ ७७७. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि इसका प्रयोजन अधिकारकी सम्हालमात्र करना है।

* मिथ्यात्वके सब (नाना) जीव भुजगारसंक्रामक हैं, अल्पतरसंक्रामक हैं और अवस्थितसंक्रामक हैं।

§ ७७८. मिथ्यात्वके भुजगार आदि पदोंके संक्रामक नाना जीव नियमसे हैं इसप्रकार यहाँ पर अधिकारका सम्बन्ध करना चाहिए।

शंका—इनका नियमसे अस्तित्व क्यों है ?

संक्रामयाणमणंतजीवाणं सव्वद्धमविच्छिण्णपवाहरूवेणावट्टाणदंसणादो ।

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छुत्ताणां सत्तावीस भंगा ।

§ ७७९. कुदो, भुजगागवट्टिदात्रत्त्वमंक्रामयाणं भयणिज्जत्तेणाप्पयगमंक्रामयाणं धुवत्तदंसणादो । तदो भयणिज्जपदाणि विरलिय त्तिगुणिय अण्णोण्णत्तासे कए धुवमहिया सत्तावीस भंगा उप्पज्जंति ।

❀ सेसाणं मिच्छुत्तभंगो ।

§ ७८०. सोलमकमाय-णवणोकमायाणमिह सेमत्तेण गहणं, तेमिं च पयद-परूवणाए मिच्छत्तभंगो कायव्वो, भुजगागटिपदमंक्रामयाणं णियमा अत्थित्तेण तत्तो विसेमाभावादो । अवत्तव्वपयगदो दु थोवयगो विसेमो एत्थत्थि त्ति तण्णिण्णद्वारणद्वमुत्तर-मुत्तमाह—

❀ एववि अवत्तव्वसंक्रामया भजियव्वा ।

§ ७८१. मिच्छत्तम्मावत्तव्वमंक्रामया णत्थि । एदेमिं पुण अवत्तव्वमंक्रामया अत्थि ते च भजियव्वा त्ति उत्तं होइ । संपाह एदस्सेव भंगविचयस्म मुत्तणिहिद्वुस्स फुडीकरणद्वमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण सम्म० सम्मामि०—मिच्छ० विहत्तिभंगो । सोलमक०-णवणोक० भुज०-अप्पद०-अवहि० णियमा अत्थि । मिया एदे च अवत्तव्व-

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वके भुजगारादिपदोंके संक्रामक अनन्त जीवोंका सर्वदा प्रवाहका विच्छेद हुए बिना अवस्थान देखा जाता है ।

❀ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्ताईस भंग होते हैं ।

§ ७८६. क्योंकि भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्यसंक्रामकोंके भजनीयपनेके साथ अल्पतरसंक्रामक ध्रुवरूप देखे जाते हैं, इसलिए भजनीय पदोंका विरलन कर तथा उन्हें तिगुणाकर परस्पर गुणा करने पर प्रथम भंगके साथ सत्ताईस भंग उत्पन्न होते हैं ।

उदाहरण— $3 \times 3 \times 3 = 27$ भंग । इन सत्ताईस भंगोंमें ध्रुव भंग सम्मिलित है ।

❀ शेष प्रकृतियोंका भंग मिथ्यात्वके समान है ।

§ ७८०. सोलह कषायों और नौ नोकपायोंका यहाँ पर शेष पदद्वारा ग्रहण किया है । उनका प्रकृत प्ररूपणामें मिथ्यात्वके समान भंग करना चाहिए. क्योंकि इनके भुजगार आदि पदोंका नियमसे अस्तित्व है, अतः उनके कथनसे इनके कथनमें कोई विशेषता नहीं है । मात्र अवक्तव्य-पदगत यहाँपर थोड़ीसी विशेषता है, इसलिए उसका निर्धारण करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ किन्तु उनके अवक्तव्यसंक्रामक जीव भजनीय हैं ।

७८१ मिथ्यात्वके अवक्तव्यसंक्रामक जीव नहीं हैं । परन्तु इनके अवक्तव्यसंक्रामक जीव हैं और वे भजनीय हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अव सूत्रनिर्दिष्ट इसी भंगविचयका स्पष्टीकरण करनेके लिए उच्चारणोंका बतलाते हैं । यथा—नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचयाणुगममे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सोलह कषायों और नोकपायोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित-

मंकाभओ च । मिया एदे च अवत्तव्वमंकाभया च । आदेसेण मव्वणेग्इय०-सव्व-
तिग्गिख-मणुणअपज्ज०-सव्वदेवा विहत्तिभंगो । मणुसतिय०३ मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०
विहत्तिभंगो । मोलमक०-णवणोक० अप्पद०-अवट्ठि० णियमा अत्थि । सेसपदाणि
भयणिज्जाणि । भंगा णव ९ । एवं जाव अणाहारि त्ति ।

७८२. एत्थ सुगमत्तादो मुत्तेणापरूविदाणं भागाभाग-परिमाण-खेत्त-फोसणाणं
किं चि समामपरूवणट्टुमुच्चारणावलंवरणं कस्सामो । तं जहा—भागाभागाणु० दुविहो
णिदेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण विहत्तिभंगो । णवरि वारमक०-णवणोक० अवत्त०
अणंतिमभागो । आदेसेण मव्वणेग्इय-मव्वतिग्गिख-मणुसअपज्ज०-सव्वदेवा त्ति विहत्तिभंगो ।
मणुमा० विहत्तिभंगो । णवरि वारमक०-णवणोक० अवत्त० अमंखे०भागो । मणुसपज्ज०-
मणुमिणी० विहत्तिभंगो । णवरि वारमक०-णवणोक० अवत्त० मंखे०भागो । एवं जाव० ।

७८३. परिमाणाणु० दुविहो णिदेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण विहत्ति-
भंगो । णवरि वारमक०-णवणोक० अवत्त०मंका० केत्तिय ? मंखेज्जा । एवं मणुम०३ ।
सेममग्गणामु विहत्तिभंगो ।

७८४. खेत्तं पोमगं च विहत्तिभंगो । णवरि ओघे मणुमतिण च वारमक०-
संक्रामक जीव नियमसे हैं । कदाचिन् ये जीव हैं और अवक्तव्यसंक्रामक एक जीव है । कदाचिन्
ये जीव हैं और अवक्तव्यसंक्रामक नग्न जीव है । आदेशसे सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य
अपर्याप्त और सब देवोंमें स्थितिभिक्तिके समान भंग है । मनुष्यत्रिकमें मिथ्यात्व, मस्यक्त्व और
सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिभिक्तिके समान है । सोलह कपायों और नौ नोकपायोंके अल्पतर
और अस्थित पदके संक्रामक जीव नियमसे हैं । शेष पद भज्जीय हैं । भंग ६ हैं । इसीप्रकार
अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

७८२. यहाँ पर सुगम होनेमें मूत्र द्वारा नहीं कहे गये भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र और
स्पर्शनका कुछ मंक्षेपमे कथन करनेके लिए उच्चारणाका अवलम्बन करते हैं । यथा—भागाभागा-
नुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे स्थितिभिक्तिके समान
भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कपायों और नौ नोकपायोंके अवक्तव्यसंक्रामक जीव
अनन्तवे भागप्रमाण है । आदेशसे सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त और सब देवोंमें
स्थितिभिक्तिके समान भंग है । मनुष्योंमें स्थितिभिक्तिके समान भंग है । इतनी विशेषता है
कि बारह कपायों और नौ नोकपायोंके अवक्तव्यसंक्रामक जीव असंख्यातवे भागप्रमाण हैं ।
मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनिर्योमं स्थितिभिक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि
बारह कपायों और नौ नोकपायोंके अवक्तव्यसंक्रामक जीव संख्यातवे भागप्रमाण हैं । इसीप्रकार
अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

७८३. परिमाणाणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे
स्थितिभिक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कपायों और नौ नोकपायोंके
अवक्तव्यसंक्रामक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिए । शेष
मार्गणाओंमें स्थितिभिक्तिके समान भंग है ।

७८४. क्षेत्र और स्पर्शनका भङ्ग स्थितिभिक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है
कि ओघमें और मनुष्यत्रिकमें बारह कपायों और नौ नोकपायोंके अवक्तव्यसंक्रामकोंका क्षेत्र और

णवणोक० अवत्त० लोगस्स असंखे० भागे खेत्तं पोसणं च कायव्वं । एवमेदेसिमप-
वण्णणिज्जाणं थोवयगविसेगमंभवपदुप्पायणट्टमणुवादं काऊण संपहि णाणाजीवसंबधि-
कालपरूवणट्टमुवरिमं सुत्तपवंधमणुगरामो—

❀ णाणाजीवेहि कालो ।

§ ७८५. सुगममेदं सुत्तं, अहियारसंभालणमेत्तवावदत्तादो ।

❀ मिच्छुत्तस्स भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदस्सकामया केवचिरं कालादो
होति ? सच्चद्धा ।

§ ७८६. कुदो ? तिसु वि कालेसु एदेसिं विरहाणुवलंभादो ।

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छुत्ताणं भुजगार-अवट्ठिद-अवत्तव्वसंकामया
केवचिरं कालादो होति ?

§ ७८७. सुवोदमेदं पुच्छासुत्तं ।

❀ जहणणेणेषसमओ ।

§ ७८८. दोणहमेदेमिं कम्माणमेयसमयं भुजगारादिमंकामयत्तेण परिणदणाणा-
जावाणं विदियसमण सच्चवेमिमेव अप्पदरमंकामयपज्जायपरिणामे तदुवलद्धीदो ।

❀ उक्कस्सेण आवलियाए असंज्जदिभागो ।

§ ७८९. कुदो ? णाणाजीवाणुगंधाणेण तेभिमेत्तियमेत्तकालावट्ठाणावलंभादो ।

स्पर्शन लाकके अमंख्यातवें भागप्रमाण करना चाहिए । इस प्रकार अल्पवर्णनीय उन अनुयोगद्वारोंकी थोड़ीसी सम्भय विशेषताका कथन करनेके लिए उल्लेख करके अब नाना जीवसम्बन्धी कालका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रप्रवन्धका अनुसरण करते हैं—

* नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका अधिकार है ।

§ ७८५. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि अधिकारकी सन्हात करनेमात्रमे इसका व्यापार है ।

* मिथ्यात्वके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितमंकामकोंका कितना काल है ? सचेदा है ।

§ ७८६. क्योंकि तीनों ही कालोंमे इन पदोंका विरह नहीं उपलब्ध होता ।

* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार, अर्वास्थित और अवक्तव्यमंकामकोंका कितना काल है ?

§ ७८७. यह पृच्छासूत्र सुबोध है ।

* जन्य काल एक समय है ।

§ ७८८. उन दोनों कर्मोंके एक समय तक भुजगारादिमंकामरूपसे परिणत हुए नाना जीवोंके दूसरे समयमें सभीके अल्पतरमंकामरूप पर्यायसे परिणत होने पर उक्त काल उपलब्ध होता है ।

* उत्कृष्ट काल आवलिके अमंख्यातवें भाग प्रमाण है ।

§ ७८९. क्योंकि नाना जीवोंका सन्ततिका विच्छेद न होकर निरन्तररूपसे उन पदोंका इतने कालतक ही अवस्थान उपलब्ध होता है ।

❀ अप्पदरसंकामया सव्वद्धा ।

§ ७९.०. कुदो ? मिच्छाइट्टि-सम्माइट्टीणं पवाहस्स तदप्पयरसंकामयस्स तिसु वि कालेसु णिगंतरमवट्ठाणोवलंभादो ।

❀ सेसाणं कम्माणं भुजगार-अप्पयर-अवट्टिदसंकामया केवचिरं कालादो होंति ?

§ ७९.१. सुगमं ।

❀ सव्वद्धा ।

§ ७९.२. मव्वकालमविच्छिण्णमरूवेणेदेमिं मंताणस्स समवट्ठाणादो ।

❀ अवत्तव्वसंकामया केवचिरं कालादो होंति ।

§ ७९.३. सुगमं ।

❀ जहएणेण्यसमच्चो, उक्कस्सेण संखेज्जा समया ।

§ ७९.४. उवमामणादो पग्गिदिदाणमणुसंधिदमंताणाणमेत्थ जहण्णकालसंभवा, तेमिं चेव संखेज्जवारमणुसंधिदमंताणाणमवट्ठाणकालो उक्क० संखेज्जमयमेत्तो धेत्तव्वो । एदेण मुत्तेणाणंताणुबंधोणं पि अवत्तव्वसंकामयाणमुक्कस्सकाले संखेज्जसमयमेत्ते अइप्पसत्ते तत्थ विसेमगंभवमाह—

❀ एवचि अयांताणुबंधीणमवत्तव्वसंकामयाणां सम्मत्तभंगो ।

* अल्पतरमंक्रामकोंका काल सर्वदा है ।

§ ७९०. क्योंकि मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टियोंमें इन कर्मोंके अल्पतरमंक्रामकोंका प्रवाह तीनों ही कालोंमें निरन्तर पाया जाता है ।

* शेष कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितमंक्रामकोंका कितना काल है ?

§ ७९१. यह सूत्र सुगम है ।

* सर्वदा है ।

§ ७९२. क्योंकि सर्वदा अविच्छिन्नरूपमें इनकी सन्तान उपलब्ध होती है ।

* अवक्तव्यमंक्रामकोंका कितना काल है ?

§ ७९३. यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ।

§ ७९४. क्योंकि जिनकी सन्तान विच्छिन्न हो गई है ऐसे उपशमश्रेणिसे गिरे हुए जीवोंका यहाँ पर जघन्य काल सम्भव है । तथा संख्यात वार मिली हुई सन्तानवाले उन्हीं जीवोंका संख्यात समयमात्र उत्कृष्ट अवस्थानकाल यहाँ पर ग्रहण करना चाहिए । इस सूत्रसे अनन्तानुबन्धियोंके भी अवक्तव्यसंक्रामकोंका उत्कृष्ट काल संख्यात समयमात्र प्राप्त होने पर वहाँ पर जो विशेषता सम्भव है उसका निर्देश करते हैं—

* किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धियोंके अवक्तव्यमंक्रामकोंका भंग सम्यक्त्वके ममान है ।

§ ७९५. जहण्णेणेषसमओ, उक्कस्सेणावलियाए असंखे०भागो इच्चेदेण मेदाभावादो । एवमोधपरूवणा सुत्तणिबद्धा गया ।

• ७९६. एत्तो देमामामयभावेणेदेण सुत्तपबंधेण सूचिदादेसपरूवणाए विहित्तिभंगो । णवरि मणुसतिए चारमक०-णवणोक० अवत्त० जह० एयस०, उक्क० संखेज्जा समया ।

❀ णाणाजीवेहि अंतरं ।

§ ७९७. णाणाजीवसंबंधिकालणिदेसाणंतरं तदंतरमणुवण्णइस्सामो त्ति पइज्जाणिदेसमेदेण सुत्तेण काऊण तच्चिहासणदुमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ मिच्छुत्तस्स भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदसंकामयंतरं केवच्चिरं कालादो होदि ?

§ ७९८. सुगमं ।

❀ एत्थि अंतरं ।

• ७९९. सुगमं ।

❀ सम्मत-सम्मामिच्छुत्ताणं भुजगार-अवत्तव्वसंकामयंतरं केवच्चिरं कालादो होदि ?

§ ८००. सुगमं ।

❀ जहण्णेणेषसमओ ।

§ ७९५. क्योंकि जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आर्यालक असंख्यातवें भागप्रमाण हैं इससे यहाँ कोई भेद नहीं है । इस प्रकार सूत्रमें निबद्ध श्रावप्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ७९६. आगे देशामर्षकरूपसे इस सूत्रप्रबन्ध द्वारा सूचित आदेशकी प्ररूपणा करने पर स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकर्म वारह कपायों और नौ नौकपायोंके अवक्तव्यसंकामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ।

* अब नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका अधिकार है ।

§ ७९७. नाना जीवसम्बन्धी कालका निर्देश करनेके बाद उसके अन्तरको बतलाते हैं इस प्रकार इस सूत्र द्वारा प्रतिज्ञाका निर्देश करके उस अन्तरका व्याख्यान करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

* मिथ्यात्वके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ?

§ ७९८. यह सूत्र सुगम है ।

* अन्तरकाल नहीं है ।

§ ७९९. यह सूत्र सुगम है ।

* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार और अवक्तव्य संक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ?

§ ८००. यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

§ ८०१. सम्पत्त-सम्पामिच्छत्ताणं भुजगारमवत्तव्यं वा काऊण द्विदणाणाजीवाण-
मेयसमयमंतरिय तदणंतरममए पुणो वि केत्तियाणं पि तब्भावेण पादुब्भावाविरोहाभावादो ।

❀ उक्कस्सेण चउवीसमहोरत्ते सादिरेये ।

§ ८०२. कुदो ? एत्तिएणुक्कस्संतरेण विणा पयदभुजगारावत्तव्वसंक्रामयाणं
पुणरुब्भावाभावादो ।

❀ अप्पयरसंक्रामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एत्थि अंतरं ।

§ ८०३. अप्पयरसंक्रामयंतरं केवचिरं होइ त्ति आसंक्रिय णत्थि अंतरमिदि
तप्पडिसेहो कीरदे । कुदो वुण तदभावो ? तिसु वि कालेमु वोच्छेदेण विणा णिरंतरमेदेसिं
पवाहस्स पवुत्तिदंशणादो ।

❀ अवद्विदसंक्रामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहएणेणेयसमओ ।

§ ८०४. सम्पत्त-सम्पामिच्छत्तद्विदिमंतकम्मादो समयुत्तरमिच्छत्तद्विदिमंत-
कम्मियाणं केत्तियाणं पि जीवाणं वेदयमम्मत्तुप्पत्तिविदियममए विवक्खियसंक्रमपज्जाएण
परिणमिय तदणंतरममए अंतरिदाणं पुणो अण्णजीवेहि तदणंतरोवरिमममए अवद्विद-
पज्जायपरिणदेहि अंतरवोच्छेदे कदे तददलभादो ।

❀ उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जादिभागो ।

§ ८०१. क्योंकि सम्यक्त्व और मर्याग्मभ्यात्वके भुजगार या अवक्तव्यपदका करक स्थित
हुए नाना जीवोंके एक समयका अन्तर देकर तदनन्तर समयमें फिरसे कितने ही जीवोंके उन दोनों
पदों रूपसे परिणत होनेमें कोई विरोध नहीं आता ।

* उत्कृष्ट अन्तर काल साधिक चौबीस दिन-रात है ।

§ ८०२. क्योंकि इतना उत्कृष्ट अन्तर हुए बिना प्रकृत भुजगार और अवक्तव्यसंक्रामकोंकी
फिरसे उत्पत्ति नहीं होती ।

* अल्पतरसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? अन्तरकाल नहीं है ।

§ ८०३. अल्पतरसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है एसी आशंका करके अन्तरकाल नहीं
है इस प्रकार उसका निषेध किया ।

शंका—इनके अन्तरकालका अभाव क्यों है ?

समाधान—क्योंकि तीनों ही कालोंमें विच्छेदके बिना निरन्तर इनके प्रवाहकी प्रवृत्ति
देखी जाती है ।

* अवस्थितसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय है ।

§ ८०४. क्योंकि सम्यक्त्व और मर्याग्मभ्यात्वके स्थितिसत्कर्मसे एक समय अधिक
मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मवाले कितने ही जीवोंके वेदकसम्यक्त्वकी उत्पत्तिके दूसरे समयमें विवक्षित
संक्रमपर्यायसे परिणम कर तदनन्तर समयमें अन्तरको प्राप्त होने पर पुनः अन्य जीवोंके
तदनन्तर उपरिम समयमें अवस्थितसंक्रम पर्यायसे परिणत होकर अन्तरका विच्छेद करने पर उक्त
अन्तरकाल उपलब्ध होता है ।

* उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ ८०५. एत्तिणुक्कस्संतरेण विणा समयुत्तरमिच्छत्तट्टिदिसंतकम्मेण सम्मत्तपडि-
लंभस्स दल्लहत्तादो । कुदो एवं ? दसमयुत्तरदिमिच्छत्तट्टिदिवियप्पाणं संखेज्जसागरोवम-
कोडाकोडिपमाणं सम्मत्त-मम्मामिच्छत्तभुजगारसंकमहेऊणं बहुलं संभवेण तत्थेव
णाणाजीवाणं पाएण संचरणोवलंभादो । तदो तेहिं ट्टिदिवियप्पेहि भूयो भूयो सम्मत्तं
पडिवज्जमाणणाणाजीवाणमेसो उक्कस्संतगमंभवो दट्टुव्वो ।

✽ अणंताणुबंधीणमवत्तव्वसंक्रामयंतरं जहण्णेण्यसमञ्चो, उक्कस्सेण
चउवीसमहोरत्ते सादिरेये ।

§ ८०६. एदाणि दो वि अणंताणुबंधीणमवत्तव्वसंक्रामयजहण्णुक्कस्संतरपडिवद्वाणि
सुत्ताणि सुगमाणि ।

✽ सेसाणं कम्माणमवत्तव्वसंक्रामयंतरं जहण्णेण्यसमञ्चो, उक्कस्सेण
संखेज्जाणि वस्सत्तहस्साणि ।

§ ८०७. एदाणि वि वाग्गमक०—णवणोकमायाणमवत्तव्वसंक्रामयजहण्णुक्कस्संतर-
णिवद्वाणि सुत्ताणि सुवोहाणि । एवमेदेमिमवत्तव्वसंक्रामयाणमंतरं पदुप्पाइय सेमपद-
संक्रामयाणमंतरगंभवामंक्रामयाणमंतरगंभवामंक्राणिरायरणट्टुमुत्तरमुत्तमाह—

§ ८०५. क्योंकि इतने उत्कृष्ट अन्तरके बिना मिथ्यात्वसम्बन्धी एक समय अधिक
स्थितिसत्कर्मके साथ सम्यक्त्वकी प्राप्ति दुर्लभ है ।

शंका—एग्मा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार संक्रमके हेतुभूत
मिथ्यात्वके दो समय अधिकसे लेकर संख्यात कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिचिकत्सोंके
बहुलतासे सम्भव होनेके कारण उन्हींमें प्रायः नाना जीवोंका संचार उपलब्ध होता है, इसलिए
इन स्थितिचिकत्सोंके साथ पुनः पुनः सम्यक्त्वकी प्राप्ति होनेवाले नाना जीवोंके यह उत्कृष्ट अन्तर
सम्भव दिखलाई देता है ।

* अनन्तानुबन्धियोंके अवक्तव्यसंक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और
उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात है ।

§ ८०६. अनन्तानुबन्धियोंके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरसे प्रतिबद्ध ये दोनों ही सूत्र
सुगम हैं ।

* शेष कर्मोंके अवक्तव्यसंक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट
अन्तर संख्यात हजार वर्षप्रमाण है ।

§ ८०७. बारह कपायों और नौ नोकपायोंके अवक्तव्यसंक्रामकोंके जघन्य और उत्कृष्ट
अन्तरसे प्रतिबद्ध ये भी दोनों सूत्र सुबोध हैं । इसप्रकार इनके अवक्तव्यसंक्रामकोंके अन्तरका
कथन करके शेष पदोंके संक्रामकोंके अन्तरसे सम्भव और असंक्रामकोंके अन्तरमें सम्भव शंकाके
निराकरण करनेके लिए आगेका सूत्र बहने हैं—

❀ सोलसकसायणवणोकसायाणं भुजगार-अप्पदर-अवट्टिदसंकामयाणं णत्थि अंतरं ।

§ ८०८. कुदो ? मव्वद्धमेदेसु अणंतस्म जीवरामिस्स जहापविभागमवट्टाण-दंसणादो । एवमोघेण णाणाजीवसंबंधिणी अंतरपरूवणा गया ।

§ ८०९. एत्तो आदेसपरूवणाए विहत्तिभंगो । णवरि मणुमतिए वारसक०-णवणोक० अवत्तव्वसंकामयंतरं जह० एयस०, उक्क० वासपुधत्तं ।

§ ८१०. भावो मव्वत्थ ओदइओ भावो ।

❀ अप्पावहुअं ।

§ ८११. मिच्छत्तादिपयडिपडिबद्धभुजगारादिमंकामयाणमप्पावहुअं वण्णइस्सामोत्ति पइजावयणमेदमहियारसंभालणवक्कं वा ।

❀ सव्वत्थोवा मिच्छत्तभुजगारसंकामया ।

§ ८१२. दुसमयमंचिदत्तादो ।

❀ अवट्टिदसंकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ८१३. कुदो ? अंतोमुहुत्तमंचियत्तादो ।

❀ अप्पयरसंकामया संखेज्जगुणा ।

* मोलह कपायों और नौ नोकपायोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित-मंकामकोंका अन्तरकाल नहीं है ।

§ ८०८. क्योंकि इन पदोंमें अनन्त जीवराशिका अपने-अपने प्रतिभागके अनुसार सर्वदा अवस्थान देखा जाता है । इस प्रकार ओघसे नाना जीवोंसे सम्बन्ध रखनेवाली अन्तरप्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ८०९. आगे आदेशकी प्ररूपणा करने पर उसका भंग स्थितिविभक्तिवै समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकमें बारह कपायों और नौ नोकपायोंके अवत्तव्वसंकामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है ।

§ ८१०. भाव सर्वत्र औदयिक है ।

* अल्पबहुत्वका अधिकार है ।

§ ८११. मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंमें सम्बन्ध रखनेवाले भुजगार आदि पदोंके संक्रामकोंके अल्पबहुत्वको बतलाते हैं इस प्रकार यह प्रतिज्ञावाक्य है या अधिकारकी सम्हाल कुरनेवाला वाक्य है

* मिथ्यात्वके भुजगारसंक्रामक जीव सबसे स्तोक हैं ।

§ ८१२. क्योंकि इनका सञ्चय दो समयमें हुआ है

* उनसे अवस्थितसंक्रामक जीव अमंख्यातगुणे हैं ।

§ ८१३. क्योंकि इनका सञ्चय अन्तर्मुहूर्तमें हुआ है ।

* उनसे अल्पतरसंक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ८१४. जइ वि अप्परमंक्रमकालो वि अंतोमुहुत्तमेतो चैव तो वि त्कालसंचिद-
जीवरासिस्स पुव्विन्लसंचयादो संखेज्जगुणत्तं ण विरुज्जदे, संतस्स हेट्ठा संखेज्जवार-
मवट्ठिदट्ठिदिवंधेमु पादेकमंतोमुहुत्तकालपडिबट्ठेसु परिणमिय सइं संतसमाणबंधेण सन्वेसिं
जीवाणं परिणमणदंसणादो ।

❀ सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणं सन्वत्थोवा अवट्ठिदसंक्रामया ।

§ ८१५. कुदो ? ममयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिमंतक्रमेण वेदयसम्मत्तं पाडिबज्जमाण-
जीवाणमइदुल्लहत्तादो ।

❀ भुजगारसंक्रामया असंखेज्जगुणा ।

§ ८१६. को गुणगारो ? आवलि० अगंखे०भागो । दोण्हमेदेसिमेयसमय-
संचिदत्तेण मंते कुदो एस्स विमरिसभावो ति णामंक्कणिज्जं, तत्तो एदस्स विमयवहुत्तोव-
लंभादो । तं कथं ? अवट्ठिदसंक्रमविसओ णिरुद्धेयद्विदिमेतो, ममयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिमंत-
कम्मादो अण्णत्थ तदभावणिण्णयादो । भुजगारसंक्रमो पुण द्दुममयुत्तरादिद्विदिवियप्पेसु
संखेज्जमागगेवमपमाणावच्छिण्णेसु अप्पडिहयपमरो । तदो तेसु ठाइदूण वेदयमम्मत्त-
मुवममम्मत्तं च पडिबज्जमाणो जीवगभा अगंखेज्जगुणो ति णिप्पडिबधमेदं ।

§ ८१४. यद्यपि अल्पतरसंक्रामकोंका काल भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है तो भी उतने कालमें
सञ्चित हुई जीवराशि पूर्वोक्त मध्ययसे संख्यातगुणी है इसमें कोई विरोध नहीं आता, क्योंकि
प्रत्येक वार अन्तर्मुहूर्त काल तक मत्कर्मसे कम अवस्थित स्थितिबन्धरूपसे परिणमन कर एक
वार सब जीवोंका सत्कर्मके समान बन्धरूप परिणाम देखा जाता है ।

* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अवस्थितसंक्रामक जीव सबसे स्तोक हैं ।

§ ८१५. क्योंकि मिथ्यात्वके एक समय अधिक स्थितिसत्कर्मके साथ वेदकसम्यक्त्वको
प्राप्त होनेवाले जीव अतिदुर्लभ हैं ।

* उनसे भुजगारसंक्रामक जीव अगंख्यातगुणे हैं ।

§ ८१६. गुणकार क्या है ? आवल्लिका असंख्यातवौ भाग गुणकार है ।

शंका—उक्त प्रकृतियोंके अवस्थित और भुजगार इन दोनों पदोंका सञ्चय एक समयमें
होने पर यह विशदशता क्यों प्राप्त होती है ?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि अवस्थितपदसे भुजगारपदका
विषयबहुत्व उपलब्ध होता है ।

शंका—यह कैसे ?

समाधान—क्योंकि अवस्थितसंक्रमका विषय विवक्षित एक स्थितिमात्र है, क्योंकि
मिथ्यात्वके एक समय अधिक स्थितिमत्कर्मसे अन्यत्र उसके अभावका निर्णय है । परन्तु
भुजगारसंक्रम दो समय अधिक स्थितिविकल्पमे लेकर संख्यात सागर प्रमाण अधिक स्थिति-
विकल्पोंके प्राप्त होने तक अप्रतिहत प्रसारवाला है, इसलिए उन स्थितिविकल्पोंमें स्थापित कर
वेदकसम्यक्त्व और उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाली जीवराशि असंख्यातगुणी है यह
निर्विवाद है ।

❁ अवत्तव्वसंक्रामया असंखेज्जगुणा ।

§ ८१७. एत्थ वि गुणगगो आवलि० असंखे० भागमेत्तो । कुदो ? पलिदोवमा-
मंखेज्जभागमेत्तवेदग-उवममपाओगुव्वेल्लणकालभंतरसंचयणिवंधणादो भुजगार-
संक्रामयगामीदो अद्धपोग्गलपरियट्टकालभंतरसंचिदणिस्मंतकम्मियरासिणिस्संदस्सावत्तव्व-
संक्रामयगामिस्म अमंखेज्जगुणत्ते विसंवादाभावादो ।

❁ अप्पयरसंक्रामया असंखेज्जगुणा ।

§ ८१८. अवत्तव्वसंक्रामयगामी उवमममम्माइट्ठीणमसंखे० भागो । एगो पुण
उवसम-वेदगमम्माइट्ठिगामी मव्वो उव्वेल्लमाणमिच्छाइट्ठिरासी च तदो असंखेज्ज-
गुणो जादो ।

❁ अणंताणुबंधीणं सव्वत्थोवा अवत्तव्वसंक्रामया ।

§ ८१९. कुदो ? पलिदोवमामंखेज्जभागपमाणत्तादो ।

❁ भुजगारसंक्रामया अणंतगुणा ।

§ ८२०. कुदो ? सव्वजीवरागिस्म अमंखेज्जभागपमाणत्तादो ।

❁ अवट्ठिदसंक्रामया असंखेज्जगुणा ।

§ ८२१. कुदो ? मव्वजीवरागिस्स मंखेज्जभागपमाणत्तादो ।

❁ अप्पयरसंक्रामया संखेज्जगुणा ।

* उनसे अवक्तव्यसंक्रामक जीव अमंख्यातगुणे हैं ।

§ ८१७. यहाँ पर भी गुणकार आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि वेदक और उपशमसम्यक्त्वके योग्य पत्त्यके अमंख्यातवें भागप्रमाण उद्धेलनकालके भीतर सञ्चित हुई भुजगारसंक्रामक जीवराशिमें अधंपुद्गलपरिवर्तन कालके भीतर सञ्चित हुई उक्त प्रकृतियोंके सत्कर्मसे रहित जीवराशिमेंसे प्राप्त हुई अवक्तव्यसंक्रामक जीवराशिके असंख्यातगुणे होनेमें कोई विमंवाद नहीं है ।

* उनसे अल्पतरसंक्रामक जीव अमंख्यातगुणे हैं ।

§ ८१८. क्योंकि अवक्तव्यसंक्रामक जीवराशि उपशमसम्यग्दृष्टियोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । परन्तु यह जीवराशि उपशम और वेदकसम्यग्दृष्टि तथा उद्धेलना करनेवाली समस्त मिथ्यादृष्टि राशिप्रमाण है, अतः पूर्वोक्त राशिसं यह राशि अमंख्यातगुणी हो गई है ।

* अनन्तावन्धियोंके अवक्तव्यसंक्रामक जीव सबसे स्तोके हैं ।

§ ८१९. क्योंकि ये पत्त्यके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

* उनसे भुजगारसंक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं ।

§ ८२०. क्योंकि ये सब जीवराशिके मंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

* उनसे अवस्थितसंक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ८२१. क्योंकि ये सब जीवराशिके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

* उनसे अल्पतरसंक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ८२२. अवडिदसंकमावड्डाणकालादो अप्पयरसंकमपरिणामकालस्स संखेज्ज-
गुणत्तादो ।

❀ एवं सेसाणं कम्माणं ।

§ ८२३. जहाणंताणुवंधीणं पयदप्पावहुअपरूवणा कया एवं चेव सेसकसाय-
णोकमायाणं पि कायव्वं, विसेसाभावादो । एवमोघपरूवणा सुत्तणिवद्दा कया ।

§ ८२४. एत्तो एदस्म फुडीकरणट्टमादेमपरूवणट्टं त तदुच्चारणाणुगमं
कस्सामो । तं जहा—अप्पावहुआणुं दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । आघेण
मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । सोलमक०-णवगोक० सव्वत्थोवा अवत्त०-
संका० । भुज०संका० अणतगुणा । अवडि०संका० अमंखे०गुणा० । अप्पद०संका०
मंखे०गुणा । मणुसेसु मम्म०-मम्मामि०-मिच्छ० विहत्तिभंगो । सोलमक०-णवगोक०
सव्वत्थोवा अवत्त०संका० । भुज०संका० अमंखेज्जगुणा । अवडि०संका० अमंखे०गुणा ।
अप्पयर०संका० मंखे०गुणा । एवं मणुमपज्जत्त-मणुमिणीसु । णवरि सव्वत्थ मंखेज्जगुणं
कायव्वं । सेसगइमग्गणाभेदेसु विहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

एवमुत्तरपयडिडिदिमंकमस्स भुजगारो ममत्तो ।

८२२. क्योंकि अवस्थितसंक्रामकोंके अवस्थानकालसे अल्पतरसंक्रामकोंका परिणामकाल
संख्यातगुणा है ।

❀ इसीप्रकार शेष कर्मोंका प्रकृत अल्पवहुत्व है ।

८२३. जिस प्रकार अतनानुबन्धियोंके प्रकृत अल्पवहुत्वका कथन किया है इसीप्रकार
शेष कर्मायों और नाकपायोंके अल्पवहुत्वका भी कथन करना चाहिए, क्योंकि उससे इसमें कोई
विशेषता नहीं है । इसप्रकार मंत्रोंमें निबद्ध औघप्ररूपणा की ।

८२४. आगे इसे स्पष्ट करनेके लिए और आदेशप्ररूपणा करनेके लिए उसकी उच्चारणाका
अनुगम करते हैं । यथा—अल्पवहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और
आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है ।
सोलह कर्मायों और नौ नाकपायोंके अवक्तव्यसंक्रामक जीव सबसे स्तोका हैं । उनसे भुजगार-
संक्रामक जीव अनन्तगुणें हैं । उनसे अवस्थितसंक्रामक जाव असंख्यातगुणें हैं । उनसे
अल्पतरसंक्रामक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्योंमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व आर मिथ्यात्वका
भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सोलह कर्मायों और नौ नाकपायोंके अवक्तव्यसंक्रामक जीव
सबसे स्तोका हैं । उनसे भुजगारसंक्रामक जीव असंख्यातगुणें हैं । उनसे अवस्थितसंक्रामक जीव
असंख्यातगुणें हैं । उनसे अल्पतरसंक्रामक जीव संख्यातगुणें हैं । इसीप्रकार मनुष्य पर्याप्त और
मनुष्यनियोंमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणा करना चाहिए ।
गतिमार्गणाके शेष भेदोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक
जानना चाहिए ।

इसप्रकार उत्तरप्रकृतिस्थितिसंक्रमका भुजगार समाप्त हुआ ।

❁ पदणिकखेवे तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्वाराणि--समुक्कित्तणा सामित्तमप्पाबहुअं च ।

§ ८२५. एदेण सुत्तेण पदणिकखेवे तिण्हमणिओगद्वाराणं संभवो तण्णामणिहेसो च कओ । एवमेदेहि तीहि अणियोगद्वारेहि पदणिकखेवं परूवेमाणो जहा उद्देशो तथा णिहेसो त्ति णायमवलंबिय समुक्कित्तणमेव ताव परूवेदुसुत्तमुत्तमाह—

❁ तत्थ समुक्कित्तणा सञ्चवासिं पयडीणमुक्कस्सिया वड्डी हाणी अवट्टाणं च अत्थि ।

§ ८२६. तत्थ तेसु तिसु अणियोगद्वारेसु समुक्कित्तणा ताव उच्चदे—तत्थ दुविहो णिहेसो ओघादेमभेदेण । ओघेण ताव सञ्चामि मोहपयडीणमत्थि उक्कस्सिया वड्डी हाणी अवट्टाणं च । द्विदिसंक्रमस्से त्ति एत्थाहियारगमंधो कायच्चो ।

❁ एवं जहणणयस्स वि णेदच्चं ।

§ ८२७. जहा सञ्चामिं पयडीणमुक्कम्मवट्ठि-हाणि-अवट्टाणमंकमो समुक्कित्तदो एवं जहणणयस्स वि वट्ठि-हाणि-अवट्टाणमंकमस्स समुक्कित्तणं णेदच्चं । तं कथं ? सञ्चामिं पयडीणमत्थि जहण्णया वड्डी हाणी अवट्टाणं च ।

एवमोघसमुक्कित्तणा गया ।

आदेसेण सञ्चमग्गणामु विहत्तिमंगो ।

❁ पदनिक्षेपका अधिकार है । उममें ये तीन अनुयोगद्वार हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व ।

§ ८२५. इस सूत्र द्वारा पदनिक्षेपमें तीन अनुयोगद्वारोंकी सम्भावना का साथ उनके नामोंका निर्देश किया है । इसप्रकार इन तीन अनुयोगद्वारोंके द्वारा पदनिक्षेपका कथन करते हुए उद्देशके अनुसार निर्देश किया जाता है । इस न्यायका अर्थलम्बन लेकर सर्वप्रथम समुत्कीर्तनका ही कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

❁ प्रकृतमें समुत्कीर्तना इसप्रकार है—गव प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थान है ।

§ ८२६. उन तीन अनुयोगद्वारोंमें सर्वप्रथम समुत्कीर्तना कथन करते हैं । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघमें मोहनीयकी सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थान है । 'स्थितिसंक्रमका' इसप्रकार यहाँ पर अधिकारका सम्बन्ध कर लेना चाहिए ।

❁ इसीप्रकार जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान भी जानना चाहिए ।

§ ८२७. जिस प्रकार सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानसंक्रमकी समुत्कीर्तना की उसी प्रकार जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थानसंक्रमकी भी समुत्कीर्तना जाननी चाहिए ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—सब प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान है ।

इस प्रकार ओघसमुत्कीर्तना समाप्त हुई ।

❀ सामित्तं ।

§ ८२८. समुक्तिणाणंतरं सामित्तमवसरपत्तं कायव्वमिदि अहियारसंभालण-
वयणमेदं ।

❀ मिच्छत्त-सोलसकसायाणमुक्कस्सिया वड्डी कस्स ?

§ ८२९. मिच्छत्तादीणमुक्कम्मड्ढिदिमंक्रमवुड्डीए को सामिओ त्ति पुच्छिदं होइ ।

❀ जो चउट्टाणियजवमज्झस्स उवरि अंतोकोडाकोडिडिदिमंतोमुहुत्त-
संकामेमाणो सो सच्चमहंतं दाहं गदो तदो उक्कस्सटिदिं पवद्धो तस्सा-
वलियादीदस्स तस्स उक्कस्सिया वड्डी ।

§ ८३०. जा अंतोकोडाकोडिडिदिमंतोमुहुत्तं संकामेमाणो अच्छिदो उक्कस्स-
दाहवसेणुक्कम्मड्ढिदिं पवद्धो तस्मावलियादीदस्स विवक्खिनयक्कम्माणुक्कस्सियड्ढिदिमंक्रम-
वुड्डी होइ त्ति मुत्तन्धमबंधो । मा पुण अंतोकोडाकोडी अणेयवियप्प, ध्रुवड्ढिदीदो प्पहुडि
समयुत्तरादिकमेण तत्तो संवेज्जगुणाओ टिठीओ उल्लंघिय तदुक्कम्मवियप्पावट्टाणादो ।
तत्थ किमुक्कम्मंतोकोडाकोडीए समवृण्णनागरोवमकोडाकोडिपमाणाए इह ग्रहणं, आहो
जहण्णाए ध्रुवड्ढिदिपमाणावच्छिज्जाए, उदाहो तप्पाआग्गाए अजहण्णाणुक्कम्मवियप्प-
पडिबद्धाए त्ति एत्थ णिण्णयक्कणट्ठमिदं विसेमणं चउट्टाणियजवमज्झस्स उवरि त्ति । तं च

* स्वामित्यका अधिकार है ।

§ ८२८. समुक्तीन्ताके बाद अयसर प्राप्त स्वामित्य करना चाहिए इसप्रकार अधिकारकी
सम्हाल करनेवाला यह वचन है ।

* मिथ्यात्व और मालह कर्माथोंकी उत्कृष्ट वृद्धि क्रिमके होती है ।

§ ८२९. मिथ्यात्व आदका उत्कृष्ट स्थानसंक्रमवृद्धिका स्वामि कोन ह यह पृच्छा
की गई है ।

* जो चतुःस्थानिक यवमध्यके उपर अन्तःकोडाकोडाप्रमाण स्थितिका
अन्तर्मुहूर्तकाल तक संक्रमण कर रहा है उसने अन्यन्त उत्कृष्ट दाहका प्राप्त होकर
उससे उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया उसके एक आवलिके बाद उत्कृष्ट वृद्धि होती है ।

§ ८३०. जो अन्तःकोडाकोडाप्रमाण स्थितिका अन्तर्मुहूर्त काल तक संक्रमण करना हुआ
स्थित है, उसने उत्कृष्ट दाहवश उत्कृष्ट स्थितिवन्ध किया उसके एक आवलिके बाद विवाचित्त
कर्माथोंकी उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमवृद्धि होती है ऐसा इस सूत्रका अर्थसम्बन्ध है । परन्तु वह अन्तःकोडा-
कोडी ध्रुवस्थितिसे लेकर एक समय अधिक आदिके क्रमसे अनेक प्रकारकी है, क्योंकि ध्रुवस्थितिसे
संख्यातगुणी स्थितिको उल्लंघन कर उसके उत्कृष्ट विकल्पका अवस्थान है । उसमेंमे एक समय
कम कोडाकोडी सागरप्रमाण उत्कृष्ट अन्तःकोडाकोडाका यहाँ पर ग्रहण किया है या ध्रुवस्थिति-
प्रमाण जघन्य अन्तःकोडाकोडाका ग्रहण किया है या अजघन्योत्कृष्ट विकल्पवाली अन्तःकोडा-
कोडाका ग्रहण किया है इसप्रकार यहाँ पर निणय करनेके लिए 'चतुःस्थानिक यवमध्यके उपर'
यह विशेषण दिया है । वह चतुःस्थानिक यवमध्य दो प्रकारका है—सातप्रायोग्य और असात-

चउट्टाणियजवमज्झं दुविहं—सादपाओग्गसादपाओग्गं च । तत्थ पयरणवसेणासाद-
पाओग्गस्स गहणमिह विण्णेयं, अण्णहा सच्चुक्कस्सट्टिदिबंधहेदुत्तच्चय्यरदाहपरिणामाणुव-
वत्तीदो । सच्चुक्कस्सविसोहिणिवंधणस्स सादचउट्टाणजवमज्झस्स सच्चमहंतदाहहेउत्त-
विरोहादो च । तदो असादचउट्टाणियाणुभागबंधपाओग्गजवमज्झस्स उवरि जा अंतोकोडा-
कोडी णिच्चियप्पंतोकोडाकोडीदो संखेज्जगुणहीणा दाहट्टिदिसण्णिदा सेह गहेयच्चा,
हेट्टिमासेसट्टिदिसंकमवियप्पाणमुक्कस्सदाहविरुद्धसहावत्तादो । ण च सच्चमहंतेण दाहेण
विणा उक्कस्सओ ट्टिदिबंधो होइ, विप्पडिसेहादो । तम्हा चउट्टाणियजवमज्झस्सुवरि जो
एवंविहमंतोकोडाकोडिट्टिदिबंधममाणो समवट्टिदो सच्चमहंतेण दाहेण परिणदो संतो
उक्कस्सट्टिदि पबंधदि तस्स आवलियादीदं संकामेमाणयस्स पयदक्कमाणमुक्कस्मिया वड्डी
ट्टिदिसंकमविमया होदि त्ति सिद्धं । एत्थ वड्ढिपमाणं दाहट्टिदिपग्गीणमत्तरि-चालीस-
सागरोवमकोडाकोडिमेत्तअणंतरहेट्टिमसमयसंकमादो सामित्तमए ट्टिदिसंकमस्स तेत्तिय-
मेत्तेण वुड्ढिदंमणादो । एवमेदेसिं कम्माणमुक्कस्मवड्डीए सामित्तं परुविय तस्सेवावट्टाण-
सामित्तं पि उक्कस्सयं विदियसमए होइ त्ति जाणावणट्टं सुत्तमुत्तरं भणइ—

❖ तस्सेव से काले उक्कस्सयमवट्टाणं ।

॥ ८३१. तस्सेव उक्कस्सवुड्ढिमंकमसामित्तमुवगयस्स से काले तत्तियमेव संकामे-
माणयस्स उक्कस्सवट्टाणं होदि । कुदो ? उक्कस्सवुड्ढिए अविणट्टमरूवेण नत्थावट्टाणदंसणादो ।

प्रायोग्य । उनमेसे प्रकरणवश असातप्रायोग्य यवमध्यको यहाँ पर ग्रहण जानना चाहिए, अन्यथा सर्वोत्कृष्ट स्थितिवन्धका हेतुभूत तीव्रतर दाहपरिणामकी उत्पत्ति नहीं बन सकती तथा सबसे उत्कृष्ट विशुद्धिकारणक सातचतुःस्थान यवमध्यके सर्वोत्कृष्ट दाहहेतुक होनेमें विरोध आता है । इसलिए असातचतुःस्थानीय अनुभागवन्धके योग्य यवमध्यके ऊपर निर्विकल्प अन्तःकोड़ाकोड़ीसे संख्यात-
गुणी हीन जो दाहसंब्रावाली अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थिति है उसे यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि अधस्तन समस्त संक्रमविकल्प उत्कृष्ट दाहके विरुद्ध स्वभाववाले हैं । और सर्वोत्कृष्ट दाहके बिना उत्कृष्ट स्थितिवन्ध नहीं होता, क्योंकि ऐसा होनेका निषेध है । इसलिए चतुःस्थानिक यवमध्यके ऊपर जो इस प्रकारकी अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिका संक्रम करना हुआ स्थित है वह सर्वोत्कृष्ट दाहसे परिणत होकर उत्कृष्ट स्थितिको बाँधता है उसके एक आवलोकन बाद संक्रमण करते हुए प्रकृत कर्मोंकी स्थितिसंकमविषयक उत्कृष्ट वृद्धि होती है यह सिद्ध हुआ । यहाँ पर वृद्धिका प्रमाण दाहस्थितसे हीन सत्तर और चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थिति है, क्योंकि अनन्तर पूर्व समयमें हुए संक्रममें स्वामित्वके समयमें स्थितिसंकमसे तत्प्रमाण वृद्धि देखी जाती है । इसप्रकार इन कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धिके स्वामित्वका कथन करके उसीके उत्कृष्ट अवस्थान स्वामित्व दूसरे समयमें होता है यह जतानेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

❖ उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है ।

॥ ८३१. उत्कृष्ट वृद्धिसंकमके स्वामित्वको प्राप्त हुए उसी जीवके अनन्तर समयमें उतना ही संक्रम करते हुए उत्कृष्ट अवस्थान होता है, क्योंकि उत्कृष्ट वृद्धिका बिनाश हुए बिना वहाँ पर

एवमुक्त्स्सवड्ढिपुव्वमवट्ठाणसामित्तं परूविय संपहि पयदकम्माणमुक्त्स्सहाणीए सामित्त-
विहाणट्टमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ उक्कस्सिया हाणी कस्स ?

§ ८३२. सुगमं ।

❀ जेण उक्कस्सट्टिदिखंडयं घादिदं तस्स उक्कस्सिया हाणी ।

§ ८३३. जेसुकस्मट्टिदिसंक्रमादो अंतोमुहुत्तपडिभागेणुकस्सयं ट्टिदिखंडयं घादिदं
तस्सुकस्मिया हाणी होइ, तत्थुकस्सट्टिदिखंडयमेत्तस्स ट्टिदिसंक्रमस्स एकसराहेण
परिहाणित्तंमणादो । केत्तियमेत्ते च तमुक्कस्मट्टिदिखंडयं ? अंतोकोडाकोडिपरिहीण
कम्मट्टिदिमेत्तं, उक्कस्मवुड्ढीदो किंचणपमाणत्तादो । एदस्सेव पमाणपरिच्छेदस्स साहणट्ट-
मिदमाह—

❀ जं उक्कस्सट्टिदिखंडयं तं थोवं । जं सव्वमहंतं दाहं गदो त्ति
भणित्तं तं विसेसाहियं ।

§ ८३४. जमुक्कस्सट्टिदिखंडयमुक्कस्सहाणीए विसईकयं तं थोवं । जं पुण उक्कस्स-
वड्ढिपरूवणाए मव्वमहंतं दाहं गदो त्ति भणित्तं तं विसेसाहियं । एत्थ कज्जे कारणोव
यारेण मव्वमहंतदाहजणिदा बुड्ढी चेय मव्वमहंतदाहसहेण णिदिट्ठा । तदो उक्कस्स-
हाणीदो उक्कस्मट्टिदिखंडयगरूवादो उक्कस्मिया वड्ढी विसेसाहिया त्ति वुत्तं होइ ।

अवस्थान देखा जाता ह । उम प्रकार उत्कृष्ट वृद्धिपूर्वक अवस्थानके स्वामित्वका कथन करके अब
प्रकृत कर्मोंकी उत्कृष्ट हानिके स्वामित्वका विधान करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

* उत्कृष्ट हानि किमके होती है ?

§ ८३२. यह सूत्र सुगम है ।

* जिमने उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात किया है उसके उत्कृष्ट हानि होती है ।

§ ८३३. जिसने उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमसे अन्तर्मुहूर्त कालमें प्रतिभग्न होकर उत्कृष्ट
स्थितिकाण्डकका घात किया है उसके उत्कृष्ट हानि होती है, क्योंकि वहाँ पर उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक-
प्रमाण स्थितिसंक्रमकी एक वारमे हानि देखी जाती है ।

शंका—वह उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक कितना है ?

समाधान—अन्तःकोडाकोड़ी कम कर्मस्थितिप्रमाण है, क्योंकि वह उत्कृष्ट वृद्धिसे कुछ
न्यून प्रमाण है ।

उसीके प्रमाणका परिच्छेद साधनेके लिए यह आगेका सूत्र कहते हैं—

* जो उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक है वह स्तोक है । जो सर्वोत्कृष्ट दाहको प्राप्त
हुआ है ऐसा कहा है वह विशेष अधिक है ।

§ ८३४. उत्कृष्ट हानिका विषयीकृत जो उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक है वह स्तोक है । तथा
उत्कृष्ट वृद्धिकी प्ररूपणामें सर्वोत्कृष्ट दाहको प्राप्त हुआ ऐसा कहा है वह विशेष अधिक है । यहाँ पर
कार्यमें कारणका उपचार करनेसे सर्वोत्कृष्ट दाहजनित वृद्धि ही सर्वोत्कृष्ट दाह शब्द द्वारा निर्दिष्ट
की गई है । इसलिए उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकस्वरूप उत्कृष्ट हानिसे उत्कृष्ट वृद्धि विशेष अधिक है यह

केत्तियमेत्तो विसेमो ? अंतोकोडाकोडिमेत्तो । किमट्टमेदं थोवं बहुत्तमणवसरपत्तमेव सामित्तपरूवणाए वुत्तमिदि सयमेवामंक्रिय तत्थुत्तरमाह—

❀ एदमप्पाबहुअस्स साहणं ।

§ ८३५. एदमणंतंरपरूविदं द्विदिखंडयस्म सच्चमहंतं दाहजणिद्विदिवंधपसरस्स च जं थोववहुत्तं तमुक्कस्मवड्ढि-हाणीणमुवरि भणिस्समाणथोववहुत्तस्स माहणमिदि कट्टु सिस्सहिदट्टुमिह परूविदं, तम्हा णेदमसंवरुमिदि । एवं ताव मिच्छत्त-सोलसकसायाण-मुक्कस्मवड्ढि-हाणि-अवट्टाणमामित्तं परूविय णोकमायाणं पि सामित्ताणुगमे एमो चेव कमो त्ति पट्टुप्पायणट्टुमुत्तरंमुत्तमाह—

❀ एवं णवणोकसायाणं ।

८३६. जहा मिच्छत्तादीणमुक्कस्मवड्ढि-हाणि-अवट्टाणमामित्तपरिक्खा कया तथा णवणोकमायाणं पि कायच्चा, ताएण माहम्मदंमणादो । विसेमो दू वड्ढि-अवट्टाण-सामित्ते थोवयमे अत्थि त्ति जाणावणट्टुमुत्तरं मुत्तदयमाह—

❀ एवरि कसायाणमावलियूणमुक्कस्सद्विदिपडिच्छिदुणावलिया-दीदस्स तस्स उक्कस्सिया वड्ढी । से काले उक्कस्सयमवट्टाणं ।

उक्त कथनका तात्पर्य है । विशेषका प्रमाण कितना है ? अन्तः कोडाकोडीप्रमाण है । यह अनवसर प्राप्त अल्पवहुत्व स्वामित्व प्रकरणमें कियलिये कहा है उस प्रकार स्वयं ही आशंका कर उम विषयमें उत्तर देते हैं—

यह अल्पवहुत्वका साधन है ।

§ ८३५. यह पहले जो स्थितिकाण्डकका और गर्भोत्कृष्ट दाहजनित स्थितिवन्धप्रसरका अल्पवहुत्व कहा है वह आगे कहे जानेवाले उत्कृष्ट वृद्धि-हानिसम्बन्धी अल्पवहुत्वका साधन है ऐसा समझकर शिष्योंके हृदयमें स्थित उक्त अल्पवहुत्वका यहाँ पर कथन किया है, इसलिए यह प्रकृतमें असंगत नहीं है । उसप्रकार मिथ्यात्व और सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानके स्वामित्वका कथन करके नोकपायोंके भी स्वामित्वका अनुगम करनेमें यही क्रम है ऐसा कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

इसी प्रकार नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानका स्वामी जानना चाहिए ।

§ ८३६. जिसप्रकार मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानके स्वामित्वकी परीक्षा की उसीप्रकार नौ नोकपायोंकी भी करनी चाहिए, क्योंकि इन सबके स्वामित्वमें प्रायः कर साधर्म्य देखा जाता है । परन्तु वृद्धि और अवस्थानके स्वामित्वमें थोड़ीमी विशेषता है, इसलिए उमे जतानेके लिए आगेके दो सूत्र कहते हैं—

* किन्तु इतनी विशेषता है कि कपायोंकी एक आवलिकम उत्कृष्ट स्थितिका नौ नोकपायोंमें संक्रम करके एक आवलिके बाद उमकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है । तथा तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है ।

§ ८३७. कुदो एवं कीरदे चे ? ण, समुहेणेदेसिं चालीससागरोवमकोडाकोडीणं बंधाभावेण कसायुक्कस्सट्टिदिपडिग्गहमुहेण तहा सामित्तविहाणादो । तदो बंधावलियूणं कसायट्टिदिमुक्कस्सियं सगपाओग्गंतोकोडाकोडिदिसंकमे पडिच्छियूण संकमणावलिया-दिकंतस्स पयदमामित्तमिदि सुसंबद्धमेदं । हाणीए णत्थि विसेसो, उक्कस्सट्टिदिघादविसए तस्सामित्तपडिलंभस्स सच्चत्थ णाणत्ताभावादो । एत्थ पमाणाणुगमे कसायभंगो । णवरि णवुंसयवेदारइ-सोग-भय-दुग्गुछाणमुक्कस्सट्टिदिवुड्डी अवट्ठाणं च वीससागरोवमकोडा-कोडीओ पल्लिदोवमासखेजभागब्भहियाओ । कुदो ? कसायाणमुक्कस्सट्टिदिवंधकाले तेसिं पि रूवूणावाहाकंडएणूणवीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तट्टिदिवंधस्स दुप्पडिसेहत्तादो । एवमेदं परूविय संपहि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पयदसामित्तविहाणट्टमुवरिमो सुत्तपवद्धो—

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सिया वड्डी कस्स ?

§ ८३८. सुगमं ।

❀ वेदगसम्मत्तपाओग्गजहणट्टिदिसंतकम्मियो मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्टिदि बंधियूण ट्टिदिघादमकाऊण अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स विदियसमयसम्माइट्टिस्स उक्कस्सिया वड्डी ।

§ ८३७. शंका—ऐसा क्यों किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि स्वमुखसे इनका चालीस कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण बन्ध नहीं होनेसे कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका प्रतिग्रह होनेके बाद उसके द्वारा उस प्रकारके स्वामित्वका विधान किया है । इसलिए कपायोंकी बन्धावलिसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिको अपने योग्य अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिमें संक्रमित करके संक्रमावलिसे वाद उसका प्रकृत स्वामित्व प्राप्त होता है यह सुसम्बद्ध है ।

हानिमें कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिघातको विषयकर उत्कृष्ट हानिके स्वामित्वकी प्राप्ति सर्वत्र भेदरहित है । यहाँ पर प्रमाणका अनुगम करने पर कपायोंके समान भंग है । किन्तु इनकी विशेषता है कि नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट स्थितिबुद्धि और अवस्थान पत्यका असंख्यातवर्ती भाग अधिक वीस कोड़ाकोड़ी सागर है, क्योंकि कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धकालमें उनका भी एक कम आवाधाकाण्डकसे न्यून वीस कोड़ाकोड़ीसागर-प्रमाण स्थितिवन्ध प्रतिषेध करनेके लिए अशक्य है । इस प्रकार इसका यहाँ पर कथन करके अब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके प्रकृत स्वामित्वका विधान करनेके लिए आगेका सूत्रप्रबन्ध कहते हैं—

❀ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट बुद्धि किसके होती है ?

§ ८३८. यह सूत्र सुगम है ।

❀ वेदकसम्यक्त्वके योग्य जघन्य स्थितिमत्कर्मवाला जो जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कर स्थितिघात किये बिना अन्तर्मुहूर्तमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ, द्वितीय समयवर्ती उस सम्यग्दृष्टिके उत्कृष्ट बुद्धि होती है ।

§ ८३९. एत्थ वेदयपाओग्गजहण्णट्टिदिमंतकम्मिओ णाम दुविहो—किंचृण-
सागरोवमट्टिदिमंतकम्मिओ तप्पुधत्तमेत्तट्टिदिसंतकम्मिओ च । एत्थ पुण मागरोवममेत्त-
ट्टिदिमंतकम्मिओ एडंदियपच्छायदो घेत्तव्वो, उक्कस्सवड्डीए पयदत्तादो । तदो एवंविहेण
ट्टिदिसंतकम्मिणुवलक्खिओ जो मिच्छाइड्डी मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्टिदि वंधियूणंतोमुहुत्त-
पडिभग्गो तप्पाओग्गविसुड्डीए मिच्छत्तस्स ट्टिदघादमकाऊण वेदयमम्मत्तं पडिवण्णो,
तम्मि चैव ममए मिच्छत्तट्टिदिमंतोमुहुत्तृणसत्तरिमागरोवममेत्तं विवक्खिय कम्मिओ
संकाभिय विदियममयमुवगओ तस्स विदियममयमम्माइड्डीस्स पयदक्कस्सत्तामित्तं होइ,
तत्थ थोवृण्णमागरोवममंकमादो हेट्ठिमसमयपडिवद्धादो तदृणमत्तरिसागरोवममेत्तट्टिदि-
मंकमस्स वुड्ढिदंसणादो ।

❀ हाणी मिच्छत्तभंगो ।

§ ८४०. जहावुत्तकमेण वुड्ढिमंकमं काऊण तदो अंतोमुहुत्तेण सव्वुक्कस्सट्टिदि-
खंडए घादिदे तत्थ तदुक्कस्सत्तामित्तं पडि भेदाभावादो ।

❀ उक्कस्सयमवट्ठाणं कस्स ?

§ ८४१. सुगमं ।

❀ पुव्वुप्पण्णादो सम्मत्तादो समयुत्तरमिच्छत्तट्टिदिसंतकम्मिओ
सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स विदियसमयसम्माइड्डीस्स उक्कस्सयमवट्ठाणं ।

§ ८३९. यहाँ पर वेदक सम्यक्त्वके योग्य जघन्य स्थितिस्तत्कर्मवाला जीव दो प्रकारका है—कुद्द कम एक सागर स्थितिस्तत्कर्मवाला और सागरपृथक्त्वप्रमाण स्थितिस्तत्कर्मवाला । परन्तु यहाँ पर एकैन्द्रियोंसे लौटकर आया हुआ एक सागर स्थितिस्तत्कर्मवाला जीव लेना चाहिए, क्योंकि उत्कृष्ट वृद्धिका प्रकरण है । इसलिए इसप्रकारके स्थितिस्तत्कर्मसे उपलब्धित जो मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कर अन्तर्मुहूर्तमें प्रातभग्न होकर तत्रायोग्य विशुद्धिसे मिथ्यात्वका स्थितिघात किये बिना वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और उसी समय मिथ्यात्वकी अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण स्थितिको विवक्षित कर्ममें संक्रमित कर दूसरे समयको प्राप्त हुआ उस द्वितीय समयवर्ती सम्यग्दृष्टिके प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्व हाता है, क्योंकि वहाँ पर पिछले समयमें होनेवाले कुछ कम एक सागरप्रमाण स्थितिस्तत्कर्मसे किञ्चिन् न्यून एक सागर कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिस्तत्कर्मकी वृद्धि देखी जाती है ।

❀ हानिका भंग मिथ्यात्वके समान है ।

§ ८४०. पूर्वोक्त क्रमसे वृद्धिसंक्रमको करके तदनन्दर अन्तर्मुहूर्तमें सबसे उत्कृष्ट स्थिति-
काण्डकका घात करने पर वहाँ मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्वामित्वसे इनके उत्कृष्ट स्वामित्वमें कोई भेद नहीं है ।

❀ उत्कृष्ट अवस्थान किसके होता है ।

§ ८४१. यह सूत्र सुगम है ।

❀ जो जीव पूर्वमें उत्पन्न हुए सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वमें जाकर एक समय अधिक मिथ्यात्वके स्थितिस्तत्कर्मके साथ सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ उस द्वितीय समयवर्ती सम्यग्दृष्टिके उत्कृष्ट अवस्थान होता है ।

§ ८४२. जो पुव्वुप्पण्णादो सम्मत्तादो मिच्छत्तं गंतूण सम्मत्तद्विदिमंतादो ममउत्तरं मिच्छत्तद्विदिं वंधिउण सम्मत्तं पडिवण्णो तस्म विदियसमयसम्माइद्विस्म दोण्हं कम्माणमुक्कम्ममवट्टाणं होइ, तत्थ पढमममयमंकंतमिच्छत्तद्विदिमंतकम्मस्स विदियसणए गलिदावमिद्वस्स पढगममयमम्मत्त-सम्माभिच्छत्तद्विदिमंकमपमाणेणावट्टाणदंसणादो । एवमोघेण सव्वकम्माणमुक्कस्सवट्टि-हाणि-अवट्टाणमामित्तपरूवणा गया ।

✽ एत्तो जहणियाए ।

§ ८४३. एत्तो उवरि मव्वेमिं कम्माणं जहणवट्टि-हाणि-अवट्टाणमामित्तपरूवणा कायव्वा त्ति भणिदं होइ ।

✽ सम्मत्त-सम्माभिच्छत्तवज्जाणं जहणिया वट्टी कस्स ?

§ ८४४. सुगम ।

✽ अप्पण्णा समयूगादो उक्कस्सद्विदिसंकमादो उक्कस्सद्विदिसंकमे-माण स्स तस्स जहणिया वट्टी ।

८४५. तं कथं ? समयूगुक्कम्मद्विदिं वंधियूण तदणंतग्गमए उक्कस्सद्विदिं वंधिय वंधावलियवदिकंतं मंकामेंतो हेट्टिमग्गए समयूणद्विदिमंकमादो समयुत्तरं मंकामेदि । तदो

§ ८४२ जो पूर्वमें उत्पन्न हुए सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वमें जाकर सम्यक्त्वके स्थितिसत्त्वसे मिथ्यात्वकी एक समय अधिक स्थितिका बंधकर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ उस द्वितीय समयवर्ती सम्यग्दृष्टिके दोन्हों कर्मोंका उत्कृष्ट अवस्थान होता है, क्योंकि वहाँ पर प्रथम समयमें संक्रान्त हुए तथा दूसरे समयमें गलकर अप्रशिष्ट रहे मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मोंका प्रथम समयमें प्राप्त हुए सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके स्थितिसंकर्मके प्रमाणरूपसे अवस्थान देखा जाता है । इसप्रकार ओघसे सब कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानके स्वामित्वकी प्ररूपणा की ।

✽ आगे जघन्यका अधिकार है ।

§ ८४३. इसमें आगे सब कर्मोंकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थानके स्वामित्वका कथन करना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

✽ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सिवा शेष कर्मोंकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ?

§ ८४४. यह सूत्र सुगम है ।

✽ जो अपने अपने एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मसे उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करता है उसके जघन्य वृद्धि होती है ।

§ ८४५. शंका—वह कैसे ?

समाधान—क्योंकि एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कर पुनः तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कर बन्धावलिके बाद संक्रम करता हुआ पिछले समयमें हुए एक समय कम स्थितिसत्कर्मसे एक समय अधिकका संक्रम करता है, इसलिए उसके जघन्य वृद्धि होती है ।

तस्स जहण्णिया बड्डी होदि, एयट्टिदिमेत्तस्सेव तत्थ बुद्धिदंसणादो । उदाहरणपदंसणट्टमेदं परूविदं । तदो सव्वासु चेव ट्टिदीसु समयुत्तरबंधवसेण जहण्णिया बड्डी अविरुद्धा परूवेयच्चा ।

❀ जहण्णिया हाणी कस्स ?

§ ८४६. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाणं सव्वकम्माणमिदि अणुवट्टदे । सुगममन्यत् ।

❀ तप्पाओग्गसमयुत्तरजहण्णट्टिदिसंकमादो तप्पाओग्गजहण्णट्टिदि संकामेमाण्यस्स तस्स जहण्णिया हाणी ?

§ ८४७. समयुत्तरधुवट्टिदि संकामेमाणओ अधट्टिदिगलणेण धुवट्टिदि संकामेदु-माढत्तो तस्स जहण्णिया हाणी, एयट्टिदिमेत्तस्सेव तत्थ हाणिदंसणादो । एवं सव्वाओ ट्टिदीओ णिरंभिज्जण जहण्णहाणी परूवेयच्चा ।

❀ एयदरत्थमवट्टाणं ।

§ ८४८. कथं ताव बड्डीए अवट्टाणसंभवो ? वुच्चदे—समयूणकस्सट्टिदिमंकमादो उकस्सट्टिदिमंकमेण बड्ढिदस्स अंतोमुहुत्तमवट्टिदट्टिदिबंधवसेण तत्थेवावट्टाणे णत्थि विरोहो । एवं जहण्णहाणीए वि अवट्टाणसंभवो दट्टुच्चो । एदाणि जहण्णवट्टि-हाणि-अवट्टाणाणि एयट्टिदिमेत्ताणि । मंपहि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जहण्णवट्टिमामित्त-परूवणट्टमुत्तरसुत्तं भणइ—

क्योंकि वहाँ पर एक समयमात्र स्थितिसंक्रमकी वृद्धि देखी जाती है । उदाहरण दिग्बलानेकं लिए यह कहा है, इसलिए सभी स्थितियोंमें एक समय अधिक बन्ध होनेसे जघन्य वृद्धि बिना विरोधके बन जाती है ऐसा कथन करना चाहिए ।

❀ जघन्य हानि किसके होती है ?

§ ८४६. यहाँ इस सूत्रमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वको छोड़कर शेष सब कर्मोंकी इतने वाक्यकी पूर्व सूत्रसे अनुवृत्ति होती है । शेष कथन सुगम है ।

❀ तत्प्रायोग्य एक समय अधिक जघन्य स्थितिके संक्रमके बाद तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका संक्रम करनेवाले जीवके जघन्य हानि होती है ।

§ ८४७. एक समय अधिक ध्रुवस्थितिका संक्रम करनेवाला जो जीव ध्रुवस्थितिका संक्रम करता है उसके जघन्य हानि होती है, क्योंकि वहाँ पर एक स्थितिमात्रकी हानि देखी जाती है । इस प्रकार सब स्थितियोंको विवक्षित कर जघन्य हानिका कथन करना चाहिए ।

❀ किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थान होता है ।

§ ८४८. शंका—वृद्धिके बाद अवस्थान कैसे सम्भव है ?

समाधान—कहते हैं—एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिके संक्रमके बाद उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करनेसे वृद्धिको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त कालतक अवस्थित स्थितिके बन्धके कारण उसीमें अवस्थान होनेपर वृद्धिके बाद अवस्थान होनेमें विरोध नहीं है ।

इसी प्रकार जघन्य हानिके बाद भी अवस्थानका सम्भव जान लेना चाहिए । ये जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान एक स्थितिप्रमाण हैं । अब सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके जघन्य वृद्धिके स्वामित्वका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ सम्मत्त-सम्पामिच्छत्ताणं जहणिया वड्डी कस्स ?

§ ८४०. सुगमं ।

❀ पुचुप्पणसम्मत्तादो दुसमयुत्तरमिच्छत्तसंतकम्मिओ सम्मत्तं पडिवरणो तस्स विदियसमयसम्माइडिस्स जहणिया वड्डी ।

§ ८५०. कुदो ? वेदगसम्मत्तग्गहणपढमसमए दुसमयुत्तरमिच्छत्तद्विदिं पडिच्छिय तत्थेवाधद्विदीए णिसेयमेयं गालिय विदियसमए पढमसमयमंकमादो समयुत्तरं संकामे-माणयम्मि जहणणवुड्डीए एयममयमेत्तीए परिप्फुडमुवलंभादो ।

❀ हाणी सेसकम्मभंगो ।

§ ८५१. सुगमं, अधद्विदिगलणेणेयममयहाणीए सव्वत्थ पडिसेहाभावादो ।

❀ अवट्ठाणमक्कस्सभंगो ।

§ ८५२. एदं पि सुगमं, पयागंतानंभवादो । एदमोघेण जहणणुक्कस्सवाड्डी-हाणि-अवट्ठाणाणं मामित्तविणिण्णओ कओ ।

§ ८५३. एत्तो आदेसपरूणणद्वं उच्चारणं वचइस्सामो । तं जहा—मामित्तं दुविहं—जह० उक्क० । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-सोलमक० उक्क० द्विदिमं० वड्डी कस्स ? जो चउट्ठाणजवमज्झस्सुवग्गि अंतोकोडाकोडिद्विदिं

* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ?

§ ८४६. यह सूत्र सुगम है ।

* जो पहले उत्पन्न हुए सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वमें जाकर तथा मिथ्यात्वके दो समय अधिक मत्कर्मवाला होकर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ उस द्वितीय समयवर्ती सम्यग्दृष्टिके जघन्य वृद्धि होती है ।

§ ८५०. क्योंकि वेदकत्तम्यक्त्वको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें मिथ्यात्वकी दो समय अधिक स्थितिको संक्रमित करके तथा वही अध-स्थितिके एक निषेकको गलाकर दूसरे समयमें प्रथम समयमें हुए संक्रमसे एक समय अधिकका संक्रम करनेपर स्पष्टरूपसे एक समयमात्र जघन्य वृद्धि उपलब्ध होती है ।

* हानिका भंग शेष कर्मोंके समान है ।

§ ८५१. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि अधःस्थितिकी गलना होनेसे एक समयमात्र हानिका सर्वत्र कोई प्रतिषेध नहीं है ।

* अवस्थानका भंग उत्कृष्टके समान है ।

§ ८५२. यह सूत्र भी सुगम है; क्योंकि प्रकारान्तरका प्राप्त होना असम्भव है । इस प्रकार ओघसे जघन्य और उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानके स्वामित्वका निर्णय किया ।

§ ८५३. आगे आदेशका कथन करनेके लिए उच्चारणाको बतलाते हैं । यथा—स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—आघ और आदेश । आघसे मिथ्यात्व और सोलह कपायोंके स्थितिसंक्रमकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? चतुःस्थान यवमध्यके उपर अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिका संक्रम करनेवाले जिस जीवने

गंकामेमाणो तदो उक्कस्मं दाहं गंतूण उक्कस्सट्ठिदिं पवट्ठो तस्म आवलियादीदस्स तस्स उक्क० वट्ठी । तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं । उक्क० हाणी कस्म ? अण्णदर० जो उक्कस्मट्ठिदिं मंकामेमाणो उक्कस्मट्ठिदिंखंडयं हणइ तस्म उक्क० हाणी । एवं णवण्हं णोकमायाणं । णवणि उक्क० वट्ठी कस्म ? गोलुगक० उक्क०ट्ठिदिं पडिच्छिदूणावलियादीदस्स तस्म उक्क० वट्ठी । तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं । मम्मत्त-मम्मामि० उक्क० वट्ठी कस्म ? अण्णद० जो तप्पाओग्गजहण्णट्ठिदिं मंका० मिच्छ० उक्क०ट्ठिदिं वंधिदूण ट्ठिदिधादमकादूणंतामुदुत्तं मम्मत्तं पडिवज्जिय तस्म विदियममयवेदयमम्माइड्डिम्म तस्म उक्कस्मिया वट्ठी । उक्कस्मवट्ठाणं कस्म ? अण्णद० जो पुब्बुप्पण्णादो सम्मत्तादो मिच्छत्तस्म ममयुत्तरट्ठिदिं वंधिय मम्म० पडिव० तस्म उक्क० अवट्ठाणं । उक्क० हाणी कस्म ? अण्णद० जो उक्क० ट्ठिदिं मंका० उक्क० ट्ठिदिंखंडयं हणइ तस्स उक्क० हाणी । एवं चदुमु गदीमु । णवणि पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छ०-मोलमक०-णवणोक्क० उक्क० वट्ठी कस्म ? अण्णद० जो तप्पाओग्गजहण्णट्ठिदिं मंका० तप्पाओग्ग-उक्क०ट्ठिदिं पवट्ठो तस्म आवलियादीदस्म उक्क० वट्ठी । तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठा० । उक्क० हाणी विहत्तिभंगो । मम्म० मम्मामि० उक्क० हाणी विहत्तिभंगो । आणदादि णवणेवज्जा ति मिच्छ०-मोलमक०-णवणोक्क० उक्क० हाणी विहत्तिभंगो । मम्म०-

उत्कृष्ट दाहको प्राप्त होकर उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया, उस जीवके एक आवलिके वाद स्थितिसंक्रम की उत्कृष्ट वृद्धि होती है। उसी जीवके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करनेवाला जो जीव उत्कृष्ट स्थितिकाएकका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। इसी प्रकार नौ नोकपायोंका स्थापित्य है। किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? सोलह कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करके जिसका एक आवलि काल गया है उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है। तथा उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका संक्रम करनेवाले जिस जीवने मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्धकर स्थितिघात किये बिना अन्त-मुहूर्तमें सम्यक्त्वका प्राप्त किया है द्वितीय समयवर्ती उस वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके उत्कृष्ट वृद्धि होती है। उत्कृष्ट अवस्थान किसके होता है ? जो पहले उत्पन्न हुए सम्यक्त्वसे मिध्यात्वमें जाकर मिध्यात्वकी एक समय अधिक स्थितिका बन्धकर सम्यक्त्वका प्राप्त हुआ है उसके उत्कृष्ट अवस्थान होता है। उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करनेवाला जो जीव उत्कृष्ट स्थितिकाएकका घात करना है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। इसीप्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय तियञ्च अपयाप्त और मनुष्य अपयाप्तकोंमें मिध्यात्व, सोलह कपायों और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका संक्रम करनेवाले जिस जीवने तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है उसके एक आवलिके वाद उत्कृष्ट वृद्धि होती है। उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। उत्कृष्ट हानिका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट हानिका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है। आनत कल्पसे लेकर नौ प्रेक्ष्यक तकके देवोंमें मिध्यात्व, सोलह कपायों और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट हानिका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि

सम्मामि० उक्० बड्डी कस्स ? जो वेदगपाओगसम्मत्तजहण्णद्विदिसंकायओ मिच्छाड्डी सम्मतं पडि० तस्स विदियसमयवेदयसम्माइडिस्स उक्० बड्डी । हाणी विहत्तिभंगो । अणुदिसादि सच्चट्टा त्ति २८ पयडीणं हाणी विहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

६ ८५४. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक्क० जह० बड्डी कस्स ? अण्णद० जो समयूण्क०द्विदिसंकायादो तदो उक्० द्विदिं पवदो तस्स आवलियादीदस्स तस्म जह० बड्डी । जह० हाणी कस्स ? अण्णद० उक्०द्विदिसंकायादो समयूण्क०द्विदिं संकामयस्स तस्म जहण्णिया हाणी ? एयदरत्थमवट्टाणं । सम्म०-सम्मामि० जह० बड्डी कस्स ? अण्णद० जो पुच्चुप्पण्णादो सम्मत्तादो मिच्छत्तस्स विदियसमयुत्तरं द्विदिं बंधियूण सम्मतं पडिवण्णो तस्स विदियसमयसम्माइडि० तस्म जह० बड्डी । जह०मवट्टाणमुक्कस्सभंगो । हाणी अधद्विदिं गालेमाणस्स । एवं चदुगदीमु । णवरि पंचि०तिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० सम्म०-सम्मामिच्छत्त० अवट्टाणं बड्डी च णत्थि । आणदादि णवगेवजा त्ति २६ पयडीणं जह० हाणी अधद्विदिं गालयमाणयस्स । सम्म०-सम्मामि० जह० बड्डी कस्स ? अण्णद० जो सम्माइड्डी मिच्छत्तं गंतूण एयं द्विदिखंडयमुव्वेलेयूण सम्मतं पडिवण्णो किमके होनी हैं ? वेदकमस्यक्ताके याग्य जघन्य स्थितिका संक्रम करनेवाला जो मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ द्वितीय समयवर्ती उस वेदकमस्यदृष्टि जीवके उत्कृष्ट वृद्धि होती है । उत्कृष्ट हानिका भंग स्थितिभिक्तिके समान है । अनुदिशमे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें २५ प्रकृतियोंकी हानिका भंग स्थितिभिक्तिके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

६ ८५४. जघन्यका प्रकरण है । दो प्रकारका निर्देश है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य वृद्धि किमके होती है ? एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करनेवाले अन्यतर जिन जीवने उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया, एक आबलिके बाद उस जीवके उत्कृष्ट वृद्धि होती है । जघन्य हानि किमके होती है ? जिन अन्यतर जीवने उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करके एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम किया उसके जघन्य हानि होती है । तथा इतनेमें किसी एक जगह जघन्य अवस्थान होता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य वृद्धि किमके होती है ? जो अन्यतर जीव पहले उत्पन्न हुए सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वमें जाकर मिथ्यात्वकी दो समय अविक स्थितिका बन्ध कर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ उस द्वितीय समयवर्ती सम्यग्दृष्टिके जघन्य वृद्धि होती है । जघन्य अवस्थानका भंग उत्कृष्टके समान है । हानि अधःस्थितिको गलानेवालेके होती है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अवस्थान और वृद्धि नहीं है । आनत कल्पसे लेकर नौ प्रबंधक तकके देवोंमें २६ प्रकृतियों जघन्य हानि अधःस्थितिको गलानेवालेके होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य वृद्धि किमके होती है ? जो अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वमें जाकर एक स्थितिकाण्डककी उद्वेलना करके सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ, द्वितीय समयवर्ती उस जीवके जघन्य

१. ता०प्रतौ उक्० हाणी (बड्डी) वड्डी (हाणी) विहत्तिभंगो इति पाठः ।

तस्स विदियममयमम्माइट्टिस्स जह० वड्डी । हाणी अधट्टिदिं गालयमाणयस्स । अणुदिसादि सव्वट्ठा त्ति २८ पय० जह० हाणी अधट्टिदिं गालयमाण० । एवं जाव० ।

❀ अप्पाबहुअं ।

§ ८५५. जहणुक्कस्सवड्डी-हाणि-अवट्ठाणाणं पमाणविसयणिण्णयकरणट्टमप्पा-बहुअमिदाणि कायच्चमिदि भणिदं होइ ।

❀ मिच्छत्त-सोलसकसाय-इत्थि-पुरिसवेद-हस्स-रदीणं सव्वत्थोवा उक्कस्सिया हाणी ।

§ ८५६. कुदो ? अंतोकोडाकोडिपरिहीणमत्तग्गि-चत्तालीससागरोवमकोडाकोडि-पमाणत्तादो ।

❀ वड्डी अवट्ठाणं च दो वि तुल्लाणि विसेसाहियाणि ।

§ ८५७. केत्तियमेत्तो विसेसो ? अंतोकोडाकोडिमेत्तो । एत्थ कारणं पुब्बमेव परूविदं ।

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वत्थोवो अवट्ठाणसंकमो ।

§ ७५८. एयणिसेयपमाणत्तादो ।

❀ हाणिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ८५९. उक्कस्सट्टिदिखंडयपमाणत्तादो ।

वृद्धि होती है । हानि अधःस्थितिको गलानेवालेके होती है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें २८ प्रकृतियोंकी जघन्य हानि अधःस्थितिको गलानेवालेके होती है । इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

❀ अल्पवहुत्वका अधिकार है ।

§ ८५५. जघन्य और उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानका प्रमाणविषयक निर्णय करनेके लिए इस समय अल्पवहुत्व करना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

❀ मिथ्यात्व, मोलह कपाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और गतिकी उत्कृष्ट हानि सबसे स्तोक है ।

§ ८५६. क्योंकि वह अन्तःकोड़ाकोड़ी हीन मत्तर और चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है ।

❀ उससे वृद्धि और अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर विशेष अधिक हैं ।

§ ८५७. विशेषका प्रमाण कितना है ? अन्तःकोड़ाकोड़ीमात्र है । यहाँ पर कारणका कथन पहले ही कर आये हैं ।

❀ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अवस्थानमंक्रम सबसे स्तोक है ।

§ ८५८. क्योंकि वह एक निषेकप्रमाण है ।

❀ उससे हानिसंक्रम असंख्यातगुणा है ।

§ ८५९. क्योंकि वह उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकप्रमाण है ।

❀ वृद्धिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ८६०. केत्तियमेत्तेण ? अंतोकोडाकोडिमेत्तेण ।

❀ एवुंसयवेद-अरइ-सोग-भय-दुगुंझाणं सव्वत्थोवा उक्कस्सिया वड्डी अवट्ठाणं च ।

§ ८६१. कुदो ? एदेसिमुक्कस्सवड्डीए अवट्ठाणस्स च पल्लिदोवमासंखेज्जभाग-अहियवीससागरोवमकोडाकोडिपमाणत्तदंसणादो ।

❀ हाणिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ८६२. केत्तियमेत्तेण ? अंतोकोडाकोडिपरिहीणवीममागरो०कोडाकोडिमेत्तेण ।

❀ एत्तो जहणण्यं ।

§ ८६३. सुगमं ।

❀ सव्वासिं पयडीणं जहण्णिया वड्डी हाणी अवट्ठाणं द्विदिसंकमो तुल्लो ।

§ ८६४. कुदो ? मव्वपयडीणं जहण्णवड्ढि-हाणि-अवट्ठाणाणमेयद्विदिपमाणत्तादो । आदेशेण सव्वमग्गणामु जहण्णुकस्मप्पावहुअं द्विदिविहत्तिभंगो ।

एवं पदाणवखेवो ममत्तो ।

❀ वड्डीए तिणिण अणिओगदाराणि ।

* उससे वृद्धिसंकम विशेष अधिक है ।

§ ८६०. कितना अधिक है ? अन्तःकोडाकोडीप्रमाण अधिक है ।

* नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थान सबसे स्तोक है ।

§ ८६१. क्योंकि इनकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थान पल्लयका अमंख्यातवाँ भाग अधिक वीस कोडाकोडी सागरप्रमाण देखा जाता है ।

* उनसे हानिमंकम विशेष अधिक है ?

८६२ कितना अधिक है ? अन्तःकोडाकोडी हीन वीस कोडाकोडी सागरप्रमाण अधिक है ।

* आगे जघन्यका प्रकरण है ।

§ ८६३. यह सूत्र सुगम है ।

* मव प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान स्थितिसंकम तुल्य है ।

§ ८६४. क्योंकि सब प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान एक स्थितिप्रमाण है आदेशसे सब मार्गणाओमें जघन्य और उत्कृष्ट अत्यवहुत्वका संग स्थितिविभक्तिके समान है ।

* वृद्धिका अधिकार है । उसमें तीन अनुयोगद्वार हैं ।

§ ८६५. का वङ्गी णाम ? पदणिकखेवविसेसो वङ्गी । तत्थ तिण्णि अणियोग-
हागणि भवंति त्ति पङ्णं काऊण तण्णामणिदेसकरणट्टमुवरिमसुत्तमाह—

❀ समुक्कित्तणा परूवणा अप्पावहुए त्ति ।

§ ८६६. तत्थ समुक्कित्तणा णाम सव्वकम्माणं एत्तियाओ वङ्गीओ एत्तियाओ च
हाणीओ अवट्टाणमवत्तव्वयं च अत्थि णत्थि त्ति संभवासंभवमेत्तपरूवणा । एवं च
सामण्णेण ममुक्कित्तिदाणं वङ्गी-हाणिविसेसाणं विसयविभागपरिक्खा परूवणा त्ति भण्णइ ।
वङ्गी-हाणिविसेसावट्टाणावत्तव्वसंक्रामयाणं जीवाणमोघादेसेहि थोववहुत्तपरूवणा अप्पा-
वहुअं णाम । एदाणि तिण्णि चैव अणियोगद्वाराणि सामित्तादीणमेत्थेव अंतंभावदंसणादो ।
तदो समुक्कित्तणादीणि तेरम अणियोगद्वाराणि उच्चारणासिद्धाणि ण सुत्तबहिब्भूदाणि
त्ति घेत्तव्वं ।

❀ तत्थ समुक्कित्तणा ।

§ ८६७. तेसु अणंतरणिदिट्टाणिओगद्वारेसु समुक्कित्तणा ताव विहासियव्वा त्ति
भणिदं होइ ।

❀ तं जहा —

§ ८६८. सुगममेदं पुच्छावक्कं ।

§ ८६५ शंका—वृद्धि किसे कहते हैं ?

समाधान—पदनिक्षेपविशेषको वृद्धि कहते हैं ।

उसमें तीन अनुयोगद्वार हैं इस प्रकार प्रतिज्ञा करके उसका नामनिर्देश करनेके लिए
आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ समुत्कीर्तना, प्ररूपणा और अल्पबहुत्व ।

§ ८६६. सब कर्मोंकी इतनी वृद्धि, इतनी हानि, अवस्थान और अवक्तव्य है या नहीं है
इसप्रकार इतनेसे कौन सम्भव है और कौन सम्भव नहीं है इसकी प्ररूपणा करनेको समुत्कीर्तना
कहते हैं । इस प्रकार जिनकी सामान्यसे समुत्कीर्तना की है उनकी वृद्धिविशेष और हानिविशेषकी
विषयविभागसे परीक्षा करना प्ररूपणा कहलाती है । तथा वृद्धिविशेष, हानिविशेष, अवस्थान और
अवक्तव्यपदके संक्रामक जीवोंके आघ और आदेशसे अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा करना अल्पबहुत्व
है । इसप्रकार ये तीन ही अधिकार हैं, क्योंकि स्वामित्व आदिकका इन्हींमें अन्तर्भाव देखा
जाता है । इसलिए उच्चारणमे प्रसिद्ध समुत्कीर्तना आदिक तेरह अनुयोगद्वार सूत्रसे थहिभूत नहीं
है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए ।

❀ प्रकृतमें समुत्कीर्तनाका अधिकार है ।

§ ८६७. उन अनन्तर निर्दिष्ट अनुयोगद्वारोंमें सर्वप्रथम समुत्कीर्तनाका व्याख्यान करना
चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

❀ यथा—

§ ८६८. यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

❀ मिच्छत्तस्स असंखेज्ज भागवट्ठिहाणी संखेज्ज भागवट्ठिहाणी
संखेज्ज गुणवट्ठिहाणी असंखेज्ज गुणहाणी अबट्ठाणं च ।

§ ८६०. कथमेदिमि तिण्हं वट्ठीणं चउण्हं हाणीणं च मिच्छत्तद्विदिमंक्रमविसए
संभवो ? उच्चदे—मिच्छत्तधुवट्ठिदिमंक्रमादो अंतोकोडाकोडिपमाणादो समयुत्तरादिकमेण
वट्ठमाणस्स असंखेज्ज भागवट्ठी चैव होऊण गच्छइ जाव धुवट्ठिदीए उवरि धुवट्ठिदि
जहणपरित्तासंखेजेण खंडिय तत्थेयखंडमेत्तेण धुवट्ठिदिमंक्रमो अहिओ जादो ति ।
एत्तो उवरि वि अमंखे० भागवट्ठिविसत्तो चैव जाव हेट्ठिमवियप्पाणमुक्कस्मसंखेज्जपडि-
भागियमेगभागं रूवणमेत्तं वट्ठिदं ति । तदो संखेज्ज भागवट्ठी पारभदि, तत्थ धुवट्ठिदीए
उवरि धुवट्ठिदिमुक्कस्मसंखेजेण खंडिय तत्थेयखंडयमेत्तद्विदिसक्रमवट्ठीए दंसणादो ।
एत्तो संखेज्ज भागवट्ठिविमओ ताव गच्छइ जाव धुवट्ठिदीए उवरि रूवणधुवट्ठिदिमेत्तं
वट्ठिदं ति । पुणो धुवट्ठिदीए उवरि धुवट्ठिदिमेत्तं चैव वट्ठियूण मंक्रामेमाणस्स संखेज्ज-
गुणवट्ठिपारंभो होऊण ताव गच्छइ जाव धुवट्ठिदिपाओग्गउक्कस्मद्विदिसक्रमो जादो ति ।
एवं धुवट्ठिदिमंक्रमं णिरुद्धं कादूण तिण्हं वट्ठाणं संभवो परूविदो ! समयुत्तरादिधुवट्ठिदीणं
पि पुघ पुघ णिरुभणं काऊण जहासंभवमेवं चैव तिविहवट्ठिसंभवगवेसणा कायच्चा ।
एवं सण्णिपंचिंदियपज्जत्तस्म सत्थाणेण तिविहवट्ठिसंभवो परूविदो । तदपज्जत्तस्म वि

* मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि-हानि, संख्याभागवृद्धि-हानि, संख्यातगुण-
वृद्धि-हानि, असंख्यातगुणहानि और अवस्थान है ।

§ ८६१. शंका—मिथ्यात्वके स्थितिसंक्रमके विषयमे इन तीन वृद्धियों और चार हानियों-
की कैसे सम्भावना है ?

समाधान—कहते हैं—मिथ्यात्वके अन्तःकोडाकोड़ीप्रमाण ध्रुवस्थितिसंक्रमसे एक समय
अधिक आदिके क्रमसे वृद्धिको प्राप्त होनेवाले जीवके ध्रुवस्थितिमे जघन्य परीतासंख्यातका भाग
देकर वहाँपर लब्ध आये एक भागसे ध्रुवस्थितिमे ध्रुवस्थितिसंक्रमके अधिक होने तक असंख्यात-
भागवृद्धिका प्रवाह ही चालू रहता है । तथा आगे भी, नीचेके विकल्पोंमे उत्कृष्ट असंख्यातका भाग
देकर जो एक भाग लब्ध आवे उसमेसे एक कम विकल्पोंकी वृद्धि होने तक असंख्यातभागवृद्धिका
ही विषय है । इसके आगे संख्यातभागवृद्धि प्रारम्भ होती है, क्योंकि वहाँ पर ध्रुवस्थितिके ऊपर
ध्रुवस्थितिको उत्कृष्ट संख्यातसे भाजित कर वहाँ जो एक भाग लब्ध आवे तत्प्रमाण स्थितिसंक्रमकी
वृद्धि देखी जाती है । इससे आगे संख्यातभागवृद्धिका विषय तब तक बना रहता है जब तक
एक कम ध्रुवस्थितिमात्र वृद्धि ध्रुवस्थितिमे होती है । पुनः ध्रुवस्थितिमे ध्रुवस्थितिमात्र बढ़ाकर संक्रम
करनेवाले जीवके संख्यातगुणवृद्धिका प्रारम्भ होकर तब तक जाता है जब तक ध्रुवस्थितिके योग्य
उत्कृष्ट संक्रम होता है । इस प्रकार ध्रुवस्थितिसंक्रमको विवक्षित कर तीन वृद्धियोंकी सम्भावना कही ।
एक समय अधिक आदि ध्रुवस्थितियोंको भी पृथक् पृथक् विवक्षित कर इसीप्रकार तीन वृद्धियाँ
सम्भव हैं इसका विचार कर लेना चाहिए । इस प्रकार संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवके स्वस्थानकी
अपेक्षा तीन प्रकारकी वृद्धि सम्भव है इसकी प्ररूपणा की । संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके भी

एवं चेव तिण्हं वट्टीणं मत्थाणेण संभवो वत्तव्वो, तत्थ वि तप्पाओग्गधुवट्टिदीदो संखेज्जगुणं अंतोकोडाकोडिमेत्तट्टिदिसंकमवुट्टीए विरोहाभावादो । एवं सेसजीवसमासेसु वि सत्थानवुट्टी अणुमग्गियव्वो । णवरि वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियासण्णिपंचिंदिय-पज्जत्तापज्जत्तएसु मगमगधुवट्टिदिसंकमादो उवरि वट्टुमाणेसु असंखेज्जभागवट्टि-संखेज्जभाग-वुट्टिसण्णिदाओ दो चेव वट्टीओ मंमवंति, पल्लिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्तेसु तव्वीचार-ट्टाणेसु संखेज्जगुणवट्टीए णिव्विसयत्तादो । वादर-मुट्टुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्तएसु पुण असंखे०भागवट्टी एका चेव, तव्वीचारट्टाणाणं पल्लिदोवमासंखेज्जभागणियमदंसणादो । एत्थ परत्थाणेण वि तिविहवुट्टिसंभवो विहत्तिभंगेणाणुगंतव्वो ।

§ ८७०. मंपहि चउण्हं हाणीणं विमओ उच्चदे । तं जहा—अधट्टिदिगलणेण ट्टिदिमंकमस्सामंखेज्जभागहाणी चेव, पयागंतगमंभवादो । ट्टिदिखंडयघादेण चउच्चिहा वि हाणी होइ, कत्थ वि ट्टिदिमंतकम्मादो अमंखेज्जभागस्स कत्थ वि संखेज्जभागस्स कत्थ वि संखेज्जाणं भागाणं कत्थ वि अमंखेज्जाणं च भागाणं घादमंभवादो । सेसपरूवणाए ट्टिदिविहत्तिभंगो । मंपहि अवट्टाणविमओ उच्चदे—तिण्हमण्णदग्गुट्टीए अमंखेज्जभाग-हाणीए च अवट्टाणं दट्टव्वं, तप्परिणाभेणेयसमयमवट्टिटम्म विदियममए तेत्तियमेत्तावट्टाणे विगोहाभावादो । सेसहाणीसु ण संभवइ, तत्थ विदियसमए असंखेज्जभागहाणिणियम-

स्वस्थानकी अपेक्षा इसी प्रकार तीन वृद्धियाँ सम्भव है यह कहना चाहिए, क्योंकि उन जीवोंमें भी ध्रुवस्थितसे संख्यातगुणी अन्तःकोडाकोड़ीप्रमाण संक्रमवृद्धिके होनेमें विरोध नहीं है। इसीप्रकार शेष जीवसमासोंमें भी स्वस्थानवृद्धिका विचार कर लेना चाहिए। किन्तु इतना विशेषता है कि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञा पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवसमासोंमें अपने अपने ध्रुवस्थितिसंक्रमसे आगे वृद्धि होनेपर असंख्यातभागवृद्धि और संख्यातभाग-वृद्धि नामवाली दो वृद्धियाँ ही सम्भव है, क्योंकि उनके पत्यके संख्यातवे भागप्रमाण वीचारस्थानोंमें संख्यातगुणवृद्धिका कोई विषय उपलब्ध नहीं होता। परन्तु वादर एकैन्द्रिय और सूक्ष्म एकैन्द्रिय पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंमें एक असंख्यातभागवृद्धि ही पाई जाती है, क्योंकि उनके वीचारस्थानोंका पत्यके असंख्यातवे भागप्रमाण होनेका नियम देखा जाता है। यहाँ पर परस्थानकी अपेक्षा तीन प्रकारकी वृद्धि सम्भव है यह बात स्थितिबिभक्तिके समान जान लेनी चाहिए।

§ ८७०. अब चार हानियोंका विषय कहते हैं। यथा—अधर्गस्थितिगलनाके द्वारा स्थिति-संक्रमकी असंख्यातभागहानि ही होती है, यहाँ पर अन्य कोई प्रकार सम्भव नहीं है। परन्तु स्थितिकाण्डकघातसे चारों प्रकारकी हानि होती है, क्योंकि कहीं पर स्थितिसत्कर्मसे उसके असंख्यातवे भागका, कहींपर संख्यातवे भागका, कहीं पर संख्यात बहुभागका और कहीं पर असंख्यात बहुभागका घात सम्भव है। शेष प्ररूपणा स्थितिबिभक्तिके समान है। अब अबस्थानके विषयको बतलाते हैं—तीन वृद्धियोंमेंसे किसी एक वृद्धिके तथा असंख्यातभागहानिके होने पर अबस्थान जानना चाहिए, क्योंकि उक्त प्रकारके परिणामसे एक समय तक अवस्थित हुए जीवके दूसरे समयमें उतना ही अबस्थान होनेमें विरोध नहीं है। परन्तु शेष हानियोंमें अबस्थान सम्भव नहीं है, क्योंकि वहाँ पर दूसरे समयमें असंख्यातभागहानिका नियम देखा जाता है। इस प्रकार

दंसणादो । एवमेदेसिं वड्वि-हाणि-अवट्टाणाणं मिच्छत्तविसयाणं समुक्तिणं काऊण तत्थावत्तव्वसंकमाभावं परूवेदुमुत्तरसुत्तमाह—

❀ अवत्तव्वं एत्थि ।

§ ८७१. कुदो ? अमंकमादो तस्स संकमपवुत्तीण मव्वद्वमणुवलंभादो ।

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं चउच्चिहा वड्डी चउच्चिहा हाणी अवट्टाणमवत्तव्वयं च ।

§ ८७२. तं जहा—तत्थ ताव अमंखेजभागवड्विविययरूवणा कीग्दे—एक्को मिच्छत्तधुवड्विदिमेत्तम्मत्त-सम्मामिच्छत्तड्विदीण उवरि दुममयुत्तगमिच्छत्तड्विदिमंतकम्मिओ सम्मत्तं पडिवण्णो । तत्थामंखेजभागवड्वीए पढमवियण्णो हाइ । मंपहि पढमवारणिरुद्ध-सम्मत्तड्विदिसंकमादो तिगमयुत्तरादिकमेण मिच्छत्तधुवड्विदिं वड्ढाविय तेणेव णिरुद्धड्विदि-संतकम्मेण सम्मत्तं गेण्हमाणस्म सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं अमंखेजभागवड्वी ताव दडुव्वा जाव णिरुद्धमम्मत्तड्विदिमुक्कस्ममंखेजेण खंडिय तत्थ रूवण्येयखंडमेत्ते वड्ढिवियण्णे लड्ढणा-संखेजभागवड्वी पज्जवमिदा ति । पुणो एदम्हादो पढमवारणिरुद्धमम्मत्तड्विदिसंकमादो समयुत्तर-दुममयुत्तरादिमम्मत्तड्विदीणं पादेक्कं णिरुंभणं काऊण तत्तो दुममयुत्तरादिकमेण मिच्छत्तड्विदिं वड्ढाविय सम्मत्तं गेण्हमाणाममंखेजभागवड्विवियण्णा वत्तव्वा जाव तप्पाओग्गतोमुहुत्तणमत्तग्गिमागगेवमकोडाकोडिमेत्तसम्मत्तड्विदि ति । णवरि मिच्छत्तधुव-मिध्यात्वविषयक इन वृद्धि, हानि और अवस्थानकी समुत्कीर्तना करके वहाँ पर अवक्तव्यसंकमका अभाव है यह कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ अवक्तव्य नहीं है ।

§ ८७१. क्योंकि उसकी असंकमसे संकमकी प्रवृत्ति कहीं भी उपलब्ध नहीं होती ।

❀ सम्यक्त्व और मम्यग्मिध्यात्वकी चार प्रकारकी वृद्धि, चार प्रकारकी हानि, अवस्थान और अवक्तव्य है ।

§ ८७२. यथा—उसमें सर्वप्रथम असंख्यातभागवृद्धिका विषय कहते हैं—जिसकी सम्यक्त्व और मम्यग्मिध्यात्वकी स्थिति मिध्यात्वकी ध्रुवस्थितिके बराबर है ऐसा कोई एक जीव मिध्यात्वकं दो समय अधिक स्थितिसत्कर्मके साथ सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ उसके असंख्यातभागवृद्धिका प्रथम विकल्प होता है । अब पहली बार सम्यक्त्वके विवक्षित स्थितिसंकमसे मिध्यात्वकी ध्रुवस्थितिको तीन समय अधिक आदिके क्रमसे बढ़ाकर उसी विवक्षित स्थितिसत्कर्मके साथ सम्यक्त्वका ग्रहण करनेवाले जीवके सम्यक्त्व और मम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि तब तक जाननी चाहिए जब जाकर सम्यक्त्वकी विवक्षित स्थितिमें उत्कृष्ट संख्यातका भाग देकर जो एक भाग लब्ध आवे उससे एक कम वृद्धिविकल्पोंके आश्रयसे असंख्यातभागवृद्धि अन्तको प्राप्त हो जाती है । फिर प्रथमबार विवक्षित सम्यक्त्वके इस स्थितिसंकमसे एक समय अधिक, दो समय अधिक आदिके क्रमसे सम्यक्त्वकी स्थितियोंको पृथक् पृथक् विवक्षित कर उनमेंसे प्रत्येक स्थितिविकल्पके साथ दो समय अधिक आदिके क्रमसे मिध्यात्वकी स्थितिको बढ़ाकर सम्यक्त्वको ग्रहण करनेवाले जीवोंके असंख्यातभागवृद्धिके विकल्प तत्प्रायोग्य अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण सम्यक्त्वकी स्थितिके प्राप्त होने तक कहने चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि मिध्यात्वकी

द्विदीदो हेडा वि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्तसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तद्विदीणमसंखेज्जभाग-
वड्ढिवियप्पा लब्धंति । ते जाणिय वत्तन्वा ।

§ ८७३. संपहि संखेज्जभागवड्ढीए विसयगवेसणं कस्सामो । तं जहा—मिच्छत्त-
धुवद्विदिमुक्कस्मसंखेजेण खंडिय तत्थेयखंडमेत्तेण तत्तो अब्भहियमिच्छत्तद्विदिसंतकम्मिएण
मिच्छाइट्ठिणा मिच्छत्तधुवद्विदिपमाणसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तद्विदिसंतकम्मेण सह वेदयसम्मत्ते
पडिवण्णे पढमो संखेज्जभागवड्ढिवियप्पो होइ । एत्तो समयुत्तरादिकमेण मिच्छत्तद्विदि-
मणंतरपरुविदपमाणोदो वड्ढाविय णिरुद्धसम्मत्तद्विदीए सह सम्मत्तं गेण्हाविय संखेज्जभाग-
वड्ढिविसयो ताव परुवेयव्वो आव रूवृणधुवद्विदिसमब्भहियमिच्छत्तद्विदिसंतकम्मियं
पत्तो त्ति । एवं चेव ममयुत्तरादिसम्मत्तद्विदिविसेसाणं पि पुध पुध णिरुंभणं काऊण
पयदवड्ढिविसओ समयविरोहेण परुवेयव्वो जाव तप्पाओग्गपलिदोवमसंखेज्जभागपरिहीण-
सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्तसम्मत्तद्विदि त्ति । ताधे तेत्तिमेत्तेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-
द्विदिसंतकम्मेण मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए च किंचूणाए सम्मत्तं पडिवज्जमाणस्स तदपच्छिम-
वियप्पसमुपत्ती होइ । मिच्छत्तधुवद्विदीदो हेडा वि संखेज्जभागवड्ढिविसओ जहासंभवं
विहासेयव्वो ।

§ ८७४. एत्तो संखेज्जगुणवड्ढिविसयपरुवणा कोरदे । तं जहा—पलिदोवमस्स
संखेज्जभागमेत्तसम्मत्तद्विदिसंतकम्मियमिच्छाइट्ठिणा मिच्छत्तस्स तप्पाओग्गंतोकोडाकोडि-

ध्रुवस्थितिके नीचे भी सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी पत्यके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंके
असंख्यातभागवृद्धिसम्बन्धी विकल्प प्राप्त होते हैं सो उन्हें जान कर कहना चाहिए ।

§ ८७३. अब संख्यातभागवृद्धिके विषयका अनुसन्धान करते हैं । यथा—मिध्यात्वकी
ध्रुवस्थितिमें उत्कृष्ट संख्यातका भाग देनेपर प्राप्त हुए एक भागसे अधिक मिध्यात्वके
स्थितिसत्कर्मवाले जीवके मिध्यात्वकी ध्रुवस्थितिके बराबर सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके
स्थितिसत्कर्मके साथ वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेपर संख्यातभागवृद्धिका प्रथम विकल्प
होता है । आगे पहले कहे हुए प्रमाणसे मिध्यात्वकी स्थितिको एक समय अधिक आदिके
क्रमसे बढ़ाकर सम्यक्त्वकी विवक्षित स्थितिके साथ सम्यक्त्वको ग्रहण कराकर एक
कम ध्रुवस्थितिसे अधिक मिध्यात्वके स्थितिसत्कर्मके प्राप्त होने तक संख्यातभागवृद्धिका विषय
कहना चाहिए । तथा इसी प्रकार सम्यक्त्वके एक समय अधिक आदि स्थितिनिर्देशोंको पृथक्-
पृथक् विवक्षित कर प्रवृत्त वृद्धिका विषय समयके अवरोध पूर्वक तत्प्रायोग्य पत्यका संख्यातवों
भागकम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण सम्यक्त्वकी स्थितिके प्राप्त होनेतक कहना चाहिए ।
तब तत्प्रमाण सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके स्थितिसत्कर्मके साथ मिध्यात्वकी कुछकम उत्कृष्ट
स्थितिके सद्भावमें सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवके संख्यातभागवृद्धिके अन्तिम विकल्पकी
उत्पत्ति होती है । इसी प्रकार मिध्यात्वकी ध्रुवस्थितिके नीचे भी संख्यातभागवृद्धिके विषयका
यथासम्भव व्याख्यान करना चाहिए ।

§ ८७४. आगे संख्यातगुणवृद्धिके विषयका व्याख्यान करते हैं । यथा—सम्यक्त्वके
पत्यके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिसत्कर्मवाले मिध्यादृष्टि जीवके उपशमसम्यक्त्वके ग्रहणके
योग्य मिध्यात्वके अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिसत्कर्मके साथ उपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न

मेत्तउवसमसम्मत्तगहणषाओग्गट्टिदिसंतकम्मिण उवसमसम्मत्ते समुप्पाइदे तव्विदिय-
समए संखेज्जगुणवड्डी होइ । एत्तो समयुत्तर-दुसमयुत्तरादिद्विदिवियप्पेहिं मि उवसमसम्मत्तं
पडिवज्जमाणानं संखेज्जगुणवड्डी चेव होऊण गच्छइ जाव सागरोवमपुघत्तमेत्तट्टिदिसंतकम्मं
पत्तमिदि । संपहि वेदगसम्मत्तगहणषाओग्गसव्वजहण्णसम्मत्तट्टिदिं धुवं काऊण मिच्छत्त-
धुवट्टिदिप्पहुडि समयुत्तरादिकमेण वड्ढाविय संखेज्जगुणवड्ढिविसयो परूवेयव्वो जाव
अंतोमुहुत्तूणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमिच्छत्तट्टिदीए सह सम्मत्तं पडिवण्णस्स
सव्वुकस्सो संखेज्जगुणवड्ढिवियप्पो जादो ति । एवं चेव पुव्वणिरुद्धसम्मत्तट्टिदीदो
समयुत्तरादिसम्मत्तट्टिदीणं च पादेकं णिरुंभणं काऊण संखेज्जगुणवड्ढिवियप्पा परूवेयव्वा
जाव सम्मत्तट्टिदिसंतकम्मं मिच्छत्तधुवट्टिदीए अट्टमेत्तं जादं ति । एत्तो उवरि णिरुद्ध-
सम्मत्तट्टिदीदो दुगुणमिच्छत्तट्टिदिसंतकम्मियमादिं कादूण सम्मत्तं पडिवज्जाविय णेदव्वं
जाव सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीणमंतोमुहुत्तूणाणमट्टमेत्तसम्मत्तट्टिदिसंतकम्मं पत्तं ति ।

§ ८७५. संपहि सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणमसंखेज्जगुणवड्ढिविसओ परूविज्जदे ।
तं जहा—सव्वजहण्णचरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालिमेत्ततदुभयसंतकम्मियमिच्छाइट्टिणा
उवसमसम्मत्ते गहिदे पढमसंखेज्जगुणवड्ढिणाणमुप्पज्जइ । एवमुवरिमट्टिदिवियप्पेहिं मि
मम्मत्तं पडिवज्जाविय णिरुद्धवड्ढिविसयो परूवेयव्वो जाव चरिमवियप्पो ति । तत्थ
चरिमवियप्पो वुच्चदे । तं जहा—उवसमसम्मत्तपाओग्गसव्वजहण्णमिच्छत्तट्टिदिं जहण्ण-

करनेपर उसके दूसरे समयमें संख्यातगुणवृद्धि होती है । इससे आगे एक समय अधिक और दो
समय अधिक आदि स्थितिविकल्पोंके साथ भी उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंके
सागरपृथक्त्वप्रमाण स्थितिसत्कर्मके प्राप्त होने तक संख्यातगुणवृद्धि ही होती रहती है । अब
वेदकसम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य सबसे जघन्य सम्यक्त्वकी स्थितिको ध्रुव करके मिथ्यात्वकी
ध्रुवस्थितिसे लेकर एक समय अधिक आदिके क्रमसे उसे बढ़ाते हुए अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर
कोडाकोड़ी सागरप्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितिके साथ सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवके संख्यातगुण-
वृद्धिका सर्वोत्कृष्ट विकल्प प्राप्त होनेतक संख्यातगुणवृद्धिका विषय कहना चाहिए । तथा इसीप्रकार
पूर्वमें विवक्षित सम्यक्त्वकी स्थितिसे एक समय अधिक आदि सम्यक्त्वकी स्थितियोंको पृथक्-पृथक्
विवक्षित कर, सम्यक्त्वके स्थितिसत्कर्मके मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिके अर्धभागप्रमाण होनेतक,
संख्यातगुणवृद्धिके विकल्प कहने चाहिए । इससे आगे सम्यक्त्वकी विवक्षित स्थितिसे दूने
मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मसे लेकर सम्यक्त्वको प्राप्त कराकर सत्तर कोडाकोड़ीके अन्तर्मुहूर्तकम
अर्धभागप्रमाण सम्यक्त्वके स्थितिसत्कर्मके प्राप्त होने तक संख्यातगुणवृद्धिके विकल्प
जानने चाहिए ।

§ ८७५. अब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणवृद्धिके विषयको कहते
हैं । यथा—उक्त दोनों कर्मोंके सबसे जघन्य अन्तिम उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालिप्रमाण
सत्कर्मवाले मिथ्यावृष्टि जीवके उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करनेपर प्रथम असंख्यातगुणवृद्धिस्थान
उत्पन्न होता है । इसी प्रकार उपरिम स्थिति विकल्पोंके साथ भी सम्यक्त्वको प्राप्त कराकर विवक्षित
वृद्धिके अन्तिम विकल्पके प्राप्त होने तक उसके विषयका कथन करना चाहिए । प्रकृतमें अन्तिम
विकल्पको कहते हैं । यथा—उपशमसम्यक्त्वके योग्य सबसे जघन्य मिथ्यात्वकी स्थितिको

परिचामंखेजेण खंडिय तत्थेयखंडयमेत्तसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्टिदिमंतकम्मिएण मिच्छा-
इट्टिणा मिच्छत्तस्म तप्पाओग्गजहण्णंतोकोडाकोडिमेत्तट्टिदीए सह उवसममम्मत्ते पडिवण्णे
उवसममम्मत्तपाओग्गमिच्छत्तधुवट्टिदिणिवंधणाणमसंखेज्जगुणवट्टिवियप्पाणमपच्छिमो
वियप्पो होइ । एवमुवममम्मत्तपाओग्गमिच्छत्तट्टिदीणं पत्तेयणिरोहं काऊण असंखेज-
गुणवट्टिविमयो अणुमग्गियव्वो जाव तत्तो संखेज्जगुणमेत्तंतोकोडाकोडिपमाणं पत्तो त्ति ।
एवं चउण्हं वट्टीणं विसयविभागो परूविदो ।

§ ८७६. संपहि हाणिचउक्कस्स विसओ मिच्छत्तस्सेवाणुगंतव्वो । संपहि अवट्टाण-
विसयपरूवणा कीरदे । तप्पाओग्गजहण्णंतोकोडाकोडिमेत्तसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्टिदिमंत-
कम्मादो समयुत्तरमिच्छत्तट्टिदिसंतकम्मिएण सम्मत्ते गहिदे पयदकम्माणमवट्टिदो ट्टिदि-
मंकमो होइ । एत्तो उवरिमट्टिदिवियप्पेहिं मि समयुत्तरमिच्छत्तट्टिदिपडिग्गहवसेणावट्टाण-
मंकमो वत्तव्वो जाव अंतोमुहुत्तूणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडि त्ति । णिस्संतकम्मिय-
मिच्छाइट्टिणा उवसमसम्मत्ते पडिवण्णे तच्चिदियसमए अवत्तव्वसंकमो होइ । तम्हा
चउच्चिहा वट्टी हाणी अवट्टाणमवत्तव्वं च पयदकम्माणमत्थि त्ति मिद्धं ।

❀ सेसकम्माणं मिच्छत्तभंगो ।

§ ८७७. एत्थ सेमग्गहणेण मोलसकसाय-णवणोकमायाणं गहणं कायव्वं ।
तेमिं मिच्छत्तभंगो, तिण्हं वट्टीणं चउण्हं हाणीणमवट्टाणम्म च संभवं पडि तत्तो.विसेसा-

जघन्य परीतामंख्यातसे भाजित कर वहाँ पर एक भागप्रमाण सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मवाले मिथ्यादृष्टि जीवके मिथ्यात्वकी तत्प्रायोग्य अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण जघन्य स्थितिके साथ उपशमसम्यक्त्वके प्राप्त होने पर उपशमसम्यक्त्वके योग्य मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिको निमित्तकर असंख्यातगुणवृद्धिके प्राप्त होनेवाले विकल्पोमे अन्तिम विकल्प होता है । इस प्रकार उपशमसम्यक्त्वके योग्य मिथ्यात्वकी स्थितियोंमेसे प्रत्येकको विवश्रित कर असंख्यातगुणवृद्धिका विषय तब तक जानना चाहिए जब जाकर सम्यक्त्वकी पूर्वोक्त स्थितिसे संख्यातगुणा अन्तःकोड़ा-कोड़ीका प्रमाण प्राप्त होता है । इस प्रकार चार वृद्धियोंके विषयविभागका कथन किया ।

§ ८७६. हानिचतुप्पका विषय मिथ्यात्वके समान ही जानना चाहिए । अब अवस्थानके विषयका कथन करते हैं—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके तत्प्रायोग्य अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिसत्कर्मसे मिथ्यात्वके एक समय अधिक स्थितिसत्कर्मवाले जीवके द्वारा सम्यक्त्वके ग्रहण करनेपर प्रकृत कर्मोका अवस्थित स्थितिसत्कर्म होता है । इससे आगे उपरिम स्थिति-विकल्पोंके साथ भी मिथ्यात्वके एक समय अधिक स्थितिके प्रतिग्रह वश अवस्थानविकल्प अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिके प्राप्त होनेतक कहने चाहिए । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्कर्मसे रहित मिथ्यादृष्टिके द्वारा उपशमसम्यक्त्वके प्राप्त होने पर उसके दूसरे समयमें अवक्तव्यसंक्रम होता है, इसलिए चार प्रकारकी वृद्धि, चार प्रकारकी हानि, अवस्थान और अवक्तव्य प्रकृत कर्मोका है यह सिद्ध हुआ ।

* शेष कर्मोका भंग मिथ्यात्वके समान है ।

§ ८७७. यहाँपर शेष पदके ग्रहण करनेसे सोलह कपाय और नौ नोकपायोंका ग्रहण करना चाहिए । उनका भंग मिथ्यात्वके समान है, क्योंकि तीन वृद्धि, चार हानि और अवस्थानके

भावादो । संपहि एत्थनणविसेसपदुप्पायणद्वमिदमाह—

❀ एवरि अवत्तव्वयमत्थि ।

§ ८७८. मिच्छत्तस्सावत्तव्वयं णत्थि त्ति वुत्तं । एत्थ वुण विसंजोयणापुव्वसंजोगे सव्वोवसामणापडिवादे च तस्संभवो अत्थि त्ति एमो विसेसो । अण्णं च पुरिसवेद० तिण्हं संजलणाणमसंखेज्जगुणवद्धिमंभवो वि अत्थि, उवसमसेटीए अप्पण्णो णवकबंध-संक्रमणावत्थाए कालं कारुण देवेसुववण्णयम्मि तदुवलद्वीदो । ण चायं विसेसो सुत्ते णत्थि त्ति संकण्णिज्जं, अवत्तव्वसंक्रामयसंभववयणेणेव देसामासयभावेण संगहियत्तादो मरणसण्णिदवाधादेण विणा सत्थाणे चेव समुक्तिणाए सुत्तयारेणाहिप्पेयत्तादो वा ।

एवमोघसमुक्तिणा गया ।

§ ८७९. संपहि आदेमपरूवणद्वमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—समुक्तिणाणु-गमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ० अत्थि तिण्णि वड्डी चत्तारि हाणी अवट्ठिदं च । एवं तेरमक०-अट्ठणोकसा० । णवरि अवत्त० अत्थि । सम्म०-सम्मामि०-तिण्णिमंज०-पुग्गिसवे० अत्थि चत्तारि वड्डी हाणी अवट्ठि० अवत्त० । आदेसेण णेरइय० छव्वीमं पयडीणं विहत्तिभंगो । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि

यहाँ पर भी सम्भव होनेके प्रति मिथ्यात्वसे इनमें कोई विशेषता नहीं है । अब यहाँ पर जो विशेषता है उसका कथन करनेके लिए यह आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ किन्तु इतनी विशेषता है कि इनका अवक्तव्यपद भी है ।

§ ८८०. मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद नहीं है यह कह आये हैं । परन्तु यहाँ पर विसंयोजना-पूर्वक संयोग होने पर और सर्वोपशामनासे प्रतिपात होने पर वह सम्भव है इसप्रकार यह विशेष है । साथ ही इतनी विशेषता और है कि पुरुषवेद और तीन संजलनोंकी असंख्यातगुणवृद्धि भी सम्भव है, क्योंकि उपशमश्रेणिमें अपने अपने नवकबंधकी संक्रमावस्थामें मरकर देवोंमें उत्पन्न होने पर उक्त पदकी उपलब्धि होती है । यह विशेषता सूत्रमें नहीं कही ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इन प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सम्भव हैं यह वचन देशामर्पक है, इसलिए इसी वचनसे उक्त विशेषताका संग्रह हो जाता है । अथवा मरण संज्ञावाले व्याघातके बिना स्वस्थानमें ही सूत्रकारको समुत्कीर्तना अभिप्रेत रही है । यही कारण है कि सूत्रकारने उक्त प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धिका सूत्रमें संकेत नहीं किया है ।

इस प्रकार ओघसे समुत्कीर्तना समाप्त हुई ।

§ ८८१. अब आदेशका कथन करनेके लिए उच्चारणाको बतलाते हैं । यथा—समुत्कीर्तना की अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्वकी तीन वृद्धि, चार हानि और अवस्थित पद हैं । इसी प्रकार तेरह कपायों और आठ नोकपायोंका जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनका अवक्तव्यपद भी है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, तीन संजलन और पुरुषवेदकी चार वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपद हैं । आदेशसे नारकियोंमें छव्वीस प्रकृतियोंका भङ्ग स्थितिविभक्तिके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग

१. ता०प्रतौ—यारे (रा) [या] हिप्पायत्तादो वा इति पाठः ।

अमंखेज्जगुणहाणी णत्थि । एवं मव्वणेग्इय०-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख० ३-देवगदिदेवा भवणादि जाव महम्मर त्ति पंचि०तिरिक्खअपज्ज०-मणुअपज्ज० विहत्तिभंगो । णवरि मम्म०-मम्मामि० अमंखेज्जगुणहाणी णत्थि । मणुसतिण ओघं । णवरि तिण्णिमंजल०-पुग्गिमेद० अमंखे०गुणवट्ठी णत्थि । आणदादि जाव णववेवज्जा त्ति २६ पयडीणं विहत्तिभंगो । मम्म०-मम्मामि० अत्थि चत्तारि वट्ठी दो हाणी अवत्त० । अणुद्दिसादि एव्वट्ठा त्ति मिच्छ०-मम्म०-मम्मामि०-वारमक०-णदणोक० अत्थि असंखेज्जभागहाणी संखेज्जभागहाणी । अणंताणु०४ अत्थि चत्तारि हाणी । एव जाव० ।

§ ८८०. मंषहि ममुक्कित्ताणंतं पस्वणाणियोगहारपट्टण्णायणट्टिमिदमाह—

❀ पस्वणा । एदासिं विधिं पुध पुध उबसंदरिसणा पस्वणा णाम ।

§ ८८१. एदामिमणंतरममुक्कित्तिदाणं वट्ठी-हाणीणमवट्ठाणावत्तव्याणुगयाणं पुध पुध णिरुंमणं कादृण विमयविभागपदंमणं पस्वणा णाम भवदि त्ति गुत्तथ्यमंघो । सा च विमयविभागपस्वणा मामणममुक्कित्ताण ए चैव किं चि एदत्ति त्ति ण पुणो एवंचिज्जदे । अथवा स्वामित्वादिमुखेनैव तामां विभागः कथनं प्ररूपणेति व्याचक्ष्महे,

स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अमंख्यातगुणहानि नहीं हैं । उसीप्रकार सब नारकी, निर्यञ्ज, पञ्चेन्द्रिय निर्यञ्जत्रिक, देवगतिमें सामान्य देव और भवतवासियोंमें लेकर महम्मर कल्पतकके देवोंमें जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रिय निर्यञ्ज अपयात्र और मनुष्य अपथाप्रकोमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं हैं । मनुष्यत्रिकमें आधके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि तीन गंजलत और पुरुषवेदकी अमंख्यातगुणवृद्धि नहीं है । ज्ञानत कल्पमें लेकर नौ प्रैवेयक तकके देवोंमें २६ प्रकृतियोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी चार वृद्धि, दो हानि और अवक्तव्यपद हैं । अनुदिशसे लेकर मर्याथ सिद्धितकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी असंख्यातभागहानि और संख्यातभागहानि है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी चार हानियाँ हैं । उसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए ।

§ ८८०. अब समुत्कीर्तनाके बाद प्ररूपणा अनुयोगद्वाराका कथन करनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

❀ प्ररूपणाका अधिकार है । इनकी विधिको पृथक् पृथक् दिखलाना प्ररूपणा है ।

§ ८८१. जिनकी पूर्वमें समुत्कीर्तना कर आये हैं तथा जो अवस्थान और अवक्तव्यपदसे अनुगत हैं ऐसी इन वृद्धियों और हानियोंको पृथक् पृथक् विवक्षित कर विषयविभागका दिखलाना प्ररूपणा है ऐसा यहाँ सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध है और वह विषयविभागकी प्ररूपणा किञ्चित् सामान्यसे समुत्कीर्तनामें ही सूचित हो जाती है, इसलिए अलगसे विस्तार नहीं करते हैं । अथवा स्वामित्व आदिके द्वारा ही उनका विषयविभागके अनुसार कथन करना प्ररूपणा है ऐसा आगे कहेंगे, क्योंकि स्वामित्व आदिका कथन किये बिना उनके विशेषका निर्णय नहीं बन

स्वामित्वादिप्ररूपणामंतरेण तद्विशेषनिर्णयानुपपत्तेः । तद्यथा—सामित्वाणुगमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थोघेण मिच्छ० विहत्तिभंगो । एवं बारसक०-णवणोक० । णवरि अवत्त० भुजगारभंगो । तिण्णिणसंज०-पुरिसवेद० असंखे० गुणवड्डी कस्स ? अण्णदरस्स उवगामयस्स जो चरिमद्विदिवंधं संकामेमाणां देवेसुववणो तस्स पढमसमय-देवस्स असंखे० गुणवड्डी । अणताणु० ४ विहत्तिभंगो । सम्म०-समममि० विहत्तिभंगो । णवरि अमंखेज्जगुणहाणी कस्स ? अण्णद० सम्माइद्विस्स दंसणमोहक्खवयस्स ।

६८८२. आदेसेण सच्चणेइय-तिग्गिक्ख-पंचिदियतिरिक्खतिय०३-देवा जाव राहम्मारे त्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे० गुणहाणी णत्थि । पंचि०-तिग्गिक्खअपज्ज०-मणुमअपज्ज०-अण्णहिमादि जाव सच्चट्ठा त्ति सच्चपयडीणं सच्चपदाणि कस्स ? अण्णद० । मणुमतिप३ ओचं । णवरि बारसक०-णवणोक० अवत्त० भुजगार-भंगो । तिण्णिणसंजल०-पुरिसवेद० अमंखे० गुणवड्डी णत्थि । आणदादि णवगेवज्जा त्ति छव्वीमं पयडीणं विहत्तिभंगो । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि मंखे० गुणहाणी अमंखे० गुणहाणी णत्थि । एवं जाव० ।

६८८३. कालानुगमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ०

संज्ञा । यथा—स्वामित्वात्तुनमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्वका भंग स्थितिभिक्तिके समान है । इसीप्रकार बारह कपायों और नौ नोकपायोंका जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका भंग भुजगारके समान है । तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धि किसके होती है ? जो अन्यतर उपशमक जीव अन्तिम स्थितिविभक्तिके संक्रमण करता हुआ मरकर देवोंमें उत्पन्न हुआ है उस प्रथम समयवर्ती देवके असंख्यातगुणवृद्धि होती है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणवृद्धि किसके होती है ? दर्शनमोहनीयकी क्षण करनेवाले अन्यतर सम्यग्दृष्टिके होती है ।

६८८२. आदेशमें सब नारक, सामान्य निर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, सामान्य देव और महत्कार कल्प तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणवृद्धि नहीं है । पञ्चेन्द्रिय निर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुद्दिशमें लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सब प्रकृतियोंके सब पद किसके होते हैं ? अन्यतरके होते हैं । मनुष्यत्रिकमें ओघके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कपायों और नौ नोकपायोंके अवक्तव्यपदका भंग भुजगारके समान है । तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धि नहीं है । आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनकी संख्यातगुणवृद्धि और असंख्यात-गुणवृद्धि नहीं है । इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

६८८३. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे

विहत्तिभंगो । णवरि संखेज्जभागहाणी० जह० उक्क० एयसमओ । सोलसक०-णवणोक०
विहत्तिभंगो । णवरि संखे०भागहाणि-अवत्त० जह० उक्क० एयसमओ । तिण्णिणसंजल०-
पुरिसवेद० अमंखे०गुणवड्डी० जह० उक्क० एयसमओ । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो ।
णवरि संखे०भागहाणि-अवत्त० जह० उक्क० एयसमओ ।

§ ८८४. आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-वारसक०-णवणोक० विहत्तिभंगो । सम्म०-
सम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि संखे०भागहाणी० जह० उक्क० एयसमओ । असंखे०-
गुणहाणी णत्थि । अणंताणु०४ विहत्तिभंगो । णवरि संखे०भागहा० जह० उक्क०
एयस० । एवं सव्वणेरइय० । णवरि सगट्ठिदी ।

§ ८८५. तिरिक्खेसु मिच्छ०-वारसक०-णवणोक० विहत्तिभंगो । सम्म०-
सम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि संखे०भागहाणी० जह० उक्क० एयसमओ । अमंखे०-
गुणहाणी णत्थि । अणंताणु०४ विहत्तिभंगो । णवरि संखे०भागहाणी० जह० उक्क०
एयसमओ । पंचि०तिरिक्खतिए३ एवं चेव । णवरि मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०
संखे०भागवड्डी० जह० उक्क० एयसमओ । पंचि०तिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छ०-
सोलसक०-णवणोक० अमंखे०भागवड्डी० जह० एगस०, उक्क० वे ममया मत्तारम

मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान हैं। किन्तु इतना विशेषता है कि ख्यसांतभागहानि+
जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। सोलह कपाय और नौ नोकपायोंका भंग स्थितिविभक्तिके
समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानि और अवक्तव्यका जघन्य और
उत्कृष्ट काल एक समय है। तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य और
उत्कृष्ट काल एक समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है।
किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

§ ८८४. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंका भंग
स्थितिविभक्तिके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है।
किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।
असंख्यातगुणहानि नहीं है। अनन्तनुबन्धीचतुष्कका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु
इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इसी प्रकार
सब नारकियोंमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिए।

§ ८८५. तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंका भंग स्थितिविभक्तिके
समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी
विशेषता है कि संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। असंख्यातगुणहानि
नहीं है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है
कि संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें इसी
प्रकार भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी
संख्यातभागवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और
मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य
काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय अथवा सत्रह समय है। असंख्यातभागहानि

समया वा । अमंखे०भागहाणि-अवड्ढि० जह० एगममओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । संखेज्जभाग-
वड्ढि-दोहाणी० जह० उक्क० एयस० । संखे०गुणवड्ढी० जह० एयस०, उक्क० वे समया ।
सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागहाणी० जह० एगस०, उक्क०अंतोमु० । दोहाणी० जह०
उक्क० एयस० ।

§ ८८६. मणुम०३ मिच्छ०-वारसक०-णवणोक० पंचि०तिरिक्खभंगो । णवरि
अमंखे०गुणहाणी० जह० उक्क० एयस० । वारसक०-णवणोक० अवत्त० जह० उक्क०
एयम० । अणंताणु०४ पंचि०तिरिक्खभंगो । सम्म०-सम्मामि० पंचि०तिरि०भंगो । णवरि
अमंखे०गुणहाणी० जह० उक्क० एयस० ।

§ ८८७. देवाणं णाम्यभंगो । णवरि अमंखे०भागहाणी० जह० एयममओ,
उक्क० तेत्तीमं सागरोवमाणि । भवणीदि जाव महस्साग ति एवं चेव । णवरि सगड्ढिदी ।
आणदादि जाव णवरोपजा ति मिच्छ०-वारसक०-णवणोक० विहत्तिभंगो । सम्म०-
सम्मामि० चत्तारिवड्ढि-अमंखे०भागहाणि-अवत्त० जह० उक्क० एयममओ । अमंखे०भाग-
हाणी० जह० एयममओ, उक्क० सगड्ढिदी । अणंताणु०४ विहत्तिभंगो । णवरि संखे०-
भागहाणी० जह० उक्क० एयममओ । अणुद्दिस्सादि सच्चट्ठा ति मिच्छ०-सम्म०-

और अवस्थितपदका जघन्य काल । क समय ह और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । संख्यातभागवृद्धि
और दो दानियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल
एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिभ्यात्वकी असंख्यात-
भागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । दो दानियोंका जघन्य
और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ ८८८. मनुष्यत्रिकमे मिभ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोका भंग पञ्चन्द्रिय
तिर्यञ्चोके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल
एक समय है । वारह कपाय और नौ नोकपायोंके अत्यव्ययपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक
समय है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग पञ्चन्द्रिय तिर्यञ्चोके समान है । सम्यक्त्व और
सम्यग्मिभ्यात्वका भंग पञ्चन्द्रिय तिर्यञ्चोके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यात-
गुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ ८८९. देवोमं नारियोके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यात-
भागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । भवनवासियोंसे लेकर
सहस्रार कल्प तकके देवोंमें इसी प्रकार भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी
स्थिति कहनी चाहिए । आननसे लेकर ना प्रवेयक तकके देवोंमें मिभ्यात्व, वारह कपाय और
नौ नोकपायोंका भंग स्थितिभिक्तिके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिभ्यात्वकी चार
वृद्धि, संख्यातभागहानि और अव्यव्ययपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।
असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है ।
अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग स्थितिभिक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभाग-
हानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुदिशसे लेकर सवार्थसिद्धितकके देवोंमें

सम्मामि०-वाग्मक०-णवणोक० अमंखे०भागहाणी० जह० अंतोमु०, सम्म० एयस०, उक० मगट्टिदी । मंखे०भागहाणी० जह० उक० एयसमओ । अणंताणु०४ असंखे० भागहाणी० जह० अंतोमुहुत्तं, उक० मगट्टिदी । तिण्णिहाणी० जह० उक० एयस० । एवं जाव० ।

§ ८८८. अंतराणुग० दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ० विहत्तिभंगो । एवं वाग्मक०-णवणोक० । णवरि अवत्त० जह० अंतोमु०, उक० उवड्ढ-पोग्गलपरियट्ठं । तिण्णिसंजल०-पुरिसवेद० अमंखे०गुणवड्ढी० णत्थि अंतरं । असंखे०-गुणहाणी० जह० अंतोमु०, उक० उवड्ढपो०परियट्ठं । अणंताणु०४ विहत्तिभंगो । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि अमंखे०गुणहाणी० जह० उक० अंतोमु० ।

§ ८८९. आदेसेण मच्चणेरइय-तिरिक्ख०-देवा जाव सहस्सार ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० अमंखे०गुणहाणी णत्थि । पंचिदियतिरिक्खतिए३ छव्वीमं पयडोणं विहत्तिभंगो । णवरि संखे०गुणवड्ढी० जह० एयस०, उक० पुच्चकोडिपुत्तं । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि अमंखे०गुणहाणी णत्थि । पंचि०तिरिक्ख-अपज्ज०-ममुमअज्ज० छव्वीमं पयडोणं विहत्तिभंगो । णवरि संखे०गुणवड्ढी० जह०

मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी असंख्यातभागहानिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, सम्यक्त्वका एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी असंख्यातभागहानिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । तीन दानियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

मन्त्र, अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आघ और आदेश । आघमें मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । इसीप्रकार वारह कपाय और नौ नोकपायोंके त्रिपयमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अत्यक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । तीन संजलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धिका अन्तर नहीं है । असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । अन्तरानुबन्धीचतुष्कका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

मन्त्र, आदेशमें व नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, सामान्य देव और सहस्वार कल्पतकके देवोंके भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं है । पञ्चन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें छव्वीस प्रकृतियोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पृथकादिप्रत्यक्त्वप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणहानि नहीं है । पञ्चन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छव्वीस प्रकृतियोंका भंग स्थितिविभक्तिके

एयस०, उक्क० अंतोमु० । सम्म०-मम्मामि० अमंखे०भागहाणी० जह० उक्क० एयसमओ । दोण्णिहाणी० णत्थि अंतरं । मणुम३ मिच्छ० पंचिदियतिग्गिखभंगो । णवरि अमंखे०गुणहाणी० जह० उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं वारसक०-णवणोक्क० । णवरि अवत्त० तिण्णिमंजल०-पुरिसवेद० अमंखे०गुणहाणी० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोट्टिपुघत्तं । अणंताणु०४ पंचिदियतिग्गिखभंगो । सम्म०-सम्मामि० पंचि०-तिग्गिखभंगो । णवरि अमं०गुणहाणी ओघं । आणदादि णवगेवेज्जा ति छव्वीमं पय० विहत्तिभंगो । सम्म०-मम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि मंखे०गुणहाणी अमंखे०गुणहाणी णत्थि । अणुदिसादि सव्वट्ठे ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म० मंखे०गुणहाणी णत्थि । एवं जाव० ।

§ ८९०. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीमं पयडोणं अमंखे०भागवद्धि—हाणि—अवाट्ठि० णियमा अत्थि । सेसपदाणि भयणिज्जाणि । सम्म०-मम्मामि० विहत्तिभंगो । मव्वणेरइय-सव्वतिग्गिख-मणुमअपज्ज०-देवा जाव महम्मर ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-मम्मामि० अमंखे०-गुणहाणी णत्थि । मणुमतिण्ण३ छव्वीमं पयडोणं अमंखे०भागहाणि-अवाट्ठि० णियमा

समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका असंख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । दो हानियोंका अन्तरकाल नहीं है । मनुष्यत्रिकमें मिथ्यात्वका भंग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार वारः कर्पायों और नौ नोक्तपाथोंके विषयमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदा तथा तीन संवत्सरे और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिप्रथक्त्वप्रमाण है । अनन्तानुबन्धीचतुष्पदा भंग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणहानिका भंग ओघके समान है । अनात कल्पसे लेकर नौ प्रवेयक तकके देवोंमें छव्वीम प्रकृतियोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इनकी विशेषता है कि संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि नहीं हैं । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी संख्यातगुणहानि नहीं है । इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

§ ८९०. नाना जीवोंका अवलम्बन लेकर भंगविचयानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे छव्वीस प्रकृतियोंकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यात-भागहानि और अवस्थित पदवाले जीव नियमसे हैं । शेष पद भजनीय हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं हैं । मनुष्यत्रिकमें छव्वीस प्रकृतियोंकी असंख्यातभागहानि और अवस्थित पदवाले जीव नियमसे हैं । शेष पद भजनीय हैं ।

अत्थि । सेमपदाणि भयणिजाणि । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । आणदादि णवगेवजा त्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० संखे०गुण० असंखे०गुणहाणी णत्थि । अणुद्दिमादि सवड्ढा त्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म० संखे०गुणहाणी णत्थि । एवं जाव० ।

§ ८९१. भागाभागानुगमेण दुविहो णिद्देशो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीसं पयडीणं असंखे०भागवड्ढी असंखे०भागो । अवट्ठि० संखे०भागो । असंखे०भागहाणी संखे०भागा । सेसपदाणि अणंतिमभागो । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । सव्वणेरइय०-सव्वतिरिक्ख०-मणुसअपज्ज०-देवा जाव सहस्सार त्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी णत्थि । मणुसा० विहत्तिभंगो । णवरि बारसक०-णवणोक० अवत्त०संका० असंखे०भागो । एवं मणुसपज्ज०-मणुसिणी० । णवरि संखे०पडिभागो कायव्वो । आणदादि णवगेवजा त्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० संखे०गुणहाणी असंखे०गुणहाणी च णत्थि । अणुद्दिमादि सव्वड्ढा त्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म० संखे०गुणहाणी णत्थि । एवं जाव० ।

§ ८९२. परिमाणानुगमेण दुविहो णिद्देशो—ओघेण आदेसेण य । ओघो

सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । आनतसे लेकर नौ प्रवेयक तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि नहीं हैं । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि-तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी संख्यातगुणहानि नहीं हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ८९१. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । ओघसे छव्वीस प्रकृतियोंकी असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । अवस्थितपदवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यात बहु-भागप्रमाण हैं । तथा शेष पदवाले जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सब नारकी, सब तिर्यक्, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और सद्स्वार कल्प तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं हैं । मनुष्योंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कपाय और नौ नोकपायोंके अवक्तव्य पदके संक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें प्रतिभागका प्रमाण संख्यात करना चाहिए । आनतसे लेकर नौ प्रवेयक तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि नहीं हैं । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी संख्यातगुणहानि नहीं हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

§ ८९२. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-

१. ता० प्रतौ सम्म० सम्मामि संखे०गुणहाणी इति पाठः ।

विहत्तिभंगो । णवरि बारसक०-णवणोक० अवत्त० तिण्णिंसज०-पुरिसवेद० असंखे०-
गुणवड्डी सम्म०-सम्मामि० असंखे० गुणहाणिसंका० केत्तिया० ? संखेज्जा । सव्वणेरइय-
सव्वतिरिक्ख०-मणुसअपज्ज०-देवा जाव सहस्सारे त्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-
सम्मामि० असंखे० गुणहाणी णत्थि । मणुसा० विहत्तिभंगो । णवरि बारसक०-
णवणोक० अवत्त० सम्म०-सम्मामि० असंखे० गुणहाणिसंका० केत्तिया ? संखेज्जा ।
मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वपदसंका० संखेज्जा । आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति
विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे० गुणहाणी संखे० गुणहाणी णत्थि ।
अणुदिसादि सव्वट्ठा त्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म० संखे० गुणहा० णत्थि ।
एवं जाव० ।

§ ८०.३. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघो विहत्तिभंगो ।
णवरि बारसक०-णवणोक० अवत्त० तिण्हं संजल० पुरिसवेद० असंखे० गुणवड्डी केवडि
खेत्ते ? लोगस्म असंखे० भागे । सव्वगइमग्गणासु सव्वपदाणि लोग० असंखे० भागे ।
तिरिक्खाणं तु विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे० गुणहाणी णत्थि ।
एवं जाव० ।

निर्देश । ओघका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषाय और
नौ नोकषायोंके अवक्तव्य पदके संक्रामक जीव, तीन संज्वलन और पुरुषवेदके असंख्यातगुणवृद्धिके
संक्रामक जीव तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके असंख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव कितने
हैं ? संख्यात हैं । सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और सहस्वार कल्प
तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और
सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं है । मनुष्योंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु
इतनी विशेषता है कि बारह कषाय और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव तथा
सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं ।
मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें सब पदोंके संक्रामक जीव संख्यात हैं । आनत कल्पसे लेकर
नौ प्रवेयक तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व
और सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानि और संख्यातगुणहानि नहीं है । अनुदिशसे लेकर
सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी
संख्यातगुणहानि नहीं है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ८६३. चेत्तानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।
ओघका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषाय और नौ
नोकषायोंके अवक्तव्यपदके संक्रामकोंका तथा तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धिके
संक्रामकोंका कितना क्षेत्र है ? लोकका असंख्यातवाँ भागप्रमाण क्षेत्र है । सब गति मार्गणाओमें
सब पदोंके संक्रामकोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है । मात्र तिर्यञ्चोंमें स्थितिविभक्तिके
समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानि
नहीं है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

॥८०४. पोसणाणुगमेण द्रुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य। ओघो विहत्तिभंगो। णवरि वारसक०-णवणोक० अवत्त० तिण्हं संजल० पुरिमवेद० असंखे०गुणवड्डी सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी खेत्तं। सव्वणेरइय०-सव्वतिरिक्ख०-मणुसअपज्ज०-देवा जाव सहस्सार ति द्विदिविहत्तिभंगो। णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी णत्थि। अण्णं च पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुमअपज्ज० सम्म०-सम्मामि० संखे०-भागहाणी मंखे०गुणहाणी खेत्तभंगो। मणुम०३ विहत्तिभंगो। आणदादि अच्चुदा ति विहत्तिभंगो। णवरि सम्म०-सम्मामि० संखे०गुणहाणी अमंखे०गुणहाणी णत्थि। उवरि खेत्तभंगो। एवं जाव०।

॥ ८०५. कालाणुगमेण द्रुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य। ओघो विहत्तिभंगो। णवरि वारसक०-णवणोक० अवत्त० तिण्हं मंजल० पुरिमवेद० असंखे०-गुणवड्डी० सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी० जह० एयसमओ, उक्क० मंखेज्जा समया। सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुमअपज्ज०-देवा जाव सहस्सार ति विहत्तिभंगो। णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी णत्थि। मणुमा० विहत्तिभंगो। णवरि वारसक०-णवणोक० अवत्त० सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहा० जह० एयसमओ, उक्क० मंखेज्जा

॥ ८०४. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि वारह कपाय और नौ नोकपायोंके अवक्तव्यपदके संक्रामक जीवोंका, तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीवोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सब नारकी, सब तिर्यञ्च मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और सहस्वार कल्प तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। इतनी और विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका भंग क्षेत्रके समान है। मनुष्यत्रिकमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। आन्तसे लेकर अच्युत कल्प तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि नहीं है। ऊपर क्षेत्रके समान भंग है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

॥ ८०५. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि वारह कपाय और नौ नोकपायोंके अवक्तव्यपदके संक्रामकोंका, तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामकोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और सहस्वार कल्प तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। मनुष्योंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि वारह कपाय और नौ नोकपायोंके अवक्तव्य पदके संक्रामकोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनिर्योमें

समया । मणुमपञ्ज०-मणुसिणीसु छव्वीसं पयडीणं असंखे०भागहाणि-अवद्वि० सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागहाणी सव्वद्धा । सेसपदसंका० जह० एयस०, उक्क० संखेज्जा समया । आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० संखेज्जगुणहाणी अमंखे०गुणहाणी च णत्थि । अणुदिसादि अवराजिदा त्ति अट्टावीसं पयडीणं असंखे०भागहाणी सव्वद्धा । सेमपदाणि जह० एयस०, उक्क० आवल्लियाए असंखे०भागो । सव्वद्धे अट्टावीसं पयडीणं अमंखे०भागहाणी सव्वद्धा । सेसपदा० जह० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । एवं जाव० ।

§ ८९६. अंतराणुग० दुव्विहो णिद्देमो—ओघादेस० । ओघो विहत्तिभंगो । णवरि बारसक०-णवणोक्क० अवत्तव्व० तिण्हं संजल० पुरिसवेद० असंखे०गुणवट्ठी० जह० एयस०, उक्क० वासपुधत्तं । सम्म०-सम्मामि० अमंखे०गुणहाणी० जह० एयसमओ, उक्क० छम्मासा । मव्वणेरइय-मव्वतिग्गिस्स-मणुमअपञ्ज०-देवा जाव सहस्सारे त्ति विहत्ति-भंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० अमंखे०गुणहाणी णत्थि । मणुस०२ विहत्तिभंगो । णवरि बारसक०-णवणोक्क० अवत्त० सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी ओघं । एवं मणुसिणीसु । णवरि खव्वयपयडीणं वामपुधत्तं । आणदादि णवगेवज्जा त्ति विहत्तिभंगो । छव्वीसं प्रकृतियाको अमंख्यातभागहान आर अवास्थितपदके संक्रामकोंका तथा सम्यक्त्व आर सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातभागहानिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है । शेष पदोंके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । आनतसे लेकर नौ प्रवेयक तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि नहीं हैं । अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवों अट्टाईस प्रकृतियोंकी असंख्यातभागहानिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है । शेष पदोंके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवल्लिके असंख्यातव भागप्रमाण है । सर्वाथसिद्धिमे अट्टाईस प्रकृतियोंकी असंख्यातभागहानिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है । शेष पदोंके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ८९६. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषाय और नौ नाकषायोंके अवक्तव्यपदके संक्रामकोंका तथा तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और सहस्त्रार कल्प तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं है । मनुष्यद्विकमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषाय और नौ नाकषायोंके अवक्तव्यपदके संक्रामकोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामकोंका अन्तरकाल ओघके समान है । इसी प्रकार मनुष्यनियोंमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि क्षपक प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है । आनतसे लेकर नौ प्रवेयक तकके देवोंमें

णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी संखे०गुणहाणी च णत्थि । अणुदिसादि सच्चवट्टा त्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म० संखेज्जगुणहाणी णत्थि । एवं जाव० ।

§ ८९७. भावो सच्चवत्थ ओदइओ भावो ।

❀ अप्पाबहुअं ।

§ ८९८. सुगममेदमहियारपरामरसवकं ।

❀ सच्चवत्थोवा मिच्छुत्तस्स असंखेज्जगुणहाणिसंक्रामया ।

§ ८९९. कुदो ? दंसणमोहक्खवयजीवे मोत्तूण एत्थ तदसंभवादो ।

❀ संखेज्जगुणहाणिसंक्रामया असंखेज्जगुणा ।

§ ९००. कुदो ? सण्णिपंचिदियरासिस्स असंखे०भागपमाणत्तादो । तस्स पडिभागो अंतोमुहुत्तमिदि घेत्तव्वं ।

❀ संखेज्जभागहाणिसंक्रामया संखेज्जगुणा ।

§ ९०१. कुदो ? संखेज्जगुणहाणिपरिणमणवारेहितो संखेज्जभागहाणिपरिणमण-
वाराणं संखेज्जगुणत्तुवलंभादो । ण चेदमसिद्धं, तिच्चविसोहितो मंदविसोहीणं पाएण
संभवदंसणादो ।

❀ संखेज्जगुणवट्ठिसंक्रामया असंखेज्जगुणा ।

स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानि और संख्यातगुणहानि नहीं है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी संख्यातगुणहानि नहीं है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

§ ८९७. भाव सर्वत्र औदायिक है ।

❀ अल्पबहुत्वका अधिकार है ।

§ ८९८. अधिकारका परामर्श करानेवाला यह वाक्य सुगम है ।

❀ मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं ।

§ ८९९. क्योंकि दर्शनमोहनीयके क्षपक जीवोंको छोड़कर अन्यत्र असंख्यातगुणहानिका संक्रम सम्भव नहीं है ।

❀ उनसे संख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ९००. क्योंकि उक्त जीव संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवराशिके असंख्यातवर्ते भागप्रमाण हैं । उसका प्रतिभाग अन्तर्मुहूर्त है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए ।

❀ उनसे संख्यातभागहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ९०१. क्योंकि संख्यातगुणहानिके परिणमनके वारोंसे संख्यातभागहानिके परिणमनवार संख्यातगुणे उपलब्ध होते हैं । और यह असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि तीव्र विशुद्धिसे मन्दविशुद्धियोंकी प्रायःकर सम्भावना देखी जाती है ।

❀ उनसे संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ९०२. एत्थ कारणं संखे०भागहाणीए सण्णिपंचिदियरासी पहाणो, सेसजीव-समासेसु संखेज्जभागहाणिं कुणंताणं बहुवाणमसंभवादो । संखेज्जगुणवड्डी पुण परत्थाणादो आगंतूण सण्णिपंचिदिएसुप्पज्जमाणाणं सन्वेसिमेव लब्भदे, तथा एइंदिय-वियत्तिंदियाण-मसण्णिपंचिदिएसुवज्जमाणाणं संखेज्जगुणवड्डी चेव होइ । एवमेइंदिय-बीइंदियाणं चउरिंदियएसु वेइंदिय-तेइंदिएसु च समुप्पज्जमाणाणमेइंदियाणं संखेज्जगुणवड्ढिणियमो वत्तव्वो । एवमुप्पज्जमाणासेसजीवरासिपमाणं तसरासिस्स असंखे०भागो, तसरासिं सग-उवक्कमणकालेण खंडिदेयखंडमेत्ताणं चेव परत्थाणादो आगंतूण तत्थुप्पज्जमाणाणमुव-लंभादो । तदो परत्थाणरासिपाहम्मेण सिद्धमेदेसिं असंखेज्जगुणत्तं ।

❀ संखेज्जभागवड्ढिसंक्रामया संखेज्जगुणा ।

§ ९०३. एत्थ वि तसरासी चेव परत्थाणादो पविसंतओ पहाणं, सत्थाणे संखे०भागवड्ढिसंक्रामयाणं संखेज्जभागहाणिसंक्रामएहि सरिसाणमप्पहाणत्तादो । किंतु परत्थाणादो संखे०गुणवड्ढिपवेसएहितो संखे०भागवड्ढिपवेसया बहुआ, संखेज्जगुणहीण-द्विदिसंतकम्ममेणं सह एइंदियादिहितो णिप्पिदमाणाणं संखे०भागहाणिद्विदिसंतकम्ममेण सह तत्तो णिप्पिदमाणे पेक्खिऊण संखेज्जगुणहीणत्तादो । कथमेदं परिच्छिज्जदे ? एदम्हादो चेव

§ ९०२. यहाँ कारण यह है कि संख्यातभागहानि करनेवाले जीवोंमें संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवराशि प्रधान है, क्योंकि शेष जीवसमासोंमें संख्यातभागहानि करनेवाले बहुत जीव असम्भव हैं । परन्तु संख्यातगुणवृद्धि तो परस्थानसे आकर संज्ञी पञ्चेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले सभी जीवोंके उपलब्ध होती है तथा जो एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव असंज्ञी पञ्चेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं उनके संख्यातगुणवृद्धि ही होती है । इसीप्रकार जो एकेन्द्रिय और द्वीन्द्रिय जीव चतुरिन्द्रिय जीवोंमें तथा जो एकेन्द्रिय जीव द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं उनके संख्यातगुणवृद्धिका नियम कहना चाहिए । इस प्रकार उत्पन्न होनेवाली समस्त जीवराशिका प्रमाण त्रसराशिक असंख्यातयें भागप्रमाण हैं, क्योंकि त्रसराशिका अपने उपक्रमणकाजसे भाजित कर जो एक भाग प्राप्त हो तत्प्रमाण जीव ही परस्थानसे आकर वहाँ उत्पन्न होते हुए उपलब्ध होते हैं । इसलिए परस्थानराशिकी प्रधानतासे संख्यातगुणवृद्धि करनेवाले जीव असंख्यातगुण होते हैं यह बात सिद्ध है ।

❀ उनसे संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ९०३. यहाँ पर भी परस्थानसे प्रवेश करनेवाली त्रसराशि ही प्रधान है, क्योंकि स्वस्थानमें संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातभागहानिके संक्रामक जीवोंके समान होते हैं, इसलिए उनकी प्रधानता नहीं है । किन्तु परस्थानके आश्रयसे संख्यातगुणवृद्धिके प्रवेश करनेवाले जीवोंसे संख्यातभागवृद्धिके प्रवेश करनेवाले जीव बहुत हैं, क्योंकि संख्यातगुणे हीन स्थितिसत्कर्मके साथ एकेन्द्रिय आदिमेंसे निकलनेवाले जीव संख्यातभागहीन स्थितिसत्कर्मके साथ एकेन्द्रिय आदिमेंसे निकलनेवाले जीवोंको देखते हुए संख्यातगुणे हीन होते हैं ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है ।

१. ता०प्रतौ बहु [आ-], आ०प्रतौ बहुअ इति पाठः । २ ता०प्रतौ -कम्मे [हि] इति पाठः ।

मुत्तादो । तदो संखेज्जगुणत्तमेदेसिं ण विरुज्जदे ।

❁ असंखेज्ज भागवट्टिसंक्रामया अणंतगुणा ।

§ ९०४. कुदो ? एइंदियरासिस्सासंखेज्जभागपमाणत्तादो । दुममयाहियावट्टिदा-
संखेज्जभागहाणिकालसमासेणंतोमुहुत्तपमाणेणेइंदियरासिमोवट्टिय दुगुणिदे पयदवट्टि-
संक्रामया होति त्ति सिद्धमेदेसिमणंतगुणत्तं ।

❁ अवट्टिदसंक्रामया असंखेज्जगुणा ।

§ ९०५. कुदो ? एइंदियरासिस्स संखे०भागपमाणत्तादो ।

❁ असंखेज्ज भागहाणिसंक्रामया संखेज्जगुणा ।

§ ९०६. कुदो ? अवट्टाणकालादो अप्पयरकालस्स संखेज्जगुणत्तादो ?

❁ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सब्बत्थोवा असंखेज्जगुणहाणिसंक्रामया ।

§ ९०७. कुदो ? दंमणमोहक्खवयमंखेज्जजीवे मोत्तूण्णत्थ तदसंभवादो ।

❁ अवट्टिदसंक्रामया असंखेज्जगुणा ।

§ ९०८. कुदो ? पल्लिदावमामंखेज्जभागपमाणत्तादो । ण चेदमामिद्धं, अवट्टिद-
पाओगममयुत्तरसिद्धं, वट्टिदिवियप्पेसु तेत्तियमेत्तजीवाणं संभवदंमणादो ।

इसलिए ये जीव संख्यातगुणे होते है यह बात विरोधको प्राप्त नहीं होती ।

* उनसे अमंख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं ।

§ ९०४. क्योंकि ये जीव एकेन्द्रियराशिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । दो समय अधिक
अवस्थित और असंख्यातभागहानिके कालके जोड़रूप अन्तमुहूर्तप्रमाणसे एकेन्द्रिय जीवराशिको
भाजित कर जो लब्ध आवे उसे दूना करने पर प्रकृत वृद्धिके संक्रामक जीव होते हैं, इसलिए ये
अनन्तगुणे हैं यह बात सिद्ध हुई ।

* उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव अमंख्यातगुणे हैं ।

§ ९०५. क्योंकि ये एकेन्द्रियराशिके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

* उनसे असंख्यातभागहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ९०६. क्योंकि अवस्थानकालसे अत्यन्तरकाल संख्यातगुणा है ।

* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अमंख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव सबसे
थोड़े हैं ।

§ ९०७. क्योंकि दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले संख्यात जीवोंको छोड़कर अन्यत्र
असंख्यातगुणहानिका होना असम्भव है ।

* उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव अमंख्यातगुणे हैं ।

§ ९०८. क्योंकि ये पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । और यह असिद्ध भी नहीं है,
क्योंकि अवस्थित पदके योग्य मिथ्यात्वके एक समय अधिक स्थितिबिक्लपोंमें तत्प्रमाण जीव
सम्भव देखे जाते हैं ।

❀ असंखेज्जभागवड्डिसंकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ९०९. तं जहा—अवट्ठिदसंकमपाओग्गविसयादो असंखेज्जभागवड्डिपाओग्ग-
विसओ असंखेज्जगुणो । अवट्ठिदपाओग्गड्डिदिविसेसेसु पादेकं पल्लिदोवमस्स संखेज्जदि-
मागमेत्ताणमसंखे०भागवड्डिवियप्पाणमुप्पत्तिदंसणादो । तदो विसयवहुत्तादो सिद्ध-
मेदेसिमसंखेज्जगुणत्तं ।

❀ असंखेज्जगुणवड्डिसंकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ९१०. एत्थ संचयकालवहुत्तं कारणं । तं जहा—मिच्छत्तधुवट्ठिदिं जहण्ण-
परित्तासंखेजेण खंडिय तत्थेयखंडमेत्तट्ठिदिसंतकम्मादो हेट्ठा चरिमुव्वेत्तणकंडयपज्जवसाणो
असंखेज्जगुणवड्डिविसयो, एदेहि ट्ठिदिवियप्पेहि सम्मत्तं पडिवज्जमाणाणं पयारंतरा-
संभवादो । एदस्म उव्वेत्तणकालो पल्लिदोवमस्सासंखेज्जदिभागमेत्तो । एदेण कालेण
मंचिदजोवा च पल्लिदोवमांसंखेज्जभागमेत्ता । एदे तुण अंतोमुहुत्तकालसंचिदासंखेज्जभाग-
वड्डिपाओग्गजीवेहिंतो अमंखे०गुणा, कालाणुसारेण गुणयारपवुत्तीए णिव्वाहमुवलंभादो ।
ण च तेमिमंतोमुहुत्तमंचिदत्तममिद्धं, मिच्छत्तं गंतूणंतोमुहुत्तादो उवरि तत्थच्छमाणाणं
संखेज्जभागवड्डि-संखे०गुणवड्डिसंकमाणं पाओग्गभावदंसणादो । तम्हा संचयकाल-
माहप्पेणेदेमिमसंखेज्जगुणत्तमिदि सिद्धं ।

❀ संखेज्जभागवड्डिसंकामया असंखेज्जगुणा ।

* उनसे असंख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ६०६. यथा—अवस्थितपदके संक्रमके योग्य विषयसे असंख्यातभागवृद्धिप्रायोग्य विषय
असंख्यातगुणा है, क्योंकि अवस्थितपदके योग्य स्थितिनिशेधोंमें अलग अलग पत्त्यके संख्यातवें
भागप्रमाण असंख्यातभागवृद्धिरूप विस्तरोंकी उत्पत्ति देखी जाती है । इसलिए विषयका बहुत्व
होनेके कारण ये असंख्यातगुणे हैं यह सिद्ध होता है ।

* उनसे असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ६१०. यहाँ पर सञ्चयकालका बहुतपना कारण है । यथा—मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिको
जघन्य परीतासंख्यातसे भाजित कर वहाँ प्राप्त हुए एक खण्डमात्र स्थितिसत्कर्मसे नीचे अन्तिम
उद्वेलनकाण्डक तक असंख्यातगुणवृद्धिका विषय है, क्योंकि इन स्थितिनिशेधोंके साथ सम्यक्त्वको
प्राप्त होनेवाले जीवोंके अन्य प्रकार सम्भव नहीं है । इसका उद्वेलनाकाल पत्त्यके असंख्यातवें
भागप्रमाण है और इस कालके भीतर सञ्चित हुए जीव पत्त्यके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । परन्तु
ये जीव अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर सञ्चित हुए असंख्यातभागवृद्धिके योग्य जीवोंसे असंख्यातगुणे हैं,
क्योंकि कालके अनुसार गुणकारकी प्रवृत्ति निर्वाधरूपसे उपलब्ध होती है । ये जीव अन्तर्मुहूर्तके
भीतर सञ्चित होते हैं यह बात असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि मिथ्यात्वमें जाकर अन्तर्मुहूर्तके ऊपर
वहाँ रहनेवाले जीवोंके संख्यातभागवृद्धिसंकम और संख्यातगुणवृद्धिसंकमकी योग्यता देखी
जाती है । इसलिए सञ्चयकालके माहात्म्यसे ये असंख्यातगुणे हैं यह सिद्ध होता है ।

* उनसे संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ९११. किं कारणं ? पुत्रिवल्लविसयादो एदेसिं विसयस्स असंखेज्जगुणत्तोव-
लंभादो । तं कथं ? ध्रुवद्विदीए णिरुद्धाए किंचूणतदद्दमेत्तो संखेज्जभागवद्विविसयो होइ ।
एवं समयुत्तरादिध्रुवद्विदीणं पि पुघ पुघ णिरुंभणं कादूण संखेज्जभागवद्विविसयो
अणुगंतव्वो जाव अंतोमुहुत्तूणसत्तरिं त्ति । एवं कादूण जोइदे द्विदिं पडि णिरुद्धद्विदीए
किंचूणद्दमेत्ता चैव संखेज्जभागवद्विवियप्पा लद्धा हवन्ति । एसो च सव्वो विसओ
संपिंडिदो पुत्रिवल्लविसयादो असंखेज्जगुणो त्ति णत्थि संदेहो । तम्हा सिद्धमेदेसि-
मसंखेज्जगुणत्तं, अविप्पडिवत्तीए ।

✽ संखेज्जगुणवद्विसंक्रामया संखेज्जगुणा ।

§ ९१२. कारणं दोण्हमेदेसिं वेदगसम्मत्तं पडिवज्जमाणरासी पहाणो । किंतु
संखेज्जभागवद्विविसयादो वेदगसम्मत्तं पडिवज्जमाणजीवेहिंतो संखेज्जगुणवद्विविसयादो
वेदगसम्मत्तं पडिवज्जमाणजीवा संचयकालमाहप्पेण संखेज्जगुणा जादा । तं कथं ?
मिच्छत्तं गंतूण थोवयरकालं चैव अच्छमाणो संखेज्जभागवद्विपाओग्गो होइ । तत्तो
बहुवयरं कालमच्छमाणो पुण णिच्छएण संखेज्जगुणवद्विपाओग्गो होदि त्ति एदेण
कारणेण सिद्धमेदेसिं संखेज्जगुणत्तं ।

✽ संखेज्जगुणहानिसंक्रामया संखेज्जगुणा ।

§ ९११. क्योंकि पूर्वके विषयसे इनका विषय असंख्यातगुणा उपलब्ध होता है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—क्योंकि ध्रुवस्थिति विवक्षित होने पर कुछ कम उससे आधा संख्यातभागवृद्धिका
विषय है । इसी प्रकार एक समय अधिक आदि ध्रुवस्थितियोंको भी पृथक्-पृथक् विवक्षित करके
अन्तर्मुहूर्ते कम सत्तर कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक संख्यातभागवृद्धिका विषय ले
आना चाहिए । इस प्रकार करके योगफल लाने पर प्रत्येक स्थितिके प्रति विवक्षित स्थितिके कुछ
कम आधे संख्यातभागवृद्धिके विकल्प प्राप्त होते हैं । और इस सब विषयको मिलाने पर वह
पूर्वके विषयसे असंख्यातगुणा है इसमें सन्देह नहीं । इसलिए विप्रतिपत्तिके बिना ये असंख्यातगुणे
हैं यह सिद्ध होता है ।

✽ उनसे संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ९१२. क्योंकि इन दोनोमें वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाली राशि प्रधान है । किन्तु
संख्यातभागवृद्धिके साथ वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंसे संख्यातगुणवृद्धिके साथ
वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीव संश्रयकालके माहात्म्यवश संख्यातगुणे हो जाते हैं ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—क्योंकि मिथ्यात्वमें जाकर थोड़े काल तक रहनेवाला जीव ही संख्यातभागवृद्धिके
योग्य होता है । परन्तु उससे बहुत काल तक रहनेवाला जीव नियमसे संख्यातगुणवृद्धिके
योग्य होता है, इसलिए इस कारणसे ये जीव संख्यातगुणे होते हैं यह सिद्ध हुआ ।

✽ उनसे संख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ९.१३. कुदो ? तिण्णिवड्ढि-अवट्टाणेहिं गहियसम्मत्ताणमंतोमुहुत्तसंचिदाणं संखेज्जगुणहाणीए पाओग्गत्तदंसणादो ।

✽ संखेज्जभागहाणिसंकामया संखेज्जगुणा ।

§ ९.१४. कारणमेत्थ सुगमं, मिच्छत्तप्पावहुअसुत्ते परूविदत्तादो । अघवा संखे०भागहाणी संखे०गुणा । असंखे०गुणा त्ति पाटंतरं । एदस्साहिप्पायो सत्थाणे संखे०गुणहाणिसंकामएहितो संखेज्जभागहाणिमंकामया संखेज्जगुणा चेव । किंतु ण तेसि मेत्थ पहाणत्तं, अणंताणुबंधिं विसंजोएंतसम्माइट्टिरासिपहाणभावदंसणादो । सो च सम्माइट्टिरासिपाहम्मेणासंखेज्जगुणो त्ति । एदं च पाटंतरमेत्थ पहाणभावेणावलंबेयव्वो ।

✽ अवत्तव्वसंकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ९.१५. कुदो ? अद्वपोग्गलपरियडुं संचयादो पडिणियत्तिय णिस्संतकम्मिय-भावेण सम्मत्तं पडिवज्जमाणाणमिह गहणादो ।

✽ असंखेज्जभागहाणिसंकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ९.१६. एत्थ कारणं वुच्चदे—पुव्विल्लासेसंकामया सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-मंतकम्मियाणमसंखे०भागो चेव, सव्वेसिमेयसमयसंचिदत्तव्वुवगमादो । एदे वुण तेसिमसंखेज्जभागा, वेभागरोवमकालव्भंतरे वेदयसम्माइट्टिरासिसंचयस्स दीहुव्वेल्लण-

§ ९.१३. क्योंकि तीन वृद्धि और अवस्थानपदके साथ सम्यक्त्वको ग्रहण करनेवाले तथा अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर संश्रित हुए जीव संख्यातगुणहानिके योग्य देखे जाते हैं ।

✽ उनसे संख्यातभागहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ९.१४. यहाँ कारण सुगम है, क्योंकि मिथ्यात्वसम्बन्धी अल्पवहुत्वका कथन करनेवाले सूत्रमें उसका कथन कर आये हैं । अथवा संख्यातभागहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं यह पाठान्तर उपलब्ध होता है । इसका अभिप्राय यह है कि स्वस्थानमें संख्यातगुणहानिके संक्रामक जीवोंसे संख्यातभागहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे ही हैं । किन्तु उनकी यहाँ पर प्रधानता नहीं है, क्योंकि यहाँ पर अनन्तानुबन्धाकी विसंयोजना करनेवाली राशिकी प्रधानता देखी जाती है और वह सम्यग्दृष्टि राशिकी प्रधानतावश असंख्यातगुणी है । इस प्रकार पाठान्तरको यहाँ पर प्रधानरूपसे ग्रहण करना चाहिए ।

✽ उनसे अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ९.१५. क्योंकि अर्धपुद्गल परिवर्तनकालके सञ्चयसे लौटकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अभाव कर सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंका यहाँ ग्रहण किया है ।

✽ उनसे असंख्यातभागहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ९.१६. यहाँ पर कारणका कथन करते हैं—पहले सब संक्रामक जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्कर्मवाले जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण ही हैं, क्योंकि उनका एक समयमें होनेवाला सञ्चय स्वीकार किया गया है । परन्तु ये जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्कर्मवाले जीवोंके बहुभागप्रमाण हैं, क्योंकि दो सागर कालके भीतर वेदकसम्यग्दृष्टिराशिके प्राप्त हुए

कालभंतरमिच्छाङ्घ्रिसंचयसहिदस्स पहाणत्तावलंबणादो । तदो असंखेज्जगुणा जादा ।

❀ **सेसाणं कम्माणं सव्वत्थोवा अवत्तव्वसंकामया ।**

§ ९१७. अणंताणुबंधीणं ताव पल्लिदोवमस्सासंखेज्जभागमेत्ता उक्खसेणेयसमयम्मि अवत्तव्वसंकमं कुणंति । वारसकसाय-णवणोकमायाणं पुण संखेज्जा चेव उवसामया सव्वोवसामणादो परिवदिय अवत्तव्वसंकमं कुणमाणा लब्भंति त्ति सव्वत्थोवत्तमेदेसिं जादं ।

❀ **असंखेज्जगुणहाणिसंकामया संखेज्जगुणा ।**

§ ९१८. अणंताणुबंधिविसंजोयणाए चरित्तमोहक्खवणाए च दग्गवकिट्टिप्पहुडि संखेज्जसहस्सट्टिदिखंडयचरिमफालीसु वट्टुमाण जीवाणमेयवियप्पपडिबद्धावत्तव्वसंकाम-एहिंतो तथाभावमिद्धीए णाइयत्तादो ।

❀ **सेससंकामया मिच्छुत्तभंगो ।**

§ ९१९. सुगममेदमप्पणासुत्तं ।

एवमोघप्पावहुअं समत्तं ।

§ ९२०. एदस्सेव फुडीकरणट्टुमादेसपरूवणट्टुं च उच्चारणाणुगममेत्थ कस्सामो । तं जहा—अप्पावहुआणुगमेण दुविहो णिहेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ०-अणंताणु०चउक्क० विहत्तिभंगो । वारमक०-णवणोक० अणंताणु०चउक्कभंगो । णवरि

सञ्चयका दीर्घ उद्वेलनकालके भीतर मिथ्यादृष्टि राशिके प्राप्त हुए सञ्चयके साथ प्रधानरूपसे अवलम्बन लिया गया है । इसलिए यह गणि असंख्यातगुणी हो जानी है ।

* शेष कर्मोंके अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव सबसे स्तोक हैं ।

§ ९१७. उत्कृष्टरूपसे पन्थके असंख्यातवें भागप्रमाण जीव अनन्तानुबन्धियोंका एक समयमें अवक्तव्यसंकम करते हैं । परन्तु वारह कपाय और नौ नाकपायोंका संख्यात उपशामक जीव ही सर्वोपशामनासे गिर कर अवक्तव्यसंकम करते हुए उपलब्ध होते हैं, इसलिए इनका सबसे स्तोकपना बन जाना है ।

* उनसे असंख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ९१८. अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजनामें और चात्रिमोहनीयकी क्षणामें दूरापकृष्टिसे लेकर संख्यात हजार स्थितिकाण्डकोंकी अन्तिम फालियोंमें विद्यमान जीव एक त्रिकल्पसे सम्बन्ध रखनेवाले अवक्तव्यसंक्रामकोंसे संख्यातगुण सिद्ध होते हैं यह बात न्याय प्राप्त है ।

* उनसे शेष पदोंके संक्रामक जीवोंका भंग मिथ्यात्वके समान है ।

§ ९१९. यह अर्पणासूत्र सुगम है ।

इस प्रकार ओघअल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

§ ९२०. अब इसीको स्पष्ट करनेके लिए और आदेशका कथन करनेके लिए यहाँ पर उच्चारणाका अनुगम करते हैं । यथा—अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग स्थितिभिक्तिके समान है । वारह कपाय और नौ नाकपायोंका भंग अनन्तानुबन्धीचतुष्कके समान है । किन्तु इतनी

संजलणतिय-पुरिसवेद० सव्वत्थोवा असंखेज्जगुणवड्डिसंका० । अवत्त०संका० मंखेज्ज-
गुणा । सेसं तं चेव । सम्म०-सम्मामि० सव्वत्थोवा असंखे०गुणहाणिसं० । अवट्ठि०
असंखे०गुणा । असंखे०भागवड्डिसंका० असंखे०गुणा । असंखे०गुणवड्डिसं० असंखे०-
गुणा । संखे०भागवड्डि अमंखे०गुणा । संखे०गुणव० संखे०गुणा । संखे०-
गुणहाणि० संखे०गुणा । संखे०भागहाणि० असंखे०गुणा । अवत्त० असंखे०-
गुणा । असंखे०भागहाणि० अमंखे०गुणा ।

§ ९२१. आदेसेण सव्वणेरइय-तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खतिय-देवा जाव सहस्सार
त्ति छव्वीसं पय० विहत्तिभंगो । सम्म०-सम्मामि० ओघभंगो । णवगि असंखे०-
गुणहाणिसंका० णत्थि । पंचि०तिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० विहत्तिभंगो । णवरि
सम्म०-सम्मामि० अमंखे०-गुणहाणी णत्थि । मणुसेसु मिच्छ०-अणंताणु०चउक्क०
विहत्तिभंगो । वारसक०-णवणोक्क० अणंताणु०चउक्क०भंगो । सम्म०-सम्मामि०
सव्वत्थोवा अमंखे०गुणहाणिसंका० । अवट्ठिदमंका० मंखे०गुणा । अमंखे०-
भागवड्डिसंका० मंखे०गुणा । अमंखे०गुणवड्डिसं० मंखे०गुणा । मंखे०भागवड्डिसं०
संखे०गुणा । मंखे०गुणवड्डिसं० मंखे०गुणा । अवत्तच्चमं० मंखे०गुणा । मंखे०

विशेषता है कि संज्वलनत्रिक और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव सबसे स्तोत्रक हैं । उनसे अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । जेप भंग उन्नी प्रकार हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहाणिके संक्रामक जीव सबसे स्तोत्रक हैं । उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे असंख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यातगुणहाणिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यातभागहाणिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे असंख्यातभागहाणिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

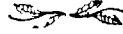
§ ९२१. आदेशसे सब नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, सामान्य देव और सहस्वार कल्प तकके देवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें असंख्यातगुणहाणिके संक्रामक जीव नहीं हैं । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें स्थितिबिभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका असंख्यात-गुणहाणिसंक्रम नहीं है । मनुष्योंमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । बारह कपाय और नौ नोकपायोंका भंग अनन्तानुबन्धीचतुष्कके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहाणिके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनमें अवस्थितपदके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे असंख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनमें संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनमें अवक्तव्यपदके

गुणहाणि० अमंखे०गुणा । संखे०भागहाणि० असंखे०गुणा । असंखे०भाग-
हाणि० असंखे०गुणा । एवं मणुमपज्जत्त-मणुमिणीसु । णवरि जम्हि असंखे०गुणं
तम्हि मंखेज्जगुणं कायव्वं । आणदादि णवगेवज्जा त्ति छव्वीसं पयडीणं विहत्तिभंगो ।
सम्म०-सम्मामि० मच्चत्थोवा असंखे०भागवड्ढि० । असंखे०गुणवड्ढि० असंखे०-
गुणा । संखे०भागवड्ढि० अमंखे०गुणा । संखे०गुणवड्ढि० संखे०गुणा । संखे०
भागहाणि० अमंखे०गुणा । अवत्त० असंखे०गुणा । असंखे०भागहाणि० असंखेज्ज-
गुणा । अणुद्दिमादि मच्चट्ठे त्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म० संखेज्जगुणहाणी० णत्थि ।
एवं जाव० ।

एव वड्ढिमंकमो समत्तो ।

एत्थ भवसिद्धिण्णदरपाओग्गट्ठिदिसंकमट्ठाणाणि विहत्तिभंगादो थोवविसेसाणु-
विट्ठाणि सच्चकम्माणमणुगंतव्वाणि ।

एव ट्ठिदिसंकमो समत्तो ।



संक्रामक जीव संख्यातगुणें हैं । उनसे संख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणें हैं । उनसे संख्यातभागहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणें हैं । उनसे असंख्यातभागहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणें हैं । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि जहाँ अमंख्यातगुणा हैं वहाँ संख्यातगुणा करना चाहिए । आन्त कल्पसे लेकर नौ प्रैव्यक तकके देवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंका भंग स्थितिभिक्तिके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवड्ढिके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे असंख्यातगुणवड्ढिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणें हैं । उनसे संख्यातभागवड्ढिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणें हैं । उनसे संख्यातगुणवड्ढिके संक्रामक जीव संख्यातगुणें हैं । उनसे संख्यातभागहानिके संक्रामक जीव अमंख्यातगुणें हैं । उनसे अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणें हैं । उनसे असंख्यातभागहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणें हैं । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें स्थिति-
विभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है किन्तु इनमें सम्यक्त्वकी संख्यातगुणहानि नहीं है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

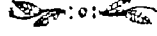
इस प्रकार वृद्धिसंक्रम समाप्त हुआ ।

यहाँ पर सब कर्मोंके भवसिद्ध और इतर जीवोंके योग्य स्थितिसंक्रमस्थान स्थितिभिक्तिके थोड़ीसी विशेषताको लिए हुए जानना चाहिए ।

इस प्रकार स्थितिसंक्रम समाप्त हुआ ।



भा० दि० जैन संघ के स्वाध्यायोपयोगी प्रकाशन



१ कसायपाहुड (भाग १)	समाप्त	
२ कसायपाहुड (भाग २)	शाखाकार (१२), पुस्तकाकार	(१२)
३ कसायपाहुड (भाग ३)	"	(१२)
४ कसायपाहुड (भाग ४)	"	(१२)
५ कसायपाहुड (भाग ५)	"	(१२)
६ कसायपाहुड (भाग ६)	"	(१२)
७ कसायपाहुड (भाग ७)	"	(१२)
८ कसायपाहुड (भाग ८)	"	(१२)
९ मोक्षमार्गप्रकाश	आधुनिक हिन्दामे	(५)
१० वरांगचरित	प्राचीन चरित ग्रन्थका प्रथमप्रकरण हिन्दामे अनुवाद	(७)
११ बृहत् कथाकोश दो भाग	प्रत्येक भागका मूल्य	२॥॥
१२ जैनधर्म	पं० कैलाश चन्द्र जी लिखित	(७)
१३ तत्त्वार्थसूत्र	"	(२॥)
१४ नमस्कार मन्त्र	"	॥६॥॥
१५ भगवान ऋषभदेव	"	(१॥)
१६ ईश्वरर्षीमांसा	स्वर्गाय स्वामी कमानन्द लिखित	(६)
१७ छहदाला	विस्तृत टीका	(२)
१८ द्रव्यसंग्रह	"	(१॥)

प्राप्ति स्थान

मैनेजर भा० दि० जैन संघ
चौरासी, मथुरा

❀ चउएहं खवगस्स लुसु कम्मेषु खीणेषु पुरिसवेदे अक्खीणं ।

। २६७. खवगम्म इत्थिवेदक्खयाणंतरमुप्पाइददमंक्रमद्वानम्म पुणो छण्णो-
कमाणमु खीणेषु पयदमंक्रमद्वानमुप्पज्जइ ति मुत्तत्थणिच्छओ ।

❀ अहवा चउवीसदिकम्मंसियस्स तिविहाण मायाण उवसंताए
सेसेसु अणुवसंतेसु ।

२६८. तत्थ द्विविहलोह-दोदंमणमोहपयडीणं मंक्रमम्म परिण्णुडमुवलंभादो ।
एत्थ वि ओदरमाणसंबंधेणदं मंक्रमद्वानमणुमग्गियच्चं ।

❀ तिणहं खवगस्स पुरिसवेदे खीणे सेसेसु अक्खीणेषु ।

वच रहते है । संज्वलन लोभका आनुपूर्वी मंक्रमके कारण संक्रम नहीं होता । दूसरा स्थान चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावालेके होता है । इसके और सवका उपशम तो हो जाता है किन्तु माया संज्वलन, दो लोभ और दो दर्शनमोहनीय इन पांच प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है । यहाँ भी संज्वलन लोभका संक्रम नहीं होता ।

* क्षपकके छट नोकपायोंका क्षय होकर पुरुषवेदके अधीण रहते हुए चार प्रकृतिक मंक्रमस्थान होता है ।

। २६७. सीधेदके क्षयके बाद जिरने दम प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न कर लिया है ऐसे क्षपक जीवके तदनन्तर छः नोकपायोंका क्षय करने पर प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है यह इस ग्रन्थका भाग है ।

* अथवा, चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारकी मायाका उपशम होकर शेष प्रकृतियोंके अनुपशान्न रहते हुए चार प्रकृतिक मंक्रमस्थान होता है ।

। २६८. क्योंकि यहाँ पर दो प्रकारके लोभ और दर्शनमोहनीयकी दो प्रकृतियां इन चारका स्वरूपमे संक्रम उपपत्त्य होता है । यहाँ पर भी उतरनेवाले जीवके सगन्धसे यह संक्रमस्थान जान लेना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहाँ पर चार प्रकृतिक संक्रमस्थान तीन प्रकारसे बतलाया है । एक क्षपक-श्रेणिकी अपेक्षा और दो उपशमश्रेणिकी अपेक्षा । उपशमश्रेणिके भी प्रथम चढ़नेवालेके और दूसरा उतरनेवालेके होता है । क्षपकश्रेणिके पहला स्थान छह नोकपायोंका क्षय होने पर प्राप्त होता है । इसमें चार संज्वलन और एक पुरुषवेद इन पांचकी सत्ता रहती है किन्तु संक्रम संज्वलन लोभके बिना चारका होता है । दूसरा स्थान चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावालेके होता है । इसमें दो लोभ और दो दर्शनमोहनीय इन चार प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है । संज्वलन लोभका संक्रम नहीं होता । तीसरा स्थान इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके उपशमश्रेणिके उतरते हुए तीन प्रकारके लोभके साथ संज्वलन मायाके संक्रमित करने पर होता है । उस समय इस जीवके तीन लोभ माया संज्वलन यह चार प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

* क्षपक जीवके पुरुषवेदका क्षय होकर शेष प्रकृतियोंके अधीण रहते हुए तीन प्रकृतिक मंक्रमस्थान होता है ।